Copies : 500 March 1982

ANDHRA UNIVERSITY

Series No. 181

हिन्दी और तेलुगु लेखिकाओं के उपन्यास (तुलनात्मक अध्ययन)

HINDI aur TELUGU LEKHIKAVON KE UPANYAS (TULANATMAK ADHYAYAN)

लेखिका : **डॉ के. लीलावती** एम. ए., पी. एच-डी.

by **Dr. K. LEELAVATI,** M A Ph. D.

Lecturer in Hindi, Andhra University, Waltair

मूल्य : रु. ७९/–

Price : Rs. 79/–

पुस्तक प्राप्ति स्थान :–
उपनिदेशक, आंध्र विश्वविद्यालय प्रेस,
वाल्टेर, विशाखपट्टणम–५३०००३ (आं. प्र.)

For Copies :
The Dy. Director
Andhra University Press,
WALTAIR, Visakhapatnam–530 003

प्रकाशक : आंध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेर, विशाखपट्टणम–५३०००३ (आं. प्र.)

Publishers : The Dy. Director, Andhra University Press and Publications, Waltair, Visakhapatnam–530 003

मुद्रक : दीपक आर्ट प्रिंटर्स, हरिदास मार्केट, कोठी, बैंकस्ट्रीट, हैदराबाद–१

Printers : Deepak Art Printers, Haridas Market, Kothi, Bank Street, Hyderabad–500001 (A. P.)

श्रद्धेय गुरु

प्रोफेसर जी. सुन्दर रेड्डीजी को

सादर समर्पित

हिन्दी तथा तेलुगु लेखिकाओं के उपन्यास

(तुलनात्मक अध्ययन)

डॉ. के. लीलावती

एम. ए., पी. एच-डी.,

प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग

आन्ध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेर-(आं. प्र.)
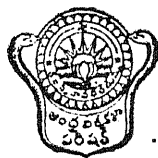
प्रकाशक :

आंध्र विश्वविद्यालय

वाल्टेर, विशाखापट्टनम-५३०००३

Copies : 500 March 1982

ANDHRA UNIVERSITY

Series No. 181

हिन्दी और तेलुगु लेखिकाओं के उपन्यास (तुलनात्मक अध्ययन)

HINDI aur TELUGU LEKHIKAVON KE UPANYAS (TULANATMAK ADHYAYAN)

लेखिका : **डॉ के. लीलावती** एम. ए., पी. एच-डी.

by **Dr. K. LEELAVATI**, M A Ph. D.

Lecturer in Hindi, Andhra University, Waltair

मूल्य : रु. ७९/-

Price : Rs. 79/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

उपनिदेशक, आंध्र विश्वविद्यालय प्रेस,

वाल्टेर, विशाखपट्टणम-५३०००३ (आं. प्र.)

For Copies :

The Dy. Director

Andhra University Press,

WALTAIR, Visakhapatnam-530 003

प्रकाशक : आंध्र विश्वविद्यालय, वाल्टेर, विशाखपट्टणम-५३०००३ (आं. प्र.)

Publishers : The Dy. Director, Andhra University Press and Publications, Waltair, Visakhapatnam-530 003

मुद्रक : दीपक आर्ट प्रिंटर्स, हरिदास मार्केट, कोठी, बैंकस्ट्रीट, हैदराबाद-१

Printers : Deepak Art Printers, Haridas Market, Kothi, Bank Street, Hyderabad-500001 (A. P.)

श्रद्धेय गुरु

प्रोफेसर जी. सुन्दर रेड्डीजी को

सादर समर्पित

अनुक्रम

दो शब्द –

हिन्दी समस्त भारतीय भाषाओं की विशेषताओं तथा विभूतियों को आत्मसात करके ही समृद्ध हो सकती है। इसके लिए हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन एक उत्तम साधन है। इस दृष्टि से डा. (श्रीमती) के. लीलावती का यह प्रयास स्तुत्य ही नहीं बल्कि अपना एक विशिष्ठ स्थान भी रखता हैं। 'हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' हिन्दी साहित्य जगत् में एक ऐसी कमी की पूर्ति करता है, जिसकी आलोचना के क्षेत्र में चिर प्रतीक्षा रही है।

मेरे निर्देशन में सम्पन्न यह शोध कार्य डा. लीलावती जी की तार्किक एवं स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टि का परिचायक है। अपने शोध विषय की सीमा का निर्धारण करने में और हिन्दी तथा तेलुगु की प्रमुख लेखिकाओं की प्रतिनिधि रचनाओं का चयन कर विषयगत तथ्यों के उद्घाटन में लेखिका अत्यंत सजग रही हैं। भले ही हिन्दी में लेखिकाओं के उपन्यास साहित्य का परिचय करानेवाले एक आध ग्रन्थ प्रकाश में आये हों लेकिन तेलुगु में लेखिकाओं के उपन्यासों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करनेवाला एक भी ग्रन्थ आज तक प्रकाश में नहीं आया है। अतः इस दिशा में डा. लीलावती जी का प्रयास और लेखिकाओं के उपन्यासों के बारे में उनकी मौलिक उद्भावनाएँ, आलोच्य लेखिकाओं पर एक मुहर छोड जाती हैं जो अगामी तेलुगु के आलोचकों के लिए दिशा-निर्देशन करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इतना हीं नहीं डा. लीलावती के अध्ययन से प्राप्त तुलनात्मक निष्कर्ष हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं की श्रेष्ठता के आनुपातिक अंतर को स्पष्ट कर देते हैं।

अनादिकाल से साहित्य के क्षेत्र में लेखिकाओं का योगदान उपेक्षित रहा है। इस ग्रन्थ के द्वारा स्वातंत्र्य पूर्वकालीन हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के योगदान से अवगत होने पर नारी के प्रति दुराग्रहपूर्ण एवं पक्षपात दृष्टि रखनेवाले साहित्य के इतिहासकारों को दांतो तले उँगली दबानी पडती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में तो हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाएँ साहित्य के क्षेत्र में

अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी हैं। विशेष कर उपन्यास के क्षेत्र में लेखिकाएं मात्रा एवं गुण की दृष्टि से बाढ की तरह उमढ आयी हैं। उपन्यास साहित्य के विकास में महिलाओं के योगदान को सप्रमाण निरूपित करने में और हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं की उपलब्धियों के तुलनात्मक निष्कर्षों को प्रस्तुत करने में डा. लीलावती पूर्णतः कृत कृत्य हुयी है।

इस गवेषणात्मक एवं विद्वत्तापूर्ण अध्ययन के लिए तथा उसे प्रकाशित करने के उपलक्ष्य में मैं डॉ. लीलावती को हार्दिक बधाई देते हुए उन्हें साधुवाद भी देता हूँ कि इसी तरह अपने आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययनों से हिन्दी तथा तेलुगु के बीच सेतु बनकर राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र को और मजबूत बनाती रहे।

शुभ कामनाओं सहित

प्रो. जी. सुन्दररेड्डी
हिन्दी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय
वाल्टेर (आं. प्र.)

प्रस्तावना

आरंभ से लेकर आज तक महिलाएँ निरंतर अपनी कवियित्री प्रतिभा का परिचय देती आ रही हैं। लेकिन पुरुष की मानसिक रूढ़ियों और नारी की प्रतिभा के प्रति उसकी दुराग्रहपूर्ण प्रवृत्ति के कारण नारी विरचित साहित्य की उपेक्षा होती आयी है। यही कारण है कि महिलाओं के उपेक्षित, छिन्न भिन्न और लुप्त प्राय कथा–साहित्य का आज समग्र अध्ययन करने की आवश्यकता आ पडी है। नारी जागरण का वर्तमान युग इस बात की अपेक्षा करता हैं कि परम्परागत उपेक्षा–भाव और दुराग्रह को छोडकर महिलाओं की साहित्य–सेवा को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जाय। वस्तुतः कई सामाजिक अत्याचारों और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप महिलाओं द्वारा रचित साहित्य विशेषतः कथा साहित्य–अपना विशिष्ट स्थान रखता है। परिवार, प्रणय, वात्सल्य आदि विषयों तथा तत्संबंद्ध समस्याओं के चित्रण में उपन्यासकर्त्रियों का जो दृष्टिकोण रहा है वह लेखकों की दृष्टि से भिन्न है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय जीवन में नवीन चेतना की लहर दौड पडी और उपलब्धियाँ हासिल हुयी। उसी के साथ साथ नारी–समाज में भी नयी चेतना स्पन्दित हुयी है।

वैसे तो साहित्य की अन्यान्य विधाओं में महिलाओं का योगदान आदि-काल से बराबर दिखाई देता है। हिन्दी तथा तेलुगु के आलोचकों ने महिलाओं द्वारा विरचित उपन्यास–साहित्य की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया है। इन्होंने साहित्य के इतिहास में कुछ प्रमुख लेखिकाओं तक उनकी रचनाओं के नाममात्र गिना दिये हैं। लेकिन जिन महिलाओं ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा हिन्दी तथा तेलुगु के उपन्यास–साहित्य को विकासोन्मुख करने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है, साहित्य में उनका नामोल्लेखन तक नहीं हुआ है। हिन्दी की लेखिकाओं के इस योगदान को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास करनेवालों में डा. प्रेमलता, डा. उमेश माथुर तथा डा. उर्मिला गुप्त के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। तेलुगु में श्रीमती ऊट्कूरि लक्ष्मीकान्तम्मा ने आंध्र की कवियित्रियों के योगदान को प्रकाश में लानें का सराहनीय प्रयास किया है। किंतु तेलुगु के उपन्यास साहित्य के विकास में महिलाओं के योगदान को प्रकाश में लाने का समग्र प्रयास अब तक नहीं हुआ है। यह ग्रन्थ इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास है। इस अभाव की पूर्ति करने के साथ साथ हिन्दी की लेखिकाओं के योगदान से तुलना कर उनमें पाये जानेवाले साम्य तथा वैषम्य पर प्रकाश डालना ही इस ग्रन्थ का लक्ष्य हैं। इससे तुलनात्मक अध्ययन का

क्षेत्र–विस्तार होने के साथ साथ उन भाषाओं के उपन्यास साहित्य के समग्र अनुशीलन में सुविधा होगी।

तुलनात्मक अध्ययन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए पाश्चात्य विद्वान मैक्समूल्लर ने कहा हैं कि "सभी उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलना पर ही आधारित हैं।"[1] इसी प्रकार हिन्दी तथा तेलुगु के तुलनात्मक अध्ययन एवं अनुसंधान क्षेत्र के मूर्धन्य आलोचक प्रो. जी. सुंदररेड्डी जी कहते हैं कि "हिन्दी समस्त भारतीय भाषाओं की विशेषताओं तथा विभूतियों को आत्मसात करके ही समृद्ध हो सकती है। इसके लिए हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन एक उत्तम साधन है। यह कार्य जब तक सम्यक रूप से सम्पन्न न होगा तब तक हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं का विकास संभव नहीं है।"[2] अतः हिन्दी तथा तेलुगु के बीच तुलनात्मक अध्ययन की इस आवश्यकता एवं महत्व को दृष्टि में रखते हुए मैंने अपनी रुचि के अनुकूल महिलाओं के उपन्यास साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय कर लिया। इसके लिए सौभाग्य से प्रो. जी. सुंदररेड्डी जी का निर्देशन भी प्राप्त हो सका।

विषय की व्यापकता को दृष्टि में रखते हुए मैंने हिन्दी तथा तेलुगु की प्रमुख उपन्यासकर्त्रियों की प्रतिनिधि रचनाओं (सन् १९७० तक प्रकाशित) तक ही अपने अध्ययन को सीमित रखा। अध्ययन को वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित बनाने केलिए प्रस्तावित शोध–विषय को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय के अंतर्गत महिलाओं की साहित्य–सर्जना तथा उसके प्रेरक संदर्भों के संबंध में विवेचना प्रस्तुत की गयी है। इसके अंतर्गत स्त्री के मानसिक विकास में बाधक प्रवृत्तियों तथा भिन्न भिन्न परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। नारी को साहित्यिक–सर्जना की ओर प्रेरित करनेवाली सामाजिक परिस्थितियों के अंतर्गत समाज में प्रचलित सती–प्रथा, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा, निरक्षरता, अंध विश्वास आदि सामाजिक कुरीतियों का वर्णन किया गया है। इन परिस्थितियों में समाज का विशेषकर स्त्रियों का उद्धार करने के उद्देश्य से स्थापित ब्रह्मसमाज, आर्य

---

1) Max Muller - ,,.. all higher knowledge is gained by comparison and rests on comparison".. Lectures on the science of religion - Page 12.

२. प्रो. जी. सुंदररेड्डी – शोध और बोध – लेख – 'तुलनात्मक शोध की आवश्यकता और संभावना' – पृ. २४–२५.

समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, आदि संस्थाओं तथा सुधार-वादी आंदोलनों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इन्हीं संस्थाओं के सक्रिय योगदान के फलस्वरूप महिलाएँ जागरूक हुयी और उन्होंने साहित्य के विभिन्न विधा–क्षेत्रों में प्रवेश कर उनके विकास में अपनी प्रतिभा के अनुकूल योग दिया। पारिवारिक उत्तरदायित्वों के फलस्वरूप लेखिकाओं की साहित्यिक प्रतिभा को पनपने का खुला अवसर न मिला। इन सामाजिक परिस्थितियों के अतिरिक्त, नारी को साहित्यिक सर्जना की दिशा में प्रवृत्त करनेवाली राज-नीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रति भी इस अध्याय में यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला गया है।

उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उनका समग्र विवेचन करने के उद्देश्य से उपन्यास के विविध तत्वों को प्रमुखतया दो वर्गों में बाँटा गया है – वस्तु-पक्ष तथा शिल्प-पक्ष। वस्तु पक्ष के अंतर्गत कथावस्तु, पात्र-चित्रण तथा उद्देश्य जैसे कथ्य-प्रधान तत्वों का तथा शिल्प पक्ष के अंतर्गत कथोपकथन, वातावरण, भाषा तथा शैली जैसे कलात्मक तत्वों को मान लिया गया है। इन्हीं दो वर्गों के आधार पर हिंदी तथा तेलुगु के, विवेच्य उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी तथा तेलुगु के उपन्यासों की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि का परिचय-प्रस्तुत करते हुए आरंभ से महिलाओं द्वारा विरचित हिन्दी तथा तलुगु उपन्यासों का विकासात्मक परिचय दिया गया है। संक्षेप में यहाँ हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासकर्त्रियों के उपन्यास के विकास-क्रम का तुलनात्मक परिचय भी दिया गया है।

तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों में स्वातंत्र्यपूर्व अवधि (आरंभ से सन् १९४७ ई. के पूर्व) की हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के प्रतिनिधि उपन्यासों का वस्तुगत एवं शिल्पगत विवेचन कर उनका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के अंत में हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों के वस्तु-गत एवं शिल्पगत अध्ययन से प्राप्त तुलनात्मक निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया हैं।

पंचम एवं षष्ठम अध्यायों में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् (सन् १९४७ से १९७० तक) की अवधि की हिन्दी तथा तेलुगु की प्रमुख लेखिकाओं के प्रतिनिधि उपन्यासों का वस्तुगत एवं शिल्पगत मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अंत में हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों के वस्तुगत एवं शिल्पगत अध्ययन से प्राप्त तुलनात्मक निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है।

वाल्टेयर — **के. लीलावती**

आभार प्रदर्शन-

सर्व प्रथम मैं अपने इस शोध-कार्य को संपन्न कराने में मेरा निर्देशन करनेवाले तथा इस ग्रंथ के बारे में अपना अभिमत प्रकट कर मुझे आशीश देने वाले प्रो. जी. सुंदररेड्डीजी के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। इन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप यह ग्रंथ आज मुद्रित होकर प्रकाश में आ सका है।

मेरे शोध कार्य के लिए मुझे पी.एच. डी. की उपाधि प्रदान कर इस के प्रकाशन का भार स्वीकृत करनेवाले आन्ध्र विश्वविद्यालय के अधिकारियों को तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से संबंधित अधिकारियों को मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। इस ग्रंथ को तैयार करने में प्रेरणा प्रदान करने वाले मेरे सभी गुरुजनों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे शोध अध्ययन में अपने बहुमूल्य सुझाओं से मुझे अनुग्रहीत किया है। अपने शोधाध्ययन में सहायक उन लेखक, लेखिकाओं के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे विविध प्रकार की सहायता एवं प्रेरणा मिली है। छपाई के लिए ग्रन्थ विस्तार के भय से अपने शोध-प्रबंध को संक्षिप्त करने में मेरा सहयोग देनेवाले मेरे मित्र तथा सहयोगी डॉ. एस. एम. इकबालजी का भी मैं हृदय से आभार मानती हूँ। छपाई के कार्य में अपना पूर्ण सहयोग देने वाले प्रो. सी. बी. रावतजी तथा डा. श्रीमती नूरजहाँ बेगम जी के प्रति भी मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

छपाई के लिये अनुदान प्राप्ति से लेकर छपाई पूरी होने तक उपस्थित होनेवाली विविध कठिनाइयों में मेरा साथ देनेवाले अपने पति महोदय कृष्ण मोहन जी के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। मेरे जीजाजी और दीदी के प्रति भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस छपाई के प्रकाशन केलिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है।

इस ग्रंथ का मुद्रण अतिकाल में ही इतने सुंदर रूप में पूरा कर अपना सहयोग प्रदान करने वाले दीपक आर्ट प्रिंटर्स के व्यवस्थापक श्री हरिश्चंद्र विद्यार्थी जी के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। अंततः मैं उन सभी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में इस ग्रंथ के प्रकाशन में मेरी सहायता की है।

भवदीय

के. लीलावती,

प्राध्यापिका, आंध्र विश्वविद्यालय

प्रथम अध्याय

महिलाओं की साहित्य-सर्जना : प्रेरक संदर्भ

पुरुष और स्त्री समाज के अभिन्न अंग हैं। वैयक्तिक अथवा सामाजिक जीवन की पूर्णता तथा अबाध विकास के लिए दोनों को एक दूसरे के पूरक बनकर जीवनयापन करना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है। शारीरिक गठन तथा जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप स्त्री और पुरुष के उत्तरदायित्वों तथा अधिकारों के बीच अंतर आ जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु यह अंतर एक दूसरे के लिए पूरक की पृष्ठभूमि के रूप में ही प्रमाणित हो सकता है।

विश्व के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ द्रुतगति से जिस प्रकार क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित होते आये हैं, उसी प्रकार साहित्यिक-क्षेत्र में भी हुए और महिलाएं भी अपूर्व रूप में साहित्यिक सर्जना के क्षेत्र में प्रवृत्त हुयी। प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक के इतिहास का अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि पुरुष का दृष्टिकोण स्त्री के प्रति धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा और उसमें स्त्री पर आधिक्य पाने की भावना उत्तरोत्तर विकसित होने लगी। स्त्री सत्तात्मक युग अथवा स्त्री प्रधान-पारिवारिक व्यवस्था से मिटकर पुरुष सत्तात्मक युग अथवा पुरुष-प्रधान पारिवारिक व्यवस्था का आगमन हुआ। पुरुष के अहम एवं स्त्री पर उसके आधिपत्य की भावना ने नारी को सामाजिक प्रतिबन्धों में जकडकर उसे आर्थिक, वैचारिक एवं मानसिक रूप से उभरने नहीं दिया। उसे सभी प्रकार से परतन्त्र बना दिया गया। इस प्रकार पुरुष की शृंखलाओं

में जकडी जानें वाली नारी अपनी समस्याओं और विवशताओं आदि के बारे में सोच-विचारने के लिए विवश हो गई। समय समय पर जो समाज-सुधारक, महात्मा, मनीषी आदि हुए थे, उन सबने मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर नारी को पुरुष की श्रृंखलाओं से मुक्त करने तथा उसकी चेतना को जागृत कर, उसके व्यक्तित्व का उद्धार करने का स्तुत्य एवं सफल प्रयत्न किया। ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों की विचारधाराओं से भारतीय स्त्री अधिक मात्रा में प्रभावित हुई। वह यह विश्वास करनें लगी कि अपनी समस्याओं तथा विवशताओं आदि से मुक्त होने के लिए निरक्षरता, अज्ञान, आर्थिक पराधीनता जैसी असंगतियों की ओर नारी-समाज की दृष्टि प्रसारित कर उनमें जागृति पैदा करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने साहित्यिक सर्जना को भी एक श्रेष्ठ एवं सशक्त साधन के रूप में स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि साहित्यिक सर्जना के लिए महिलाओं को कई प्रकार के संदर्भ प्रेरित ही नहीं प्रत्युत विवश भी कर चुके हैं। इन संदर्भों एवं परिस्थितियों का ब्यौरा प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। अत: प्रस्तावित शोध-विषय की पृष्ठभूमि के रूप में इसका विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

आदिकाल में भारतीय नारी केलिए गौरवपूर्ण स्थान मिला था। वैदिककाल से प्रचलित चार आश्रमों का पोषक मानकर उसे विशेष महत्व प्रदान किया गया था। गृहस्थ जीवन का केन्द्र स्त्री है, जिसका स्थान उन दिनों आदरणीय माना जाता था। वेद, पुराण, स्मृति, इतिहास, दर्शन आदि ने नारी को पूज्यभाव से देखा। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में नारी का बहुत ही ऊंचा स्थान था। समाज में भी उसे आदरणीय स्थान प्राप्त था। सामाजिक और धार्मिक कार्यों में उसे सक्रिय रूप से भाग लेने का अधिकार था। मनुस्मृति में कहा गया है–'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता'–[1] इससे विदित होता है कि इस समय नारी का कितना गौरवपूर्ण स्थान था।

स्त्री के मानसिक विकास में बाधक प्रवृत्तियां :

इतिहास की प्रगति के साथ साथ नारी की स्थिति भी बदलती गयी। २०० ई. शताब्दी तक धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदल गई। सर्व प्रथम, लोग धार्मिक अनुष्ठानों के साथ साथ भौतिक जीवन को भी महत्व देते थे, परंतु धीरे धीरे लोगों का ध्यान केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक ही सीमित रह गया। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए पुत्र का होना अनिवार्य माना जाने लगा। यहाँ आकर स्त्री केवल पुत्रोत्पत्ति का यंत्र मात्र रह गई। जो स्त्री कभी पूज्य

1. मनुस्मृति—अ. ३/५६

मानी जाती थी उसका स्थान समाज में धीरे धीरे घटने लगा। ९०० ई. के आसपास मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् नारी की स्थिति और भी दय-नीय होती गई। मुसलमानों ने भारत की राजनीति और सामाजिक व्यवस्था में एक प्रकार की विश्रृंखलता उत्पन्न कर दी। नारी जो वैदिक काल में सुशिक्षित थी और पुरुषों के सभी कार्यों में भाग लेती थीं, वही अब उपेक्षिता कठपुतली तथा भोग्य-वस्तु मात्र रह गई। इसके साथ नारी पर बाह्य रूप से प्रतिबंधन भी लगाये गये। अशिक्षित और चारदीवारी में बंद होने के कारण अंध-विश्वासों ने उसे घेर लिया। सति-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह आदि रीति-रिवाज समाज में जड पकडने लगे। उपर्युक्त संदर्भों एवं परि-स्थितियों ने नारी के व्यक्तित्व को दुर्बल एवं पंगु बना दिया था। दूसरी ओर पुरुष समझने लगा कि पुरुष के बिना स्त्री का व्यक्तित्व ही नहीं है, इस प्रकार के दंभपूर्ण व्यवहार ने भी नारी की मानसिक चेतना को दबा दिया।

उस समय भारत में शिक्षा का प्रसार भी अधिक न था। शिक्षा के साधन केवल धर्म-ग्रंथ माने जाते थे। मुद्रण-व्यवस्था का अभाव था। इसलिए लोग पौराणिक-गाथाओं को सुनकर ही उसका ज्ञान प्राप्त करते थे। पुरुषों का ज्ञान सीमित होने पर भी अपने शारीरिक बल एवं अहंकार से प्रेरित पुरुष ने स्त्री पर अपना अधिकार जमा लिया और अंधविश्वासों में ग्रस्त अबला, पुरुष का विरोध न कर सकी। हिंदू परिवार में जिस नारी के लिये देवी, पूज्या माता, सहधर्मचारिणी, गृहस्वामिनी आदि की संज्ञा दी गयी थी, वही अब केवल नाममात्र केलिए रह गई थी। पुरुष के अहंकार ने नारी को ऊपर उठने का अवसर नहीं दिया। माता, पत्नी, पुत्री, बहन आदि सभी रूपों में परतंत्र होकर वह पुरुष के ही आधीन रहने लगी। उस पर-तंत्र नारी का आश्रयदाता बनने का लाभ उठाकर पुरुष ने उसे इतना अधिक परावलंबी बना दिया कि वह उसकी सहायता के बिना विकास के पथ पर आगे बढने में असमर्थ बन गयी। इसके साथ साथ समाज में जो भी कुप्रथायें प्रचलित थीं, उन सब का शिकार केवल स्त्री ही बनी। जो नारी आदिकाल में पुरुषों के साथ साहित्य-सर्जना में आगे थी, इन बदलती हुई परिस्थितियों में वह अशिक्षित तथा असहाय बन गयी। इसके अतिरिक्त कई सामाजिक कुरीतियाँ स्त्री की मानसिक चेतना तथा साहित्य-सर्जना शक्ति के विकास में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में बाधक ही सिद्ध हुई। अतः उन कुरीतियों का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

सती-प्रथा :

यह एक ऐसी कुप्रथा भारत वर्ष में चल पडी जिसका फल केवल स्त्री

को ही भोगना पडा । इस प्रथा के अनुसार पति के शव के साथ पत्नी को भी सजीव जलाया जाता था । इसके पीछे यह अंधविश्वास था कि इस संसार में पति के बिना पत्नी का कोई अस्तित्व नहीं होता और विधवा बन कर जीवित रहना स्त्री के लिए वांछनीय न था । इस कुप्रथा के शिकार अधिकतर असुन्दर नारियाँ ही हुआ करती थीं । उन दिनों जब भी कोई सुन्दर स्त्री उसके पति के साथ चिता में ढकेल दी जाती थी तब कोई युवा साहसी पुरुष उसे आग में जलने से बचाकर अपनी तलवार के बल पर उडा ले जाता था । इस प्रकार उन दिनों स्त्रियों के लिए कोई प्रथा नहीं थी । स्त्री केवल भोग्य वस्तु ही रह गयी । दूसरी बात यह है कि यह प्रथा केवल स्त्रियों के लिए ही थी, पुरुषों के लिए नहीं । इस कुप्रथा से पुरुष के प्रति स्त्री के मन में घृणा उत्पन्न होना सहज ही था । आगे चलकर वही घृणा नारी के अनेक क्रांतिकारी रूपों में प्रकट हुई । विलंब से ही सही, नारी कई समाज सुधारकों के सतत प्रयत्नों से इस कुप्रथा से मुक्त हो सकी ।

विधवा–समस्या :––

'सती प्रथा' के सामने विधवा समस्या ने भी नारी-समाज को कई यंत्रणाओं का शिकार बनाया । अपनी शारीरिक व मानसिक दुर्बलता के कारण नारी का विधवा-जीवन और भी कंटकमय बन गया । समाज में त्याग, साधना एवं संयम से रहने में ही विधवा का जीवन श्रेय माना जाने लगा । लोगों का यहां तक विश्वास था कि हिंदू-विधवा का पुनर्विवाह करना हिंदू-धर्म के लिए ही कलंक है । विधवा की स्थिति समाज में जानवर से भी बदतर हो गयी । गांधीजी के शब्दों में "धर्म के नाम पर हम गाय की रक्षा के लिए चिल्लाते हैं । परन्तु बाल-विधवा के रूप में रहने वाली मानवीय गाय की रक्षा करने के लिए हम मुंह मोड लेते हैं ।"[1] समाज में विधवा अशुभ सूचक बन गयी । समाज के शुभ अवसरों में भाग लेने से वह वंचित की गयी । सारांश यह है कि विधवा-समस्या भी भारतीय समाज के लिए एक प्रश्न के रूप में ही रही ।

सती प्रथा से तो नारी मुक्त हो गई थी लेकिन समाज में विधवा के रूप में उसके लिए कोई स्थान नहीं रहा । समाज के तीखे व्यंग्य प्रहारों को

---

1. Mahatma Gandhi......"We cry out for cow protection in the name of religion, but we refuse protection to the human-cow in the shape of the girl widow"––The role of women. M.K. Gandhi P. 91

सहन करती हुई चिता की आग म जलनेवाली विधवा, कभी-कभी पति की आग में जल मरना ही अच्छा समझने लगी है । समाज सुधारकों ने ही समाज में विधवा के स्थान को ऊँचा उठाया और उनके पुर्नविवाह की बात सोची उन्हें भी सुखमय जीवन आपादित करने का भरसक प्रयास किया ।

पर्दा-प्रथा :-

वास्तव में पर्दा-प्रथा भारतवासियों के लिए मुसलमानों की देन है । पर्दा प्रथा के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि यह स्त्रियों की भलाई के लिए ही शुरु हुई थी । अरब में पैगंबर मुहम्मद के जन्म से पहले समाज में स्त्री एक भोग की वस्तु थी । पुरुष अपना अधिपत्य जताकर किसी भी स्त्री पर अधिकार कर लेता था । स्त्रियों के लिए उनकी सुंदरता अभिशाप सिद्ध हुई थी । वह आज किसी पुरुष के हाथ में होती है तो कल कोई और पुरुष आकर उसे अपनी तलवार के बल छीनकर ले जाता था । स्त्री की इच्छा को कोई भी पूछनेवाला नहीं था । इस्लाम के जन्म के साथ ही अरब राज्यों में स्त्रियों के लिए पर्दा-प्रथा चल पडी । मुंह पर नकाब डालकर तथा घर की चार दीवारी में बंद करने से ही उन पर अत्याचार तथा जुल्म बंद हो सके हैं । मुसलमानों के शासन काल में भारत म इस प्रथा के आगमन के पश्चात् भारत को अनेक जातियों पर तथा यहां की संस्कृति एवं सभ्यता पर भी इस प्रथा की स्पष्ट छाप हमें दिखाई देती है ।

धीरे धीरे समय के साथ साथ लोगों का दृष्टिकोण भी बदलने लगा है । आजकल यह प्रथा कहीं प्रबल है तो कहीं मरणासन्न रूप में । जो प्रथा किसी समय स्त्रियों के लिए रक्षक थी वही प्रथा आज के सभ्य समाज में स्त्रियों की बुद्धि के विकास मे घातक सिद्ध हो रही है । आज के प्रगतिशील युग में पर्दा-प्रथा का अनुसरण करनेवाली स्त्रियां समाज के साथ आगे बढने मे असमर्थ हैं । पर्दा-प्रथा के दुष्परिणामों के कारण पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को कई क्षेत्रों में पीछें रहना पडा हैं । साहित्य सर्जना के क्षेत्र में तो वह पारिवारिक घेरे को पार नहीं कर पायी । इस प्रकार इस प्रथा ने भी महिलाओं की साहित्यिक-सृर्ज़ना शक्ति को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित किया हैं ।

बाल-विवाह :-

समाज में प्रचलित कुप्रथाओं में बाल-विवाह भी एक है । उन दिनों आठ-दस वर्ष की अवस्था में बच्चों का विवाह किया जाता था । उस अवस्था

में वे 'विवाह' शब्द का अर्थ तक नहीं जानते थे । लडकियों के लिए यह बंधन उनकी बुद्धि के विकास में बाधा उत्पन्न कर देता था क्योंकि तभी से उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लग जाता था । बाल-बिधवा समस्या आदि इसी प्रथा के दुष्परिणाभों का उदाहरण हैं । आर्थिक रूप से पिछडी रहने के कारण, नैतिक एवं अनैतिकता का ज्ञान न रहने के कारण कई लडकियाँ वेश्याएँ बन जाती थीं । फलत: वेश्या-समस्या नें जन्म लिया । आज भी भारतीय नारी-समाज इस कलंक एवं नरकतुल्य स्थिति से पूर्ण मुक्त नहीं है । अप्रैल १७, १९७२ की दैनिक पत्रिका 'दि इंडियन एक्सप्रेस, में प्रकाशित आंकडों से इस धारणा की पुष्टि भी होती है । इसके अनुसार जब हैदराबाद की वेश्याओं से उनके द्वारा वेश्या-वृत्ति को अपनाने का कारण पूछा गया तो पता चला कि आधे से ज्यादा (५५%) वेश्याएं वे थीं जिनकी शादी १४ वर्ष की आयु से पहले हुई थी । लगभग ११·७% विधवायें वे थीं जिनकी शादी १७ साल के पहले हुई थी । वेश्याओं में ३१·४% विधवायें वे थीं और ४५% वे थीं, जिन्हें उनके पतियों ने निर्दय होकर छोड दिया था ।[1] इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस कुप्रथा का शिकार भी केवल लडकियाँ ही हुई, उनमें भी अधिकतर गाँव की अशिक्षित लडकियाँ ।

श्री राजाराम मोहनराय तथा आंध्र के कंदुकूरि वोरेशलिंगम पंतुलु आदि महान् समाज-सुधारकों ने इस कुप्रथा के विरुद्ध अपनी आवाज उठायी । इस कुप्रथा से समाज को मुक्त करनें में उन्हें बहुत हद तक सफलता मिली । इस कुप्रथा ने भी नारियों को कलम पकडने के लिए प्रेरित एवं बाध्य किया ।

दहेज-प्रथा :–

इस प्रथा के शिकार तो अधिकतर मध्यवर्गीय परिवार तथा उनकी कन्यायें ही होती हैं । जो पिता एक समय अपनी कन्या का दान किसी योग्य वर के हाथों में रखते गर्व का अनुभव करता था, वही आज अपने आर्थिक संकटों के कारण ऐसे युवक के हाथों अपनी कन्या को सौंपने को तैयार हो रहा है जो दहेज कम माँगता है चाहे वह कितना भी अयोग्य क्यों न हो ।

---

1. The survey conducted by the Andhra Pradesh Unit of the Association of normal and social hygiene, revealed that half the numbers of prostitutes were below 14, about 11-7% of them were married before the age of 17. About 31.4% of prostitutes were widowed and abour 45% deserted.

जन्म लेने की सार्थकता को विवाह तथा संतान में ही देखने वाले अंधविश्वासी अधिक रहने के कारण तथा दहेज देने मे असर्थ होने के कारण भी समाज में अनमेल-विवाहों का प्रचलन हुआ। इस कुप्रथा के फलस्वरूप नारी अनेक दुष्परिणामों का शिकार होती आ रही है। इन अत्याचारों को चुपचाप सहन करने की शक्ति भी उस में क्षीण होती जा रही है। अब वह पुरुषों के साथ समाज में अपना व्यक्तित्व स्थापित करने के लिए कटिबद्ध हो रही है। लगभग भारत की सभी भाषाओं की लेखिकायें भले ही भिन्न प्रांत व संस्कृति वाली हों लेकिन भावधारा में एकता को सिद्ध करते हुए इस दहेज-प्रथा के विरुद्ध सब ने अपनी लेखनी चलायी है। सारांश यह है कि यह कुप्रथा भी स्त्रियों की विचार-धारा को काफी हद तक प्रभावित कर चुकी है।

अशिक्षा :

शिक्षा, ज्ञानार्जन के लिए श्रेष्ठ माध्यम है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति ज्ञान एवं संसार की गति-विधियों के परिचय से वंचित हो जाता है। सीमित ज्ञान-क्षेत्र में रहने से व्यक्ति का दृष्टिकोण जीवन और जगत के प्रति संकुचित एवं अवास्तविक हो जाता है। एक समय ऐसा था जब नारियों के लिए शिक्षा अनावश्यक मानी जाती थी। क्योंकि उन दिनों यह अंधविश्वास प्रचलित था कि शिक्षित होने से नारी निर्लज्ज एवं विशृंखला बन जाती है। नारी को शिक्षा-प्रदान करना भी पाप समझा जाता था। लोग शिक्षा को पाश्चात्यों की देन समझकर स्त्रियों को उससे दूर रखते थे। आरंभ में स्त्रियाँ अशिक्षित रहने का और एक कारण यह भी था कि उन दिनों बाल-विवाह की प्रथा समाज में प्रचलित थी। जैसे ही लडकी को अपने चारों ओर के समाज का ज्ञान प्राप्त होने लगता था उसकी शादी रची जाती थी। उसके पश्चात् उसका जीवन कोल्हू के बैल के समान बन जाता था। और बौद्धिक विकास केवल घरेलु कामकाजों तक सीमित रहता था। उसका परिवार ही उसके ज्ञानार्जन का क्षेत्र बना रहता था। इस प्रकार निरक्षरता उसके जीवन के लिए एक अभिशाप सिद्ध होने लगी।

समाज-सुधारकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप क्रमशः उपर्युक्त परिस्थितियों में एवं विचारधारा में भारी परिवर्तन उपस्थित हुआ है और आजकल स्त्रियाँ भी शिक्षित होने लगी हैं। आज स्त्री-शिक्षा के लिए सरकार की ओर से भी कई प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हो रही हैं। उनसे लाभान्वित होकर स्त्रियाँ प्रगतिपथ में अग्रसर होने लगी हैं। विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग की एक रिपोर्ट में इस प्रकार कहा गया है–"शिक्षित स्त्रियों के

अभाव में शिक्षित लोगों का होना संभव नहीं हैं। अगर सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए पुरुष या स्त्री में से किसी एक को चुनने की बात होती है तो यह अवसर स्त्रियों को ही दिया जाना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा शिक्षा अवश्य ही आगामी पीढी तक पहुँचायी जा सकती है।"[1]

स्त्री-शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में बाधक कई कारणों में से पर्दा-प्रथा, बाल विवाह, लडकियों की शिक्षा के प्रति माता-पिता की उपेक्षा दृष्टि आदि प्रमुख हैं। पाश्चात्यों के प्रभाव के कारण शिक्षित स्त्रियों की संख्या में भी परिवर्तन आ गया। इस प्रकार के ऐतिहासिक संदर्भों ने लेखिकाओं को कलम उठाने के लिए पर्याप्त प्रेरित किया है।

देवदासी प्रथा :

धार्मिक अंधविश्वास पर आधारित इस कुप्रथा से भी केवल नारियाँ ही अभिशप्त थीं। धार्मिक अंध-विश्वास के कारण कई लोग मंदिरों में देवी देवताओं की सेवा सुश्रुषा हेतु बालिकाओं को अर्पण कर देते थे। इस धार्मिक विश्वास एवं परंपरा के मूल में कृष्ण की मधुर भक्ति परंपरा को भी अन्वे-षित किया जा सकता है। दक्षिण की 'अंडाल' के बारे में कहा जाता है कि आप इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध भक्तिन हैं।[2] जो लडकियाँ एक बार

---

1. There can not be an educated people without edu-cated women. If general education had to be limited to man or woman, that opportunity should be given to women, for then it would most surely be passed on to the next generation. Report of the University Education Commission.
1948–49, Page: 393

२. "श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण के मधुर रूप का विशेष वर्णन होने से भक्ति क्षेत्र में गोपियों के ढंग के प्रेम का, माधुर्य भाव का, रास्ता खुला। इसके प्रचार में दक्षिण के मंदिरों की देवदासी प्रथा विशेष रूप में सहायक हुई। माता-पिता लडकियों को मंदिरों में चढा आते थे जहाँ उनका विवाह भी ठाकुरजी के साथ हो जाता था। उनके लिए मंदिर में प्रतिष्ठित भगवान की उपासना पतिरूप में विधेय थी। इन्हीं देव-दासियों में कुछ प्रसिद्ध भक्तिनें भी हो गयी हैं। दक्षिण में अंदाल इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध भक्तिन हो गई हैं जिनका जन्म संवत् ७७३ में हुआ था।
—रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. १५८

भगवान के सम्मुख देवदासी के रूप में भेंट की जाती थीं, वे फिर कभी भी मंदिर से बाहर निकल नहीं सकती थी। उन लडकियों को भगवान की उपासना में नृत्य करते तथा गीत गाते हुए अपना जीवन बिताना पडता था। उस समय 'देवदासी' का अर्थ था देव की दासी या भक्तिन। चाहे आजकल इसका अपकर्ष कितना भी क्यों न हो। लेकिन उसके दुष्परिणामों का शिकार कन्या को ही भुगतना पडा। वे लडकियाँ धर्म के ठेकेदारों के हाथों कठ-पुतलियाँ बन जाती थीं। धर्म की आड में कामलोलुप धर्म के ठेकेदार कई अत्याचार किया करते थे जिन्हें चुपचाप देवदासी स्त्रियाँ सहन कर लेती थीं। लेकिन धीरे-धीरे धर्मार्थी लोगों की आँखों के सामने से पर्दा उठ गया और उन्होंने अपनी गलती देर से ही सही पहचानी। फलतः मासूम लडकियों पर होनेवाले अत्याचार समाप्त किये गये।

देवदासी-प्रथा के साथ कालांतर में मानव-मनोवृत्तियों में एक ऐसा शैथिल्य आया कि वे अपने बंधन के नियमन में दृढ़ता एवं संयम न रख सकीं। धीरे-धीरे यह प्रथा धार्मिक क्षेत्र से लेकर सामाजिक क्षेत्र में आ गई। इस प्रकार वेश्यागमन की दुष्प्रथा भी कुछ हद तक इसी देवदासी प्रथा की शाखा मानी जा सकती है।

इस प्रकार समाज में प्रचलित सभी कुप्रथाओं का शिकार केवल नारियाँ ही हुई। उस समय नारी की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं थी। वह पुरुषों के हाथों कठपुतली बनकर रहती थी। लडकियों का जन्म होना ही अशुभ एवं अभिशाप माना जाता था। कालांतर में समाज-सुधारकों के सत् प्रयत्नों के फलस्वरूप नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे वह विकास के सोपानों में आगे बढ़ती गयी। आज साहित्य-सर्जना में ही नहीं बल्कि जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी, पुरुष के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलने में समर्थ बन सकी है।

युगीन परिस्थितियाँ :-

युग-युग से व्यथित नारी के हृदय को हम उनकी रचनाओं में देख सकते हैं। उनके द्वारा रचित साहित्य में समकालीन ही नहीं अपितु उससे भी पूर्वकालीन परिस्थितियों को आंका जा सकता है। इन परिस्थितियों ने

तत्कालीन नारियों के व्यक्तित्व को कहां तक प्रभावित किया है इसको समझने के लिए हमें भारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है ।

राजनीतिक परिस्थितियाँ :-

१८वीं शताब्दी भारत वर्ष के इतिहास में युगांतकारी सिद्ध हुई । भारतीय जनता मुगलों की कट्टरता के कारण दुखी थी । १८वीं शताब्दी मुगल शासकों के पतन के पश्चात् अंग्रेजों की सत्ता भारत में जम गयी थी । इस युग की राजनीतिक परिस्थितियों के निर्माण में ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस का हाथ अधिक रहा । अंग्रेजी शासकीय अत्याचारों के कारण भारतीय जनता में स्वतन्त्र होने की विद्रोही भावना सन् १८५७ में ही जागृत हुई । लेकिन भारतीय जनता में आपसी फूट के कारण सन् १८५७ का विद्रोह असफल रहा । नेहरू जी के शब्दों में "यह सैनिक विद्रोह से कुछ अधिक था, यह द्रुतगति से फैला और इसने एक लोकप्रिय विद्रोह तथा भारतीय स्वाधीनता संग्राम का रूप धारण कर लिया ।"[1] इस क्रांति के कारण शासन की बागडोर 'ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल' के हाथ पहुंच गयी । लोकतन्त्र शासन की स्थापना और देश की स्वाधीनता के लिए सन् १८८५ में देश में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई । १९वीं सदी का अन्त होने से पूर्व ही देश भर में क्रांति की लहर फैल गयी । सन १९०४–१९०५ में जापान और रूस के युद्ध के परिणाम-स्वरूप देश में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न हुई । 'लार्ड कर्जन', 'लार्ड मिण्टो', आदि शासकों ने हिन्दू–मुसलमानों में भेद उत्पन्न करके उनमें फूट डाली । भारतीय जनता में बढ़ती हुई स्वतन्त्रता को दृष्टि में रखकर अंग्रेजी सरकार ने 'मिण्टो मार्ले सुधार' के नाम से शासन-व्यवस्था में सुधार किये । लेकिन भारतीय जनता में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बीज बढ़ते ही गये । उग्र साम्राज्यवादी नीति के पोषक लार्ड कर्जन ने सन् १९०५ में बंगाल का जो विभाजन किया, वह भी हिन्दू–मुसलमान, दो धर्मावलंबियों के आधार पर ही किया गया ।

---

1. "was much more than a military Mutiny and it spread rapidly and assured the character of a popular and rebellion and a war of independence."

–Discovery of India. by Nehru P. 301.

भारत में अंग्रेजी सरकार के विरोध में स्थापित संस्थाओं में सन १८८५ में स्थापित 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' प्रमुख हैं। कांग्रेस की यह संस्था थोडे ही समय में गरम और नरम दलों में विभक्त हो गई। नरम दल के नेता गोपालकृष्ण गोखले थे जिनको ब्रिटिश सरकार मे विश्वास था। लेकिन गरम दल के अध्यक्ष बाल गंगाधर तिलक और उस दल के सदस्य स्वाधीनता के पक्षपाती थे। इनके अतिरिक्त देश में एक क्रांतिकारी दल का भी जन्म हुआ जो देश में क्रांति उत्पन्न करके भी अंत में व्यक्तिगत बलिदान में ही अपनी महत्ता समझता था। लाला हरदयाल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और अरविन्द घोष जैसे लोगों ने क्रांतिकारी विचारधाराओं के प्रचार में अपने प्राण दे दिये। ब्रिटिश सरकार ने जब राजद्रोहियों पर प्रतिबन्ध लगाया तो विद्यार्थियों में भी क्रांति की भावना जागृत हुई। साहस तथा उत्साह के रहने पर भी एक निश्चित योजना साधन-संपत्ति के अभाव के कारण यह दल असफल हो गया।

भारतीय जनता को अंग्रेजी सुधार–संस्थाओं से धीरे धीरे विश्वास हटता गया। सन १९१४ के प्रथम महायुद्ध में शासकों पर विश्वास रहने के कारण भारतीय सैनिकों ने गाँधीजी की आज्ञा से इंग्लैण्ड के पक्ष में युद्ध किया, परंतु उसका परिणाम 'रौलट ऐक्ट' तथा जलियाँवालाबाग के निर्मम हत्याकांड के रूप में जनता के सम्मुख आया। सन् १९२० में कांग्रेस गांधीजी के प्रभाव तथा नेतृत्व में आई। सन् १९२०–२१ में महात्मा गाँधी द्वारा किये गये सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन देशभर में व्याप्त हो गये। कलकत्ता के बदले दिल्ली को राजधानी बनाया गया। जिससे दिल्ली तथा उत्तरप्रदेश राज्य राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख केंद्र बने। सन् १९२३ के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी द्वारा आयोजित स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकडने लगा। ब्रिटिश सरकार कांग्रेसकी माँगों को टालनेका सतत् प्रयत्न करती थी। गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस प्रभावशाली केंद्र बना। कांग्रेस के नेता लोग शासन का विरोध, सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से करने पर तुले हुए थे। इस समय गाँधीजी ने अवज्ञा–आंदोलन प्रारंभ किया जो सन् १९३४ तक जारी रहा। सन् १९३५ में विधान के अनुसार प्रांतों को स्वायत्त–शासन दिया गया जिसके फलस्वरूप कांग्रेस ने चुनाव में सक्रिय भाग लिया और कई स्थानों पर बहुमत प्राप्त किया। सन् १९३९ के 'गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट' के अनुसार कांग्रेस ने

अनेक प्रांतों में अपनी मंत्री–मंडलियाँ स्थापित कीं । सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध में देश की सारी शक्तियाँ इंग्लैण्ड की ओर से इस शर्त पर लगाई गई कि युद्ध समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करेगी । लेकिन हर समय की तरह इस बार भी भारतवासियों को निराशा होना पडा । सन् १९४२ तक आते आते स्वराज्य प्राप्ति के आंदोलन विद्रोहात्मक रूप धारण करते गये । गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 'भारत छोडो' का प्रस्ताव स्वीकार किया और संपूर्ण देश में क्रांति और स्वाधीनता–प्राप्ति की लहरें दौड गईं । ब्रिटिश सरकार को भारतवासियों की दृढता तथा एकता का पता चला जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९४६ में स्वतंत्रता-प्राप्ति की घोषणा हुई । १५ अगस्त १९४७ को शताब्दियों के अनंतर भारतवासियों ने स्वाधीनता प्राप्त की । स्वतंत्रता नें भारत में नया युग प्रस्तुत किया । स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् लोगों ने अपने देश को सुदृढ एवं आत्मनिर्भर बनवाने का प्रयत्न किया ।

भारत के इतिहास में स्वातंत्र्य-प्राप्ति को जो महत्वपूर्ण घटना घटी थी वह कई व्यक्तियों के बलिदान, त्याग एवं साधना का ही सत्फल है । इसमें नारियों की देन भी कम नहीं थी । गांधी, नेंहरू आदि के नेतृत्व में कई भारतीय महिलाओं ने राष्ट्रींय आंदोंलन में सक्रिय भाग लिया और उन्होंने नारी समाज में नारी-शिक्षा, नारी जागृति आदि के लिये भी प्रयत्न किया । इस दिशा में नारियों नें साहित्यिक रचना को भी साधनतुल्य मान-कर साहित्यिक क्षेत्र में भी प्रवेश किया । नारी-समाज के उद्धार के लिए लगातार साहित्य के माध्यम द्वारा प्रयत्न जारी रहे । आलोच्य उपन्यासों में भी इन उपर्युक्त राजनीतिक परिस्थितियों की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती हैं ।

जिस आशा एवं उत्साह के साथ भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई और जो नयी उमंग की लहर यहाँ के नर–नारियों में उठी उस पर स्वतंत्र्योत्तर काल में पानी फिर गया । समाज में अनैतिकता, अत्याचार एवं हिंसा का दौर चला । बेरोजगारी और रिश्वतखोरी जैसी समस्याओं के साथ साथ महँगाई भी जुडकर साधारण लोगों के जीवन को दूभर कर दिया । इन सब के पीछे स्वतंत्र्योत्तर कालीन बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियाँ ही कारणभूत बन

गयीं। पुरुषों के साथ नौकरी धंधों के पीछे नारी को भी फेरे लगाने पडे। और राजनीतिक क्षेत्र को भी इन्होंने अछूता नहीं छोडा। इस प्रगति ने भी नारी को साहित्यिक क्षेत्र में लेखकों से टक्कर लेने की क्षमता प्रदान की है।

आर्थिक परिस्थितियाँ :-

भारत सदियों से परतंत्र रहा है। परतंत्र शासन का सूत्र अंग्रेजी के हाथ लगते ही उन्होंने अपने स्वार्थों की दृष्टि से काम करना आरंभ किया। भारत में उन्हीं वस्तुओं की अधिकता थी जो इंग्लैंड के कारखानों में काम आ सकती थीं। यहाँ से कच्चा माल ले जाकर वहाँ पर उसे नया रूप देकर पुनः भारत में ही उनको बेचा करते थे। भारत में उन्हीं के कारण मशीनी सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। दादा भाई नौरोजी, गोखले आदि नेताओं ने सरकार की कटु आलोचना की। गांधीजी ने विदेशी वस्तु-बहिष्कार आंदोलन को चलाया। इस युग की विशेषता भारतीय उद्योगों का विकास है। इस युग में केवल किसानों और मजदूरों की समस्या ही नहीं बल्कि मध्यम वर्ग की बेकारी भी आर्थिक क्षेत्र की प्रमुख समस्या बनी रही। जहाँ देश की जनता स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जो सुख की सांस ले रही थी वहीं आर्थिक परिस्थितियों के कारण दबी-सी रह गयी थी। इस प्रकार की आर्थिक विषमतायें केवल पुरुष तक सीमित न रह कर स्त्रियों से भी संबंधित होने के कारण तथा स्त्रियों को आर्थिक रूप से परतंत्र होने के कारण उनका मानसिक विकास कुंठित पड गया था। इसी का आक्रोश स्वातंत्र्योत्तर अवधि की लेखिकाओं के उपन्यासों में द्रष्टव्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी दफ्तरों में नोकरी करके, उद्योग-धंधों में भाग लेकर पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र बन रही हैं।

सामाजिक परिस्थितियाँ :-

नारी के मानसिक एवं बौद्धिक विकास में बाधक जिन कुरीतियों का उल्लेख विगत पृष्ठों में हुआ है उनमें परिवर्तन लाकर सामाजिक परिवेश को बदलने और उनमें सुधार लाने की भावना भी उसी काल से बराबर चली आ रही है। भारत का सामाजिक-इतिहास ही इसका प्रमाण है। भारत की वर्णाश्रम व्यवस्था ने देश की सामाजिक जडों को खोखला बना दिया। महि-

लाओं की साहित्यिक सर्जना के प्रेरक संदर्भ जिस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियों में निहित हैं, उससे और भी अधिक मात्रा में तत्कालीन सामाजिक वातावरण में पाये जाते हैं ।

समाज की कुरीतियों के साथ-साथ नारी की दयनीय दशा तथा उसके व्यक्तित्व के प्रति उपेक्षा-भावना को दूर कर एक सुसंस्कारवान् समाज की स्थापना तथा उसमें नारी के व्यक्तित्व को पहचान कराने के लिए कई समाज-सुधार संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ । इनसे नारी की साहित्य सर्जना की क्षमता को प्रेरणा प्राप्त होने लगी । इन्हीं प्रेरक संदर्भों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है ।

ब्रह्म समाज :–

उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वप्रथम सुधार-आंदोलन ब्रह्म समाज (सन् १८२८) के नाम से प्रसिद्ध है । "ब्रह्म समाज मूलत: एक धार्मिक आंदोलन होते हुए भी अपने अन्तर में समाज-सुधार की लहरों को वहन कर रहा था । सामाजिक आचार व्यवहारों के पुन: निर्माण में आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जागृत स्वतंत्रता तथा समानता आदि विचारों का अधिक योगदान रहा है । सभी प्रकार की सामाजिक असमानताओं से स्त्रियों के उद्धार के लिए ब्रह्म-समाज ने भरसक प्रयत्न किया है ।" [1] इस आंदोलन के सर्वप्रथम प्रवर्तक राजा राममोहनराय हैं । आधुनिक सामाजिक विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने ब्रह्म-समाज की नींव डाली । उस समय हिंदू समाज तथा भारतीय राजनीति को आधुनिक रूप देना सबसे बडी देश सेवा समझी जाती थी ।

1, This primary religious movement brought in it wake a wave of social reform, The sense of euqlity and liberty awakened by the new system of education was given a rather free play in remoulding social customs. The Brahma Samaj went solid for the emancipation of women from all forms of social inequities. "(The cultural Heritage of India: Ed. by Sri Ramakrishna Centenary Committee, Bolpur Math : Calcutta P. 44.)

राजाराममोहनराय, पाश्चात्य सभ्यता से अवगत होकर उसे भारतीय रूप देने में सफल हुए। उन्होंने सती-प्रथा को बंद करवाने का सफल प्रयत्न कर बहु-विवाह-प्रथा का खंडन किया। साथ साथ उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन भी किया है। इसके पश्चात् ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेन्द्रनाथ टैगोर के हाथों में आया। उनके पश्चात् केशवचंद्र सेन ने 'भारत का ब्रह्म समाज' नाम की एक अलग संस्था बनाई। उनके सामाजिक सुधार का मुख्य केंद्र नारी-समस्यायें थीं। नारी-शिक्षा, विधवा विवाह का समर्थन, बाल-विवाह का खंडन, वर्णांतर तथा विजातीय विवाहों का प्रचार, आदि इनके लक्ष्य रहे हैं। इस सबका केवल प्रचार ही नहीं वरन् उसे व्यावहारिक रूप देने में भी इन्होंने सक्रिय योग दिया है। अंतर्जातीय विवाह को भी मान्यता देते हुए १८९२ ई. में 'ब्रह्म मैरेज एक्ट' पास करवाया।

आन्ध्र में ब्रह्म समाज :-

१९वीं शती में संपूर्ण भारत में सभी प्रांतों की सामाजिक परिस्थितियाँ लगभग एक समान थीं। अंध विश्वास, बाल-विवाह, बाल-विधवायें, पर्दा-प्रथा आदि कुरीतियाँ सर्वत्र फैली हुई थीं। जिस प्रकार राजाराम मोहनराय तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारक बंगाल में हुए हैं उसी प्रकार आंध्र प्रदेश में भी हुए जिनमें कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु प्रमुख हैं।

आंध्र में ब्रह्म-समाज के कर्णधार श्री वीरेशलिंगमजी रहे। आपने अपने महान् आदर्शों के प्रचार केलिए 'हितकारिणी समाज' की स्थापना २८ नवंबर १९०७ में की। उस समय वे तीन अन्य संस्थाओं का नेतृत्व भी कर रहे थे।

१) उन्होंने सर्वप्रथम 'विधवा-आश्रम' की स्थापना की। "आप ही आंध्र के ऐसे प्रथम सुधारक हैं, जिन्होंने बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करवाया, समाज की दृष्टि में उपेक्षित तथा पतित स्त्रियों के विषय में सभी सामाजिक लांछनों को अस्वीकार कर उनकी देखभाल की। विधवा–आश्रम में असंख्य असहाय बाल–विधवाओं के अतिरिक्त अनाथों तथा अविवाहित माताओं के

अनाथ शिशुओं को आश्रय मिला ।"[1]

२) वीरेश लिंगम जी ने सन् १९०७ में 'वीरेश लिंगम थीइस्टिक हाई स्कूल' की स्थापना की और आपने सन् १९०८ में 'प्रार्थना-मन्दिर' की स्थापना की।

उनके द्वारा राजमहेन्द्रवरम में स्थापित 'वीरेश लिंगम थोइस्टिक लाइब्रेरी' बहुत ही प्रसिद्ध है। इस प्रकार वे एक युगांतकारी साहित्यकार होने के साथ-साथ एक महान् समाज-सुधारक भी हैं और उस क्षेत्र में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा ।"[2]

वीरेशलिंगम जी जिन आदर्शों का प्रचार करते थे उनका वे पालन भो करते थे। इस दृष्टि से वे संपूर्ण भारतवर्ष के किसी भी महात्मा से कम महान् नहीं थे। १९वीं शती के राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन जैसे समाज-सुधारक भी अपने जीवनकाल में ही अपने स्वप्नों को सत्य बनाने तथा अपने वांछित व प्रिय सस्थाओं को साकार रूप देने में कंदुकूरि के समान उतने सफल न रहे ।"[3]

---

1. 'He was the first leader in modern Andhra to have get widows remarried and ignored and fallen women well taken care of without any social stigma attached to them .... the widow-home had given refuge to countless helpless child widows, orphans and unwanted children left behind by unmarried mothers." .... The Indian Express : 14th April, 1962.
2. "Apart from his enormous literary output, his work is the cause of social reform singles him out-in the the field."
 ......The Indian Express, 14th April, 1992.
3. "As a man who practised what he preached and set an example to his fellow men, he was almost second to none in the whole of India. Even social reformers like Rammohan Roy and Keshav Chandra sen of the 19th Century were not as successful as Kandukuri in securing their dreams come true and sounding institutions dear to their cause while they were alive."
 ......The Indian Express, 14th April, 1962.

वीरेशलिंगम पंतुलु जी के पश्चात वेंकटरत्नम् नायुडु, मट्नूरि कृष्णाराव, कोंपेल्ल हनुमंतराव, पट्टाभि सीतारामय्या, अय्यदेवर कालेश्वरराव, उन्नव लक्ष्मीनारायण, चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम्, रायसं वेंकटशिवुडु, कोम्मराजु लक्ष्मणराव, देशिराजु पेद बापय्या, दुग्गिराल सूर्यप्रकाशराव, तल्लाप्रगड नरसिंह शर्मा, पालपर्ति नरसिंहम्, पेद्दाड रामस्वामी, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, गुडिपाटि वेंकटचलम्, गोडेपाल्लि सूर्यप्रकाशराव, गरिमेल्ल वीरभद्रराव आदि महान लोगों ने ब्रह्म समाज के लक्ष्यों की पूर्ति में सक्रिय योग दिया है ।

प्रार्थना समाज :–

महाराष्ट्र में 'परमहँस' नामक एक संस्था थी जो समाज–सुधार का कार्य करती थी । फरकुहर का कथत है कि "जो ईसाई के हाथों बनी रोटी खाने तथा मुसलमान के हाथों लाया गया पानी पीने को तैयार नहीं होता वह इसका सदस्य नहीं हो सकता ।"[1] सन् १८६७ ई. में केशवचंद्र सेन के नेतृत्व में इसी संस्था ने 'प्रार्थना समाज' का रूप धारण किया । इस समाज के चार मुख्य उद्देश्य देखे जाते हैं–जाति–पाँति के भेदभाव को मिटा देना, विधवाओं का पुनर्विवाह करवाना, नारी–शिक्षा का प्रचार करना तथा बाल–विवाह का निषेध । इस समाज की यह विशेषता पाई जाती है कि अन्य समाजों की तरह ये धार्मिक न रहकर अधिकतः सामाजिक संस्था रही हैं । उस संस्था के सामने यही आदर्श रहा कि "मानव की सेवा करना ही ईश्वर की सेवा है । इस समाज की सफलता का श्रेय महादेव गोविंद रानाडे को मिलता है । उन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप सन् १८८८ ई. में भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन' की स्थापना हुई ।

आर्य समाज :

इस समाज की स्थापना सन् १९७५ ई. में दयानन्द सरस्वती ने की । स्वामी दयानन्द सरस्वती धर्म परिवर्तन के विषय में अत्यन्त उदार तथा व्यावहारिक भी थे । दिनकर जी स्वामी दयानन्द के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–"धर्मच्युत हिंदू प्रत्येक अवस्था में वापस आ सकता है, एवं

1. "None would become member unless he were willing to eat bread made by a christian and drink water brought by a Mohammaden."......... Modern religious Movement in India.
Forquhar...... 1955, P. 5

अहिंदू भी यदि चाहें तो हिंदू धर्म में प्रवेश पा सकते हैं। यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, अपितु वह जागृत हिंदुत्व का समर नाद था।[१] यह समाज आज तक कार्यशील है। क्योंकि यह समाज ब्रह्म-समाज तथा प्रार्थना समाज की तरह केवल शिक्षित मध्य-वर्ग तथा शहरों तक ही सीमित न रहकर इसने गाँवों तक भी अपने कार्य-क्षेत्र को विस्तृत किया है। इस समाज ने स्वयं अपने वैदिक धर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार गुण, कर्म तथा स्वभाव मानकर वर्ण-व्यवस्था को ईश्वरीय देन समझनेवालों के भ्रम को दूर करने की चेश्टा की। "इस धार्मिक आंदोलन के कारण समाज के रीति-रिवाजों में बहुत से परिवर्तन आये। वर्ण-व्यवस्था एक धार्मिक प्रथा के रूप में न रही, वेदों पर ब्राह्मणों का जो एकाधिकार रहा वह तिरस्कृत किया जाने लगा। कई सामाजिक विषमताओं से स्त्रियाँ मुक्त हो सकीं। इनके अतिरिक्त उदारता-पूर्वक दान देने के कार्य कलाप उत्साह के साथ होने लगे और शिक्षा प्रसार भी आर्य समाज का एक अभिन्न अंग बन गया।"[2] आर्य समाज का सबसे महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी कार्य था समाज में नारियों की स्थिति में सुधार लाना।

थियोसोफिकल सोसाइटी :–

इसकी स्थापना अमेरिका में सन् १८५७ ई. में कर्नल अलकाट और मैडम ब्लैक डस्की द्वारा हुई। अमेरिका के बाद भारत में भी इसका एक केन्द्र खुला। मैडम ब्लैक डस्की अमेरिका की महिला होती हुई भी भारतीय

---

१. संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह दिनकर, द्वितीय संस्करण, पृ. ४६४

2. This religious movement also was accompanied by sweeping changes of social customs. The caste system as a religious institution was abolished, the monopoly of the Brahmins over the Vedas was abenied. women were liberated from a number of social disabilities, besides enthusiasm for a wide range of philanthropic activities including the spread of Education become a remarkable feature of Arya Samaj." –The cultural Heritage of India: Ed. by Sri Ramakrishna Centenary Committee, Bolpur Calcutta Page. 446 & 447.

नारी की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर उसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। इस संस्था ने भी समाज में फैले हुए जाति तथा ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया।

सेवा सदन :-

श्री जे. के. देवधर के नेतृत्व में सन् १९०९ में इस सेवा सदन की स्थापना हुई। इस सदन के कारण ही नारी-समाज प्रोत्साहित होकर सर्वप्रथम डाक्टरी तथा नर्स के पेशे को अपनाना आरम्भ किया।

रामकृष्ण मिशन :-

बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस (१८२६-१८८६) के द्वारा इस मिशन की स्थापना हुई इन्होंने सभी धर्मों का समन्वय कर हिन्दू धर्म का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया जो सभी को मान्य रहा। स्वामी रामकृष्ण के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की बागडोर संभाली। इन्होंने स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल दिया तथा बाल-विवाह का कट्टर विरोध किया। आपका विचार था कि प्राचीन रूढ़िवादी विचारधारा ही नारी के पिछड़े रहने का कारण है। अतः उन्होंने उनका अन्त करना आवश्यक माना।

भारत सेवक समाज :-

सन् १९०५ ई. में श्री गोपाल कृष्ण गोखले के नेतृत्व में इस समाज की स्थापना हुई। इनके उद्देश्य हैं, नारी की स्थिति में सुधार लाना तथा सर्वधर्म समानता के आदर्श का प्रचार करना।

मुसलमान समाज सुधारक :-

पर्दा-प्रथा के कारण मुसलमान नारियों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। इन में जागृति लाने का प्रयास सर सैयद अहमद (१८१७-१८७८) ने मुख्य रूप से किया।

अन्य समाज सुधारक :-

महाराष्ट्र तथा बंगाल में १८४९-५१ ई. में सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई। नारी की स्थिति में सुधार लाने के हेतु ईश्वरचंद्र विद्यासागर

ने कई प्रयत्न किये। इन्होंने स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह तथा अंतर्जातीय-विवाह का समर्थन किया। इनके कार्यों के फलस्वरूप करीब ४० कन्या विद्यालयों की स्थापना हुई।

१९ वीं शताब्दी तक सामाजिक कुप्रथाओं का सामना करने के लिए केवल पुरुषों द्वारा ही कई आंदोलन चलाये गये। उस समय के सभी आंदोलनों के मूल में नारी-आंदोलनों की भावना निहित रही। नारी को समाज में सम्मानित स्थान दिलाना ही इसका मुख्य उद्देश्य रहा। इन समाज सुधारकों के सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप जो नारी ६० वर्ष पूर्व सामाजिक समारोह के रूप में सती होकर आत्महत्या करने के लिए बाध्य थी उसी शताब्दी के अंतिम वर्षों में सामाजिक रंगमंच पर आकर अपनी समस्याओं पर स्वतंत्रता-पूर्वक विचार व्यक्त करने लगी थी।"[1] शिक्षित नारी ने महसूस किया कि अगर उसे अंधकारमय जीवन से हटकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने हो तो उसे स्वयं अपने अस्तित्व को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी कारण २०वीं शताब्दी तक आते आते स्त्रियों ने भी कई सुधारवादी आंदोलन चलाये।

नारियों द्वारा आयोजित सुधारवादी आंदोलन :–

सुधारवादी आंदोलन नारी-समस्या संबंधी बाह्य प्रयत्न थे, जिनसे स्त्रियों को काफी प्रेरणा मिली। मूलतः स्त्री-आंदोलनों का प्रारंभ पश्चिम में हुआ था। उसका प्रारंभ फ्रांस की राज्य-क्रांति के दिनों में हो हुआ था जब स्त्री, पुरुषों के समान अधिकारों के लिए आवाज उठाई। लेकिन १९वीं शती में इसे आंदोलन का रूप मिला। २०वीं शताब्दी के आरंभ में यह आंदोलन जोर पकड गया। सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन सोवियट रूप का था जिसने सन् १९१७ में सभी सामाजिक कार्य-क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष की भेद-भावना को समाप्त सा कर दिया था।

इस आंदोलन का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। श्रीमती मार्गरेट ई. कजिन्स, श्रीमती एनीबेसेन्ट, मार्गरेट नोबिल के सहयोग से भारत में भी स्त्री-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। भारतीय नारी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः पाना। श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय के शब्दों

---

१. डा. चंडीप्रसाद जोशी–हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, पृ. १२

में–"यह एक नई स्थिति या नई प्रथा की स्थापना का नहीं, बल्कि किसी कदर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने और अमल में लाने का प्रयत्न है।"[1]

श्रीमती एनीबेसेन्ट पहले आयरिश महिला थीं, जिनका आदर्श था, विश्व ही मेरा देश है और परोपकारिता मेरा धर्म। इन्होंने अपने जीवनकाल में नारी की स्थिति में सुधार लाने का ही प्रयत्न किया। सन् १९१७ में वे इंडियन नेशनल कांग्रेस की प्रथम महिला प्रधान चुनी गयीं। इसी वर्ष मार्गरेट कजिन्स के सहयोग से 'उमेन्स इंडियन एसोसियेशन' की नींव डाली। वे देश में प्रचलित अशिक्षा, अंधविश्वास तथा अन्य कुरीतियों को जड़ से उखाड़ना चाहती थी जो भारतीय नारी की दयनीय स्थिति के मूल कारण थे। आपने स्त्री शिक्षा का प्रचार किया जिसके फलस्वरूप बनारस में 'सेंट्रल हिन्दू कालेज' की स्थापना हुई।

तदुपरांत श्रीमती सरोजिनी नायडू का नाम लिया जा सकता है। आपने भी पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह आदि सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध किया। आगे आप स्त्रियों को पुरुषों के साथ समान अधिकार प्राप्त करवाने के लिए लड़ीं। वे गर्व के साथ कहती थीं कि–"मैं उस जाति की वंशजा हूँ जिसकी माताओं के समक्ष सीता की पवित्रता, सावित्री के साहस और दमयंती के विश्वास का आदर्श है।"[2]

इस प्रकार क्रमशः नारी के मानसिक और बौद्धिक विकास में सहयोग देकर उसे समाज में एक विशिष्ट स्थान दिलाने में कई मनीषियों तथा समाज-सुधारकों का हाथ रहा है।

धार्मिक परिस्थितियाँ :–

समाज को जाति–पाँति का भेद, छुआ छूत तथा परंपरागत रूढियों ने ग्रसित कर रखा था। लक्ष्मी सागर वार्षणेय का कथन है कि "समाज के अधिकांश लोगों में धर्म का बाह्य, परंपरा–विहित, रूढिग्रस्त, अंधविश्वासों और मूर्ति–पूजा, बहुदेववाद तथा सर्वदेववाद के अत्यंत गर्हित और विकृत रूप से

---

१. डा० श्रीमती उमेश माथुर–आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएं, पृ. ३८
२. ए. शचीरानी गुर्टू–महान महिला–पृ० १७

संचालित और कर्मकांडों वाला रूप प्रचलित था।"[1] धर्म के नाम पर कई अत्याचार जैसे देवदासी-प्रथा, विधवा का आजन्म सन्यासिनी बने रहना, सती-प्रथा आदि कुरीतियाँ प्रचलित थीं। धार्मिकता एवं नैतिकता समाज के ऐसे अभिन्न अंग हैं जिस में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री वर्ग की अधिक निष्ठा रहती है। धार्मिक आडंबरों एवं कर्मकांडों के प्रति स्त्रियों को ही अधिक मोह रहता है। इन कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के निर्मूलन केलिए कई समाज सुधारकों ने भरसक प्रयत्न किये। समाज–सुधारक एवं उनके द्वारा चलाये गये कई संस्थाओं का विशद वर्णन विगत पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। उक्त सभी आंदोलनों का उद्देश्य निम्न वर्गों को ऊपर उठाना, नारी जाति में स्वतंत्र शिक्षा का प्रचार करना तथा परंपरागत रूढिवादों का निर्मूलन करना रहा है।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :–

आधुनिक युग का साहित्य कथ्य एवं शैली की दृष्टि से पूर्ववर्ती साहित्य की तुलना से पूर्णत: भिन्न है। नारी ही इस युग के लेखकों का प्रधान विषय बनी। पर्दा-प्रथा का खंडन विधवा-विवाह, नारी-शिक्षा आदि स्त्रियों से संबंधित विषयों को साहित्य में स्थान प्राप्त होंने लगा। जो साहित्य राजा तथा पंडितों तक ही सीमित रहने लगा साहित्य क्रमश: साधारण जनता के स्तर तक उतर आया। साहित्यकारों ने जब देखा कि नारी युगों से उपेक्षित पीडित बनी है, तो उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा, अंध विश्वासों और पुरुष के अहंकार रुपी अधिकार में बंदिनी नारी को मुक्तकर उसका उद्धार करने पर बल दिया। नारी को स्वतंत्र करने की पुकार श्री पंत जी यूं देते हैं :

> "मुक्त करो नारी को मानव, चिरबंदिनी नारी को,
> युग युग की बर्बरता से, जननी सखी प्यारी को।"[2]

इसी प्रकार पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी नारी को पुरुष के दासत्व से मुक्त करने की आवाज दी है–"पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम स्त्रियों को अपने दासत्व से पूर्णतः मुक्त होने दो। उन्हें अपने बराबर समझो।'[3]

---

१) लक्ष्मीसागर वार्षणेय–आधुनिक हिंदी साहित्य–पृ० ११

२) सुमित्रानंदन पंत–युगवाणी–नारी–पृ. ५८

३) पं. जवाहरलाल नेहरू–हिंदुस्तान की समस्याएँ–पृ. २१९

इस प्रकार साहित्य में भी नारी संबंधी विषयों तथा समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिये जाने के अतिरिक्त नारी-विरचित साहित्य के लिए भी मान्यता बढने लगी। आजकल तो लेखिकाएँ पुरुषों के समान साहित्य के क्षेत्र में स्वछंद रूप से कलम चलाने में समर्थ हुई हैं। इस प्रकार लेखिकाएँ एक दूसरे से प्रेरणा ग्रहण कर रचना-कार्य में प्रवृत्त हो रही हैं।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :-

भारत वर्ष पर कई विदेशी संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का प्रभाव पडा है। यह प्रभाव सीधे नारी पर ही दिखाई देता है। इस दृष्टि से प्रभावित करने वाली प्रमुख संस्कृतियां तथा सभ्यताओं में दो नाम गिनाये जा सकते हैं-मुसलमानों की तथा दूसरा अंग्रजों की। मुसलमानों के शासन काल में ही पर्दा-प्रथा का प्रचलन भारत में हुआ। लोग उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन आदि का अनुकरण करने लगे। इस प्रकार अंग्रेजों के आगमन से भी भारतीय संस्कृति एव सभ्यता पर गहरा प्रभाव पडा। देश में प्राचीन मान्यतायें धीरे-धीरे समाप्त सी होने लगीं। लेकिन नवीन मान्यताओं का प्रवेश अभी नहीं हो पाया था। इसी कारण संस्कृति में एक प्रकार की अव्यवस्था फैली हुई थी। सांस्कृतिक चेतना समाज में उच्च तथा मध्य वर्ग तक सीमित थी। यद्यपि इस युग में कई समाज सुधारकों ने प्राचीन संस्कृति को नवीन रूप प्रदान किया, फिर भी जनता प्राचीनता के प्रति ही अधिक मोह प्रदर्शित करती थी। उस समय समाज में एक ओर तिलक, अरविंद, ऐन बेसेंट, आदि जैसे चिंतक थे, तो दूसरी ओर हिन्दू, मुस्लिम तथा पाश्चात्य सभ्यताएँ सम्मिलित थीं। इन सब से ऊपर जनता स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए लालायित थी। गांधीजी के आगमन से समाज में सत्य तथा अहिंसा एवं आदर्शवादी विचार-धारा को प्रश्रय मिला। लेकिन जनता में यथार्थ चिंतन का अधिक जोर रहने के कारण आध्यात्मिक विचारधारा के स्थान पर भौतिकवाद चिंतन अपना स्थान जमाने लगा। समिष्टी की अपेक्षा व्यष्टि को अधिक महत्व मिलने लगा। पाश्चात्य तथा भारतीय संस्कृतियों के मध्य सामंजस्य स्थापित हुआ जो स्वातंत्र्योत्तर अवधि में और भी पनप कर पल्लवित और पुष्पित होने लगा है। बदलती हुई सांस्कृतिक परिस्थितियों ने भी नारी को साहित्य सर्जना की दिशा में प्रवृत्त करने में प्रवृत्त करने में यथेष्ट प्रेरणा दी हैं।

यह निश्चित है कि उक्त विवेच्य परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में महिलाएँ अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय देकर उसकी अभिव्यंजना में

ससर्थ हुयीं । इन परिस्थितियों में स्त्री का बौद्धिक एवं मानसिक विकास किस प्रकार हुआ होगा, इसके संबंध में यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

स्त्री की बौद्धिक क्षमता का विकास :-

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट विदित होता है कि स्त्रियों को अपनी साहित्यिक-प्रतिभा को उभारने का अवसर पहले नहीं मिला था । स्वतंत्रता के पश्चात अपने व्यक्तित्व को स्थिर करने के लिए कई यातनाएँ सहनी पडी । स्वातंत्र्य पूर्व की परिस्थितियों में नारी द्वारा साहित्य की सर्जना संभव न थी । फिर भी प्रारंभ से ही फुटकल रूप ने उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में पदर्पण कर अपनी क्षमता का परिचय दिया था । वेद, पुराण, स्मृति, इतिहास' दर्शन तथा प्राचीन संस्कृति ने भी नारी को गौरव प्रदान किया है। आज भी हमारे सम्मुख घोष, गार्गी, मैत्रेयी, आदि अनेक महिलायें हैं जो अपनी विद्वत्ता केलिए प्रसिद्ध हैं । धीरे धीरे समाज में नारी का स्थान घटता गया। मुगल शासकों के काल में नारी की दशा और भी दयनीय हो गयी । लेकिन अंग्रेजी सभ्यता के संपर्क में आने पर भारतीय जनता में एक नवीन चेतना जागृत हुई, तभी कई समाज सुधारकों का ध्यान नारी पर पडा जो शताब्दियों से सामाजिक कुप्रथाओं के कारण दबी हुई थी। बीसवीं शताब्दी में स्त्री शिक्षा का प्रसार तीव्रता से होने लगा । अंग्रेजों के आगमन के पूर्व स्त्री–शिक्षित होने से वंचित थी । उस समय जनता में यह अंध विश्वास फैला हुआ था कि स्त्रियों को पढाना उनके विधवा होने की भविष्यवाणी है । लेकिन अनेक समाज सुधारकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप स्त्री–समाज में शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार हुआ । शनैः शनैः स्त्रियां शिक्षित होने लगी । अब नारी अपने संपूर्ण विचारों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने केलिए समर्थ हो गयी । स्त्री जो कभी मूक वाणी से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रयास करती थी, अब उसी को वह अपने साहित्य–सर्जना द्वारा करने के लिए तत्पर हो रही है ।

सहज रूप से किसी भी साहित्यिक रचना में स्त्री-पुरुष का भेद न होने पर भी कहा जाता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक उपन्यास साहित्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान बहुत कम है । नारी और पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं में अंतर नहीं है । लेकिन सामाजिक विषमताओं के कारण उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति मे अंतर आ सकता है । स्त्री की

अंतरात्मा साहित्य को अधिक सौजन्य, अधिक उत्फुल्ल भाव में ग्रहण करती है। प्राचीन काल में नारी भी साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त होने की कोशिश में रहीं है, फिर भी नारी को इस दिशा में प्रवृत्त होने में अनेक सामाजिक कारण बाधक रहे हैं, जिसके कारण वह साहित्य-सेवा में पुरुषों से पीछे रह गई है। सामाजिक कारणों में प्रमुख है शिक्षा की अपर्याप्तता, अर्थात् जिसके अभाव में साहित्य की पूर्ण वृद्धि नहीं हो सकती। इस बाधक प्रवृत्ति के कारण नारीं ने अपनी प्रतिभा को लोकगाथाओं तथा लोक गीतों तक ही सीमित रखा। इसके अतिरिक्त संकोच, गृहस्थी का भार, पर्दा-प्रथा आदि अनेक विषमताओं के कारण नारी को पुरुष की भांति लोक-दर्शन के लिए व्यापक अवसर नहीं मिला। फलतः उनकी रचनाओं में जीवन की विविधता प्रतिबिंबित न हो सकी। उक्त सामाजिक कारणों के साथ-साथ आथिक रूप से पराधीनता तथा मातृत्व जैसी प्राकृतिक जिम्मेदारियाँ भी साहित्य-सर्जना के विकास में प्रतिबंधक रही हैं। स्वभावतः स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक बौद्धिक हैं। स्त्रियाँ कोमल स्वभाववाली तथा अधिक संवेदन-शील होती है। तथा उनके मन में श्रद्धा, विश्वास, भावुकता, सहानुभूति आदि कोमल भावों की अधिकता रहती है। इन्हीं गुण-विशेषों के कारण प्रारंभ में वे भी पुरुषों की भाँति कविता की ओर उन्मुख हुई। इस प्रसंग में डा. सावित्री सिन्हा का यह कथन अवलोकनीय है–"साहित्य रचना केलिए आवश्यक सृजन और निर्माण शक्ति की विभूति लें तो नारी पुरुष की तुलना में काव्य के अधिक निकट आती हैं। भावनाओं की कोमलता और अभि-व्यक्ति की कलात्मकता दोनो ही नारी स्वभाव के प्रबल पक्ष हैं।"[1] पद्य-रचना की ओर स्वाभाविक रूप से उन्मुख होने पर भी वे गद्य-रचना में भी पीछे नहीं हटी हैं। अपने कोमल एवं संवेदनशील भावों के द्वारा रचित पद्य तथा गद्य में हृदय को स्पर्श करने की क्षमता पायी जातीं है। सहज-प्रवृत्ति को लक्षित करके श्रीमती पद्मावतीं 'शबनम' ने भक्तिकाल की कृष्ण भक्त कवियित्रियों के संबंध में यों लिखा हैं–"राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों पर छायी हुई यह गहरी उथल पुथल भी स्त्री हृदय की अन्यतम कोमल भावनाओं पर कुठारागात न कर सकीं।"[2] जिस प्रकार हर एक

१. गल्प गगन की तारिकायें–पृ. 'घ'
२. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ–पृ. २९६

कलाकार का अंतर्मन उनकी कला में मुखरित होता है उसी प्रकार महिलाओं द्वारा रचित साहित्य में उनका मानस देखने को मिलता है ।

स्त्रियाँ लेखन–कला में मौलिक प्रतिभा रखती हुई भी साहित्यिक सर्जना के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे ही रह गयी हैं। श्री बलभद्र प्रसाद गुप्त अपने निबंध 'हिंदी स्त्री कहानी कला का विकास' में इस प्रकार लिखते हैं कि "पुरुष कहानीकारों की अपेक्षा वे कम सफल हुई हैं। इसका कारण उन में शिक्षा का अपेक्षाकृत अभाव, अनुभव की कमी, विशिष्ट गार्हस्थ्य-कर्तव्यों के पालन का उत्तरदायित्व आदि हैं। उनका सामाजिक जीवन भी अभी पूर्ण रूप से विस्तृत एवं निरापद नहीं हो सका है। परिणामतः अंतरंग तथा बहिरंग दोनों दृष्टियों से स्त्री कहानीकारों की कृतियाँ पिछडी हुई हैं। उनमें व्यापकता, जीवन-तथ्यों की गंभीर, एक विशद व्याख्या, भाव-गहराई, चरित्र–चित्रण एवं भाषा उत्कर्ष सभी पुरुषों की अपेक्षा कम हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उनकी कहानियों की उपेक्षा की जा सकती है।"[1] इनके अतिरिक्त डा. सावित्री सिन्हा ने महिलाओं की कृतियों के मुखर न होने के कारणों को इस प्रकार लिखा है– "भारतीय जीवन–व्यवस्था में जिस प्रकार पौरुष बल के समक्ष नारीत्व की सरलता लुप्त हो गई, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी पुरुषों द्वारा रचित साहित्य की विशालता एवं गहनता में नारी द्वारा रचित साहित्य उपेक्षित ही नहीं, प्रत्युत लुप्त हो गया।"[2] स्त्रियों द्वारा साहित्य सेवा नहीं किये जाने के कारणों में शिक्षा के अभाव के अतिरिक्त कार्यक्षेत्र में व्यापकता का अभाव भी एक कारण है। स्त्रियों को अनेक सामाजिक बँधनों के कारण उनको लोक–दर्शन का अवसर पुरुषों की तुलना में कम ही मिल पाया है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्री बलभद्र प्रसाद गुप्त यों कहते हैं– "साहित्य क्षेत्र में पुरुषों से उनके पीछे रहने के कई कारण हैं। उनकी सीमा केवल घर की चारदीवारी ही अब तक मानी जाती रही। बहुत से लोगों से मिलने घुलने से मनुष्य स्वभाव का विशेष ज्ञान होता है. सोचने–विचारने के लिए विविध विषय मिलते हैं, दृष्टिकोण का घेरा बडा होता है तथा जीवन की कठिनाइयों एवं समस्याओं आदि का अनुभव उसको समग्रता से होता है–स्त्रियाँ अनुभवज्ञान के इस स्रोत

---

१. गल्प गगन की तारिकायें – पृ. 'घ'

२. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ – पृ. २९६

से सर्वदा वंचित रहीं और अधिकांश संख्या में अब भी वही दशा है।"[1] इससे यह विदित होता है कि स्त्रियो का ज्ञान परिवार तक ही सीमित रह गया है।

महिलाओं का पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा साहित्य-सर्जना :–

नारी अपने घर के उत्तरदायित्वों से इतनी उलझी रहती हैं कि उसे अन्य विषयों को सोचने या जाननें का अवसर नहीं मिलता। जो स्त्रियाँ इन उत्तरदायित्वों से कुछ हद तक मुक्त होकर साहित्य सर्जना में लगी रहनें का प्रयास करती हैं तो उनके सामने ओर कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। काव्य-रचना के प्रति डा. रसाल का कथन यहाँ ज्ञातव्य है, जो अन्य साहित्यिक विधाओं के लिए भी सत्य प्रतीत होता है–"कुछ ऐसे भी उदाहरण आ गये जिनसे लोगों को यह आशंका होने लगी कि स्त्रियों के काव्य-क्षेत्र में कार्य करने से सदाचार को भी गहरी हानि पहुँचेगी।–इन बातों पर विचार करके अथवा ऐसी आशंकायें रखते हुए समाज ने स्त्रियों के लिए यह एक अनिवार्य सा नियम बना दिया है कि वे काव्य-क्षेत्र से परे ही रहे।"[2] उक्त समस्याओं तथा प्रतिबंधनों के बावजूद जो स्त्रियाँ साहित्य सर्जना के प्रति जागरुक रहने का प्रयास करती हैं तो उन्हें यथेष्ट प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इसी तथ्य पर प्रकाश डालती हुई श्रीमती रजनीं पनिकर ने अपने लेख 'भारतीय कार्यालय में कुछ क्षण' में नारी की साहित्यिक-प्रतिभा के प्रति पुरुषों की उपेक्षा दृष्टि के बारे में इस प्रकार लिखा है–"प्रायः पुरुष नारी की रचना को व्यक्तिगत ललकार के रूप में लेता है, बौद्धिक क्षेत्र में वह नारी को इतना योग्य समझता ही नहीं कि वह स्वयं लिख सकती है। उसकी समझ में नारी का कोई न कोई ऐसा हितैषी होता है जो लिखकर दे दिया करता है। कैसी झुंझलाहट है पुरुषों की यह।"[3] श्रीबल-भद्र प्रसाद जी ने यहाँ तक आरोप लगाया है कि नारी मौलिक साहित्यिक सृजन करने में असमर्थ है। उनका विचार है कि 'स्त्री कहानीकारों ने प्रायः

---

१. काव्य कुंज की कोकिलायें – पृ० १

२. स्त्री कवि कौमुदी–ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', डा. रसाल की भूमिका पृ. १०, ११

३. साप्ताहिक हिंदुस्तान–२९ मई १९६०, पृ. २१

पुरुष कहानीकारों का अनुकरण किया है।"[1] लेकिन इस कथन की सत्यता शंकित है। एकआध लेखिकाओं को दृष्टि में रखकर लेखिकाओं की मौलिक प्रतिभा को शंकित दृष्टिकोण से परखना समीचीन प्रतीत नहीं होता। लेखक तथा लेखिकाओं के साहित्यों में वतुगत साम्य का पाया जाना सहज एवं स्वाभाविक है लेकिन लेखिकाएँ लेखकों का अनुकरण करती हैं, ऐसा मानना उचित नहीं है। लेखिकाओं द्वारा विरचित साहित्य किसी काल में मात्रा की दृष्टि से कम होने पर भी उपेक्षणीय नहीं है। पंडित रामदहिन मिश्र का कथन है–"हिंदी-साहित्याकाश में पुरुष साहित्यकारों के समक्ष अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के साथ प्रकाशमान कुछ ऐसी देवियाँ हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा और कृतियों के द्वारा हिंदी-साहित्य में चार चाँद लगा दिये हैं; उसके मस्तक को और भी उन्नत कर दिया है। – इतना होने पर भी आज तक हिंदी साहित्य में कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई जिससे उन साहित्यिक देवियों का परिचय और उनकी कृतियों को झाँकी देखने को मिल सके।"[2]

स्त्रियों का ज्ञान परिवार तक ही सीमित है फिर भी उसी सीमित ज्ञान को लेकर वे साहित्य-सृजन में सफलता प्राप्त कर सकी हैं। इसी कारण स्त्रियों की मनो-भावना को चित्रित करने में जितनी सफलता स्त्रियों को मिली है उतनी सफलता पुरुषों को नहीं। इस प्रसंग में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का कथन उल्लेखनीय है– "साहित्य के क्षेत्र में स्त्रियों का आना अत्यन्त आवश्यक है। स्त्रियों के सहयोग के बिना मानव साहित्य संपूर्ण नहीं हो सकता। पुरुष अपनी ही हृदयानुभूतियों को सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है परंतु जब वह स्त्रियों की अनुभूतियों को प्रकट करने जाता है, तब विवश होकर कल्पना से ही काम लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए, सती की मनोभावना, वधु के उल्लास और माता के वात्सल्य का पुरुषों द्वारा किया हुआ वर्णन सैकेंड हैंड ही रहेगा क्योंकि पुरुष इन उदात्त अवस्थाओं का अनुभव कर ही नहीं सकते।"[3]

---

१. गल्प गगन को तारिकायें–पृ. 'छ'
२. हिन्दी की श्रेष्ठ लेखिकायें– दो शब्द' से उदघृत
३. प्रथम भारतीय महिला-कवि-सम्मेलन में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान सुधा, मई १९३३ पृ. ३२७, द्वारा व्यक्त किये गये विचार

नारी अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझाने में समर्थ हो सकी है और वह अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए साहित्य को साधन-तुल्य मानने लगी है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्त्रियाँ अपने ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार परिवार संबंधी विषयों तक ही सीमित न रख करके समाज, राजनीति, विज्ञान आदि अन्य विषयों का भी ज्ञान प्राप्त करेंगी तो वे सफल तथा शक्तिशाली साहित्यकारों के रूप में साहित्य- जगत में छा जा सकती हैं।

हिन्दी तथा तेलुगु के कथा साहित्यों के क्षेत्र में आजकल लेखिकाओं का नाम ही अधिकतर सुनने में आता है। महिलाओं की रचनाओं की लोक-प्रियता भी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। अपनी सीमाओं तथा उत्तरदायित्वों के बावजूद लेखिकाएँ अपनी रचनाओं में वैविध्यता लाने का प्रयास कर रही हैं। इनसे पहले बहुत से लेखकों ने परिवार और समाज की समस्याओं को लेकर स्त्रियों की समस्यायें चित्रित करने की चेष्टा की थी, लेकिन उनमें स्त्रियों के समानाधिकारों के लिए दृढ़तापूर्वक लड़ने की कोई इच्छा न थी। अब स्त्रियों में ज्ञान-क्षितिज विस्तृत होने के कारण वे अपनी कवियित्री प्रतिभा को लेकर साहित्य के मैदान में कूद पडी हैं। उन्होंने निश्चित रूप से पुरुष समाज द्वारा स्त्रियों पर किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज बुलंद की है। लेकिन कुछ लेखिकाएँ जीवन को बुदबुद प्राय मानकर, कर्म सिद्धान्त में अटल विश्वास रखती हुई अपनी कलम चला रही हैं। इनकी रचनाओं में समाज में नारी के प्रति उपेक्षाभाव, पुरुष की दंभ-प्रवृत्ति के कारण स्त्री पर किये जाने वाले अत्याचारों आदि का उदासीन होकर, 'चुपचाप सहन करने की बात परिलक्षित होती है। दूसरी ओर कुछ प्रगतिशील विचारधारावाली लेखिकाओं ने पुरुष–शासन के विरुद्ध अपनी कलम चलाई। स्त्री अशिक्षित तथा आर्थिक रूप से भी परतंत्रा होने के कारण ही उसे पुरुष–शासन का शिकार होना पड रहा है। राजनीति तथा इतिहास संबंधी ज्ञान के अभाव में महिलाओं द्वारा विरचित राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास संख्या में बहुत कम हैं। भारत के मतदाताओं की तालिका में लगभग पचास प्रतिशत स्त्रियाँ ही हैं। लेकिन लगता है लेखिकाओं ने तो राजनीतिक विषयों को केवल पुरुषों केलिए छोड दिया है। किसी एक स्त्री के प्रधान मंत्री या किसी राज्य की

मुख्य मंत्री होने मात्र से यह कहना कि राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों ने प्रगति की है, समीचीन प्रतीत नहीं होता।

भूख तथा नींद जैसे मानवीय शारीरिक धर्मों की भाँति ही कामवासना भी एक है। लेखिकाएँ अधिकतः सेक्स सबंधी काम को पाप तथा नीच कर्म के रूप में ग्रहण करती आयी हैं। सहज प्राकृतिक काम को अतिरहस्यमय एवं पाप के रूप में समझने वालों को उचित शिक्षा देकर सेक्स संबंधी ज्ञान प्राप्त कराया जाना आवश्यक है। तभी कहीं जाकर समाज में व्यक्ति-प्रतिभा को क्षति पहुंचनें वाले काम-प्रलोभनों से मुक्ति मिल सकती है।

अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, आर्थिक विषमताओं तथा अंधविश्वासों के कारण वेश्या-वृत्ति को बढावा मिल रहा है। इस वेश्या-वृत्ति से स्त्री को मुक्त कर उसका उद्धार करने के लिए हिंदी तथा तेलुगु के लेखक एवं लेखिकाएँ यत्नशील हैं। कुछ लेखिकाओं ने वेश्यावृत्ति के मूल कारणों को समझने में असमर्थ होकर वेश्यावृत्ति की कटु आलोचना की है। कुछ लेखिकाओं ने विवशतावश, वेश्यावृत्ति को स्वीकार करने वाली स्त्रियों के प्रति सहानुभूति को व्यक्त कर उनके मानसिक संघर्ष का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया है। गार्हस्थ्य जीवन, बाल-मनोविज्ञान, सौतिया डाह आदि विषयों के चित्रण में लेखिकाओं को अपेक्षित सफलता मिली है।

वस्तुतः बात यह है कि साहित्यिक क्षेत्र में उपलब्ध-विचारधाराओं पर दृष्टिपात करने से यह पता चलता है कि साहित्य में लेखक या लेखिका पुरुष-समाज सम्बन्धी समस्याएँ या स्त्री-समाज सम्बन्धी समस्याएँ--इस प्रकार की पृथकता की भावना नहीं होती। भविष्य में भारत के साहित्य-क्षेत्र में स्त्री और पुरुष की भेदकता की भावना पूर्ण रूप से मिट जाएगी--ऐसा विश्वास भी पाया जा रहा है।

द्वितीय अध्याय

महिलाओं द्वारा विरचित हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यास : एक सर्वेक्षण

प्रचार एवं प्रभाव की दृष्टि से उपन्यास को आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा माना जा सकता है। मानव की ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जिसका संस्पर्श आधुनिक उपन्यासकार नहीं करता हो। अतः समाज में नये विचार तथा नये विश्वास प्रतिष्ठित करने में उपन्यासकारों का बड़ा योगदान रहता और उपन्यास भी इसके लिए सुन्दर एवं सशक्त माध्यम प्रमाणित हुआ है। यद्यपि आधुनिक परिभाषा में उपन्यास-विधा भारतीय साहित्य के लिए नयी है, इस पर अंग्रेजी 'नावेल' की छाया भी है फिर भी कथा अथवा गल्प के रूप में इसके बीज भारत की प्राचीन साहित्य में अन्वेषित किये जा सकते हैं। हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यास साहित्य के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। दोनों साहित्यों के क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार आविर्भूत होकर इस विधा को और भी स्पष्ट एवं विशिष्ट बना चुके हैं। इस दिशा मे लेखिकाओं का भी विशेष योगदान रहा है। इसका सम्यक विश्लेषण करने के पूर्व उपन्यास के स्वरूप, स्वभावों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में आने के पश्चात् ही उपन्यास एक अलग विधा के रूप में २०वीं शती में उदभूत हुई। अंग्रेजी में प्रचलित 'नावेल' के पयार्यवाची के रूप में हिन्दी में उपन्यास तथा तेलुगु में 'नवला' शब्दों का प्रचलन हुआ है।

'उपन्यास' शब्द संस्कृत भाषा से लिए जाने पर भी वह कभी भी संस्कृत में आधुनिक उपन्यास के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ । आधुनिक युग में संस्कृत से स्वीकृत 'उपन्यास' शब्द भारत की विभिन्न भाषाओं मे विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने लगा है । 'उपन्यास शब्द के लिए हिन्दी विश्वकोश में वाक्य का उपक्रम, वाक्य का प्रयोग, उपकथा आदि अर्थ दिये गए हैं ।"[1]

संस्कृत में कथा साहित्य एवं आख्यायिका के रूपों में प्रचलित है । उपन्यास शब्द की उत्पत्ति 'उप' तथा 'नि' पूर्वक 'अस्' धातु में 'प्रच्' प्रत्यय जोडने से हुई है । यह शब्द संस्कृत में कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । दश-रूपककार के अनुसार उपन्याय प्रसादन करनेवाला है ।[2]

साहित्य दर्पणकार का कथन है कि प्रसन्नताजनक वचन विन्यास या वस्तु स्थापना उपन्यास है ।[3] किंतु संस्कृत भाषा में उल्लिखित उक्त 'उपन्यास' शब्द नाटक की प्रतिमुख संधि का एक अंग मात्र है जब कि आज का उपन्यास किसी साहित्य का अंग नही है बल्कि उसकी अपनी निजी सत्ता है । हिन्दी साहित्य में यह उपन्यास शब्द 'नावेल' के लिए इतना रूढ हो गया है कि अब उसके प्राचीन अर्थ लुप्त से हो गये हैं ।

तेलुगु में प्रचलित 'नवल' शब्द को कुछ विद्वानों ने पाश्चात्यों की देन मानी है । अंग्रेजी में १४वी शती से जो गद्यात्मक लिखे जाते रहे और जिनमें वास्तविक जीवन का चित्रण मिलता है, उसे 'टेल्स' की संज्ञा दी गई थी । एलिजिबथ रानी के समय से अंग्रेजी उपन्यासों में ऐतिहासिक तत्व की प्रधानता रही । १८वीं शती में काल्पनिक रचनाओं की अधिकता के कारण इंग्लेंड में 'नावेल' शब्द जीवित, ऐतिहासिक, काल्पनिक आदि अर्थों को लेकर धीरे धीरे विकसित हुआ । तेलुगु के 'नावेल' शब्द की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है । लैटिन में नावेलस या नाव्यूस, फ्रेंच में नोव्यू, इटालियन में नावेल्ला, तथा अंग्रेजी में नावेल और तेलुगु में

---

१. हिन्दी साहित्य कोश–भाग-१, पृ. १५४

२. प्रसादनमुपन्यासः–दशरूपक पृ. १५

३. उपन्यासः प्रसादनम्–साहित्य दर्पण पृ ४२०

नावला। इस प्रकार अंग्रेजी नावेल का विकास इटालियन से और तेलुगु 'नवला' का विकास अंग्रेजी से माना जा सकता है । तेलुगु के प्रसिद्ध लेखक श्री नोरि नरसिंह शास्त्री जी के अनुसार "आंध्रों के द्वारा प्रयुक्त अकारांत स्त्री लिंग शब्द 'नवला' अंग्रेजी 'नावेल' का ही संस्कृत रूप है।"[1] संस्कृत से 'नवला' शब्द की उत्पत्ति मानने वाले आलोचक 'नवलातीति नवला' कहकर इस शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक मौलिक व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं।

अंग्रेजी में 'नावेल' शब्द की परिभाषा प्रस्तुत करते समय, उन दिनों में प्रचलित काल्पनिक रचनाओं को भी पाश्चात्य विद्वानों को परिभाषित करना पडा। 'नॉवेल' तथा काल्पनिक कथाओं के अंतर को समझने पर यह विदित होता है कि 'नॉवेल' वह था जिसमें तत्कालीन जीवन तथा आचार व्यवहारों का चित्रण तथा व्याख्या प्रस्तुत की जाती थी। उदात्त शैली में असंभव एवं असंभाव्यों का वर्णन करने वाली रचनाओं को काल्पनिक कथाओं की संज्ञा दी गई। इंग्लैंड में स्काट के समय तक स्थूल रूप से गद्यात्मक कथा–साहित्य को ही 'नावेल' की संज्ञा दी गयी। लेकिन आज कल यथार्थ जीवन की घटनाओं का, आदर्श के साथ समन्वय कर प्रस्तुत करना ही 'नावेल' के रूप में सर्वमान्य है। तेलुगु मे अंग्रेजी 'नॉवेल' के अर्थ मे ही 'नवला' शब्द को स्वीकारा गया हैं। वैसे तो तेलुगु भाषा साहित्यों पर अंग्रेजी का जो प्रभाव पड़ा उसमें 'नावेल' शब्द भी एक है।[2] गद्य साहित्य की कथा, नाटक आदि विधाओं के लिए तो तेलुगु के अपने-अपने शब्द प्रयोग में आये। परन्तु उपन्यास विधा के लिये इस प्रकार अंग्रेजी शब्द तत्सम रूप में रूढ़ हो गया जो सचमुच एक विचित्र संयोग ही माना जा सकता है । इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यही कहना है कि हिन्दी उपन्यास शब्द के समान तेलुगु 'नवला' शब्द के सम्बन्ध में कोई विशेष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं के बराबर है।

इस 'नवल' शब्द को ग्रहण करने में अंग्रेजी 'नावेल' शब्द का जो अर्थ है वह भी प्रेरणा के रूप में काम आया था। अंग्रेजी में 'नांवेल शब्द के अर्थ हैं-नव, अभिनव, अपूर्व, विलक्षण आदि। शब्दार्थ के समान यह उपन्यास विधा भी तेलुगु साहित्य के लिए नयी और निराली है। श्री मोदलि

---

१. महति–तेलुगु नवला (१९४७–७२)–पृष्ठ–८०

२. तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु–तीसरा खंड–तेलुगु संस्कृति–पृष्ठ–५२

नागभूषण शर्मा इस शब्द का जा विवेचन प्रस्तुत करते है उससे भी उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है ।[1]

उपन्यास की परिभाषा और स्वरूप :

उपन्यास विधा के विकास की गति-विधियों तथा उपलब्धियों का विश्लेषण एवं अंकन करने के लिए उस विधा के निश्चित स्वरूप एवं परिभाषा को समझना आवश्यक है । फ्रांसीसी समालोचक एबेल शेबेल ने उपन्यास को एक नियत आकारवाला गद्यमय आख्यान माना है–'आगे यह भी जोड दिया है कि' उसका आकार ५०,००० शब्दों से कम नहीं होना चाहिए ।'[2]

इ. एम्. फोर्स्टर ने उपन्यास को स्वनियमों में आबद्ध एक कलाकृति बताया है ।[3]

हडसन महोदय ने उपन्यास को साहित्य का एक ऐसा मनोरंजक अंग बताया है जिसमें वर्णित व्यक्तियों एवं मानवीय मनोवेगों तथा कार्यों में प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक स्थान पर सदा आनंद लेता है ।[4]

---

१. गुजराती में 'नवल कथा' मराठी तथा कन्नड भाषाओं में 'कादंबरी', बंगाली तथा हिंदी में 'उपन्यास' शब्द के प्रचलित इस विधा को तेलुगु में 'नवला' कहे जाने का कारण यही नहीं कि वह अंग्रेजी शब्द के नजदीक पडता है बल्कि इसलिए भी कि अंग्रेजी शब्द 'नावेल', के अर्थ में नव्यता, विलक्षणता आदि का संकेत भी प्रस्फुटित करता है । – तेलुगु नवला विकासमु – श्री मोदलि नागभूषण शर्मा – पृ. १, २

2. M. Abel Chavelley has in his brilliant little manual provided a definition... he says 'A fiction in prose of a certain extent...that is quite good enough for us and we may perhaps go so far as to add that the extent should not be less than 50,000 words'...'Ibid'···P. 9

3. A novel is a work of art, with its own lawe which are not those of daily life and that a character in a novel is real when it lives in accordance wilh such laws'
Aspects of the Novel - P. 38

4. The Novel owes its existence to the interest which men and women every where and at all times have

इस प्रकार की पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं का अवलोकन करने से यह विदित होता है कि प्रत्येक परिभाषा में उपन्यास के स्वरूप के किसी एकाध तथ्य पर न्यूनाधिक मात्रा में प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी साहित्य जगत के प्रसिद्ध आलोचक डा. श्यामसुंदरदास के मतानुसार उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।[1] हिन्दी उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी का यह मत "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[2] यह परिभाषा भी उपन्यास की संपूर्ण काया को समेटने का प्रयत्न करता है। डा. गुलाबराय के अनुसार "उपन्यास कार्यकरण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।[3] आरंभ कालीन तेलुगु उपन्यासकारों के मत का उल्लेख करते हुए श्री मोदलि नागभूषण शर्मा लिखते हैं कि 'श्रृंगार अथवा वीर रस में किसी एक को केंद्र बिंदु मानकर, उस रस के पोषण के लिए सुखात्मक, दुखात्मक घटनाओं और कार्य साफल्यों को यत्र तत्र संदर्भ के अनुसार समाविष्ट करते हुए, संपूर्ण कथा को चित्रित की जाय कि वह किसी एक की ही जीवनी प्रतीत हो।"[4] परंतु उपन्यास का स्वरूप, उद्देश्य यहाँ तक कि शैली में भी कालांतर में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गये हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'आधुनिक उपन्यास' के स्वरूप को स्पष्ट करना कठिन है।

तेलुगु साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार गोपीचंद जीवन के वास्तविक चित्रण का समावेश उपन्यास में आवश्यक मानते तो हैं लेकिन उसी चित्रण

---

taken in and the great panorama of human passion and action. An introduction to the study of literature P. 129

१. साहित्यालोचन – डा. श्यामसुंदरदास – पृ. १०९
२. साहित्य का उद्देश्य – मुंशी प्रेमचंद – पृ. ५४
३. काव्य के रूप – डा. गुलाबराय – पृ. १५६
४. श्री मोदलि नागभूषण शर्मा–तेलुगु नवला विकासमु–पृष्ठ २४

तक उपन्यास की परिभाषा को सीमित करना नहीं चाहते ।[1]

तेलुगु साहित्य के आलोचक श्री नागभूषण शर्मा का कथन है "सामाजिक जीवन को प्रतिबिंबित करने वाले व्यक्तियों की जीवनियों का चित्रण करते हुए उनके आचार-विचारों को प्रकट करने वाला गद्य प्रबंध ही उपन्यास है ।[2]

आधुनिक तेलुगु के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार बुच्चिबाबु का कथन है-"आर्थिक, सामाजिक विषमताओं से अतीत होकर, स्नेह पाश में मनुष्यों को आबद्ध करने वाला मानवीय शक्तियों को मंथित करने का प्रयत्न ही उपन्यास है ।[3]

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी उक्त परिभाषाओं का सारांश है उपन्यास, गद्य साहित्य की एक नवीन मनोरंजक तथा लोकप्रिय विधा है जिसमें मानव के वास्तविक जीवन का समग्र चित्र उपलब्ध होता है । इसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर ही इसे 'गद्यात्मक महाकाव्य' की संज्ञा दी गई है । उपन्यास में आकार की विराटता संवेदना की बहुलता, प्रभावान्विति, मानव जीवन की विशद व्याख्या, वैविध्यपूर्ण जीवन के समग्र चित्र प्रतिष्ठा, आकर्षण शक्ति तथा रोचकता की प्रधानता है । उपन्यास में कौतूहल के साथ साथ बुद्धि-तत्व और भाव तत्व भी रहता है । उपन्यास में कल्पना और रागात्मक तत्व दोनों ही रहते हैं, किंतु उसका आधार जीवन की वास्तविकता में ही होता है । इसके साथ उपन्यास में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश काल वातावरण उद्देश्य तथा भाषा-शैली के अतिरिक्त यहाँ तक कि कुछ लोगों ने शीर्षक को भी एक अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है । इस प्रकार इन उपन्यास के तत्वों के आधार पर उपन्यास का विश्लेषण करने की विधा कुछ प्राचीन मानी जाती है । इस कारण उपन्यासों में पाये जाने वाले इन अनिवार्य तत्वों को स्थूल रूप में उपन्यास के वस्तु तथा शिल्प के अंतर्गत रख कर उपन्यासों की विवेचना की जा सकती है ।

---

१. श्री मोदलि नागभूषण शर्मा-तेलुगु नवला विकासमु - पृ० २०
२. - वही - - वही - पृ. २०
३. - वही - - वही - पृ. ३०

इस प्रकार उपन्यास के स्थूल स्वरूप का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के पश्चात् भारत मे उसके विकास में हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के योगदान का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

महिलाओं द्वारा विरचित हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण

यह स्वीकृत तथ्य ही है कि अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा उपन्यास साहित्य आधुनिक युग की अत्यन्त लोकप्रिय एवं भावात्मक विधा है । कई उपन्यासकार समाज और विचार के क्षेत्र में अपने विश्वास एवं रुचियों के अनुरूप परिवर्तन लाने के लिए इसी को एक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार कर चुके हैं : जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भारतीय नारी स्वातंत्र्य आंदोलनों के दिनों में पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर उल्लेखनीय योगदान दे चुकी हैं उसी प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में भी । अतः कथावस्तु, उद्देश्य आदि तत्वों की दृष्टि से देखेंगे तो पुरुष तथा नारी के उपन्यासों में समानांतर रेखायें ही दृष्टिगोचर होती हैं । तो भी आलोच्य शोध विषय की दृष्टि से यह पृथक रूप से स्पष्ट करना आवश्यक ही है कि इस युग की लेखिकाओं के उपन्यास साहित्य की वस्तुगत एवं शैलीगत विशेषतायें क्या हैं ? अतः संक्षेप में उस साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि यहाँ प्रस्तुत की जायेगी ।

हिन्दी उपन्यास का आरंभ यद्यपि श्रीनिवासदास विरचित 'परीक्षा गुरु' से होने पर भी प्रारंभ काल की उपन्यास लेखिकाओं में सर्वप्रथम 'साध्वी सती पति-प्राणा अबला का नाम लिया जा सकता है । आपने 'सुहासिनी' की रचना की है जो एक चरित्र-प्रधान सामाजिक उपन्यास है । इसके पश्चात सुश्री सरस्वती गुप्ता का नाम उल्लेखनीय है । आपका 'राजकुमार' सुंदर उपन्यास है । इस प्रसंग में श्रीमती प्रियंवदा देवी के 'लक्ष्मी' तथा 'कलयुगी परिवार का एक दृश्य' उपन्यास भी उल्लेखनीय है । 'लक्ष्मी' शीर्षक उपन्यास की कथावस्तु स्त्री शिक्षा से संबंधित है । और 'कलयुगी परिवार का एक दृश्य' में पारिवारिक समस्याओं का विशद चित्रण है । श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरी की रचनाओं में 'आदर्श माता' तथा 'जागरण' प्रमुख उपन्यास हैं । प्रथम उपन्यास में स्त्री-शिक्षा का अभाव, बाल-विवाह, समस्या पुरुषों का एकमात्र अधिकार आदि सामाजिक विसंगतियों का चित्रण है तो द्वितीय उपन्यास में नारी-समाज की दयनीय दशा का यथातथ्य चित्रण है ।

श्रीमती यशोदा देवी का 'वीर पत्नी' इसी श्रेणी का एक श्रेष्ठ उपन्यास है क्योंकि यह ऐतिहासिक होते हुए भी इसमें सामाजिक तत्वों का समावेश पाया जाता है। इसकी भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें स्त्री शिक्षा तथा पतिव्रत्य पर अधिक बल दिया गया है। प्रारंभ कालीन साहित्य में यही एक मात्र ऐतिहासिक उपन्यास है।

श्रीमती ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दूबे का 'सौंदर्यकुमारी' सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने समकालीन स्त्री समाज की दशा से असंतुष्ट होकर, नारी जाति के समक्ष एक नया आदर्श उपस्थित किया है। इस उपन्यास में केवल स्त्रियों को ही नहीं वरन् पुरुषों को भी उपदेश दिया है कि जिस प्रकार स्त्रियों को पवित्रता होनी चाहिए, उसी तरह पुरुषों को भी एक पत्नीव्रत होनी चाहिये। उद्देश्य तथा आदर्श की दृष्टि से इसे तत्कालीन समय की एक विशिष्ट रचना कह सकते हैं।

श्रीमती रुक्मिणी देवी का 'मेम और साहब' हास्य-व्यंग्य प्रधान एक लघु उपन्यास है। श्रीमती हुकमदेवी गुप्ता ने 'गूढ भाव प्रकाश' एक सामाजिक उपन्यास रचकर समाज-सुधार की आवश्यकता पर अधिक बल दिया।

श्रीमती लीलावती देवी ने 'सती दमयंती' तथा 'सती सावित्री' जैसे पौराणिक उपाख्यानों का प्रणयन कर भारतीय नारी-समाज के समक्ष पौराणिक सतियों के आदर्श-प्रस्तुत किये।

प्रारंभकालीन महिलाओं द्वारा विरचित उपन्यासों में बहुत सी त्रूटियाँ जैसे भाषा संबंधी[1], शैली संबंधी तथा वर्णन संबंधी त्रूटियाँ पायी जाने पर भी इन उपन्यासों ने आगामी उपन्यासों के लिए एक ठोस भूमिका प्रस्तुत की हैं। इस अवधि की लेखिकाओं ने अपने लक्ष्य को स्पष्ट करनें केलिए ही उपन्यास को माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। युग की लेखिकाओं ने सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं के प्रति आस्था और श्रद्धा व्यक्त की हैं, विद्रोह करना उनका लक्ष्य नहीं था। लेखिकाओं ने स्त्री-चरित्रों को विशेष रूप से आदर्शमय तथा महान सिद्ध करने का सफल प्रयास किया हैं।

---

१. कल क्रोध में मेरी आँख से एक बूंद आँसू भी नहीं निकली थी—

'लक्ष्मी', पृ. ७७

विकास काल की मुख्य उपन्यास लेखिकाओं में श्रीमती उषा देवी मित्रा का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। आपने सात उपन्यासों का प्रणयन किया है। 'वचन का मोल' उपन्यास में वचन पालन की दृढता का आदर्श-वादी चित्रण किया है। 'प्रिया' उपन्यास एक चरित्र-प्रधान सामाजिक उपन्यास है। हिंदु-विधवा की समस्या का मार्मिक चित्रण इसमें प्रस्तुत किया है। 'जीवन की मुस्कान' में एक सामाजिक करुण कथानक है। 'पथचारी' उपन्यास में समाजगत आर्थिक वैषम्य एवं बेकारी समस्या का चित्रण किया गया है। 'सोहिनी' उपन्यास पहले 'आवाज' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था किंतु बाद में कथा नायिका के नाम पर इसका शीर्षक बदल दिया गया है। 'सम्मोहिता' उपन्यास में भारतीय नारी की गरिमा का गान किया गया है। इसमें लेखिका ने आदर्श के गुणो का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है। लेखिका ने यथार्थ की अपेक्षा आदर्श को प्रश्रय दिया है। 'नष्ट नीड' में देश के विभा-जन से उत्पन्न समस्याओं की चर्चा है। लेखिका ने यत्र तत्र पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण का निर्मम खंडन किया है। और उच्छृंखलता, फैशन-परस्ती कर्तव्य के प्रति उदासीनता आदि आधुनिक सभ्यता के दोषों पर करारा व्यंग्य किया है। अपने समस्त उपन्यासों में लेखिका से संघर्षशील परिस्थितियों के परिपार्श्व में नारी पात्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रांकन किया है।

कंचनलता सब्बरवाला भी इस अवधि की प्रमुख उपन्यासकर्त्री हैं। इनके कई उपन्यास लोकप्रिय हुए हैं। उनका प्रथम उपन्यास 'मूक प्रश्न' है जो एक सामाजिक उपन्यास है इसमें लेखिका ने शारीरिक सौंदर्य की तुलना में मानसिक सौंदर्य को श्रेष्ठ प्रतिष्ठित किया है। 'भोली भूल' भी सामाजिक उपन्यास हैं। लेखिका ने इसके उद्देश्य में यही सिद्ध किया है कि हमें पाप से घृणा करना चाहिये, पापी से नहीं। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय संस्कृति और धर्म-ग्रंथों के प्रति लेखिका की विशेष श्रद्धा प्रकट हुई हैं। 'संकल्प' तथा 'भटकती आत्मा' सामाजिक–राजनीतिक उपन्यास हैं। गांधीवाद का महत्व इसमें प्रतिष्ठित किया गया है। 'मूक तपस्वी' तथा 'त्रिवेणी' दोनों सामाजिक उपन्यास हैं। 'भटकती आत्मा' राजनीतिक स्थिति की पृष्ठभूमि में लिखा गया सामाजिक उपन्यास है। 'स्वतंत्रता की ओर' उपन्यास में लेखिका ने आदर्श–भारतीय नारी के व्यक्तित्व की तुलना में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित चुल-

बुली नारी–प्रवृत्तियों के खोखलापन की खिल्ली उडायी। 'पुनरुद्धार' लेखिका की एक ऐतिहासिक रचना है। 'अनचाहा' उपन्यास में पूँजीवादी शोषण का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। 'नया मोड' में पारिवारिक कथानक के माध्यम से ग्राम–सुधार पर विशेष बल दिया गया है। महात्मा गांधी तथा विनोबा भावे के आदर्शों के प्रति लेखिका की आस्था स्पष्ट दृग्गोचर होती है। 'स्नेह के दावेदार' मे लेखिका का उद्देश्य यही रहा कि सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक नव–निर्माण केलिए मानव को केंद्र बनाना आवश्यक है। प्रायः सभी उपन्यासों में लेखिका ने जन सेवा की आवश्यकता एवं श्रेष्ठता पर बल दिया है।

श्रीमती लक्ष्मी देवी का 'शिव-सती' एक पौराणिक उपन्यास है। श्रीमती गिरिजा का 'कमला कुसुम', श्रीमती शैलकुमारी देवी का 'उमासुंदरी', श्रीमती उषारानी का 'फाँसी कैसे', श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर का 'मधुवन', श्रीमती ताराबाई का 'भाग्य–चक्र' अथवा 'निराश प्रेमी' इस चरण के उल्लेख-नीय उपन्यास है। श्रीमती जगदंबा देवी ने 'हीरे की अंगूठी', श्रीमती हूर देवी ने 'हुकमदेवी, श्रीमती कुटुमाप्यारी देवी सक्सेना ने 'हृदय का ताप', श्रीमती सरोजिनी देवी श्रीवास्तव ने 'समाज के अंगारे' सामाजिक उपन्यासों का प्रणयन कर लेखिकाओं द्वारा रचित उपन्यास साहिन्य के विकास में अपना योग दिया है।

श्रीमती पूर्णशशि देवी का 'रात के बादल', सुश्री वासंतीरानी सेन का 'दिलारा', श्रीमती शीलो का 'ग्रेजुएट लड्की'. सुश्री तेजरानी दीक्षित का 'हृदय का काँटा', सुश्री शांतिलता अग्रवाल का 'वनलता' उल्लेखनीय सामा-जिक उपन्यास हैं।

सुश्री प्रभावती भटनागर ने 'विवाह मंदिर' उपन्यास को बंगला से अनूदित करने के अतिरिक्त पराजय' शीर्षक मौलिक सामाजिक उपन्यास भी रचा है। श्रीमती आशा सहाय का 'एकाकिनी', सुश्री अरुणा का 'रजनी' इसी कोटि के सुन्दर उपन्यास है।

उपर्युक्त परिचयात्मक पृष्ठ-भूमि से यह विदित होता है कि नीति तथा उपदेश-प्रधान परंपरावादी उपन्यासों से आगे बढकर, लेखिकाओं ने उद्देश्य तथा सामाजिक विचार-धारा को प्रकट करनेवाले उपन्यासों की रचना की

है। दहेज-प्रथा, कन्या-विक्रय, अनमेल-विवाह, पुरुषों के दुराचार, पर्दा-प्रथा, बहु-विवाह आदि समकालीन सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है। प्रारंभिक काल में जहाँ लेखिकायें पर्दा-प्रथा, निरक्षरता आदि के प्रति उदासीन रहीं, वहाँ इस युग की लेखिकाओं ने उनका निर्मम खंडन किया है। सारांश यह है कि प्रारंभकालीन उपन्यासों की अपेक्षा इस अवधि के उपन्यासों में विशेषकर वस्तु-पक्ष का यथेष्ट विकास संपन्न हुआ है। लेकिन शिल्प के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हो पाया है।

इस समय के उपन्यासों में कोरे आदर्शवाद के स्थान पर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पाया जाता है जो निश्चय ही प्रेमचन्द के उपन्यास-कला का प्रभाव था। यह बात सच है कि लेखिकायें शैली के दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यास-कला के स्तर तक नहीं पहुँच पायी। लेकिन उस दिशा में प्रगतिशील होने का सफल प्रयास किया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में तो प्रतिभा संपन्न कई उपन्यासकारिणियों नें इस क्षेत्र में पदार्पण किया है? और कई सुंदर एवं वैविध्यपूर्ण कृतियों से उपन्यास-क्षेत्र को समृद्ध किया इस युग की मुख्य लेखिकायें हैं—श्रीमती रजनी पनिकर ने कई सामाजिक उपन्यासों का सृजन किया है जैसे—ठोकर, पानी की दीवार, मोम के मोती, प्यासे बादल, जाडे की धूप, काली लडकी, एक लडकी दो रूप, महानगर की मीता, बदलते रंग, सोनाल दी, आदि। सभी उपन्यासों में लेखिका ने मानव-मन के विविध पहलुओं की सुंदर व्याख्या की है, विशेषकर नारी की विवक्षताओं और इसके लिए उत्तरदायी सामाजिक परिस्थितियों का सफल चित्रण अंकित किया है।

श्रीमती बसंत प्रभा के 'सांझ के साथी', और 'अधूरी तस्वीर' शीर्षक उपन्यासों में वर्तमान सामाजिक विषमताओं और परिवारिक उलझनों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

सुश्री कृष्णा सोबती ने 'डार से बिछुडी' शीर्षक एक आंचलिक उपन्यास को रचकर हिंदी साहित्य में महिलाओं द्वारा रचे गये उपन्यास साहित्य में एक अभाव की पूर्ति की है। पंजाब की एक पुरानी लोकगाथा इस उपन्यास का ढाँचा है। 'ग्यारह सपनों का देश' विशिष्ट उपन्यास के दस सहयोगी लेखकों में से आप भी एक हैं। इनके अन्य उपन्यास हैं—सूरजमुखी, अंधेर के, और 'यारों के यार तीन पहाड।'

सुश्री लीला अवस्थी ने 'दो राहें', 'बिखरे काँटे' और 'बदरवा बरसा आये' तीन सामाजिक उपन्यासों की रचना की है। आपने व्यक्ति एवं परिस्थितियों का संघर्ष प्रस्तुत कर अंत में व्यक्ति को विजयी दिखाया है। श्रीमती चंद्रकिरण सौनरेक्सा का 'चंदन चाँदनी' एक सुंदर सामाजिक उपन्यास है। इस में मध्य वर्ग के निम्न स्तरीय परिवारों के आंतरिक जीवन का मार्मिक जीवन प्रस्तुत है। आपने मध्यम-वर्ग की ज्वलंत समस्याओं को अपने उपन्यासों का कथानक बना लिया है।

कुमारी अन्नपूर्णा तांगडी ने 'निर्धनता का अभिशाप', 'चिता की धूल', 'मिलनाहुति' तथा 'विजयनि' जैसे चार मौलिक उपन्यासों का प्रणयन किया है जिसमें सामाजिक विषमताओं की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए लेखिका ने वर्ग भेद, जाति भेद, सांप्रदायिक वैमनस्य, पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा आदि सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है।

श्रीमती विमल वेद के 'ज्योति किरण', 'अर्चना', 'असली हीरा नकली हीरा' तीन उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक जीवन की समस्याओं का चित्रण पाया जाता है।

उक्त उपन्यासों के पश्चात् कुँवरानी तारादेवी का 'जीवन–दान', श्रीमती लावण्य–प्रभा राय का 'रजनीगंधा', सुश्री सत्यवती देवी भैया 'उषा' के 'मृदुला' तथा 'क्षितिज के पार', श्रीमती सार का 'नीला' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

श्रीमती भारती विद्यार्थी और उनके पति श्री देवदूत विद्यार्थी ने 'हार या जीत' और 'पाँच बेंत' शीर्षक दो उपन्यासों को संतुलित रूप से रचना की है। इनमें से 'पांच बेंत' में लेखकद्वय ने दक्षिण भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला है। जिसमें आंचलिक तत्वों के बीज भी पाये जाते हैं। सुश्री सुषमा भाटी ने 'गेट कीपर' तथा 'ममता', श्रीमती माया मन्मथनाथ गुप्त ने 'मंझदार', सुश्री दर्शना ने 'चाय का पानी' श्रीमती सुदेश रश्मि ने 'एक ही रास्ता', सुश्री संतोष सचदेवा ने 'रूप और छाया' आदि उपन्यासों का प्रणयन किया है। श्रीमती शिवरानी विश्नोई ने 'भीगी पलकें', सुश्री शकुंतला मिश्र ने 'कच्ची मिट्टी', सुश्री उर्मि ने प्रतीक्षा', श्रीमती शीला शर्मा ने 'एक था', सुश्री शीला रघुवंशी ने 'अभागा', आदि उपन्यासों की रचना की है। जो वस्तु एवं शिल्प पक्ष की दृष्टि से सफल माने जा सकते हैं।

सुश्री उमादेवी ने 'आलिंगन' ऐतिहासिक उपन्यास का प्रणयन किया है। कुमारी कमलेश ने 'शाप और वरदान', सुश्री इन्दिरा 'नुपूर' ने 'सपने, मान और हठ' तथा 'वह कौन थी', सुश्री शकुंतला शुक्ल ने 'अंधेरे उजाले के फूल' तथा 'पंथ का जल', सुश्री आदर्श कुमारी आनंद ने प्रेम और बलिदान' 'गरीब घर अमीर इरादे', सुश्री मधूलिका ने 'प्राणों की प्यास', सुश्री मधूलिका मिश्र ने 'तटपर बीते रैन', श्रीमती सुमित्रा गढ होक ने 'पूनम का चाँद', श्रीमती मीरा महदेवन ने 'सो क्या जाने पीर पराई' तथा 'अपना घर', श्रीमती पुष्पा भारती ने विधाता के निर्माता', 'किनारों के बीच' तथा 'शुभागता' नामक उपन्यासों की रचना की है। सुश्री उषा प्रियं-वदा ने 'पचपन खंभे लाल दीवारें' सुश्री पुष्पा महाजन ने 'घूमते नक्षत्र', श्रीमती नारायणी कुशवाहा ने 'पराये बस में', आदि उपन्यासों की रचना की है। सुश्री शिवानी ने मायापुरी', नामक एक आंचलिक उपन्यास को रचा है। इनके अतिरिक्त 'भैरवी', 'कृष्णाकली', 'श्मशान चंपा', 'चौदह फेरे' आदि कई उपन्यासों को रचकर लेखिकाओं द्वारा रचित हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में यथेष्ट योग दिया है।

श्रीमती मालती परुलकर का 'बाली', श्रीमती बिंदु अग्रवाल का 'मोहल्ला की बुआ', सुश्री कमला टंडन 'कमल' का 'बिखरते स्वप्न', सुश्री वीरा का 'मौत के फूल', सुश्री संतोष बाला प्रेमी का 'स्नेह और स्वप्न', श्रीमती कांता सिंहा का 'अतृप्ता', श्रीमती प्रकाशवती का 'चार परतें', श्रीमती कृष्णा रविकमल का 'भटकते राही', सुश्री महेंद्रबावा का 'उलझे प्रश्न : अधूरे उत्तर', सुश्री प्रिया रंजन का 'नंदा', तथा 'माल श्री के फूल', श्रीमती मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' तथा दूसरा उपन्यास अपने पति श्री राजेन्द्र यादव के साथ मिलकर रचा गया 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गीतारानी कुशवाहा ने 'काली, गोरी, साँवरी', 'यार मुस्करा उठा', 'आंधी तूफान सवेरा', 'समाज का पाप', 'सरोज, चिराग बुझ गया', 'गर्म खून ठंडा पानी', 'मैली आँखे', 'फूल और पत्थर', आदि कई उपन्यासों की रचना की है। सोमावीरा ने ६ तिन्ना', सलमा सिद्दीकी ने 'सिकंदरनामा', शांति जोशी ने 'मेरा मन बनवास दिया सा' तथा 'शून्य की बाहों में', निर्मला-दर ने 'निर्झरणी और पत्थर', ममता कालिया ने 'छुटकारा' तथा 'बेघर', विमला रैना ने 'प्यासा पानी', कौशल्या अश्क ने 'बेचारी राधा', इंदुबाली ने 'बाँसुरिया बज उठी', विमला शर्मा ने 'एक साल', पद्मा त्रिवेदी ने 'मिट्टी के

देव', निर्मला वाजपेयी ने 'सूखा सैलाब', अमृता प्रीतम ने 'बंद दरवाजा', 'नागमणि', 'हीरे की कनी', 'धरती सागर और सीपियाँ', 'जलावतन', आदि कई उपन्यासों की रचना की है।

इस युग की लेखिकाओं ने मुख्य रूप से समाज एवं परिवार को केंद्र बनाकर प्रेममूलक उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में मध्यवर्गीय परिवार, समसामयिक समस्याओं को विशेष रूप से प्रश्रय मिला है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह विदित होता है कि वस्तु पक्ष तथा शिल्प-पक्ष की दृष्टि से ही नहीं प्रत्युत विचार धारा की दृष्टि से भी इस अवधि के उपन्यास परवर्ती कृतियों की अपेक्षा अधिक पुष्ट एवं परिणत हैं। इस युग तक आते आते राजनैतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में तो कुछ अधिक संख्या में भारतीय लेखिकाएँ पदार्पण कर चुकी हैं। अतः उनके दृष्टि-कोण, विश्वास, सामाजिक बोध में भी यथेष्ट परिवर्तन संपन्न हुआ है। फलतः इस युग की लेखिकाओं ने पारिवारिक समस्याओं के साथ-साथ सामा-जिक समस्याओं के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इतना ही नहीं इस युग के उपन्यास में उपलब्ध विचार-धारा के धरातल पर दृष्टिपात करें तो यह भी स्पष्ट होता है कि उपन्यास रचना के क्षेत्र में लेखिका और लेखक जैसी विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। सारांश यह है कि इस अवधि में कई श्रेष्ठ उपन्यास महिलाओं द्वारा रचे गये हैं।

महिलाओं द्वारा विरचित तेलुगु उपन्यास : एक सर्वेक्षण

तात्विक दृष्टि से किसी भी साहित्यिक रचना में स्त्री–पुरुष का भेद न होने पर भी यह कहा जा सकता है कि उपन्यास साहित्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान बहुत कम है। प्राचीन काल से ही नारी भी साहित्य–रचना की चेष्टा करने लगी है। फिर भी उनकी इस चेष्टा में अनेक सामाजिक आचार-विचार तथा परिस्थितियाँ बाधक रहीं हैं। फलस्वरूप वह साहित्य-क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा पीछे रह गयी है। जैसे निरक्षरता, अंध-विश्वास, पर्दा-प्रथा, गृहस्थी का दायित्व, संतान आदि जैसे कई सामाजिक बंधनों के कारण वह साहित्य क्षेत्र में अग्रसर नहीं हो पायीं। विज्ञान का विकास, भारत स्वातंत्र्य आंदोलन आदि नयी परिस्थितियों के कारण उपर्युक्त प्रतिबंधन अवश्य ही कुछ कम होने लगे हैं। कई क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष जैसी पृथक भावना मिटने लगी है। फलस्वरूप भारतीय नारी भी समाज एवं साहित्य के क्षेत्र में २० वीं शताब्दी में घनिष्ठ संबंध स्थापित करने लगी।

लेखनी उठाकर अपने विचार एवं विश्वासों को स्वतंत्र रूप से प्रकट करने लगी। अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा महिलायें अपनी समस्याओं को प्रकट करने के लिए उपन्यास को ही अत्युत्तम साधन मान कर कई रचनाएँ करने लगीं। प्रायः समस्त भारत में नारी समाज की यही स्थिति रही। इन सारी विषमताओं एवं बाधाओं के बावजूद भी तेलुगु उपन्यास साहित्य में महिलाओं के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

हिंदी के ही समान तेलुगु में भी उपन्यास साहित्यि की रचना लेखिकाओं के द्वारा अनुवादों के माध्यम से आरंभ हुई। ऐसे अनुवादों में सभी प्रकार के अनुवाद पाये जाने लगे। श्रीमती सीरमु सुभद्रांबा जी ने 'जागिलमु' जैसे जासूसी उपन्यास का सफल अनुवाद किया, जो अत्यंत लोकप्रिय भी हुआ है। पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमांबा के 'योगेश्वरी', 'अन्नपूर्णा' और अनुरुपादेवी का 'मंत्रशक्ति अत्यंत प्रसिद्ध अनूदित उपन्यास हैं। कृपाबाई सत्यनाथम्मा ने 'कमला' शीर्षक अंग्रेजी उपन्यास को 'कमलांबा' नाम से अनूदित कर प्रकाशित करवाया। इसी प्रकार अनुवादों के अतिरिक्त कुछ लेखिकाओं ने अन्य भाषाओं के पुस्तकों को, कथाओं को तथा गीति-काव्यों को आधार के रुप में ग्रहण करते हुए उनका अनुसरण कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। ऐसे उपन्यासों में 'मोकल-राणी' शीर्षक राजस्थानी कहानी के आधार पर अट्लूरि वेंकट सीतम्मा के द्वारा प्रस्तुत 'रूपवती'[1] उपन्यास तथा 'दि स्टोरी आफ दि लार्ड आफ आइल्स' गीति-काव्य पर आधारित मल्लादि बुच्चम्मा का 'लंकापति' सुन्दर उदाहरण है।

तेलुगु में मौलिक रूप से लेखिकाओं द्वारा उपन्यास की रचना सन् १९०६ में होने लगी।[2] श्रीमती जयंति सूरम्मा ने इसी वर्ष 'सुदक्षिणा-चरित्रमु (नामक उपन्यास की रचना की है जो पौराणिक इतिवृत को लेकर चलता है। तब से आज तक लेखिकाएँ किसी न किसी मात्रा में उपन्यासों का सृजन करती आ रही है। स्वातंत्र्योत्तर काल में संख्या और शिल्प की दृष्टि से इनके उपन्यास बहुत ही आगे बढ़ चुके हैं।

उपन्यासकर्त्रियों के अब तक के प्रकाशित रचनाओं का अवलोकन करने पर हमें यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि वस्तु तथा शिल्प

---

१. इस उपन्यास की रचना सन् १९१८ तथा १९२० की अवधि में होने पर भी इसका प्रकाशन सन् १९२६ में हुआ है।

२. गोर्रेपाटि वेंकटसुब्बय्या – तेलुगु साहित्यं तीरु तेन्नुलु – पृ. ८२

दोनों की दृष्टि से स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में गणनीय अंतर पाया जाता है। अतः अध्ययन को अधिक स्पष्ट ऊर्ध संतुलित बनाने केलिए तेलुगु की लेखिकाओं द्वारा रचित उपन्यासों को विकास की अवस्था, या प्रवृत्तियों में न बांधकर किसी विशिष्ट भाव-बोध या किन्हीं विशिष्ट या सूक्ष्म शैलियों की भेदकता झगड़ों में न पड़कर स्थूल रूप से इन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है। जैसे—स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यास तथा स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास।

स्वातंत्र्यपूर्व रचित उपन्यासकर्त्रियों की रचनाओं में जयंति सूरम्मा के 'सुदक्षिणा-चरित्रमु' के अतिरिक्त मल्लवरपु सुब्बम्मा का 'कलावती-चरित्र', एक स्वर्णम्मा के 'इंदिरा' तथा 'शरण्या', वी. श्रीनिवासम्मा का 'प्रियान्वेषणमु'. गोपिसेट्टि लक्ष्मी नरसमांबा के 'सुकेशी' तथा 'सुगुणावली', मागंटि अन्नपूर्णादेवी के 'सीतारामम्मु' तथा 'नववर्ष स्वप्नमु', ओलेटि सूर्यप्रभा देवी का 'इंदुमति', देशिराजु लक्ष्मीनरसमांबा का 'कमलावती', ए. वी. पिराट्टम्मा का 'शोभावती', आचंट सत्यवती देवी का 'सुनंदिनी', कूचि रामलक्ष्मी का 'अमला', पी. राजलक्ष्मम्मा का 'मदवती', डा. सत्यनाथन सती का 'ललिता', चेन्न कृष्णम्मा का विद्युतप्रभा', निरुपमादेवी का 'अन्नपूर्णा मंदिरमु' आदि इस अवधि के अप्राप्य उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त पुलगुर्तु कमलावती देवी का 'कुमुद्वती' (१९२४), कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा का वसुमति (१९२५), मल्लादि बुच्चम्मा का 'लंकापति' (१९२५, पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमांबा का 'सुभद्रा' (१९२५), चिल्लरिगे रमणम्मय का 'रामाश्रममु' (१९२६), अट्लूरि वेंकट—सीतम्मा के 'राधा माधवमु' (१९३४), दिल्ली साम्राज्यमु' (१९३५), रावूरि वेंकट सुभद्रम्मा का 'उदारपाण्डवमु' (१९३५), तथा आचंट सत्यवती देवी का 'भयंकर धनाशापिशाचमु' (१९३७) इसी अवधि के महत्वपूर्ण उपलब्ध उपन्यास हैं।

तेलुगु का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास 'वसुमती' सन् १९२५ में ही प्रकाशित हुआ है। कथावस्तु की दृष्टि से स्वातंत्र्य पूर्व काल के पूर्वार्ध में रचे गये तेलुगु उपन्यासों में लेखिका ने जितनी वैविध्यता दिखाई है, प्रशंसनीय है। 'वसुमती', 'रामाश्रयमु' में जो वस्तुगत विविधता पायी जाती है वह सन् १९२६ के पूर्व प्रकाशित किसी भी हिंदी उपन्यास में नहीं पायी जाती। इसमें स्त्री—संबंधी व्यक्तिगत समस्याओं के साथ साथ, उसके आर्थिक स्वातंत्र्य, वर्ग—संघर्ष, रिश्वतखोरी, आदि समस्याओं पर भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला

गया है। इसके अतिरिक्त 'भयंकर धनाशा पिशाचमु' में लोभी मनुष्य के मनोगत भावों का तथा उसकी नीच बुद्धि का विशद वर्णन किया गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वप्रथम है 'कुमुदवती' जो आंध्रेतर प्रांत से संबंधित इतिहास को लेकर लिखा गया उपन्यास है। 'ढिल्ली साम्राज्यमु' तथा 'रूपवती' भी आंध्रेतर इतिहास पर आधारित उपन्यास है। धार्मिक–विश्वासों के प्रति स्त्रियों की आस्था को तथा लेखिकाओं की रुचि को प्रकट करनेवाले उपन्यास भी अधिक मात्रा में मिलते हैं। जैसे पहले ही सूचित किया गया है, आंध्र की उपन्यासकर्त्रियों का सर्व–प्रथम तेलुगु उपन्यास का आरंभ (सुदक्षिणा चरित्रमु) पौराणिक कथानक पर ही आधारित है। इसके बाद 'सुभद्रा', 'उदारपाण्डवमु' आदि कई उपन्यासों की रचना हुई जो इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्य पूर्व के समय में लेखिकाओं द्वारा रचित तेलुगु के उपन्यासों में पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक तीनों प्रकार के विषय–वस्तुओं का चित्रण पाया जाता है। लेकिन शिल्प–पक्ष की दृष्टि से 'रामाश्रममु' को छोड़कर शेष उपन्यास विशेष महत्व को नहीं रखते। इन उपन्यासों की भाषा तेलुगु की काव्य भाषा है। लेकिन कतिपय कमजोरियों के बावजूद स्वातंत्र्यपूर्वकाल की रचनाओं की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर काल में विरचित उपन्यासों की नींव एवं प्रेरणा प्रदायक विशिष्टतायें इस अवधि के उपन्यासों में द्रष्टव्य हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में लेखिकाओं ने अधिक संख्या में उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण किया। यह अनेक सुधारवादी आंदोलन का ही परिणाम है। स्त्री-शिक्षा, पुरुषों के समान अधिकार आदि तरह-तरह के सामाजिक सुधारवादी आंदोलन का जन्म श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम पतुलुजी के मार्गदर्शन में पनपा। यद्यपि भारतीय समाज अंग्रेजियों के शासन की शृंखलाओं में जकड़ा रहा, फिर भी सामाजिक क्षेत्र में उनका प्रभाव एक प्रकार से स्वस्थ्य ही रहा। अंग्रेजी भाषा के तथा साहित्य के अध्ययन से और उनके आचार-विचार और रहन-सहन से प्रभावित होकर भारतीय समाज जागृत होने लगा। स्त्रियों के दयनीय जीवन को देखकर लेखक और नेता भी लज्जित होने लगे। उनके जीवन में आमूल परिवर्तन लाने के मार्ग ढूंढने लगे। उन्हीं के कार्यों का शुभ परिणाम था कि स्त्रियों में आत्म-सम्मान की भावना बढ गयी। सामाजिक चेतना जागृत होने लगी। घर की कारा तोड़कर जीवन तथा जगत के संबंध में नयी नयी बातें जानने की चेष्टा करने लगीं। फलस्वरूप नारी ने साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया। फिर भी उनके द्वारा

चुने हुए कथावस्तु केवल पारिवारिक समस्याओं तक ही सीमित रह गयी है। उनकी कथावस्तु की मुख्य समस्या एवं घटनाओं में दहेज-प्रथा, दांपत्य जीवन नौकरी आदि हैं ।

इस चरण तक आते-आते संख्या की दृष्टि से उपन्यास साहित्य-क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक आ गयी हैं । इन्हें पत्र-पत्रिकाओं का प्रोत्साहन भी मिलने लगा । धारावाहिक उपन्यास, कहानियाँ, पारिवारिक समस्याओं से संबंधित छोटे-छोटे लेखक सरस एवं सरल शैली में लिखने लगीं । इस समय की लेखिकाएँ, नारी पाठकों की संख्या बढ़ाने में अधिक चेष्टा करने लगी । ऐसी लेखिकाओं में श्रीमत मालती चंदूर का नाम लिया जा सकता है । आपकी रचनाओं की विशिष्टता यह है कि उनमें मनोरंजन एवं सुधारवारी दृष्टिकोण का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है । 'चंपकबु'-चदपुरुगुलु' (चंपक और दीमक) उपन्यास में नौकरी करनेवाली स्त्री की कठिनाइयों का वर्णन किया है । आपके अन्य उपन्यास हैं–'लावण्या', 'मेघाल मेलि मुसुगु' (बादलों का घुंघट) तथा 'रेणुकादेवी आत्मकथा ।'

उपन्यास कृतियों की संख्या की दृष्टि से ही नहीं, कीर्ति एवं निंदा की दृष्टि से भी लेखिकाओं में तेन्नेटि हेमलता का एक विशिष्ट स्थान है । साहित्यिक मनीषियों एवं जन–साधारण दोनों वर्गों में आप समान रूप से प्रख्यात हैं । आपकी कुल कृतियाँ ५२ से अधिक हैं । आप श्री चलम् की साहित्यिक विचारधारा एवं शैली से अत्यंत प्रभावित हैं । आपके उपन्यासों के पात्र स्वच्छंद–प्रणय के अनुगामी होते हैं । इसी कारण, उपन्यासों में अश्लीलता का वर्णन पाया जाता है । स्त्री होने पर भी उन्होंने कई जगह ऐसे अश्लील वर्णन किये हैं जिससे पाठकों के मन में जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है । हाल की कुछ रचनाओं में आध्यात्मिकता की छाप भी परिलक्षित होती है । 'मोहनवंशी' इसका एक सुंदर उदाहरण है । अतियथार्थ चित्रण आपके उपन्यासों की एक और विशेषता है । 'महानगरं लो स्त्री' (महानगर में स्त्री) इस शैली का प्रमुख उपन्यास है । आपकी भाषा–शैली आपके व्यक्तित्व के अनुरूप ही हैं । स्पष्टता, संक्षिप्तता, मार्मिकता आपकी शैली की कुछ प्रमुख विशेषतायें हैं । 'वारिजा', 'पिच्चिवालल स्वर्गम' (पागलों का स्वर्ग), 'आदि मध्यांताललो' (आदि, मध्य तथा अंत में), 'आलेख्या', 'एडारि पुव्वुलु' (रेगिस्थान के फूल), 'रक्त पंकं', 'कालं करचिन कडपट' (काल के काटने के पश्चात्), 'चरित्र–शेषुलु' (इतिहास के शेष व्यक्ति), 'जीवन स्रवंति', 'दीपकलिक', 'देय्यालु लेवू ?' (भूत नहीं हैं क्या ?), 'नीलि नीडलु' (नीली परछाइयाँ),

'नीहारिका', 'प्रेमसाहित्यंलो स्त्री' (प्रेम साहित्य में स्त्री), 'मिगिलिंदेमिटि ?' (बचा क्या है ?), 'रागजलधि', 'वैतरणी–तीरंलो' (वैतरणी के तीर के पास), 'सप्तस्वरालु' (सप्त स्वर), आदि आपके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं। अतृप्त प्रेम एवं अनंत सौंदर्य की अन्वेषण की प्रवृत्ति आपकी रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन में कुमारी मल्लादि वसुंधरा प्रमुख हैं। आपके ऐतिहासिक उपन्यास 'तंजावूरि पतनमु' (तंजावूर का पतन), सप्तपर्णि, 'रामप्पा गुडि' (रामप्पा का मंदिर), 'अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास हैं। आंध्रविश्वविद्यालय की ओर ऐतिहासिक गाथाओं के प्रोत्साहन के निमित्त घोषित प्रतियोगिता में 'तंजावूरि पतनमु' उपन्यास को पुरस्कार मिला है। आपकी सामाजिक कृति 'दूरपु कोंडलु' (दूर के पहाड़) एक विशिष्ट उपन्यास है। आपके उपन्यासों पर आपके गुरु 'कवि सम्राट' श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी का प्रभाव परिलक्षित होता है। श्रीमती इल्लिंदल सरस्वती देवी तेलुगु उपन्यास साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। आपके 'दरिजेरिन प्राणुल' (किनारे पहुँचे प्राणी), 'जीवित वलयालु' (जीवन के उलझन) उत्तम श्रेणी के उपन्यास हैं।

सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर कई सफल उपन्यास प्रस्तुत करने वाली प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा हैं। 'कृष्णवेणी', 'बलिपीठमु' (बलि की वेदी), 'पेकमेडलु' (ताश के महल), 'स्त्री', 'रचयित्री', 'चदुवुकुन्न कमला' (पढी–लिखी कमला), 'कूलिन गोडलु' (गिरी हुई दीवारें), 'स्वीट होम'– १, २, 'कळा एंदुकु' (कला क्यों ?), 'ना डायरी लो ओक पेजी' (मेरी डायरी में एक पन्ना), आदि अत्यंत सुंदर एवं लोकप्रिय उपन्यास हैं। वर्णांतर विवाहों के हानि–लाभों को दिखाने वाला उपन्यास है 'बलिपीठमु', 'पेकमेडलु', उपन्यास में स्त्री–पुरुषों की दो विरोधी प्रवृत्तियों को दिखाया गया है। 'कृष्णवेणी' पत्र शैली में रचित एक अनोखा उपन्यास है। गार्हस्थ्य जीवन का मधुर पक्ष का चित्रण 'स्वीट–होम' में मिलता है। कथ्य की दृष्टि से आपके उपन्यासों में विविधता, उपलब्ध होने के कारण आपका प्रत्येक उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुआ है।

श्रीमती कोडूरि कौशल्यादेवी ने 'चक्रभ्रमणमु', 'शांतिनिकेतन', 'शंखु-तीर्थमु' (शंखतीर्थ), 'धर्म चक्रमु', 'प्रेमनगर', 'कल्याण मंदिर', 'चक्रनेमि', 'भाग्य चक्रं', 'संसार चक्रं', 'बदनिका' आदि कई विशिष्ट उपन्यासों का प्रणयन किया है। आपके कथा-चयन में कल्पना का प्राधान्य पाया जाता है।

एक ही उपन्यास लिखकर उपन्यास-साहित्य क्षेत्र में अमर होने वाली लेखिका स्वर्गीय पी. श्रीदेवी हैं। लोकमर्यादा' परंपरा आदि के नाम से भयभीत होने वाली नारी में आपने निर्भीकता, स्वाभिमान, स्वावलंबन आदि विशिष्ट गुणों को प्रतिष्ठित करने की सफल चेष्टा आपने अपने उपन्यास 'कालातीत व्यक्तुलु' (काल के अतीत व्यक्ति) में किया है। इस उपन्यास की पात्री इंदिरा ने उपर्युक्त गुण, कूट कूटकर भरे हुए हैं। उपन्यास की भाषा सरल एवं सहज है।

यद्दनपूडि सुलोचनाराणी वर्तमान प्रतिभा-संपन्न लेखिकाओं में एक हैं। आपके सामाजिक उपन्यासों की तुलना श्री अडवि बापिराजु जी के सामाजिक उपन्यासों से की जा सकती है। आपकी भाषा पाठकों की रुचि के अनुकूल एवं सरल होने के साथ-साथ आपकी शैली प्रवाहमयी एवं प्रभावात्मक भी है। लोकप्रियता की दृष्टि से आपके उपन्यास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जिसमें 'सेक्रेटरी', 'विजेता', 'आहुति', 'आराधना', 'मीता', 'जीवनतरंगालु', (जीवन की तरंगें) आदि मुख्य हैं । आपके उपन्यासों के मुख्य पात्र आदर्श की प्रतिमूर्तियाँ हैं। जीवन की विशेषताओं तथा दुर्बलताओं का तथा स्त्री-हृदय का जितना सफल चित्रण आपने प्रस्तुत किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

पारिवारिक जीवन का चित्रण विभिन्न दृष्टिकोणों से करने वाली इस चरण को प्रसिद्ध लेखिकाओं ने द्विवेदुला विशालाक्षी का नाम सहर्ष लिया जा सकता है। आपके उपन्यासों में 'वैकुंटपति', 'मारिन विलुवलु' (बदलते हुए मूल्य), 'ग्रहणं विडिचिंदि' (ग्रहण छूटा), 'वारधि' (पुल), 'गोमति' 'हरिविल्लु' (इंद्रधनुष) उल्लेखनीय हैं।

मानवता को प्रमुख कथ्य के रूप में स्वीकार कर उपन्यास रचने वाली लेखिका हैं श्रीमती सी. आनंदरामं। आपके पात्रों में मानवता के विशद चित्रण के साथ-साथ, भावों का संघर्ष, उक्ति में गम्भीरता भी पायी जाती है। 'संपेंग पोदलु' (चंपक के झाड), 'निश्शब्द सँगीतमु' (मौन संगीत), 'जाह्नवी-हैमवतुलु', 'स्वाति जल्लु, (स्वाति बूंदें), 'सागर संगमं' 'तीरनि वेतले

तीयनि गाथलु' (अतृप्त इच्छायें मीठी गाथायें), 'आत्मबलि', एदि सत्यं—एदसत्यं' (कौनसा सच, कौनसा झूठ), 'चीकटि कडुपुन कांति' (अंधेरे के गर्भ में प्रकाश), 'नानृषिः कुरुते काव्यम्' आदि आपके अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यास हैं।

वासिरेड्डी सीतादेवी के उपन्यास कथ्य और शिल्प की दृष्टि से इस क्षेत्र में कुछ विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपने जीवन के प्रत्येक पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डालकर अपनी रचनाओं में अर्थवत्ता लाने का प्रयत्न किया है। आपका उपन्यास 'समता' में वर्तमान राजनीतिक जीवन पर कटु व्यंग्य उपलब्ध हुआ है। 'मट्टि मनिषि' (मिट्टी का आदमी) में ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण हैं। 'अडवि मल्ले' (जंगली चंपक), 'तिरस्कृति' आदि आपके अन्य लोकप्रिय उपन्यास हैं।

नायनि कृष्णकुमारी का 'अपराजिता' इस चरण का एक और लोकप्रिय उपन्यास है। श्रीमती डी. कामेश्वरी ने समाज की रूढिवादिता का खंडन करके नये विचारों का प्रतिपादन किया है। आपकी शैली सरल तथा प्रभावोत्पादक है। 'जोत्त नीरु' (नया पानी), विधि वंचितलु' (विधि द्वारा वंचित किये गये), 'अरुणा' आपके लोकप्रिय उपन्यास हैं।

यह हर्ष का विषय है कि महिलाओं एवं उनके उपन्यासों को आंध्र के सभी वर्गों की ओर से समान रूप से प्रोत्साहन एवं अनुमोदन प्राप्त हुआ है। फलतः अल्पावधि में ही कई लेखिकाओं ने संख्या एवं गुण दोनों की दृष्टि से असंख्य उपन्यासों का प्रणयन किया है। यहाँ उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायगा।

श्रीमती जानकीराणी तुरगा के 'कोडिगट्टनि दीपालु' (कालिखहीन दीप), 'वेयबोवनि तलुपुलु' (न बंद किये जाने वाले दरवाजे), सुश्री कोमलादेवी के 'बंगारु पंजरम्' (सोने का पिंजडा), 'आराधना', 'पुनस्समागम', 'उन्नत शिखरालु' (उँचे शिखर), 'दांपत्यालु' (दांपत्य) आदि कुछ प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

श्रीमती बीनादेवी का एक मात्र उपन्यास 'हेंग भी क्विलक' अथवा 'पुण्यभूमि कल्लु तेरु (पुत्यभूमि आँखें खोलो), एक अत्यन्त विशिष्ट एवं लोकप्रिय उपन्यास है। यह उपन्यास शीर्षक के समान वस्तु, शैली एवं विचार-

धारा में क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तुत करनेवाला सिद्ध हुआ है। कथावस्तु में सामाजिक समस्याओं की प्रतिबद्धता दृष्टिगोचर होती है। शोषित वर्ग का वास्तविक तथा मार्मिक चित्रण भी इसमें प्रस्तुत किया गया है। अतः यह इस दशक का एक विशिष्ट उपन्यास कहा जा सकता है।

डी. प्रमीलाकुमारी का 'तेगिन तीगलु' (टूटे हुए तार), 'करिगिन स्वप्नमु' (छूटा स्वप्न), 'अंदनि शिखरालु' (पहुँच से परे शिखर), सुश्री परिमला सोमेश्वर के 'चेतु निजालु' (कड़ुवे सच), 'नर्तकी', श्रीमती पवनि निर्मला प्रभावती के 'शलभालु' (पतंगे), 'उदयकिरणालु', 'मनुषुलु-मनसुलु (मानव-मन), 'स्त्री' आदि इस युग के कुछ प्रमुख अन्य उपन्यास हैं।'

इनके अतिरिक्त श्रीमती ए. वि. एस. अच्युतवल्लि के 'मूडु मुल्लु' (तीन गांठ), 'अव्यक्तालु', 'कोडिगट्टिन दीपालु' (कालिख भरे दीप), 'पुट्टिल्लु' (माय का घर), 'मनस्तत्त्वालु', 'मूग बोइन प्रकृति' (मौन बनी प्रकृति) आदि प्रमुख सामाजिक इतिवृत्त प्रधान उपन्यास है।

नूगूरि (पोलंपल्लि) शांतादेवी के 'बाटसारी' (राहगीर), 'पाणि-ग्रहणं', 'रक्त तिलकं', 'स्त्रीकृति', 'जीवन संगीतम', 'सुमनलता',' कालपुरुषुनि हेच्चरिका' (काल पुरुष की चेतावनी), तथा 'पूजा सुमं' उपन्यासों में पारि-वारिक जीवन तथा प्रेम के मूल्यों का प्रतिपादन हुआ है।

श्रीमती अद्देपल्लि विवेकानन्दादेवी के 'वेलुगु तीडलु' (प्रकाश तथा परिछाइयाँ), 'अग्नि गुंडालु' (अग्नि के भवंडर), 'भिन्न स्वरालु' (भिन्न स्वर), कल्याण घडिया' (विवाह का मुहूर्त), श्रीमती उन्नव विजयलक्ष्मी के 'निरीक्षणा', 'जीवन-रागं', 'अर्धांगि', 'अंतस्तुलु-अभिमानालु', (ओहदे तथा अभिमान), 'आचरणलो अभ्युदयं (आचरण में प्रगति), परिणयं', श्रीमती कोत्ता लक्ष्मीरघुराम के सिगिनाथम', 'कनुविप्पु' (ज्ञान का उदय), 'चिल्लि-गव्व' (फूटी कौडी), 'धन्य जीवुलु' आदि भी सामाजिक इतिवृत प्रधान उपन्यास है।

श्रीमती के. रामलक्ष्मी के 'अवतलि गट्टु' (उस पार) 'मेरुपु तीग' (बिजली के तार), 'माननि गायं' (न भरनेवाला घाव), 'आडदि' (औरत), 'प्रेमिंचु प्रेमकै' (प्रेम के लिए प्रेम करो) 'हृदयं चिगिर्चिंदि' (हृदय खिला)

श्रीमती मादिरेड्डी सुलोचनारानी के 'अद्दाल मेडा (कांच का महल), 'अधि-कारुलु—आश्रित जनुलु' (अधिकारी तथा आश्रित जन), 'जीवन यात्रा', 'न्यायं निद्रापोइंदि' (न्याय सो गया है), 'पूल मनसुलु' 'प्रेमलू-पेल्लिल्लु' (प्रेम-विवाह) 'वीरकेसरि', 'शिक्षा', 'श्री यिलयं', 'संध्या', 'सजीव स्मृतुलु' (सीजीव स्मृति), 'सुमलता', नंदुला सुशीलादेवी के 'सरली स्वरालु' (सरली स्वर), तथा 'सुजाता', सौरीस का 'अनावीलर', 'जीवन रागं', श्रीमता रेवनूरि शमंता के 'रत्न कंबलं', तथा 'तथा 'तोणकिन स्वप्न—तोलगिन स्वर्गम्' (टूटा स्वप्न-टूटा स्वर्ग' आदि इस चरण के उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

इनके पश्चात् श्रीमती जयश्री का 'गृह दीपिका', श्रीमती जयलक्ष्मी का ललिता', श्रीमती जयचंद्रारेड्डी का 'मधुवु माधुर्यं', श्रीमती चौडेश्वरी देवी का 'पतिव्रता', श्रीमती पि. गृहलक्ष्मी का 'गुलाबीलु—मुल्लु' (गुलाब और कांटे), श्रीमती पी. कृष्ण—ज्योति शर्मा के 'मधुर स्वप्नं', 'अनुरागं', 'विषकीटकं', श्रीमती शोभाराणी का 'भार्गवी चंद्रा', माधुरी जी का 'एंडमावुलु' (मरीचिकायें), 'नीलि कलुवा' (नील कमल), आचंटा शारदादेवी के 'ओक्क-नाटि अतिथि' (एक दिन का अतिथि), 'पारिपोइन चिलुका' (भागी गयी तोता), वी. विजयलक्ष्मीजी की 'निरवधि सुखदा', पोलाप्रगड राज्यलक्ष्मी जी का 'गगन कुसुमालु', 'श्रीमती एन. कल्याणी जी का 'संघर्षणा', प्रफुल्लाराणीजी के 'अतनोक्कडु—मुग्गुरु मगुवलु', (एक पुरुष तीन नारियाँ), 'सृति—अनुसृति', अडविकोलनु पार्वती का 'युगसंधि', श्रीमती बोडपाटि दमयंति जी के 'लोकं पोकडा', अधरापुरपु तेजोवती का 'पूर्वा संध्या प्रवर्तते', यलमंचिलि झान्सीलक्ष्मी के 'आराधना', 'मनुषुलु—ममतलु', 'रागमयी', पी. सरलादेवी का 'कुंकुम रेखलु', श्रीमती सरस्वती राव के 'पच्चनि कलशं लो मेलिमि मुत्यालु', 'राग-रेखलु', श्रीमती सरस्वती बाबूराव का 'जीवन वलयं', सत्यवाणीजी का 'विडिन मब्बुलू' (बिखरे बादल), 'पी. सत्यवती जी के 'गुम्मडि पादु' (कद्दू की बेल), 'ब्रतुकु बाट' (जीवन की राह), श्रीमती कनकदुर्गा रामचंद्रन का 'वियर आर यु बौंड', सुश्री आशालता का 'नलिनी प्रसादं', आशापूर्णदेवी का 'नवजन्मा', अरुणाजी के' सप्तपदि', 'अरविंदा', ए. एस. मणि का 'पगिलिन प्रतिमा' (टूटी हुई प्रतिमा), शकुंतला के 'पुनादि राळ्ळु' (बुनियाद के पत्थर), 'शारदारात्रुलु' (शरद की रातें), शिखा वेंकट रमणा जी के 'चदरंगं' (शतरंज). 'अडकत्तेरलो

मनिषि' (दुविधा में पडा आदमी), अनुरागाल हद्दुलु' (अनुराग की सीमायें), 'गाजु बोम्मलु' (कांच की गुडियाँ), 'चिवरि मंजिली (आखिरी मंजिल), 'निर्वेदं', 'नेटि मुत्यालु', 'परिलिप्तं', पूदोट लो गंटु मुल्लु' (फुलवाडी में काँटे(, 'मीगलि पोदलु' (केवडे की झाडी)। दर्भा वेंकटरत्नम्मा जी का 'विडी विडमि जंटा' (जुदा होकर भी न जुदा होने वाली जोडी), विद्यावती जी का 'बंगारु दीवि' (सोने का द्वीप), वसुंधरा देवी जी का 'आशयालु–अनुभवालु', 'राधिका', मंदरपु ललिताजी का 'अयिदु रेळ्ळु' (पांच दूनी), श्रीमती लक्ष्मी-रमणाजी का 'ब्रतुकु जोडु' (जीवन साथी), सी. के. लक्ष्मी 'वंकर गीतलु' (टेढी रेखायें), 'हृदय सौंदर्य', रोशन जी का 'विधि विनोदं', पी. रामलक्ष्मी जी का 'अर्पण', के. राधादेवी जी का 'शिथिल सौधम्', एज. जे. राणी जी का 'मारिन मनसुलु', (बदले हुए मन), पुलिपाक राजेश्वरीजी का 'कोत्त कापुरं' (नया परिवार), कोलिपाक रमामणिजी का 'एटि ओड्डुन नीटि पूलु' (नदी के किनारे के पानी के फूल), वी. एस. रमादेवी का 'करिगिपोइन कललु' (पिघले हुए स्वप्न), 'दारि तप्पिन मानवुडु' (भटका हुआ मानव) आदि, सुब्बलक्ष्मीजी का 'काव्य सुंदरि कथा', वीरमाचिनेनि सरोजिनी का 'स्नेहानु-बंधालु' (स्नेह के बंधन), श्रीमती वेल्पूरि सुभद्रादेवी का 'मंचु बोम्मलु' (बर्फ के गुडिय), सूँमलता जी का 'जीवन कलशमु', यामिनी सरस्वती देवी का 'मनस्विनी', नूल्लूरि वेदेवतीदेवी का 'सुजना', शारपानाथजी का 'अचल कडलि' (लहराता समुद्र), मुनुपल्ले सरोजिनी देवी का 'अमृत हस्तालु', 'बँधालु',–अनुबंधालु', 'भुविनुंडि दिविकि' (भूमि से स्वर्ग तक), वीरपनेनि सरोजिनी देवी का 'वसुधा', 'चक्रभ्रमणं', सरोजिनी रामचंदा जी का 'मारिन जीवितालु' (बदले हुए जीवन), 'गुल्लपल्लि सुंदरम्मा का 'सुडिगालि' (आँधी), रेवनूरि सुवर्णा जी का 'अचलं चंचलं', हजराजी का 'जीवन माधुरी' आदि भी इस चरण की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

उक्त अध्ययन से यह विदित होता है कि तेलुगु उपन्यास साहित्य के स्वातन्त्योत्तर काल में कई सफल लेखिकायें पदार्पण कर श्रेष्ठ कृतियाँ प्रदान कीं। शैली की दृष्टि से विशेष प्रयोग अथवा नवीनता भले ही न उपलब्ध हुई हो परन्तु कथानक के क्षेत्र में विविधता, विवृति-विस्तार, जैसी कई विशेषतायें संपन्न हुई हैं।

स्वातन्त्र्योकाल में उपन्यासकत्रियों ने आंचलिक उपन्यासों का भी प्रणयन किया है। यहाँ तक कि तेलुगु उपन्यास-धारा निरंतर एवं अबाध गति से अग्रसर होती चली जा रही है और विश्व के उपन्यास मंच पर अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। प्राय: नारी समाज की सभी पारिवारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं की चर्चा, विश्लेषण, खंडन-मंडन, कहीं-कहीं समस्याओं का अपने चिंतन एवं संस्कारों के अनुरूप समाधान का प्रस्तुतीकरण, इस अवधि के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

ऐसा कहा जा सकता है कि तेलुगु उपन्यास-साहित्य की श्रीवृद्धि में महिलाओं का योगदान विशिष्ट एवं सर्वाधिक है। उपर्युक्त कथन का प्रमाण यही है कि वर्तमान उपन्यासकारों में महिलायें ही अत्यधिक संख्या में हैं और लोकप्रियता की दृष्टि से भी उनके उपन्यास अत्यंत सफल सिद्ध हुए हैं।

निष्कर्ष : यह कहा जा सकता है कि प्रारंभ से ही हिन्दी और तेलुगु उपन्यास साहित्य में लेखिकाओं का योगदान भी न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है। वैसे पद्य साहित्य में स्त्रियों का योगदान बहुत पहले से पाया जाता है लेकिन गद्य में भी विशेषत: उपन्यास साहित्य में इनकी गणना अवश्य की जा सकती है। यह बात सच है कि इनकी तुलना लेखकों से करना, हास्यास्पद है, फिर भी अनेक सामाजिक बंधनों में बंधी रहने पर भी, उपन्यास साहित्य की ओर इन्होंने अपनी दृष्टि फैलायी है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में महिलाओं ने संवत् १८९० से अपना परिचय दिया है। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा धार्मिक उपन्यासों की रचना की है। प्रारंभ कालीन महिलाओं द्वारा विरचित उपन्यासों में भाषा, शैली तथा वर्णन संबंधी त्रुटियाँ पायी जाती हैं। इस काल की लेखिकाओं ने अपना लक्ष्य केवल उद्देश्य देने तक ही ठहराया है। इनके स्त्री पात्रों के चरित्र-चित्रण में आदर्शवादी प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। यद्यपि इस समय के उपन्यासों में शैली संबंधी कुछ त्रुटियाँ पायी जाती हैं फिर भी परवर्ती उपन्यास साहित्य के विकास के लिए ये उपन्यास पृष्ठ भूमि सिद्ध होते हैं। इसके पश्चात् विकास काल के अंतर्गत लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का विशद चित्रण किया है। इस

अवधि में इन्होंने उद्देश्य प्रधान उपन्यासों की रचना की है। इन दो लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में, दहेज-प्रथा, कन्या-विक्रय, वृद्ध-विवाह, पुरुषों के दुराचार, पर्दा-प्रथा, बहु-विवाह के दुष्परिणाम आदि समकालीन सामाजिक कुरीतियों की चर्चा की है। इन रचनाओं में भी कहीं कहीं भाषा की त्रुटियाँ पायी जाती हैं। इस चरण की लेखिकाओं ने शैली के क्षेत्र में आदर्शवाद को ही नहीं प्रत्युत्त आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को भी अपनाया है।

स्वातंत्र्योत्तरकाल में महिलाओं ने कथा-चयन के क्षेत्र में अपनी वैविध्यता एवं प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। प्राय. सभी उपन्यासों में लेखिकाओं ने मानव मन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इस युग की लेखिकाओं ने मुख्य रूप से समाज एवं परिवार को केंद्र बनाकर प्रेममूलक उपन्यासों की रचना की। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक एवं आंचलिक उपन्यास भी इस युग में रचे गये हैं।

तेलुगु उपन्यास साहित्य में लगभग सन् १९०० से ही महिलाओं के उपन्यास पायें जाते हैं। परन्तु अधिक मात्रा में नहीं। कथानक की दृष्टि से देखा जाय तो इस अवधि में सामाजिक, ऐतिहासिक तथा जासूसी उपन्यास जन-साधारण में अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाये हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में लेखिकाएं, अधिक संख्या में इस क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी हैं। वे अपने विचारों को स्पष्ट रूप से कहने में समर्थ हुईं। लेकिन उनके द्वारा चुने गय कथानक तथा प्रसंग अधिकांश पारिवारिक धरातल तक ही सीमित रहे। मनोवैज्ञानिक तथा प्रेममूलक उपन्यासों का आधिक्य पाया जाता है। इनके उपन्यासों का महिलाओं द्वारा रचित हिन्दी तथा तेलुगु के साहित्य का अवलोकन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि वस्तु तथा शिल्प दोनों दृष्टियों से स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों मे गणनीय अंतर पाया जाता है। अतः अध्ययन का अधिक स्पष्ट एवं संतुलित बनाने के लिये लेखिकाओं द्वारा रचित उपन्यासों को, विकास की अवस्था या प्रवृत्तियों में न बांधकर किसी विशिष्ट भाव-बोध का किन्हीं विशिष्ट या सुक्ष्म शैलियों की भेदकता के झगड़ों में न पड़ कर स्थूल रूप से इन्हें अगले अध्याय में दो वर्गों में स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यास तथा स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास में रखा गया है।

तृतीय अध्याय

लेखिकाओं द्वारा विरचित स्वातंत्र्यपूर्व कालीन हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में वस्तु पक्ष

आधुनिक आलोचना पद्धति के अनुसार उपन्यास के छः मुख्य तत्वों को अध्ययन की अनुकूलता के लिए दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है—एक है वस्तुपक्ष तथा दूसरा है शिल्पपक्ष । वस्तुपक्ष के अन्तर्गत कथानक, पात्र तथा उद्देश्य, तथा शिल्प-पक्ष के अन्तर्गत कथोपकथन, वातावरण तथा भाषा-शैली को रखा जा सकता है । इसी विभाजन रेखा के आधार पर प्रस्तुत विवेच्य विषय को दो अध्यायों में बांटा गया है । जो क्रमशः वस्तुगत एवं शिल्पगत अध्ययन को प्रस्तुत करते हैं ।

लेखिकाओं के हिन्दी उपन्यासों में वस्तु पक्ष :—

स्वातन्त्र्यपूर्व हिन्दी की उपन्यास लेखिकाओं में 'साध्वी सती पति-प्राणा अबला', 'सरस्वती गुप्ता', 'प्रियंवदा देवी', 'हेमंतकुमारी चौधरी', 'यशोदा देवी', ब्रह्मकुमारी', 'हुकमदेवी गुप्ता', 'लीलावती देवी', 'श्रीमती उषा देवी मित्रा 'श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल' आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं । इनमें तोउषादेवी मित्रा तथा कंचनलता सब्बरवाल के उपन्यास स्वातन्त्र्यपूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर दोनों समयों में मिलते हैं ।

यहाँ पर प्रत्येक लेखिका के उपन्यासों का अध्ययन वस्तु-तत्वों की दृष्टि से प्रस्तुत है ।

'साध्वी सती पति प्राणा अबला' :-

श्रीमती साध्वी सती पति प्राणा अबला (जो लेखिका का छद्म नाम है) का 'सुहासिनी' सन् १८९० ई. में प्रकाशित सामाजिक विषयवस्तु को लेकर लिखा गया एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। सुहासिनी एक कन्या है। अनाथ होने के कारण, उसका पालन-पोषण उसके चाचा करते हैं। उसका विवाह हरिपुर में धनवान देवी प्रसाद से होता है। लेकिन कुछ ही महीनों के उपरांत दुर्भाग्यवश वह निर्धन बन जाता है। और उस प्रांत में अकाल भी पड़ने के कारण, देवी प्रसाद, पत्नी सहित अन्यत्र जीवनोपार्जन के लिए चला जाता है। उदर-पूर्ति के लिए दम्पत्ति को घर-घर भटकना पड़ता है। एक दयालू ब्राह्मण सुहासिनी को अपने घर में महाराजिन के रूप में रख लेता है। तब देवी प्रसाद अपनी उदरपूर्ति के लिए फिर दूसरे प्रांत चला जाता है। यहाँ सुहासिनी ब्राह्मण के पुत्र की काम लोलुपता से तंग आकर, घर छोड़ देती है। जब देवी प्रसाद लौट आता है तब सुहासिनी वहाँ नहीं रहती है। वहां से निकलने के पश्चात् सुहासिनी की भेंट एक अन्य वृद्ध ब्राह्मण से होती है जो उसे माता तुल्य कह कर अपने घर में स्थान देता है। वृद्ध ब्राह्मण के आकस्मिक मरण से सुहासिनी उस ब्राह्मण की सारी सम्पत्ति की उत्तराधि-कारिणी बन जाती है। तब से वह अपने पति की खोज में रहती हैं। वह आठ वर्षों तक पति की प्रतीक्षा करने के पश्चात् काशी चली जाती है। यहां पर लेखिका आकस्मिक ढंग से उपन्यास को सुखांत बनाने के हेतु सुहासिनी की भेंट काशी में देवीप्रसाद से करवाती है । इस प्रकार काशी यात्रा के प्रतिफल के रूप में सुहासिनी को अपने पति के दर्शन करवाना, काशी यात्रा करने में तथा भगवान के प्रति लेखिका की आस्था प्रकट होती है।

इस प्रकार सुहासिनी कथावस्तु की दृष्टि से एक आदर्शवादी उपन्यास माना जा सकता हैं। इसमें उपलब्ध आदर्शवाद के आधिक्य के कारण उप-न्यास में अस्वाभाविकता की मात्रा बढ़ गयी है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भ यह उपन्यास आदर्शवादी कहा जा सकता हैं। इसकी नायिका, 'सुहासिनी' का परिचय लेखिका इस प्रकार कराती हैं 'सुहासिनी की अवस्था कुल तेरह वर्ष की थी, देखने में अति सुंदरी जो सब सौंदर्य रहने से रमणी अतुलनीय सुंदरियों में गिनो जाती है, सुहासिनी

को उनमें से किसी का अभाव नहीं था, अर्थात उसकी सुंदरता की सीमा नहीं थी।"[1]

उपन्यास की घटनायें सुहासिनी तथा देवीप्रसाद के चरित्र को उभारने में ही सहायक हुई है। दोनों पति-पत्नी का अन्न की खोज में दर दर भटकना, फलस्वरूप सुहासिनी का अनेक कष्टों का सामना करना, अपने उज्ज्वल शील की रक्षा के लिए यातनायें सहना, आदि के कारण सुहासिनी आदर्श पात्रा बनी है। इसी प्रकार देवीप्रसाद भी एक आदर्श पति के रूप में चित्रित है। सुहासिनी को मातृवत् आदर देनेवाले ब्राह्मण का चरित्र आदर्श युक्त है।

सारांश यह है कि उपन्यास में उपलब्ध चरित्र चित्रण आदर्शवादी है और इस उपन्यास को चरित्र प्रधान भी कहा जा सकता है। अंग्रेजों ने सुहासिवी से प्रसन्न होकर उसे 'रानी' की उपाधि देनी चाही। परंतु सुहासिनी उपाधि ग्रहण करने से सहमत नहीं हुई। उसने सोचा कि यदि कभी उसका पति देवी प्रसाद राजा बनेंगे तो वह भी रानी बनेगी, नहीं तो नहीं। यहाँ सुहासिनी उस पद को अस्वीकार करने का एकमात्र कारण यह है कि वह एक पति परायणा तथा उच्च आदर्शवादी पतिव्रता नारी है। अपने पति के सुख में ही वह अपने को सुखी पाती है।

लेखिका ने सीता, सावित्री आदि आदर्श भारतीय नारियों को दृष्टि में रखकर उसी के अनुरूप आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सुहासिनी को चित्रित करना ही लेखिका का प्रधान लक्ष्य रहा है। तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी इसमें प्रस्तुत है।

इस प्रकार पतिव्रता नारी का वर्णन, उसकी सहनशीलता की पराकाष्ठा, कष्ट-सहिष्णुता, साहस आदि विशिष्ट गुणों का उल्लेख करके सुहासिनी के रूप में तत्कालीन नारी समाज के सामने पतिव्रता नारी का आदर्श प्रस्तुत करना ही, लेखिका का मुख्य उद्देश्य दृष्टिगोचर होता है।

सरस्वती गुप्ता :

श्रीमती सरस्वती गुप्ता का 'राजकुमार' (सन् १८९८) ऐतिहासिक शैली में लिखित कल्पना-प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका

---

१. सुहासिनी—पृ. :।

ज्ञानलता, शिल्पी मणिराम की पुत्री है। आठ वर्ष की अवस्था में ही वह मातृ-वंचित होती है। परन्तु मणिराम उसे माता का अभाव महसूस होने नहीं देता और उसके लिए अच्छी शिक्षा-दीक्षा दिलाता है। एक बार उसी नगर के राजकुमार से ज्ञानलता की भेंट होती है। उन दोनों में वाद-विवाद छिड़ जाता हैं। राजकुमार गर्व के साथ प्रण करता हैं कि उससे विवाह कर उसका परित्याग कर देगा, तो इधर ज्ञानलता भी प्रत्युत्तर में प्रण करती है कि वह अपने पुत्र के द्वारा उसके नाकों चने चबवा देगी। अंत में दोनों ही अपनी प्रतिज्ञाओं में सफल होते हैं। राजकुमार, ज्ञानलता से क्षमा माँगता है और सहर्ष पुत्र को स्वीकार करता है। यह उपन्यास भी सुखांत है।

इस कथानक में मौलिकता का अभाव सा है। यह एक लोक–कथा पर आधारित कथावस्तु होने के कारण इसमें जहाँ एक ओर ऐतिहासिकता का अभाव है वहाँ दूसरी ओर काल्पनिक तत्व का आधिक्य है। इस कथा में रोचकता एवं विस्मयता की मात्रा, आदर्श की अपेक्षा अधिक है। क्योंकि माता की प्रतिज्ञा की पूर्ति केलिए ज्ञानलता के पुत्र को लेखिका ने झूठा, मक्कार तथा बेइमान के रूप में चित्रित कर, राज्य में आतंक मचाने तथा अनेक उत्पातपूर्ण घटनाओं का समावेश किया गया है। इसमें आज्ञाकारी आदर्श पुत्र का स्वरूप तो उभर आया है किंतु उस आदर्शवादी शैली के कारण चरित्रचित्रण कुछ नीरस पड गया है। कथानक में कुछ अस्वाभाविकता भी आ गयी है। पाठकों को जिज्ञासायुक्त एवं उत्तेजित करने केलिए लेखिका ने चमत्कारिक एवं विस्मयोत्पादक घटनाओं का समावेश किया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'राजकुमार' उपन्यास उतना सफल कृति नहीं मानी जा सकती। इसमें लेखिका ने पात्रों के हृदयगत भावों को उभारने की अपेक्षा, कथावस्तु एवं उद्देश्य की पुष्टि केलिए कई आदर्शवादी गुणों की प्रतिष्ठा की है। अतः पात्रों में कुछ आकस्मिक घटनाओं के कारण पात्रों के व्यवहार में भी अस्वाभाविकता परिलक्षित होती है। राजकुमार तथा ज्ञानलता की हृत्तँत्री से मधुर तान न झंकृत कर अहंभाव से प्रेरित, प्रण की पूर्ति के कर्कश स्वर को ही सुनाकर पात्रों के चरित्र के स्वाभाविक विकास की अपेक्षा उद्देश्य की पूर्ति पर ही अधिक ध्यान लेखिका देती हैं, ऐसा भी कहा जा सकता है।

उद्देश्य की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास मनोरंजन प्रधान माना जा सकता है। आदर्शवादिता की अपेक्षा लेखिका ने इसमें माँ की आज्ञा की पूर्ति

केलिए उसके पुत्र को झूठा, मक्कारी के रूप में चित्रित कर, चमत्कार तथा जिज्ञासा को बढाने की चेष्टा की है। प्रस्तुत उपन्यास में हृदयगत कोमलता की अपेक्षा बुद्धिगत विचार कौशल को ही अधिक महत्व दिया गया है।

प्रियंवदा देवी :–

श्रीमती प्रियंवदादेवी का 'लक्ष्मी' उपन्यास सन् १९०५ में रचा गया है। कथावस्तु की दृष्टि से इसमें आदर्श की स्थापना हुई है। इसमें तत्कालीन समाज में प्रचलित नारी जीवन से संबंधित सपत्नीक ईर्ष्या का चित्रण किया गया है। इसमें बहु विवाह प्रथा का खंडन स्पष्ट परिलक्षित होता है। नेपाल राज्य के निकटवर्ती ग्राम में अनाथ भाई–बहन रविदत्त और लक्ष्मी रहते हैं। वे गाँव की सेवा में ही अपना समय बिताते रहते हैं। इसी बीच नेपाल राज्य का सेनापति शमशेर, शिवनाथ के छद्म नाम से उस गाँव में आकर लक्ष्मी से गांधर्व विवाह करके, लौट आने का वचन देकर अकेला वापिस चला जाता है। बाद में रविदत्त को समाचार मिलता है कि वह सेनापति किसी धनाढ्य कन्या से विवाह करने वाला है। रविदत्त और लक्ष्मी उस विवाह को रोकने केलिए निश्चय कर वहाँ पहुँचते हैं। लेकिन लक्ष्मी के मन में प्रेम, दया, तथा क्षमा जैसे उदार वृत्तियों का उदय होता है। अतः भाई को भी प्रतिशोध की भावना से विरत करती है। फिर दोनों वहीं रहकर जनता की सेवा करने लगते हैं। सेनापति शमशेर की अनुपस्थिति में एक दिन जब उस की नव–व्याहिता पत्नी सावित्री छूत के रोग से पीडित है तो लक्ष्मी उसकी सेवा सुश्रूषा कर उसको स्वस्थ बनाती है। लेकिन अंत में स्वयं उस रोग का शिकार हो जाती है। शमशेर के लौटने के पश्चात् समस्त वृत्तांत को जानकर लक्ष्मी के प्रति किये गये अन्याय पर पश्चात्ताप करता है। लक्ष्मी मृत्यु शय्या पर पति को क्षमा कर देती है। प्रथम पत्नी की मृत्यु का खेद सहन न कर सकने के कारण शमशेर भी वहीं प्राण त्याग देता है। सावित्री, तब लक्ष्मी के नाम कई कूप, धर्मशालाओं तथा उपवनों के निर्माण करवा कर सौत के प्रति अपने मन में जो प्रेम भावना है व्यक्त करती है।

इस प्रकार समाज सेवा, प्रेम आदि प्रवृत्तियों के प्रचार से उपन्यास का सुखांत होता है। और इसमें सेवा, प्रेम, आदर्श प्रवृत्तियों के स्वर भी प्रति-ध्वनित होते हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास आदशवादी ही ठहरता है। इसमें स्त्री सुलभ क्षमाशीलता एवं उदारता का आदर्श रूप चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पुरुष पात्रों में मानवीय दुर्बलताओं का सहज चित्रण प्रस्तुत है। लक्ष्मी एक आदर्शनारी है। जब उसे यह विदित होता है कि उसके पति ने द्वितीय विवाह किया है तब भी वह पति को क्षमा कर देती है। और सौतेली डाह भी नहीं रखती। बीमारी की अवस्था में सौत सावित्री की सेवा सुश्रुषा करती है। सावित्री भी लक्ष्मी के समान एक आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत है। उस में भी नारी सुलभ सपत्नी ईर्ष्या नहीं है। और लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् धर्मशालाओं, कूप, उपवन आदि का निर्माण कर अपनी सहज प्रेम एवं सहृदयता का परिचय प्रस्तुत करती है।

शमशेर पहले स्वार्थी होने पर भी अंत में अपने प्राणों को त्यागकर एक आदर्शवादी पात्र के रूप में ही उभरता आया है।

लेखिका ने सावित्री द्वारा जन सेवा के लिए धर्मशालाओं तथा उपवनों का निर्माण करवाया है। उस समय बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। फलतः समाज में सपत्नीक ईर्ष्या जनित समस्याएं उत्पन्न हुई। इन्हें दूर करने के लिए लेखिका ने एक आदर्श को प्रस्तुत किया। इस आदर्श में बहु-बिवाह प्रथा का खंडन नहीं है, स्त्री को उदार एवं गंभीर बनने का उपदेशमात्र है।

उपन्यास की भूमिका से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। लेखिका के शब्दों में—"आजकल प्रायः इस भारतवर्ष में सौतिया-डाह इतना प्रचलित हो रहा है कि जिसका वर्णन करना मुझ तुच्छ-बुद्धि से कहां हो सकता है, स्त्री-जाति में विद्या का अभाव ही एक मात्र इसकी जड़ है। यदि हम अबलाएं विद्या रूपी भूषणों से सुसज्जित होवें तो क्या कभी स्वप्न में भी संभव है कि इस डाह रूपी अग्नि में हमारा तन, मन, धन स्वाहा होता रहे।"[1]

उपर्युक्त उक्ति से पता चलता है कि उस समय शिक्षा का प्रचार नहीं था और लेखिका का मख्य उद्देश्य यही रहा कि शिक्षा के माध्यम से ही अबला जाति का उद्धार हो सकता है, उसी के द्वारा स्त्रियाँ जीवन को तुच्छ बातों से नष्ट न कर आनन्दप्रद बनाने में सफल हो सकती हैं।

---

१) लक्ष्मी—भूमिका से उद्धृत

अन्त में लेखिका ने नैतिक आदर्शों के चित्रण की चेष्टा भी की। जैसे उपसंहार में लेखिका अपने प्रत्यक्ष कथन द्वारा यह स्पष्ट करती है--"लक्ष्मी की भांति ही अन्य बहनें भी अपने आचरण को शुद्ध करने की चेष्टा करें और विद्या ग्रहण कर परम धाम की भागी बनें।"

इस प्रकार तत्कालीन नारी समाज में सुधार लाने की ओर ही लेखिका ने अधिक ध्यान दिया है । और अपनी इस चेष्टा में कुछ हद तक सफल भी हुई हैं।

इसी लेखिका का एक अन्य उपन्यास है 'कलयुगी परिवार का एक दृश्य इस उपन्यास में शिवचंद्र, रामचंद्र, गोपालचंद्र और हरिश्चंद्र--चार भाइयों के संयुक्त परिवार के कलह की कथा है। इनमें से शिवचंद्र की पत्नी कांता को छोड़कर शेष तीनों भाइयों की पत्नियाँ कलह-प्रिय तथा विघटित-परिवार प्रिय है। नित्य झगड़ों से तंग आकर पिता सब पुत्रों को अलग करके केवल बड़े पुत्र को अपने साथ रखता है। कुछ दिनों के बाद अन्य पुत्रों ने भी अनुभव किया कि सम्मिलित परिवार में ही अधिक आनंद मिलता है। अंत में सब लोग मिलकर रहने लगे और ननन्द सुमित्रा के सदुपदेश को ग्रहण करके सब वधुयें भी मिलजुलकर रहने लगती हैं । इस प्रकार लेखिका संगठित-परिवारका समर्थन करती दिखाई देती है। प्रस्तुत उपन्यास २१ परिच्छेदों में बंटा है। प्रत्येक परिच्छेद के लिए अलग अलग नाम दिये गये हैं, जैसे--सांसारिक सुख, गोबर गणेश हो रहे हैं, भविष्य जीवन या नारायण कैसे होगा ? आदि।

इस कथानक में भी उपदेश की मात्रा अधिक है, इसमें चरित्र चित्रण भी उद्देश्य द्वारा नियंत्रित है।

प्रथम उपन्यास 'लक्ष्मी' का कथानक दूसरे उपन्यास की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक सुसंगठित है। इसमें चरित्रांकन भी सजीव एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है जब कि दूसरे उपन्यास का कथानक संयोजना और चरित्र-व्यंजना दोनों ही दृष्टियों से असफल है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में पात्र तथा चरित्र चित्रण की शैली दोनों कथावस्तु के अनुकूल हैं। रामचन्द्र, गोपालचन्द्र, हरिश्चंद्र तथा उनकी पत्नियाँ परिस्थियों से प्रेरित हैं। 'जिस प्रकार शिव-चंद्र पिता के गुणानुरूपी थे, वैसे ही आपकी पत्नी श्रीमती कांति, सद्गुण

संपन्न श्रेष्ठ स्वभावा थी, तिस पर शिवचंद्र ने बहन सुमित्रा के साथ खूब पढा-सुनाकर सोना और सुगंध का काम कर दिया था ।'[1]

सारांश यह है कि यह उपन्यास चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उसके पूर्व की रचनाओं से अधिक सफल एवं परिपक्व माना जा सकता है ।

'कलयुगी परिवार का एक दृष्य' में लेखिका ने हिंदू परिवार का सहज अनुभूति परक चित्र अंकित किया है । गृह कलह, ईर्ष्या-द्वेष, आदि पारिवारिक समस्याओं का जीवंत चित्रण है । लेखिका का मत है कि गृह-कलह का मूल कारण निरक्षरता तथा अज्ञान ही हैं । नारी वर्ग को शिक्षित करने की आवश्यकता पर लेखिका बहुत बल देती हैं । तथा लेखिका अपने उद्देश्य को स्पष्ट एवं प्रभावात्मक सिद्ध करने में सफल भी हुई हैं । अतः वस्तुपक्ष की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास सुंदर कृति माना जा सकता है ।

हेमंतकुमारी चौधरी :

श्रीमती हेमंनकुमारी चौधरी का 'आदर्श माता' कथावस्तु की दृष्टि से एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें आदर्शवाद का अधिक्य पाया जाता है । लाला रामनारायण कानपुर में अध्यापक हैं । वह एक आदर्श गृहस्थी है । संतान पालने में अपने उत्तरदायित्व को निभाने में पत्नी का बड़ा सहयोग दिया करता है । अतः उनकी संतान का मानसिक एवं शारीरिक दोनों का सम्यक विकास होने लगता है । पावंती की पड़ोसिन रामप्यायारी है जो धनवान है लेकिन उसके गृहस्थ जीवन में सुख-शांति का अभाव है । उसका पति सदा सुरा एवं सुंदरी के सांगत्य में समय व्यतीत करता है । इसी कारण रामप्यारी सदा अपनी सास तथा संतान को कोसती रहती है । फल यह हुआ कि उसकी संतान कुसंगति की शिकार बनी । उस परिवार की दुर्दशा पर पार्वती को अत्यधिक दुख होता है । पार्वती तथा रामनारायण के प्रयत्नों के फलस्वरूप रामप्यारी का परिवार सुधर जाता है । इस मुख्य कथा के साथ एक प्रासंगिक कथा भी निहित है । रामनारायण के घर उसकी चचेरी विधवा बहिन सत-प्यारी अपने दो पुत्रों और एक पुत्री के साथ रहती है । अज्ञानवश अपनी संतान को शिक्षित नहीं कर पाती है । उसका ज्येष्ठ पुत्र गुंडागर्दी में

---

१. कलयुगी परिवार का एक दृष्य–पृ. : १५-१६

मशहूर हो जाता है। धीरे-धीरे पार्वती के सदुपदेशों से सत्प्यारी अपने बच्चों को उत्तम शिक्षा दिलाती है। आजीविका केलिए रामनारायण अपने ही घर में, कन्या-शिक्षालय खोलता है। शिक्षालय में सत्प्यारी तथा पार्वती दोनों काम करती हैं। यह विद्यालय उन्नति के पथ पर अग्रसर होते-होते शासकीय विद्यालय बन जाता है। जिसकी मुख्य प्राध्यापिका सत्प्यारी बनती है।

इस प्रकार इस उपन्यास के अंतर्गत तीनों कहानियाँ उद्देश्य की पूर्ति में अधिकाधिक सहयोग देती हैं। इस उपन्यास में एक आदर्श माता का अपनी संतान के प्रति जिस कर्तव्य को निभाना है उसका विशद चित्रण हुआ है। पति की मृत्यु के उपरांत पत्नी को अधीर न होकर अपनी संतान के उज्जवल भविष्य के लिए स्वयं अर्थोपार्जन करने की शक्ति रखना आवश्यक है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका का उद्देश्य यही रहा है कि हर एक माँ बाप को अपनी संतान के प्रति संपूर्ण प्यार होना चाहिए जिससे वे शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकसित हो सकें।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से "आदर्शमाता" एक सफल उपन्यास माना जा सकता है। लेखिका ने चरित्र चित्रण तथा उद्देश्य दोनों ओर अधिक ध्यान दिया है। इस में लाला रामनारायण शिक्षित, सभ्य एवं आदर्श पुरुष हैं। उनके सुंदर व्यक्तित्व के प्रभाव से उसकी पत्नी का व्यक्तित्व भी विकसित होता है। वह एक समाज सुधारक है, फलस्वरूप वह रामप्यारी, उसके पति बिहारी बाबू सत्प्यारी आदि पात्रों के अवगुणों को दूर करके उनको भी आदर्श के पथ पर लाते हैं। चरित्र चित्रण मुख्यतः संवादों द्वारा हुआ है और कतिपय स्थलों में पात्रों के हृदयंगत भावधारा द्वारा चरित्र का विकास पाया जाता है। जैसे पार्वती के इस कथन द्वारा उसके पति के चरित्र का विकास पाया जाता है–"पार्वती ने थोडी ही देर में इस परिवार की यह शोचनीय अवस्था का सारा चित्र देख लिया और अपने मन में अपने पति को सराहने लगी कि धन्य है मेरा भाग्य कि मुझे ऐसे गुणी और प्रेमी पति मिलते हैं।[1]

भारत में एक आदर्श माता के लिये आवश्यक शिक्षा-दीक्षा की–रामप्यारी पात्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

---

१) आदर्श माता – पृ. : ८७

'आदर्श माता' एक सोद्देश्य उपन्यास माना जा सकता है। उपदेशात्मक दीर्घ संवादों के द्वारा तत्कालीन कुरीतियों की अभिव्यक्ति हुई है। उस समय स्त्रियों की निरक्षरता, बाल-विवाह के दुष्परिणामों के साथ-साथ पुरुषों की गुलामी के कारण स्त्रियों का व्यक्तित्व प्राय: अविकसित रहने के तथ्य पर लेखिका ने विशेष ध्यान दिया है। घर की चाहरदीवारी में रहने के कारण स्त्रियां कोई महत्वपूर्ण काम नहीं कर पाती हैं, जिसके कारण अशिक्षित स्त्रियों की संतान भी अशिक्षित व अज्ञान में ही रहती है। इसी विषय पर लाला रामनारायण का यह कथन द्रष्टव्य है– "हमारे देश के अधिकांश शिक्षित युवक भी जो नीति-ज्ञान शून्य होते हैं, सत्य, असत्य का विचार नहीं करते, जरा से लोभ के वश होकर झट झूठी गवाही दे देते हैं, और अपनी माता, बहिन और धर्मपत्नी की मर्यादा नहीं करते, इसका कारण क्या है? "[1] इसी प्रश्न के उत्तर में लेखिका एक स्थान पर कहती हैं कि "स्त्रियों में शिक्षा का अभाव और परिणाम स्वरूप संतान का पतनोन्मुख होना।"[2]

उस समय विधवा की दशा अत्यंत दयनीय थी। इस समस्या का भी लेखिका ने उपन्यास में विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। अनमेल विवाह के कारण समाज में विधवाओं का बाहुल्य था और आर्थिक दृष्टि से भी उनकी दशा दयनीय थी। यदि वे स्वयं इस दिशा में कुछ करने का प्रयास करने लगतीं तो समाज द्वारा वे बहिष्कृत की जाती थीं। लेखिका ने इसी समस्या को दृष्टि में रखकर इस प्रकार सुझाव दिया है। इसी प्रस्ताव के निमित्त पार्वती रामनारायण से कहती है कि सत्प्यारी द्वारा स्कूल चलाना अच्छा है तब रामनारायण लोकनिंदा के डर के कारण इस प्रस्ताव को अस्वीकार करता है। तब पार्वती कहती है कि–"लोग तो ऐसी विधवाओं की अवस्था को देखकर भी निष्ठुर की न्याई अंधभाव से रीति का अनुसरण कर रहे हैं। देखो, एक दिन हमारे यहां एक ईसाई मिशनरी मेम आई थीं उन्होंने ही सत्प्यारी को देखकर मुझे कहा, तुम लोग विधवाओं को निरर्थक बैठाकर क्यों उनके दुख को बढ़ाते हो, इससे तो उनको अर्थकारी कोई काम सिखा दो जिससे वह अपना और पुत्र-कन्याओं का भी निर्वाह कर सकें।"[3]

इस उद्धरण से विदित होता है कि लेखिका समाज की कुरीतियों से अच्छी तरह परिचित हैं और उन्हें दूर करने का उपाय भी सुझाती हैं।

१, २. ३) आदर्श माता–पृष्ठ : १०-११, ७१, १४४

उपन्यास का मुख्य उद्देश्य समाज-सुधार है । लेखिका का मत यही है कि स्त्री-शिक्षा तथा आदर्श माता के द्वारा ही समाज का, तदनुरूप देश का कल्याण सम्भव है । बच्चों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए माता का शिक्षित होना अनिवार्य है । लेखिका का उद्देश्य यह भी रहा कि संतान को सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए पति का सहयोग भी अनिवार्य है । इसी महान आदर्श की स्थापना कथावस्तु, चरित्र,चित्रण तथा उद्देश्य तीनों के लिए श्रृंखला के रूप में काम करती है ।

यशोदादेवी :–

कथावस्तु की दृष्टि से श्रीमती यशोदा देवी कृत 'वीरपत्नी' उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इसका रचनाकाल सन् १९०९ है । 'पृथ्वीराज रासो जयचंद के प्रख्यात जीवन चरित इसका कथ्य है । पृथ्वीराज और जयचंद के वैमनस्य तथा संयोगिता के साथ पृथ्वीराज का विवाह आदि घटनायें इतिहासानुसार वर्णित हैं । इसके साथ साथ कथावस्तु में लेखिका की मौलिक उद्भावनाओं के लिए भी प्रश्रय मिला है । उदाहरण केलिए पृथ्वीराज रासो के सखा चंदवरदाई और पृथ्वीराज के मुख्य सभासदों–काका, कान्ह, कैमास आदि का उल्लेख हमें इतिहास में नहीं मिलता । पृथ्वीराज रासो की मृत्यु के पश्चात् संयोगिता ने गोरी और जयचंद की सेनाओं को परास्त कर देने का वर्णन भी लेखिका की मौलिक उद्भावना ही है । जिस से उपन्यास के रचना के प्रभाव एवं उद्देश्य में चार चाँद लग गये हैं । क्योंकि उपर्युक्त घटना के द्वारा एक वीरांगना के आदर्श रूप के प्रस्तुत करने में लेखिका सफल हुई ।

उपन्यास में पृथ्वीराज रासो और संयोगिता की कथा मुख्य है तथा मुहम्मद गोरी का आक्रमण, जयचंद की ईर्ष्या संबंधी प्रसंग गौण हैं, जो मूल कथा के विकास में अवश्य योग देते हैं । 'वीरपत्नी' शीर्षक भी सार्थक बन पडा है । कथा की घटनायें अधिक होने पर भी रचना में विशृंखलता एवं अस्वाभाविकता नहीं उभरती । कथा–योजना में भी लेखिका पूर्ण सफल सिद्ध हुई हैं । लेखिका की मौलिक कल्पना इतिहास के कंकाल में चेतना भरकर कृति को अत्यंत सजीव बनाने में सहायक हुई ।

आलोच्य उपन्यास के पात्र पृथ्वीराज, जयचन्द, संयोगिता तथा मुहम्मद गौरी आदि इतिहास प्रसिद्ध पात्र हैं तथा उनकी चारित्रिक विशेषतायें

भी इतिहास सम्मत सिद्ध होती हैं । पृथ्वीराज की युद्ध-वीरता, गोरी के प्रति उदारता, जयचन्द की पृथ्वीराज के प्रति ईर्ष्या, मुहम्मद गोरी की कृतघ्नता तथा संयोगिता का पृथ्वीराज के प्रति अनन्य प्रेम इत्यादि विशेषतायें प्रमुख रूप से वर्णित हैं। पृथ्वीराज की मृत्यु के उपरांत संयोगिता द्वारा सैन्य-संचालन और युद्ध पराक्रम के वर्णनों के द्वारा उसके उन्नत चरित्र को प्रकट करने का स्तुत्य प्रयास भी किया गया है।

पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को प्रकट करने के लिए लेखिका ने तुलनात्मक प्रणाली को भी अपनाया है। इस उपन्यास में संयोगिता को प्रेम की पुतली के रूप में ही न चित्रित कर उसमें वीरांगना एवं देवांगना जैसी विशेषताओं को भी दर्शाया है।[1] संयोगिता इस भूतल में रहने वाली देवांगना है।

उद्देश्य की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में संयोगिता को वीरांगना के रूप में चित्रित करना लेखिका का प्रमुख लक्ष्य रहा है। लेखिका ने भूमिका में स्पष्ट किया है कि इसकी रचना स्त्री-शिक्षा के प्रोत्साहनार्थ ही हुई है। पतिव्रत्य पर भी लेखिका ने अधिक बल दिया। संयोगिता के दृढ़ संकल्प, पतिपरायणता, पति-प्रेम के सम्मुख पिता की उपेक्षा, पति-मृत्यु के उपरांत शत्रुओं से प्रतिशोध लेना और अंत में पति की चिता में आहत होना आदि के द्वारा संयोगिता का पतिव्रत्य स्पष्ट किया गया है। लेखिका की देन इसी में है कि आपने ऐतिहासिक उपन्यास रचकर अन्य महिला लेखिकाओं का ध्यान इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों की ओर आकर्षित किया।

ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे :

श्रीमती ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे का 'सौंदर्यकुमारी' एक सामाजिक लघु-उपन्यास है। इसकी रचना सन् १९१४ में हुई। इस उपन्यास में एक ऐसे घर का चित्रण है जिस में उस घर का मालिक गंगाराम एक जुआरी है। पति के इस व्यसन से उसकी पत्नी सुखरानी सुख-शांति से वंचित होती है और इसी चिंता के कारण मर जाती है। उसकी बड़ी लड़की सौंदर्यकुमारी, दूसरा लड़का सूर्य तथा तीसरी लड़की चंद्रा तीनों माताहीन बन जाते हैं। गंगाराम की पत्नी की मृत्यु के उपरांत भी पहले जैसा ही मदिरा एवं जुआ में

---

१. वीरपत्नी—पृ. : ९

व्यस्त रहने लगा। बड़ी लड़की अवस्था की दृष्टि से छोटी होने पर भी गृहस्थ-भार को सफलता से संभाल लेती है। विवाह के पश्चात् आदर्श पत्नी एवं बहू के रूप में प्रसिद्ध होती है। उसका पति शिवचंद्र सुगुण संपन्न तथा सेवा परायण है। लेकिन एक दिन दुर्भाग्यवश महामारी के कारण मर जाता है। उधर व्यसनी पिता भी चल बसता है। सौंदर्यकुमारी अत्यन्त धैर्य पूर्वक इस आघातों को सहन कर अपने भाई की शिक्षा के प्रति यथेष्ट ध्यान देती है। सास-ससुर की मृत्यु के पश्चात् सौंदर्यकुमारी सारी संपत्ति की अधिकारिणी बन जाती है। इस संपत्ति का सदुपयोग करने वह एक गोशाला का निर्माण करती है और अपने भाई-बहन को उसके प्रबंधक के रूप में नियुक्तकर स्वयं तीर्थाटन केलिए चली जाती है। मार्ग में उसकी भेंट एक पाखंडी साधु से होती है। तुरंत वह उस साधु की कुटिया में आग लगाकर कुशलतापूर्वक उसकी चंगुल से बच निकलती है। आगे चलकर उसकी भेंट पुष्पा नामक रोगिणी से होती है। उसे अपनी सेवाओं से स्वास्थ्य बनाती है फिर दोनों साथ रहने लगती है। अल्पावधि में ही पुष्पा चल बसती है। इसी चिंता में एक दिन गंगातट पर सौंदर्यकुमारी भी प्राण त्याग देती है।

इस प्रकार यह आदर्श प्रधान सामाजिक उपन्यास है। प्रमुख पात्र सौंदर्यकुमारी है। उस के नाम पर ही इसका नामकरण हुआ है। कथानक की घटनायें भी सौन्दर्यकुमारी के चरित्र-विकास में सहायक रही हैं।

सौन्दर्यकुमारी आज्ञाकारिणी पुत्री, कर्तव्यनिष्ठ बहिन, गुरुजनों की श्रद्धालु शिष्या, लोकोपकारिणी, धर्म परायणा, आस्तिक आदि रूपों में चित्रित की गई है। उसका पति एक आदर्श पुरुष है लेकिन अल्पायु में ही स्वर्गस्थ हो जाता है। इस घटना के पश्चात् ही नायिका के चरित्र में विविधता, उत्कर्ष इत्यादि गुणों का विकास उपन्यास में संपन्न हुआ है। गंगाराम के अतिरिक्त शेष सभी पात्रों का व्यक्तित्व आदर्शयुक्त हैं।

माता की मृत्यु के पश्चात् अल्पायु में ही सौन्दर्यकुमारी, भाई-बहिनों की देखभाल का भार स्वयं वहन करती है। पति, सास, ससुर, तथा पिता की मृत्यु आदि अनेक विषम परिस्थियाँ उसके जीवन में उपस्थित होती हैं। किंतु वह साहस तथा धैर्य के साथ परिस्थितियों का सामना करती है और अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाती है।

पात्रों के संवादों तथा उनके व्यवहारों द्वारा चरित्र-चित्र का विकास पाया जाता है जैसे 'शिवचंद्र उसकी करुणामयी बात सुनकर उसके निकट गये, और उसी जैंटिलमेन पोशाक में उस बूढ़े आदमी को गोद में लेकर टीले से नीचे उतारा और उसकी लाठी पकड़ अपने घर की ओर चल दिये। रास्ते में मनुष्य उसकी हँसी करते थे, कि देखो कोढी को पकड लिये जा रहे हैं। वह उस बूढे आदमी को अपने घर ले गये, और साबुन से उसके घाव धोकर दवाई लगाई, तत्पश्चात् आप भोजन करके अपने दफ्तर गये। अन्य जो दयारहित मनुष्य थे उनकी इस बात पर हँसे परंतु उनके हँसने का उस करुणामय हृदय पर कुछ भी प्रभाव न हुआ।'[1] उपर्युक्त उद्धरण के द्वारा शिवचंद्र के आदर्श गुणों का परिचय मिलता है उसके दीन वत्सल, आदर्श-चरित्र की प्रशंसनीय झाँकी मिलती है।

लेखिका ने अपनी इस कृति में उद्देश्य के स्पष्टीकरण के लिये चरित्र चित्रण का सहारा लिया है।

'सौन्दर्य कुमारी' उपन्यास में तत्कालीन नारी की दुर्दशा का चित्रण करना ही लेखिका का मुख्य उद्देश्य रहा है। उस युग में नारी का प्रमुख आदर्श पति की चरण-सेविका, सहचारिणी तथा अनुचरणी होने में ही अधिक था। आलोच्य रचना में सौन्दर्यकुमारी का चरित्र उक्त आदर्शों के लिए चित्रित किया गया है। लेखिका के शब्दों में—

"सौंदर्य के इतनी चतुर और वैभवशाली होने पर भी जरा अभिमान कभी छूकर भी नहीं निकला था। आप दासियों के होते हुए भी घर के छोटे छोटे कामों को स्वयं ही करती थी। यहाँ तक कि कभी कभी आप स्वयं पिसने भी लगती थी। जब शिवचंद्र बाहर से आते तो आप जूते उतारने लगती थीं।"[2]

इस उद्धरण से नारी की दयनीयता का बोध होता है। उस समय के आदर्श को दृष्टि में रखकर लेखिका ने उस पात्र का चित्रण किया है।

इस उपन्यास का अन्य उद्देश्य स्त्रियों को धैर्य से परिस्थितियों का सामना करने की आवश्यकता तथा धर्म के महत्व से अवगत कराना है। भूमिका

१. सौन्दर्य कुमारी – पृ.: ५६, ५७, ५८

में स्वयं लेखिका अपना उद्देश्य यों प्रकट करती हैं– "प्यारी बहिनो ! स्त्री सुधार केलिए बडे बडे विद्वानों और सज्जनों ने बहुत सी पुस्तकें रची हैं, उनमें मेरी इस तुच्छ पुस्तक की क्या गणना हो सकती है ? आज भारत वर्ष की कन्याओं और स्त्रियों में अधैर्य देखकर मुझे इस प्राचीन वृत्तांत को कहने का साहस हुआ।"[1]

लेखिका ने केवल नारी को ही नहीं बल्कि पुरुष वर्ग के प्रति भी उन्होंने उपदेश दिया. जैसे–"पाठकगण। जिस तरह स्त्रियाँ पतिव्रता होनी चाहिए, इसी तरह पुरुषों को भी नारीव्रत होना चाहिए। पुरुष चाहे कैसा ही चतुर हो परंतु जब वह अपनी स्त्री को प्रसन्न न कर सके, तो उसकी चतुराई की बडाई होना कठिन है।"[2]

स्त्री–शिक्षा के महत्व पर भी लेखिका प्रकाश डालती है – "यह जो कुछ भी आपने वर्णन किया यह सब विद्या का प्रकाश है। जिसके पास विद्या नहीं है वह धर्माधिकारी नहीं हो सकता। संसार एक गाड़ी के पहिये की भाँति है। जिस पर हम सब बैठे हुए हैं। पहिए के चलने के कारण कभी नीचे, कभी ऊपर हो जाते हैं, यदि देश के हित के लिए परिश्रम किया जाय तो कभी निष्फल नहीं होगा।"[3]

उपर्युक्त उपदेश के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लेखिका ने आदर्शवादी शैली को अपनाते हुए भी यत्र–तत्र शिक्षा के महत्व के संबंध में आवश्यक उपदेशों को बडी सूझ–बूझ के साथ प्रस्तुत किया है। लेखिका के ये विचार आज भी अनुसरणीय हैं। सारांश यह है कि आलोच्य उपन्यास समाज सुधार एवं नारी उद्धार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कृति है।

रुक्मिणी देवी :–

श्रीमती रुक्मिणीदेवी का 'मेम और साहब' उपन्यास एक हास्य–व्यंग्य-पूर्ण उपन्यास है। इसका रचनाकाल सन् १९१९ है। इस उपन्यास में पाश्चात्य सभ्यता की खिल्ली उडाते हुए भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के महत्व का

---

१. सौंदर्य कुमारी–पृष्ठ : १ (भूमिका)
२. सौंदर्य कुमारी–पृष्ठ : ५०–५१
३. सौंदर्य कुमारी–पृष्ठ : ८७

प्रतिपादन किया गया हैं। कथा के नायक नारायण स्वरूप अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर उसी सभ्यता के रंग में रंग जाते हैं। उन्हें भारतीय सभ्यता में कोई विशेषता दिखाई नहीं देती। वे एक 'सौशल रिफार्म कमेटी' के सदस्य हैं। पर्दा-प्रथा के कट्टर विरोधी और स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्षपाती हैं। एक बार कमेटी में सब के सामने वे प्रतिज्ञा करते हैं कि वे अपनी पत्नी सुशीला को स्वतंत्रता प्रदान करके. एक प्रथम दर्जे के समाज-सुधारक साबित कर मेडल प्राप्त करेंगे। इसी प्रतिज्ञा-पालन केलिए वे अपनी पत्नी को समझा-बुझाकर मेम की पोशाक में थियेटर आने का वादा लेते हैं। लेकिन किसी आवश्यक कार्यों के कारण नारायण स्वरूप को वहाँ पहुंचने में विलंब होता है। गाडी में थियेटर पहुँचकर वहाँ अपने पति को न पाकर दुखी मन से सुशीला घर लौट आती है। उधर साहब पत्नी की खोज में भटकते फिरते हैं। घर पहुँचने पर उन्हें सुशीला तो मिल गई किंतु परिवार के अन्य सदस्य उनका खूब परिहास करते हैं। अगले ही दिन वे कमेटी से त्याग पत्र देकर तब से भारतीय संस्कृति के उन्नायक बन जाते हैं।

संपूर्ण कथानक में केवल एक ही घटना और एक ही उद्देश्य है। और उसी उद्देश्य के स्पष्टीकरण केलिए अन्य प्रसंग सहायक होते हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास साधारण प्रतीत होने पर भी उद्देश्य की दृष्टि से महान है। लेखिका का ध्यान चरित्र-चित्रण की अपेक्षा लक्ष्य की ओर रहा है। नारायण स्वरूप, उनकी पत्नी सुशीला, परिवार के अन्य सदस्य तथा रिफार्म कमेटी के कुछ अन्य सदस्य, आदि सभी पात्रों पर आवश्यकतानुसार लेखिका ने प्रकाश डाला हैं।

आलोच्य उपन्यास में चरित्र चित्रण की अपेक्षा घटनाओं को ही अधिक महत्व दिया गया हैं। लेखिका ही स्वयं यत्र तत्र पात्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डालती है जैसे नारायण स्वरूप का चरित्र चित्रण निम्नांकित उद्धरण से पता चलता हैं - "नारायण स्वरूप सोशल रिफार्म कमेटी में परदे की रस्म उठा देने और स्त्रियों को स्वतंत्रता देने के प्रस्ताव के पक्षपातियों में से थे और उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, पहले मैं ही अपने घर में से परदे की रस्म को उठा दूंगा और अपनी स्त्री सुशीला को स्वतंत्रता प्रदान कर रिफार्म में अगुवा बनूंगा और मेडिल प्राप्त करूँगा।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से यह विदित होता है कि

---

१. मेम और साहब-पृष्ठ : १

रचना में चरित्र चित्रण की शैली प्रभावात्मक नहीं है और जहाँ चरित्र का विकास प्रस्तुत है वह भी उद्देश्य को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही हुआ है।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका का उद्देश्य यही रहा कि भारतीयों को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का गौरव करना चाहिए। पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का अंधानुकरण करना वांछनीय नहीं है। इसी उद्देश्य को प्रतिपादित करने केलिए हास्य-व्यंग्य शैली के माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता का खंडन एवं भारतीय संस्कृति का मंडन रचना में सफलतापूर्वक किया गया है।

हुकमदेवी गुप्ता –

श्रीमती हुकमदेवी गुप्ता का 'गूढ भाव प्रकाश' एक सामाजिक उपन्यास है। इसकी रचना सन् १९१९ में हुई। लेखिका ने उपन्यास के मुखपृष्ठ पर ही यह स्पष्ट किया है कि इस उपन्यास में ब्रह्मचर्य का महत्व, गर्भादान संस्कार की महिमा, आश्रमों का नियम पूर्वक पालन, वर्तमान वैवाहिक अत्याचारों से हानियाँ, अनमेल विवाह के दोष, स्त्री जाति की दयनीय स्थिति, और उससे मुक्त होने का उपाय, सच्ची मित्रता आदि पर प्रकाश डाला गया है। इससे यह स्पष्ट है कि यह रचना उपदेश प्रधान है। अपने मंतव्य के अनुरुप ही लेखिका ने कथा नायिका सुशीला को सुशील व्यक्तित्व वाली के रूपमें चित्रित किया है।

इस रचना का कथासार इस प्रकार है—माता पिता अपनी पुत्री सुशीला का ब्याह सत्यप्रकाश से कराते हैं। एक बार रेल यात्रा में सुशीला पति से बिछुड़ जाती है। इस बीच सुशीला एक कामुक युवक से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए उसे तलवार के घाट उतारती है। सत्यप्रकाश भी सन्यासी बनकर पत्नीं की तलाश में निकल पड़ता है। सुशीला बिरह व्यथा के कारण मानसिक रोग से पीढ़ित होकर मर जाती है। जब सत्यप्रकाश को सुशीला की मृत्यु का समाचार मिलता है तो पुनर्विवाह की बात छेड़ी जाती है जिसे सत्यप्रकाश ठुकरा देता है। इस प्रकार अनेक घटनाओं के द्वारा सत्य-प्रकाश एवं सुशीला को आदर्श पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। विभिन्न घटनाओं के वर्णन के परिप्रेक्ष्य में लेखिका ने विवाह आदि बातों का यथोचित वर्णन किया है। यत्र तत्र रामायण, महाभारत आदि के प्रसंग तथा धर्म ग्रंथों से कुछ श्लोकों को अपने विचारों की पुष्टि के लिए लेखिका ने इसमें उद्धृत किया है।

'गूढ़ भाव प्रकाश' एक आदर्शवादी उपन्यास है। विद्या, बुद्धि, पति-सेवा-भाव, संयम, सहनशीलता, सतीत्व पर दुख कातरता, परोपकार आदि आदर्श गुणों से उपन्यास की नायिका सुशीला युक्त है, तथा उसके पति में भी सभी आदर्शयुक्त गुण विद्यमान हैं। केवल आदर्श को प्रस्तुत करने के निमित्त ही इन पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है। और इस प्रयत्न में लेखिका सफल भी हुई है। तात्पर्य यह है कि आलोच्य उपन्यास में चरित्र चित्रण की शैली कथानक के विकास एवं उद्देश्य के स्पष्टीकरण में सहायक होती है न कि पात्रगण विशेषताओं को उभारने में।

इस उपन्यास में समकालीन सामाजिक कुरीतियों का चित्रण पाया जाता है। जैसे माता-पिता द्वारा लोभवश कन्या का विधुर से विवाह करने का विचार, स्त्री-सम्बन्धी आचार-विचारों में रूढ़िवादिता, आश्रम निर्वाह में अव्यवस्था, पुरुषों में एक पत्नीव्रत तथा संयम का अभाव तथा स्त्री जाति के प्रति उनके दुर्व्यवहार आदि को दृष्टि में रखकर उनके सम्बन्ध में लेखिका ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखिका ने सशक्त दीर्घ एवं उपदेशात्मक संवाद शैली का आश्रय ग्रहण किया है।

उपन्यास के अन्त में समाज सुधार सम्बन्धी विभिन्न उपदेश दिये गये हैं और 'कन्या हितकारी महासभा' की स्थापना पर बल देकर इस कार्य में समाज और सरकार के सहयोग की आवश्यकता को माना गया है।

निष्कर्ष यह है कि यह उपन्यास समाज-सुधार की दिशा में प्रारंभ कालीन उपन्यास साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

लीलावती देवी :-

श्रीमती लीलावती देवी ने दो पौराणिक उपन्यास 'सती दमयंती' तथा 'सती सावित्री' की रचना की है।

'सती दमयंती' उपन्यास में विदर्भ देश की राजकुमारी दमयंती के बाल्यकाल का वर्णन, नल के प्रति प्रेम भाव का वर्णन, स्वयंवर में देवताओं द्वारा विघ्न डाले जाने पर भी नल को पति के रूप में प्राप्त करने की घटना, देवताओं के प्रभाव से नल की बुद्धि-भ्रष्ट होकर जुए में राज्य हार जाना, पत्नी को वन में अकेली छोड़कर राजा ऋतुपर्ण के यहां सारथी बनने जाना'

विरहिणी दमयंती अपनी बुद्धिकुशलता के द्वारा पति को पुनः प्राप्त करना। कलि का कोप शाँत होने पर नल द्वारा पुनः राज्य लाभ आदि घटनायें पुराण सम्मत प्रतीत होती हैं। लेखिका ने दमयंती के प्रेम, सतीत्व, बुद्धि-कौशल, सहनशीलता आदि गुणों का सुन्दर चित्रण किया है।

इस प्रकार सरस और सरल शैली में उपन्यास को प्रस्तुत कर साधारण पाठिकाओं के लिए एक विशिष्ट पौराणिक कथा-प्रसंग में उपलब्ध कराने का लेखिका ने स्तुत्य प्रयत्न किया है।

लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में दमयंती पात्र में पति-प्रेम, सतीत्व आदि गुणों का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। चरित्र चित्रण में सजीवता एवं रोचकता लाने के लिए सारगर्भित संवादों का समावेश किया है।

आलोच्य उपन्यास में, पौराणिक पात्रों के माध्यम से कन्याओं के चरित्र सुधार को दृष्टि में रखकर ही यह उपन्यास रचा गया है, जिसे लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है।[1]

सारांश यह है कि उक्त रचना में चरित्र चित्रण, समसामयिक परिस्थितियों के अनुरुप प्रसंगों की व्याख्या, संवाद आदि की दृष्टि से साधारण कोटि का उपन्यास ही माना जा सकता है।

'सती सावित्री'

उपन्यास में भद्राधिप अश्वपति की पुत्री सावित्री की सतीत्व महिमा का चित्रण किया गया है। सावित्री के जन्म से लेकर सती का महात्म्य तक सात परिच्छेदों में विभक्त है। इस में सावित्री के जीवन की विविध घटनाओं तथा पात्रों के कार्यकलापों को पौराणिक कथानक के आधार पर चित्रित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में सावित्री के जीवन की विविध घटनाओं तथा पात्रों के कार्यकलापों को पौराणिक कथानक के आधार पर चित्रित किया गया है। इस में सावित्री के बुद्धि कौशल, तर्क पटुता, धर्म परायणता, पति-प्रेम आदि गुणों का सुंदर चित्रण किया गया है।

१, सती दमयंती—पृ. : ६९

आलोच्य उपन्यास के उद्देश्य के संबंध में लेखिका ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि – 'अंत में हम परमात्मा से यही प्रार्थना करते हुए तुम से विदा होते हैं कि वह फिर भी ऐसी सतियों से हमारे देश को भर दे और सावित्री की यह कथा पढ़नेवाली प्रत्येक बालिका और युवती उसके आदर्श को ग्रहण करने में समर्थ हो ।'[१]

सारांश यह है कि लीलावती देवी का यह उपन्यास भी प्रथम उपन्यास भी प्रथम उपन्यास के समान चरित्र चित्रण की दृष्टि से विशिष्ट नहीं है ।

उषादेवी मित्रा :

श्रीमती उषा देवी मित्रा के 'वैचन का मोल', 'पिया', 'जीवन की मुस्कान' तथा 'पथचारी' स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यास हैं । लेखिका ने सभी उपन्यासों में नारी को संघर्षशील परिस्थितियों में प्रस्तुत किया है ।

'वचन का मोल' :

उपन्यास में नायिका कजरी के द्वारा वचन पालन की दृढ़ता का चित्रण मिलता है । कजरी के पिता बाटीन पाश्चात्य सभ्यता में पले हुए हैं । लेकिन माता प्रतिमा भारतोय सभ्यता एवं संस्कृति की प्रतिमूर्ति है । प्रतिमा अपने सद्-विचारों से ही पति को अपने विचारों के अनुकूल मोड़ लेती है । इन्हीं के संरक्षण तथा पालन पोषण में कजरी का व्यक्तित्व, एक सेवा परायणा, देश भक्त, कर्मठ एवं कर्तव्य-निष्ठा से ओत-प्रोत होती हैं । सतीश सरोज आदि युवक उस से विवाह करने के लिए लालायित होते हैं, लेकिन कजरी का मन इन के प्रति आकृष्ट नहीं होता है । वह विनय को पति के रूप में चाहती है लेकिन दुर्भाग्यवश सरोज ने ईर्ष्यावश मरते समय उस से ब्रह्मचारिणी रहने का वचन लेता है । दृढ़ प्रतिज्ञा कारिणी कजरी मानसिक वेदना को सहकर भी, अंत तक अपनी प्रतिज्ञा का पालन करती है । इस में एक प्रासंगिक कथा भी निहित है । नीरज की पत्नी नीरोजा तथा पुत्री मनिका, धन दौलत को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं । मनिका सरोज को चाहती है । लेकिन सरोज धन दौलत एवं कजरी की उपेक्षा कर कजरी के प्रति आकृष्ट होता है । तब मनिका का प्यार विनय की ओर बढ़ता है और विनय को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल होती है । इसी अवधि में

१. सती सावित्री–पृ.: ७२

विनय को छूत की बीमारी लग जाती है जिस से मनिका उस रोग से डरकर विनय से दूर हो जाती है। लेकिन सेवा परायणा कज़री विनय की सेवा सुश्रूषा कर उस को स्वस्थ करती है। तभी विनय कज़री के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है लेकिन कज़री मन में इच्छा रखती हुई भी–प्रतिज्ञा पालन के लिए विवश होकर विनय को अस्वीकार कर देती है। विनय निराश होकर मनिका से व्याह कर लेता है। लेकिन उसका वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं होता। बाद में विनय को कज़री के अविवाहित रहने का कारण पता चलता है, जिस से वह और भी चिंतित हो जाता है। कज़री के पास जाकर वह वचन को तोड़ने केलिए कहता है लेकिन प्रतिज्ञा पर दृढ़ आस्था रखनेवाली कज़री, विनय की बातों की उपेक्षा करती है।

उपन्यास के अंत तक भारतीय संस्कृति वचन की दृढता तथा देशभक्त आदि को विशेष गौरव प्रदान किया गया है।

आलोच्य उपन्यास में दो प्रकार के पात्र हैं – एक वे जो भारतीय संस्कृति के पोषक हैं और दूसरे वे जो पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुयायी हैं। प्रतिमा, कजरी, सरस्वती, निखिल, सरोज आदि प्रथम श्रेणी के पात्र हैं जब कि बारीन, नीरोजा, नीरेन, मनिका, विनय आदि द्वितीय श्रेणी के पात्र हैं। इनमें से भी नीरोजा और मनिका को छोडकर अन्य सभी पात्र हृदय में भारतीय आदर्शों को गौरव प्रदान करने वाले हैं। लेखिका ने वर्गगत विशेषताओं के अतिरिक्त उक्त पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं का चित्रण किया है। उपन्यास का केंद्र कजरी है। कजरी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली है कि ढंभी विनय निखिल की झगडालू पत्नी मीना, स्वार्थी मनिका आदि पात्रों के स्वभाव में भी परिवर्तन आ जाता है। कजरी की निस्वार्थ सेवा से जब विनय स्वस्थ होता है तब विनय के द्वारा कही गयी ये बातें उक्त विचार के प्रभाव में सिद्ध होते हैं – "जिस से कभी मनि की समानता न हुई थी, छोटे छोटे विषयों पर परिहास एवं व्यंग्य ही चलते थे, जिसके पिता के मरने के बाद भी खबर लेना अनावश्यक समझा गया था, जिसे लेकर मनि के साथ सदा परिहास ही हुआ करता था, आज ऐसे दुर्दिन में सर्वप्रथम वही आयी।"[1]

लेखिका ने कजरी का चरित्र आदर्शवादी स्त्री के रूप में चित्रित किया है। नारी सुलभ दुर्बलतायें उसमें नहीं पायीं जातीं। जिससे उसके चरित्र के विकास में कुछ अस्वाभाविकता आ गई है। यतीश, निखिल, सरस्वती आदि अन्य पात्रों के माध्यम से भी कजरी का आदर्शवादी चरित्र प्रस्तुत होता है।

उसको आदर्श नारी के रूप में चित्रित करने के निमित्त ही लेखिका ने उसे इतना गौरव दिया कि वह सरोज से प्रेम नहीं करती हुई भी उसकी मृत्यु के समय उसे खुश करने केलिए उससे वादा करती है कि वह आजन्म ब्रह्मचारिणी बनकर रहेगी। इसी वचन का पालन करने के लिए विनय के द्वारा विवाह का प्रस्ताव रखे जाने पर मन में इच्छा रखती हुई भी तिरस्कार कर देती है। मनिका से विनय का जब वैवाहिक जीवन सुखी नहीं हो पाता तब पुनः विनय कजरी से विवाह करना चाहता है। तब कजरी कहती है कि–'जो नारी वचन का मोल नहीं दे सकती है, जो स्त्री किसी की मरणसेज की सौगंध को अपने सुख-आराम के आगे बलि दे सकती है, क्या वह भी सह-धर्मिणी कहलाने की स्पर्धा रख सकती है।'[1] इस प्रकार कजरी के आदर्श रूप को मुखरित करना ही लेखिका का लक्ष्य रहा है ऐसा प्रतीत होता है।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका का उद्देश्य स्वदेशी आँदोलन तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के साथ साथ भारतीय संस्कृति का गौरव गान करना रहा है। इसी उद्देश्य की पुष्टि के लिए कजरी और मनिका का तुलनात्मक रूप से चित्रण भी किया है। प्रतिभा ने कजरी के घर के काम-काज के साथ रामायण, गीता आदि धार्मिक ग्रंथों को पढ़ाकर उनके महत्व से अवगत कराया है तो दूसरी ओर मनिका को पाश्चात्य सभ्यता की विलासप्रिय पुतली बनाकर भौतिक सुखों के लिए लालायित होते चित्रित किया गया है। अंत में कजरी के जीवन की सुखमय एवं सार्थक और मनिका के जीवन को दुखमय चित्रित कर लेखिका ने परोक्ष रूप से यह अभीष्ट व्यक्त की कि भारतीय धार्मिक सिद्धांतों को ग्रहण करने में ही जीवन की सार्थकता है। लेखिका का विचार यही है कि तप, त्याग, सेवा-समर्पण, सहनशीलता, चारित्रिक दृढ़ता आदि आदि गुण ही मानव को अत्युत्तम स्थान पर बिठा सकते हैं। उद्देश्य की दृष्टि से भी यह आदर्शमय उपन्यास माना जा सकता है।

'पिया' की मुख्यकथा वस्तुतः बाल विधवा पपीहरा उर्फ पिया का जीवन चरित्र है। पिया जमींदार सुकांत की भतीजी है। विधवा हर-मोहिनी अपनी दोनों पुत्रियाँ नीलिमा तथा कविता के साथ सुकांत के घर रहती है। पिया की भांति नीलिमा भी बाल-विधवा है और अत्यंत सौन्दर्य-वती भी। नीलिमा बड़ों की आज्ञा के अनुसार अपने मन को नियंत्रण में

---

१. वचन का मोल–पृ. : १६०

रखने की चेष्ट करती है। नीलिमा की छोटी बहिन कविता का विवाह जमींदार सुकांत से होता है। कविता के सौभाग्य को देखकर नीलिमा अपने मन पर नियंत्रण नहीं कर पाती। फलस्वरूप सुकांत से अवैध संबंध स्थापित कर लेती है। इस के कारण यह गर्भवती होती है। अंत में कलंक के भय से आत्महत्या कर लेती है। दूसरी ओर पिया का आचरण शुद्ध एवं पवित्र रहता है। पिया के आचरण पर उसकी चाचा की ओर से किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता है। वह स्वेच्छा से जहाँ चाहे वहाँ घूमती है। फिर भी वह अपने मन के उपर पूर्ण नियंत्रण रखती है। पपीहरा, पुलिस इन्स्पेक्टर निशीथ के साथ घूमती रहती है लेकिन उसका प्यार पवित्र रहता है। इसी कारण निशीथ का विवाह मृणाल से होता है तो वह हार्दिक शुभकामनाये देने में समर्थ होती है। नीलिमा के आत्मघात के कारण पिया का हृदय अत्यंत विकल हो जाता है और इसी मानसिक वेदना के कारण मर जाती है। पिया के जीवन के साथ यमुना और विभूति की कथा भी संलग्न है। यमुना पिया की बुवा की लड़की है जो पिया को बहुत चाहती है। यमुना का पति विभूति उसे पिया से मिलने नहीं देता है। लेकिन अंत में पिया अपने व्यक्तित्व एवं पवित्र आचरण द्वारा विभूति तथा उसकी माता को प्रभावित करती है और वे उसे बहुत चाहने लगता है और यमुना का जीवन भी सुख-मय बन जता है।

आलोच्य उपन्यास में सुकांत, हरमोहिनी, यमुना, विभूति, निशीथ, मृणाल, कविता आदि पात्रों के चारित्रिक प्रवृत्तियों में विविधता पायी जाती है। पिया उर्फ पपीहरा लेखिका की एक अपूर्व सृष्टि है। समस्त घटनाओं एवं पात्रों का केन्द्रबिंदु वहीं है।

लेखिका ने विधवा नीलिमा की मानसिक प्रवृत्तियों को मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रित किया है। नीलिमा रूपवती है और वह अपने मानसिक दुर्बल-ताओं को जीत नहीं पाती है। साथ में कविता के प्रति अनुराग होने पर भी उसके सुखमय जीवन को देखकर ईर्ष्या से जल उठती है। लेखिका ने उसके मनाभावों को मनोवैज्ञानिक शैली में प्रस्तुत किया है। साथ में पिया विधवा होने पर भी अपने मन पर नियंत्रण रखने की क्षमता रखती है। उसके बारे में कविता की यह उक्ति द्रष्टव्य है—"पिया जैसी लड़कियों की जाति ही निराली है। इस जाति की स्त्रियाँ एकनिष्ठ प्रेम की पुजारिन होती है।"[1]

१) पिया–पृ. : १२०

'पिया' एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास माना जा सकता है। लेखिका ने अपने उद्देश्य को एक आदर्श पात्र के माध्यम से चित्रित किया है। इसमें पिया के विचार जैसे पशुबलि का विरोध, मृत्यु के प्रति निर्भयता, एकनिष्ठ-प्रेम की महत्ता, देश-भक्ति, नारी का आत्मसम्मान, आदि लेखिका के निजी विचार हैं।

हिंदू-विधवा की समस्या को उठाकर दिखानेवाला उपन्यास है 'पिया'। इसमें नीलिमा ऐसी बाल-विधवा है जिसने कभी पति का मुख भी नहीं देखा, फिर भी हिंदू संस्कारों में पलने के कारण उसे तप, संयम का जीवन व्यतीत करना अनिवार्य हो गया है, पुनर्विवाह उसके लिए निषिद्ध है। सुकांत उसके प्रति आकृष्ट होने पर भी उससे विवाह करने में संकोच प्रकट करता है क्योंकि वह विधवा है। विधवा से विवाह करना, सामाजिक परंपरा के विरुद्ध माना जाता है। स्वयं नीलिमा भी पुनर्विवाह से डरती है, क्योंकि वह भी उन्हीं संस्कारों में पलकर बडी हुई है। इस प्रकार हिंदू समाज के इन रूढिवादी संस्कारों की कटु आलोचना, लेखिका करती हैं।

'जीवन की मुस्कान' की कथा में सविता एक धनवान परिवार की इकलौती लडकी है। उसका फलदान एक धनी युवक डाक्टर कमलेश से हो जाता है। सविता के पिता चक्रवर्ती घुडदौड़ में अपनी सारी संपत्ति खोने के कारण, आत्महत्या कर लेते हैं। इससे कमलेश की माता सत्यभामा, सविता के संबंध को तिरस्कार कर देती है। सविता अपनी युवावस्था में ही सब कुछ खो बैठती है। उसकी माँ भी रोगग्रस्त बन जाती है। एक दिन सविता अपनी माता को बचाने केलिए अनजाने में डाक्टर कमलेश को लेकर घर आती है, तो उसकी माता कमलेश को पहचानकर घृणा तथा वेदना के आवेग में सदा केलिए चल बसती है। निस्सहाय होकर सविता कमलेश के अनुरोध पर उसके साथ जाती है। कमलेश की माता भी अनजान से सविता को अपनी पुत्री तुल्य प्यार करती है। सविता एक पत्र द्वारा इस बात को जान लेती है कि कमलेश ही उसके पूर्व प्रस्तावित पति है। इस रहस्य को गुप्त रखने के कारण ही सत्यभामा के हाथों, घर की कन्या का सा आदर पाती है। कमलेश माता के आदेशानुसार ही रूपरेखा से विवाह कर लेता है। किन्तु वह प्रेम में विश्वास नहीं करता है अतः वह न तो सविता के प्रति अनुरक्त है और न ही रूपरेखा से प्रेम ही कर पाता है। सविता, कमलेश को पति की भाँति ही प्रेम करती है क्योंकि वह फलदान को ही विवाह समझती है। सत्यभामा, सविता का

विवाह, कमलेश के मित्र पृथीश से करना चाहती है, किंतु सविता यह कहकर टाल देती है कि, बाल्यकाल में ही उसका विवाह हो चुका है। सत्यभामा को अंत में सविता द्वारा ही यह पता चलता है कि उसी का फलदान, कमलेश से हुआ है। सत्यभामा की मृत्यु के पश्चात् वह पुनः अनाथ हो जाती है। कुछ दिन पश्चात्, कमलेश को पता चलता है कि सविता उसकी पहली वाग्दत्ता पत्नी है। इसी बीच वेश्या पूरवी द्वारा प्रेम का महत्व जान पाता है। कमलेश, सविता से प्रेम याचना करना चाहता है। तब तक सविता निश्चय कर लेती है कि वह तीर्थयात्रा पर चली जायगी। कमलेश तथा रूपरेखा के अनुरोध पर भी वह अपने निश्चय पर अटल ही रहती है। अंत में सविता का प्यार त्याग में परिवर्तित हो जाता है।

उक्त प्रमुख कथा के अतिरिक्त इस उपन्यास में वेश्या पूरवी की गौण कथा है। वेश्या पूरबी अपने अंधे पिता और बहनों केलिए विवश होकर वेश्या बनती है। वह अनजान में ही पृथीश से प्रेम करती है। जब पृथीश उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है तो वह अपने अपवित्र शरीर को अपने प्रेमी को देने से सहमत नहीं हो पाती।

इस उपन्यास में चरित्र चित्रण एवं कथानक के तत्व परस्पर अन्योन्याश्रित रहे हैं। सविता, उपन्यास का प्रमुख पात्र है। उसका व्यक्तित्व सरल, निश्चल, तथा स्वाभिमानपूर्ण है। पूरबी वेश्या होती हुई भी पवित्र विचारों वाली युवती है। उसका मन कोमल एवं भावुक है। उसके वेश्या होने के कारण ही उसकी विवाहिता बहन पति–परित्यक्ता बन जाती है। पूरबी उदास होकर अपनी अभिशप्त जीवन गाथा पृथीश से कहती है कि–"मेरे ही लिये तो उस बेचारी को पति ने छोटे बच्चों के साथ त्याग दिया। उसे पता चल गया है कि इसकी बहन वेश्या है। और एक मेरे ही कारण कुँवारी है। वेश्या की बहिन को कौन ब्याहने लगा।"[1] पूरबी वेश्या होती हुई भी विलासमय जीवन से दूर रहती है।

पुरुष पात्रों में कमलेश और पृथीश मुख्य हैं। कमलेश अपनी माता का आज्ञाकारी पुत्र है, एक बार उसका विवाह निश्चित हो जाने पर भी उसकी माता के मना करने से उस विवाह को भूल कर नई शादी के लिए तैयार हो जाता है। दूसरी ओर पृथीस एक परोपकारी सहृदय युवक के रूप में चित्रित

---

१) जीवन की मुस्कान–पृष्ठ : १२०

है। वह पूरबी को वेश्या जानकर भी उससे विवाह की बात छेड़ता है। वह चाहता है कि पूरबी का जीवन सही रास्ते पर चले। एक सच्चे समाज सुधारक की भांति चाहता है कि पूरबी के जीवन का उद्धार हो।

लेखिका ने सविता, पूरबी तथा रूपरेखा के मानसिक विषाद, अतृप्त आकांक्षाओं, प्रेम घृणा आदि के द्वंद्वमय चित्रण द्वारा उनके चरित्र का विकास मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत किया है। लेखिका ने चरित्र-चित्रण के लिए यत्र-तत्र प्रत्यक्ष कथन शैली को अपनाया है—"तो वह भी जूही की एक पँखुड़ी सी निर्मल, निष्पाप। ओस की एक बूँद जैसी शुभ्र शीतल। अंगूर के रस जैसी मीठ", मधुर। जुगनू की दीवार जैसी निरहंकार, निरभिमानिनी। निर्झर की गति जैसी सरल और बुलबुल की प्रभाती जैसी तंद्रालस।"[1] उक्त अलंकारमय उद्धरण के माध्यम से लेखिका ने सविता के चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

आलोच्य उपन्यास का मुख्य उद्देश्य यही है कि मानव को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कर्तव्य-निष्ठ और चरित्रवान रहना चाहिए। जीवन की वास्तविक मुस्कान कर्तव्य पालन में ही है।

लेखिका ने आदर्श एवं यथार्थ दोनों वादों का समन्वय किया है। इस दृष्टि से यह उपन्यास पूर्ववर्ती उपन्यासों से सुन्दर माना जाता है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डा० उर्मिला गुप्ता का कथन है कि सोद्देश्य घटना संयोजन के कारण इसका कथानक अव्यवस्थित-सा हो गया है।[2]

श्रीमती उमादेवी मित्रा का ही एक अन्य सामाजिक उपन्यास है—'पथचारी'। इस में नितीन एक अभिजात वर्ग का व्यसनी युवक है। उसका अपना कोई नहीं होता है। नारी तथा उसके प्रेम को वह सदैव खेल समझता है। लेकिन स्त्री-व्यायाम-शाला की संचालिका बांसुरी देवी पर उसका मन अटक जाता है और सच्चे अर्थ में उससे प्रेम करने लगता है, उससे विवाह करने की इच्छा भी प्रकट करता है। किन्तु बांसुरीदेवी सदा उसको यही आभास दिलाती आयी कि वह उससे गृणा कर रही है। उसकी घृणा में उसका जो एकनिष्ठ प्रेम है, उसका परिचय नितीन को अपनी मृत्यु शैया पर ही मिलता है।

---

१) जीवन की मुस्कान—पृष्ठ : ३७

२) हिंदी साहित्य के विकास में महिलाओं का योग—पृ. : ३०८

मुख्य कथा के साथ राधिकारमण एवं वासुदेव की प्रासंगिक कथा भी जुड़ी हुई है जो मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि हैं । बेकारी एवं निर्धनता ने उनके जीवन को अभिशप्त बना डाला है । वासुदेव की प्रेमिका माधुरी केवल निर्धनता के ही कारण उसे ठुकराकर धनी सुकदेव से विवाह कर लेती है । कुछ दिनों के पश्चात् वासुदेव को नौकरी मिलती है, जिससे उसकी आर्थिक स्थिति सुधर जाती है । किन्तु राधिकारमण एवं उसका परिवार आर्थिक कष्टों में पिस जाता है । तीसरी गौड़ कथा गुलाबी की है, जो एक श्रमिक परिवार की गृहिणी है । जब पति मद्यपान में मस्त रहकर बच्चों को भूखे मरने के लिए विवश करता है, तब बच्चों की रक्षा की भावना से गुलाबी एक वेश्या की शरण में जाती है । वहीं उसका परिचय नितीन से होता है । उसकी करुण गाथा से द्रवित होकर नितीन प्रति मास निःस्वार्थ भाव से उनकी आर्थिक सहायता करता रहता है । लेकिन गुलाबी का पति और उसकी बिरादरी वाले गुलाबी को कुलटा कहकर बच्चों सहित उसे घर से निकाल देते हैं । तब वह एक एकांत स्थान में रहकर नितीन के धन से बच्चों का पालन-पोषण करती रहती है ।

नितीन कथा का मुख्य पुरुष-पात्र है । समस्त घटनाओं तथा पात्रों पर वह छाया हुआ है । वह विलासमय जीवन व्यतीत करने पर भी सहृदयी होने के कारण अभावग्रस्तों की सहायता करना चाहता है । वह नारी को भोग-वस्तु समझता है लेकिन किसी नारी की इच्छा के विरुद्ध उस पर अत्याचार कभी नहीं करता । दूसरी ओर माधुरी उस अभिजात्त वर्ग की प्रतीक है जो धनाधिक्य के कारण दंभी-प्रवृत्ति से प्रेरित होती रहती हैं । वासुदेव से प्रेम करके भी वह केवल धन की लालच में ही सुकदेव से विवाह कर लेती है । यहाँ तक कि वह राधिकारमण को अपनी चचेरी बहन के लिए शिक्षक के रूप में भी नहीं रखना चाहती, क्योंकि उसके मलिन वस्त्र आदि माधुरी को उनके जीवन-स्तर के योग्य नहीं लगते ।

राधिकारमण और वासुदेव शिक्षित एवं बेगारों के वर्ग में आते है । स्वाभिमान के कारण न तो नितीन से ही कुछ ले पाते हैं और न मजदूरी ही करना चाहते हैं । गुलाबी और उसका पति निम्न वर्ग के प्रतिनिधि हैं । पति मजबूर करता है, लेकिन सब कुछ मद्य-पान में खर्च कर देता है । अंत में गुलाबी विवश होकर वेश्या के पास चली जाती है ।

बांसुरीदेवी लेखिका की आदर्शमय काल्पनिक सृष्टि है, जो बेकारी समस्या का सामना करने के लिए स्त्री-व्यायामशाला चलाने लगती है । स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने का उपदेश देती हैं । लेखिका ने प्रत्यक्ष कथन एवं घटना-योजना के अतिरिक्त विशेषण-कथन के द्वारा भी पात्रों के चारित्रिक प्रवृत्तियों को व्यक्त किया है । निम्नांकित कथन से बांसुरी के चरित्र की विशेषतायें द्रष्टव्य हैं– "और बांसुरी ? किंतु वह दांभिक बांसुरी, वीरवंशी, अपनी शक्ति के आगे और सब को तुच्छ समझनेवाली, शिलासम कठोर चित्त-वंशी और नारी बांसुरी उसके बाद लाज रक्तिम नेत्रों को उठा भी तो नहीं सकी न ।'[1]

लेखिका ने इस कृति में बेकारी-समस्या का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है । इस समस्या के समाधान के रूप में बांसुरी देवी की व्यायामशाला को प्रस्तुत किया है, जहाँ नारी को आत्मरक्षा की शिक्षा दी जाती है, जिस से बेकारी के समय भी नारी आत्म-सम्मान के साथ जीविका चला सकती है ।[2] लेखिका का विचार है कि बेकारी की समस्या केवल धनिक वर्गों के धन से दूर नहीं हो सकती, परंतु लोगों में आत्मविश्वास एवं आत्म-सम्मान का होना आवश्यक है ।[3] यही लेखिका का उद्देश्य भी है ।

कंचनलता सब्बरवाल :–

स्वातंत्र्यपूर्व काल के अंतर्गत श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल के तीन उपन्यास आते हैं–'मूक प्रश्न', 'भोली भूल', तथा 'संकल्प' तीनों उपन्यास सामाजिक हैं । आपके उपन्यासों के प्रति श्री ब्रह्मनारायण शर्मा 'विकल' का यह कथन द्रष्टव्य है–'डा. सब्बरवाल के उपन्यास पूर्णतः सामाजिक हैं । उन में जीवन के बहुत से सत्य बहुत सुंदर रूप से प्रकट हुए हैं । यद्यपि भाषणों की बहुलता अखरती अवश्य है, किंतु इस से लेखिका के अच्छी वक्ता होने का परिचय मिलता हे और यह भी कहना असंगत न होगा कि उन भाषणों में लेखिका के विचारों का बहुत कुछ सार भरा हुआ है ।'[4]

---

१. पथचारी – पृ. : ११३
२. पथचारी – पृ. : ५०-५१
३. पथचारी – पृ. : ७६-७७
४. हिंदी उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन–पृ. : पृ. २१०-२११

'मूक प्रश्न' की कथा की नायिका सावित्री साँवली होने के कारण, परिवार के सदस्य उस से प्यार नहीं करते। केवल भाभी का प्यार ही उसे मिलता है। उस का पति अनिल भी, उसकी अवहेलना करता रहता है। लेकिन वह निष्कपट हृदय से पति, सास और ननद की सेवा सुश्रूषा करने लगती है। कुछ दिन पश्चात् पति की मामी की पुत्री चुन्नी उनके घर उच्च शिक्षा के लिए आती है। अनिल और चुन्नी प्रेम करने लग जाते हैं। सावित्री ईर्ष्या-भाव न रखकर मायके के यहाँ जाकर डाक्टर बनती है और रोगियों की सेवा सुश्रूषा में समय व्यतीत करने लगती है। विवाह-बंधन में बंधने के कुछ समय उपरांत चुन्नी तथा अनिल को सावित्री के प्रति किये गये अत्याचारों पर पश्चाताप होता है। वे तुरंत सावित्री के यहाँ जाकर उसे लौट आने के लिए कहते हैं। लेकिन सावित्री पुनः पति के घर लौटने में असमर्थ होती है। अंत में सन्यासिनी बन जाती है। इस मुख्य कथा के साथ एक प्रासंगिक कथा भी है जो चुन्नी की सखी निर्मला और उसके पति की है। यह गौण कथा, मुख्य कथा के विकास में अत्यंत सहायक रही है।

आलोच्य उपन्यास की केंद्र बिंदु सावित्री है। अपने माता और बहनों की अवहेलना के बावजूद भी अपने जीवन में स्थाई विचारों को सावित्री प्रतिष्ठित कर लेती है जिससे अंत में वह सब केलिए श्रद्धा पात्री बन जाती है। सावित्री का पति अनिल मानवोचित दुर्बलताओं का दास बनकर, सावित्री को ठुकराता और बाह्य आकर्षण से प्रभावित होकर चुन्नी से पुनः विवाह कर बैठता है। उपन्यास में सावित्री के अतिरिक्त अन्य पात्रों का चारित्रिक विकास नहीं के बराबर हुआ है। सावित्री की मनोभावनायें आरंभ से ही स्थिर है अतः उसके व्यवहार में आवश्यकतानुसार गंभीरता, आजाती है। यत्र-तत्र चुन्नी, सन्यासी तथा अनिल आदि पात्रों के संवादों के माध्यम से सावित्री की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।[1]

लेखिका स्वयं सावित्री की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती हुई कहती है कि– "सावित्री ने बाल्यकाल से ही अपने पैरों पर खडा होना सीखा था। माँ की झिडकी और बहिनों के तिरस्कार में ही उसके जीवन का प्रभात आरंभ हुआ था। वह वृक्ष बन गई थी। अतः लता निर्भयतापूर्वक उसका सहारा ले सकती थी। किंतु लता बनकर उसे आश्रय की आवश्यकता न थी।"[2]

---

१. मूक प्रश्न – पृष्ठ : १२८, १३२, १३९

२. मूक प्रश्न – पृष्ठ : ३१

इस प्रकार आदर्शपूर्ण चरित्र चित्रण के कारण कथावस्तु एवं उद्देश्य में भी स्पष्टता आ जाती है।

उद्देश्य की दृष्टि से विवेच्य उपन्यास में लेखिका ने भारतीय नारी का आदर्श-पूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है, जो जो सावित्री पात्र में प्रतिबिंबित होता है। पति के द्वारा उपेक्षित होकर भी पति-सेवा में लीन रहने वाली सावित्री के चित्रण द्वारा एक आदर्श भारतीय पति-परायण नारी का चित्रण मिलता है। लेखिका ने यही सिद्ध किया है कि बाह्य-सौन्दर्य की अपेक्षा आंतरिक सौन्दर्य ही श्रेष्ठ है। लेखिका की इस उक्ति के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है कि 'सौंदर्य की सृष्टि मानव-शरीर में भीतर भी होती है और बाहर भी। बाह्य सौंदर्य होता है सस्ता, अस्थाई पर आकर्षक। आंतरिक सौंदर्य होता है महान्, स्थाई पर गुप्त। एक देखने को केवल आँखें चाहिए किंतु दूसरे को परखने को हृदय भी। – जो उसे पहचान नहीं पाते दुर्भाग्य है उनका इसी एक समस्या, नहीं सत्य, को छूने का मैंने प्रयास मात्र किया है।'[१]

कंचनलता सब्बरवाल के दूसरे उपन्यास 'भोली भूल' की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—दिवा और सुलभा कालेज में सहपाठी हैं, तथा प्रिय सखियाँ भी। वे दोनों विभिन्न मनस्तत्ववाले हैं। शिक्षा के उपरांत सुलभा, विजया से प्यार कर उससे विवाह कर लेती हैं तथा दिवा उसी कालेज की प्राध्यापिका के रूप में नियुक्त हो जाती है। सुलभा विलासप्रिय है लेकिन उसका पति विजय साधुता एवं सरलता का प्रेमी है। इन विभिन्न प्रकृतियों के कारण वे दोनों मानसिक रूप से एक नहीं हो पाते हैं। फलतः कुछ दिनों पश्चात् वैवाहिक बंधन को विच्छेद कर लेते हैं। सुलभा अपनी चंचल प्रवृत्ति के कारण एक विधुर कर्नल से परिचय बढा लेती है और गर्भवती बनती है। तब कर्नल उसे छोड़ देता है। तब वह अपने किये पर पछताकर विजय से क्षमा याचना करती है लेकिन अंत में वह परिस्थितियों से हारकर मृत्यु की शरण में चली जाती है। विजय और दिवा स्वभाव से मिलते हैं। सुलभा के जीवित रहते समय ही वे एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं लेकिन दिवा के विवेकशील व्यवहार उसे कभी असंयमित नहीं होने देता। इसी कारण विजय, दिवा से प्यार करते हुए भी उससे विवाह नहीं कर पाता। दिवा के अपने कुछ आदर्श हैं, जो जीवन में स्थिर रखना चाहती है। वह पाप तथा पापी से विशेष घृणा करती है।

---

१. मूक प्रश्न – भूमिका 'दो शब्द' से उद्धृत

दुर्भाग्यदश उसे एक दिन पता चलता है कि वह खुद एक पापी की संतान है। उसकी माता श्यामा वेश्या है। इस तथ्य को जानते ही वह अत्यंत क्षुब्ध हो जाती है। वह स्वयं अपने से घृणा करने लगती है। मानसिक शांति की खोज में एक मंदिर के उपासक की शिष्या बनकर वहीं निवास करने लगती है। लेकिन गुरु की तृष्णा का शिकार बनने के कारण वह आत्महत्या करने के उद्देश्य से यमुना की ओर भागती है, लेकिन वहाँ उसकी माँ उसकी रक्षा करती है, जो सन्यासिनी बनकर जीवन निर्वाह कर रही होती है। उसी समय दिवा जान पाती है कि उसे पापी से नहीं पाप से घृणा करना चाहिए। तब तक उसकी भोली भूल समाप्त हो जाती है।

आलोच्य उपन्यास के सभी पात्रों में परिस्थितियों के अनुसार गुण तथा अवगुण पाये जाते हैं। केवल दिवा का चरित्र ही अधिक आदर्शोन्मुख प्रतीत होता है। दिवा स्त्री-सुलभ दुर्बलतायें रखती हुई भी उन पर नियंत्रण रखने में समर्थ होती है।

श्यामा एक वेश्या है लेकिन कुछ समय पश्चात् वह उस जीवन से विरक्त होकर सन्यासिनी बन जाती है। सुलभा प्रारम्भ से ही चंचल तथा विलासप्रिय युवती है। वह विजय से प्रेम-विवाह करती है लेकिन सफल वैवाहिक जीवन व्यतीत नहीं कर पाती है। फिर विधुर कर्नल से सम्बन्ध रखकर गर्भिणी बनती है अन्त में प्रतिकूल परिस्थितियों में आत्महत्या कर लेती है। वह परिस्थितियों से पथभ्रष्ट हो जाती है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी के शब्दों में—"पाठक तीनों से ही सहानुभूति रखता है, पतित के प्रति निर्दय नहीं हो पाता। यही इन पात्रों के चरित्र में लेखिका की सबसे बड़ी सफलता है।"[1]

विवेच्य उपन्यास में यह उद्देश्य प्रतिपादित किया गया है कि पापी से नहीं, पाप से घृणा करना चाहिए। उपन्यास के अन्त में इस प्रकार एक व्याख्या प्रस्तुत है—"माँ मेरी माँ, यावज्जीवन पापी को घृणा करना ही सीखी थी, किन्तु माँ जान पड़ता है, पापी और पुण्यात्मा में, कुछ भी भेद नहीं। नारायण का वास आत्मा—प्रत्येक आत्मा के भीतर है, पापी के भी और पुण्यात्मा के भी पाप-पुण्य शरीर को ही छूते हैं, आत्मा को छू पाते ही नहीं।"[2]

---

१) भोली भूल—मुख पृष्ठ का वक्तव्य

२) भोली भूल—पृष्ठ : २८७

कथावस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से यह उपन्यास आदर्शवादी एवं सुधारवादी होने पर भी चरित्र चित्रण की दृष्ट से यथार्थवादी माना जा सकता है। सुलभा का दूसरे बार पतिके द्वारा तिरस्कृत होना, उक्त कथन के उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार इसमें आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव इस उपन्यास में परिलक्षित होता है।

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल जी का ही तीसरा उपन्यास 'संकल्प' राजनैतिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास के दो भाग हैं-पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में सुरेंद्र और देवेंद्र-दो सौतेले भाइयों की जीवन-गाथा है। सुरेन्द्र बैरिस्टर हैं। उसकी पत्नी गौरी है। वह देवेन्द्र को अपने पुत्र तुल्य देखती है और देवेन्द्र भी उसके प्रति अत्यन्त विनीत रहता है। लेकिन कुछ समय पश्चात् देवेन्द्र एक अनाथ युवती शक्ति से विवाह कर लेता है तब दोनों भाइयों के पारिवारिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं। दो वर्ष पश्चात् देवेन्द्र की मृत्यु हो जाती है। शक्ति विवश होकर अपने पुत्र अक्षय को लेकर जेठ, जिठानी के पास जाती है, किन्तु पुराने मतभेद के कारण अलग ही रहने लगती है।

उपन्यास के उत्तरार्ध में देवेन्द्र के पुत्र अक्षय तथा सुरेन्द्र की पुत्री उमा की कथाएं हैं। अक्षय युवावस्था में श्रमिक बनता है और साम्यवादी दल का सदस्य भी। उमा का विवाह एक धनी परिवार में होता है पर पति एक अंग्रेजी युवती के प्रति आकृष्ट होने के कारण, उमा के प्रति उदासीन रहता है। अक्षय के प्रति उमा की छोटी ननद श्री, अनुराग बढ़ा लेती है। लेकिन अक्षय, श्री के मनोभावों को समझ नहीं पाता है।

इस मुख्य कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथायें भी हैं-शक्ति की माता की करुणा गाथा, शांति और उसकी मां की कथा, रघु चाचा की जीवनी आदि।

प्रासंगिक कथाओं की आधिक्यता के कारण घटनाओं की बहुलता है। मुख्य रूप से सामाजिक उपन्यास होने पर भी इस में राजनीतिक विषय सिद्धांतों को भी स्थान मिला है। उपन्यास के उत्तरार्ध में साम्यवाद और गांधीवाद की तुलना भी प्रस्तुत की गई है।

पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा इस कृति में विचार पक्ष का विकास पाया जाता है, इस दृष्टि से यह विशिष्ट है।

आलोच्य उपन्यास के मुख्य पात्र हैं—देवेंद्र, सुरेंद्र, अक्षय, गौरी, शक्ति, उमा और श्री। विचार के क्षेत्र में प्रत्येक पात्र अपना पृथक विश्वास रखता है। अतः वैचारिक धरातल पर उन में मेल नहीं पाया जाता है। चारित्रिक दुर्बलता किसी भी पात्र में नहीं पायी जाती। कर्तव्यपूर्ति के लिए न्याय तथा अन्याय, उचित तथा अनुचित की चिंता नहीं करनेवाले पात्र हैं बैरिस्टर सुरेंद्र। जबकि देवेंद्र न्याय का ही पक्षपाती है। अक्षय मार्क्सवादी विचारधारा को माननेवाला युवक है, वह अहिंसा के लिए मर मिटनेवाला है, श्रमिकों का प्रतिनिधि तथा साम्यवाद का समर्थक है।

गौरी एक स्नेहमयी पति-परायणा साध्वी सती है। लेकिन शक्ति, क्रांतिकारी विचारों को लेकर जीवन-पथ पर अग्रसर होनेवाली युवती है। उमा में सहनशीलता, सेवा परायणा आदि गुण निहित हैं, वह साम्यवादी दल की सदस्या है। इस प्रकार सभी पात्र अपने-अपने क्षेत्र में दृढ आस्थावान् हैं। चरित्र चित्रण की शैली भी उसी के अनुरूप संपन्न हुई है।

'संकल्प' उपन्यास में लेखिका पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गांधीजी के संदेश 'वसुधैव कुटुंबकम' का प्रचार करना ही इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य माना जा सकता है। गांधीजी के अहिंसावाद के समर्थन में हिंसा तथा अहिंसा के संबंध में कई तर्क वितर्क उपस्थित किये, अंत में यही सिद्ध किया गया है कि अहिंसा और आध्यात्मवाद ही भारत और सारे विश्व की रक्षा कर सकते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म ग्रंथों के प्रति लेखिका की अपार श्रद्धा दृष्टिगोचर होती है। लेखिका ने आत्मबल द्वारा दूसरों की रक्षा करना ही अहिंसा माना है।

उपन्यास में उपलब्ध विभिन्न राजनैतिक सिद्धांतों के आधार पर इसे राजनैतिक उपन्यास भी कहा जा सकता है।

स्वातंत्र्यपूर्व हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में वस्तु पक्ष : एक मूल्यांकन :

भारतेंदु युग में गद्य के उद्भव के साथ-साथ उपन्यास साहित्य का भी विकास होने लगा था। उसके प्रारंभ काल से भारत विदेशी श्रृंखलाओं

से मुक्त होने तक की अवधि में श्रीनिवासदास किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा, गंगाप्रसाद गुप्त, ब्रजनंदन सहाय, देवकीनंदन खत्री आदि कई उपन्यासकार आये। इनके साथ साथ महिलाओं ने भी इस साहित्य-विधा में अपनी रुचि-प्रकट की। यह बात सत्य है कि वे संख्या में बहुत ही कम थी। उनकी रुचि भी उतनी व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण नहीं पायी जाती जितनी पुरुषों की। फिर भी सदियों से पिछड़ी हुई नारी का यह प्रारंभिक प्रयास सराहनीय हैं। सामाजिक प्रतिबंधनों में बंधित रहने के कारण स्त्रियों को जीवन तथा जगत को संपूर्ण रूप से परखने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी उन्होंने अपने अनुभव एवं अनुभूतियों को लिपिबद्ध कर अपनी लेखिकाओं का पथ-प्रदर्शन किया है। इस प्रसंग में श्री मुंशी प्रसाद जी की यह उक्ति द्रष्टव्य हैं–'भारत वर्ष की पुण्यभूमि में अकेले पुरुष ही चौदह-विद्या-निधान नहीं हुए हैं। वरन् स्त्रियाँ भी समय समय में ऐसी ऐसी होती रही है जो सोने चांदी और रत्न जड़ित आभूषणों के अतिरिक्त विद्या-बुद्धि और काव्य-कला के दिव्य भूषणों से भी भूषित थीं और अब भी है।'[1]

कहानी की तरह उपन्यास का आरंभ भी अनुवादों से ही हुआ है। आरंभिक काल की लेखिकाओं ने भी बंगला उपन्यासों का अनुवाद करते हुए हिंदी उपन्यास जगत में प्रवेश किया। इस अनुवाद कार्य में बाबू गोपालराम गहमरी और रामकृष्ण वर्मा आदि लेखकों के अतिरिक्त तत्कालीन लेखिकाओं ने भी यथेष्ठ मात्रा में योग दिया जिन में सती साध्वी प्रतिप्राणा अबला, गोपालदेवी और सरोजदेवी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साध्वीं सती पतिप्राणा अबला ने सन् १८८३ ई. में 'राधायनी', गोपालदेवी ने सन् १९१२ ई. में 'लक्ष्मी बहु' सन् १९२० ई. में 'दयावती' और सरोजदेवी ने सन् १९२३ में विवाह विप्लव' शीर्षक उपन्यासों की रचना की। अनुवादों के साथ उन दिनों में लेखिकाओं ने मौलिक उपन्यासों की भी रचना की है। जिन का ऐतिहासिक परिचय आरंभिक अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है।

इस युग की लेखिकाओं ने मुख्य रूप से सामाजिक एवं गौण रूप से धार्मिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को रचा है। उद्देश्य की प्रधानता सभी उपन्यासों में पायी जाती है। कभी-कभी लगता है इस युग की

---

१. 'महिला मृदुवाणी'–सन् १९०५ भूमिका से उद्धृत

लेखिकाओं का उद्देश्य उपदेश देना था न कि उपन्यास लिखना। इस युग की कथावृत्तियों में नैतिकता एवं सदाचरण के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण पाया जाता है। हितोपदेश' एवं 'पंचतंत्र' की भांति इस अवधि के उपन्यासों में उपदेशात्मकता की प्रमुखता पायी जाती है। सन् १८५० से १८७० तक के अंग्रेजी उपन्यासों में भी उपदेश का अंश ही अधिक पाया जाता है। श्री रिचर्ड रेंग के अनुसार 'अंग्रेजी के तत्कालीन उपन्यासों में धर्मोपदेश का स्वर ही प्रमुख है अंतर केवल यह है कि उपदेश की अपेक्षा उपन्यासकार के कथ्य में प्रभाव अधिक व्यापक था।'[1]

स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यासकर्त्रियों की रचनाओं का अवलोकन करने से यह भी विदित होता है कि उनमें पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक इतिवृत्त प्रधान उपन्यास पाये जाते हैं। लीलावतीदेवी के 'सती दमयंती' तथा 'सती सावित्री' पौराणिक-गाथाओं से लिये गये आदर्श पात्रों के चरित्र प्रधान उपन्यास हैं। इनमें दमयंती तथा सावित्री पात्रों को भारत की पति-परायण आदर्श नारी के रूप में ही चित्रित्त किया गया है।

महिलाओं द्वारा रचित प्रथम ऐतिहासिक हिंदी उपन्यास है सुश्री सरस्वती गुप्ता विरचित 'राजकुमार । यह रचना एक लोक-कथा पर आधारित होने के कारण ऐतिहासिक तथ्यों का इसमें अभाव भी पाया जाता है। 'बीरपत्नी' नामक श्रीमती यशोदादेवी के ऐतिहासिक उपन्यास में रानी संयोगिता के साहसी रूप के साथ साथ उसके माध्यम से राष्ट्रीय भावना को भी प्रतिष्ठित किया गया है।

लेखिकाओं द्वारा सामाजिक इतिवृत्त को लेकर लिखे गये उपन्यासों में साध्वी सती पति प्राणा अबला' का 'सुहासिनी' सर्वप्रथम है। उसमें घटनाओं की बहुलता है। सुहासिनी पात्र के माध्यम से उदर-पूर्ति के लिए नौकरियों के फेरे लगाने वाली पतिव्रता नारी की यातनाओं का तथा उसकी पतिव्रता नारी विवशताओं का मार्मिक चित्रण पाया जाता है।

---

1) The comparision between the functions of clergy men and novelist was very frequently made and often it seemed as if there was really little differnce between the two, except that the novelist could wield a greater influence ... a difference in degree not in kind."
......The theory of the novel in England ...1850 -1870, P. 68

श्रीमती प्रियंवदा देवी विरचित 'लक्ष्मी' में जहाँ आदर्श प्रेम का चित्रण है वहाँ उन्ही के दूसरे उपन्यास 'कलियुगी परिवार का एक दृश्य' में संयुक्त आदर्श परिवार का चित्रण। ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे का एक अन्य सामाजिक उपन्यास हैं 'सौंदर्यकुमारी' जिसमें कन्या पर परिवार-पोषण का भार लादा जाना तथा समाज के पाखंडी साधुओं के अत्याचारों का शिकार बनना वर्णित है।

श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरी के 'आदर्श माता' में नारी के 'माता' के रूप का आदर्श प्रस्तुत करने के साथ-साथ तत्कालीन विधवा जीवन की समस्याओं पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

श्रीमती रुक्मिणी देवी ने अपने उपन्यास 'मेम और साहब' में व्यंग्यपूर्ण शैली में पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले भारतीयों की खूब खिल्ली उड़ाई है।

'गूढ भाव प्रकाश' में श्रीमती हुकमदेवी गुप्ता ने ब्रह्मचर्य के महत्व का, अनमेल विवाह का, स्त्री के प्रति उपेक्षा भाव आदि का आदर्शवादी चित्रण प्रस्तुत किया है।

श्रीमती उषादेवी मित्रा तथा श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर काल में पायी जाने वाली समस्याओं की झलक मिलती है। श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल कृत 'भोली भूल' एवं 'संकल्प' उपन्यासों में गांधीवाद एवं साम्यवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनमें लेखिका का उद्देश्य यही रहा कि लोगों को पापी से नहीं बल्कि पाप से घृणा करनी चाहिए।

श्रीमती उषादेवी मित्रा ने 'वचन का मोल', 'जीवन की मुस्कान' तथा 'पथचारी' में समाज की संघर्षशील नारी का स्वरूप अंकित किया है। विकट परिस्थितियों का सामना करने वाली नारी के क्रिया कलापों का इन्होंने मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इनके पात्र अति-भावुक हैं।

सारांश यह है कि विवेच्य युग की लेखिकाओं ने मुख्य रूप से सामाजिक एवं गौण रूप से पौराणिक तथा ऐतिहासिक इतिवृत्तों को अपनाया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से देखा जाय तो स्वातंत्र्यपूर्व के उत्तरार्द्ध में रचित उपन्यास किसी न किसी आदर्श को प्रस्तुत करने वाले होने के कारण, चरित्र–प्रधान बन पड़े हैं। इन उपन्यासों में लेखिकाओं ने नारी पात्रों के प्रति विशेष सहानुभूति दिखाई है। फिर भी सभी प्रकार की परिस्थितियों में स्त्री को प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप ही चित्रित करने में अधिक प्रयत्नशील रही हैं। कंचनलता तथा उषादेवी के उपन्यासों को छोडकर पुरुषों के अत्याचार, उनकी कामलोलुपता विलास–प्रवृत्ति आदि के प्रति विरोध की भावना कहीं भी परिलक्षित नहीं होती।

उद्देश्य की दृष्टि से आरंभिक उपन्यास उपदेश प्रधान रही हैं। अधिकांश उपन्यासों में नारी को परिवार तथा समाज के प्रति धर्मपरायण बनने की शिक्षा देना ही लेखिकाओं का उद्देश्य रहा है। यह विशेषता सामाजिक उपन्यासों तक ही सीमित न रहकर पौराणिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में भी दृष्टिगोचर होती है। इस युग की लेखिकाओं में समाज–सुधार की प्रवृत्ति भी अधिक पात्रों में परिलक्षित होती है। इसका अर्थ है समाज की उच्छृंखलता को दूर करना न कि विद्रोह मचाना; विद्रोह या क्रांति खडा करना इन लेखिकाओं का उद्देश्य कदापि नहीं रहा है। कंचनलता सब्बरवाल के उपन्यास इस तथ्य के अपवाद माने जा सकते हैं।

स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उत्तरकाल में यथार्थपरक दृष्टिकोण से सामाजिक स्थिति-गतियों का चित्रण करना तथा पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना लेखिकाओं का उद्देश्य रहा है। इन्हीं उपन्यासों की आधारशिला पर आज का महिलाओं द्वारा विरचित उपन्यास–साहित्य–प्रासाद खडा हुआ प्रतीत होता है।

लेखिकाओं के तेलुगु उपन्यासों में वस्तु पक्ष

तेलुगु में स्वातंत्र्य पूर्व की अवधि में प्राप्त उपन्यासकर्त्रियों में पुलवर्ति कमलावती, कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा, मल्लादि बुच्चमा, पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमाँबा, अट्लूरि वेंकटसीतम्मा, चिल्लरिगे रमणम्मा, रांबूरि वेंकट सुबम्मा, आचंट सत्यवतीदेवी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेख हैं। यहाँ इनके प्राप्त उपन्यासों का वस्तु-पक्ष की दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुलवर्ति कमलावती :

पुलवर्ति कमलावती का 'कुमुद्वती' सन् १९२४ में रचित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसे लेखिकाओं द्वारा रचित सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास माना जा सकता है। महाराष्ट्र के १७वीं शती का इतिहास इसका कथानक है।

उपन्यास का सारांश इस प्रकार है–शंभाजी, काम-लोलुप एवं मंदबुद्धि होने के कारण शिवाजी, अपने दूसरे पुत्र राजाराम को राज्यभार सौंपना चाहता हैं। परंतु शंभाजी अपने गुप्तचरों की सहायता से, पिताजी के मंतव्य को जानकर कोंकणराज्य को हस्तगत कर लेता है। पिताजी के स्वर्गस्थ होने से राजाराम अकेला हो जाता है अतः शंभाजी के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाता। सन् १६८० के सिंहगढ़ के युद्ध में मुगलों के हाथों शंभाजी बंदी बनता है। वहीं दिल्ली में शंभाजी बंदी के रूप में विलासरत होकर ११ वर्ष रहता है। एक संधि-पत्र के अनुसार, शंभाजी को मुक्त करने के लिए करोड़ रुपये देने

की बात चलती है। तब तक उसके बदले सिंहबल को जामीन के रूप में रखा जाता है। और धीरे-धीरे जब पूरी धनराशि दी जाती है तब सिंहबल लौट आता है। राज्य के लालच में आकर सिंहबल का भाई दुष्टकेतु, दिल्ली से लौटने वाले सिंहबल को रास्ते में ही हत्या करने का असफल प्रयास करता है और हत्या के आरोप को, उपन्यास की नायिका कुमुद्वती के भाई वीरपाल के सर मढ़ना चाहता है।

कुमुद्वती तथा वीरपाल चंद्रावत वंशज के हैं जिन्हें शंभाजी ने बहिष्कृत कर दिया है। इन दोनों की देखभाल भानोजी करता है, जिसकी कन्या है, स्वयंप्रभा।

मरने से पहले सिंहबल, दुष्टकेतु के कुटिल बुद्धि को बहिर्गतकर, वीर-पाल को कलंक रहित करने के साथ-साथ अपनी संपत्ति तथा सिंहगढ़ राज्य को भी उसे ही सौंपता है। अपनी योजना में असफल दुष्टकेतु, वीरपाल को द्वंद्वयुद्ध के लिए ललकारता है और स्वयं घायल हो जाता है। द्वंद्वयुद्ध के समय शंभाजी, कुमुद्वती को देखकर मोहित हो जाता है। इधर भानोजी, अपनी पुत्री स्वयं प्रभा का ब्याह, कृष्णगढ़ के राजा कुमुदसिंह से करवाना चाहता है लेकिन कुमुदसिंह, कुमुद्वती से रूप लावण्य पर मुग्ध हो कर, एकांत में कुमुद्वती को अंगूठी पहना देता है। जिसके प्रति कुमुद्वती निर्लिप्त रह जाती है। कुमुद्वती शंभाजी के आगे विवाह का प्रस्ताव रखती है। तब शंभाजी इस बात को कुछ दिनों के लिए गुप्त रखना चाहता है। कुमुद्वती इसके लिए मान जाती है। त्र्यंबक, तथा गोविंदसिंह के समक्ष विमलानंद द्वारा मंदिर में उन दोनों का विवाह संपन्न होता हैं। विवाह के प्रमाण पत्र पर शंभाजी तथा कुमुद्वती के हस्ताक्षर लिये जाते हैं। साथ में एक सफेद कागज पर भी शंभाजी के हस्ताक्षर लिये जाते हैं, जिसका महत्व कथा के अंत में है। विवाह के पश्चात् कुमुद्वती, अंगूठी उतारकर कुमुदसिंह को लौटा देती है। विवाह करने के पूर्व ही, कुमुद्वती शंभाजी को यह बता देती है कि चंद्रवत वंशजा है और उनके वंशजों को बहिष्कृत करने के दंड को क्षमा कर दें। शंभाजी यथासमय चंद्रवत वंशजों को क्षमा कर देता है।

शंभाजी यह जानता है कि कुमुद्सिंह, कुमुद्वती से प्यार करता है। अत: त्र्यंबक की सहायता से इन दोनों के मिलन को रोकने में सफल हो जाता है। कुमुदसिंह को सौराष्ट्र गढ़ में बंदी बनाकर रखा जाता है। इधर शंभाजी

सिंहगढ़ का अतिथि बनकर रहता है। लेकिन कुमुद्वती से एकांत में बातें करने का अवसर न पाकर कलावती नामक एक गुर्जर राज्य कन्या द्वारा कुमुद्वती को भगाकर ले आता है। कुमुद्वती, कलावती के साथ धारापुर के एक भवन में आकर शंभाजी से मिल कर अपने विवाह की बात को बहिर्गत करने के लिए कहती है। शंभाजी इसके लिए दो-चार दिन का समय माँगता है। कलावती को भी महाराज्ञी बनाने का लोभ दिलाकर शंभाजी उसे अपने पास रखता है।

कुमुद्वती घर से अदृश्य होने पर उसकी खोज में वीरपाल, सूरसेन तथा भानोजी निकल पड़ते हैं। रास्ते में सौराष्ट्रगढ़ की राजकुमारी अलिकंतला की सहायता से कुमुद्सिंह मुक्त होकर कुमुद्वती की तलाश में निकल पड़ता है। जब वे सब कुमुद्वती के पास पहुंचते हैं तो कुमुद्वती कहती है कि वह अब कन्या नहीं, विवाहिता स्त्री है। एक निश्चित स्थिति पर वह शंभाजी के दरबार में अपने पति को दिखाने का वादा करती है। शूरसेन को, कुमुद्वती के विवाह का समाचार मिल जाने के कारण, वह उसका कहना मानकर सब लोगों को वहाँ से ले जाता है। दिये हुए वचन के अनुसार शंभाजी नहीं आता है। कुमुद्वती शंभाजी की कुटिल बुद्धि का अनुमान लगाती है। वह किसी न किसी प्रकार धारापुर के उस भवन से भाग जाना चाहती है। शूरसेन के द्वारा भेजा गया वह आदमी उसे लोहगढ़ के महल में ले जाता है। कुमुद्वती को संवारकर एक पर्दे के पीछे बैठाया जाता है जहाँ से शंभाजी का राजदरबार दिखाई देता है। वहीं पर शंभाजी के बगल में शूरसेन तथा भानोजी भी आसीन रहते हैं।

ब्राह्मण के वेश में किसी और के द्वारा गलत मंत्र आदि पढाकर जल-जगदगढ़ के राजा रामसिंह की पुत्री लावण्यका से झूठी शादी करने के आरोप में दुष्टकेतु को शंभाजी के आगे प्रस्तुत किया जाता है और लावण्यका से विवाह करने का दंड सुनाया जाता है। इसकी प्रतिक्रिया में दुष्टकेतु, विमलानंद की सहायता से, शंभाजी तथा कुमुद्वती के परिणय का वृत्तांत, सभा सदस्यों के आगे प्रस्तुत करवाता है। शंभाजी पहले तो इस बात को स्वीकारता नहीं किंतु उन दोनों के विवाह के प्रमाण–पत्र को प्रस्तुत किये जाने पर शूरसेन अपने को राणाराजसिंह के रूप में प्रगट करने पर तथा अपने ही मुहर लगे हुए कागज पर चंद्रावत वंशजों को क्षमा करने की बात देखकर, शंभाजी, कुमुद्वती से अपने विवाह की बात स्वीकार कर लेता है। अंत में कुमुद्वती तथा शंभाजी,

लावण्यका तथा शंभाजी, लावण्यका तथा दुष्टकेतु, स्वयंप्रभा और वीरपाल, तथा अळिकुंतला और कुमुदसिंह के परिणयों के साथ उपन्यास की परिसमाप्ति होती है। उपन्यास में इतिहास एवं कल्पना का विशिष्ट समन्वय उपलब्ध हुआ है। महाराष्ट्र युग की पृष्ठभूमि और वातावरण का गंभीर अध्ययन के पश्चात् ही उपन्यास की कथावस्तु का संचयन किया गया है। लेखिका ने स्वयं यह स्वीकारा कि "उन्होंने अंग्रेजी कवि राइनाल्ड् कृत 'मार्गरेट' उपन्यास की कथा से अत्यंत प्रभावित होकर इस उपन्यास को जिज्ञासामय एवं रसमय बनाया है।"[1]

इस उपन्यास की नायिका है कुमुद्वती। उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्रों के अंतर्गत शंभाजी, वीरपाल, शूरसेन, कुमुद्सिंह, लावण्यका आदि का नाम लिया जा सकता है। कुमुद्वती साहसी वीरांगना के रूप में चित्रित की गयी है। आयुधागार में छिपे हुए सत्तर कवचधारी सैनिकों के बीच से साहस तथा अपनी चतुर बुद्धि का परिचय देते हुए बाहर निकल पाना और चंद्रगढ़ के लोगों की रक्षा करना आदि घटनायें कुमुद्वती के चरित्र के विकास में सहायक होती हैं। इसके साथ मानव सहज कमजोरियाँ भी उसके चरित्र में पायी जाती हैं जैसे महाराज्ञी बनने की लालसा के कारण कुमुद्सिंह को त्याग देती है और शंभाजी से विवाह करती है। उपन्यास में एक ओर कुमुदसिंह तथा वीरपाल जैसे सुगुण संपन्न, सुदृढ चरित्र एवं अटल विश्वास रखनेवाले मानवतावादी राजा एवं वीर योद्धाओं का चित्रण हुआ है तो दूसरी ओर स्त्री लोलुप, कामांध, कुटिल बुद्धि एवं चरित्रहीन शंभाजी और दुष्टकेतु जैसे नरेशों का भी चित्रण हुआ है। जहाँ एक ओर पति परायणा, साध्वीमणि कुमुद्वती तथा निश्चल प्रेम के प्रतीक स्वयप्रभा और अळिकुंतला जैसी स्त्रियाँ रही हैं वहाँ दूसरी ओर अळिकुंतला की माँ शोणवती एवं कलावती जैसी काम की पुतलियाँ भी रही हैं।

शंभाजी के चरित्र के संबंध में लेखिका स्वयं टीका टिप्पणी करती है– "शंभाजी ४० वर्षीय, स्थूलकायी, बलशाली नरेश है। लेकिन मंदबुद्धि होने के कारण कई युद्धों में पराजित होना पडा। सिंहगढ़ के युद्ध में बंदी होकर दिल्ली ले जाया गया। दिल्ली में रहते समय विलासमय जीवन का आदि हो जाता है। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसके मन को हर सकनेवाली कोई कन्या

१. कुमुद्वती – प्राक्कथन से उद्धृत

न मिलने के कारण उसने पुनः विवाह नहीं किया। चपल चित्त होने के कारण वह स्त्री लोलुप बना। यही उसकी सब से बड़ी दुर्बलता।"[१]

महाराष्ट्र के इतिहास से संबंधित तथ्यों को आधारभूत मानकर, तत्कालीन स्त्री, पुरुषों के मनोभावों तथा महाराष्ट्र संबंधी आचार-विचारों का चित्रण कर, राजनीतिक क्षेत्र को अत्यंत प्रभावित करनेवाली नारियों के चरित्र को उभारना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है। इस उपन्यास में लेखिका की कथा कुमुद्वती के चारों ओर घूमती है। उपन्यास में लेखिका ने तत्कालीन प्रेम-प्रणय, धर्म-कर्म, नीति-नियम आदि मान्यताओं को भी यथेष्ट मात्रा में प्रतिबिंबित किया है।

कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा :-

'वसुमती' सन् १९२५ ई. में प्रकाशित श्रीमती कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा का सामाजिक उपन्यास है। लेखिका का जन्म प्राचीन ब्राह्मण परिवार में संपन्न हुआ है। फिर भी अपने धर्म, मत, समाज, साहित्य आदि रूढ़ियों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने की स्तुत्य चेष्टा की है।

इस में वसुमती नामक एक ब्राह्मण युवती की करुण गाथा चित्रित है। वसुमती वह सुंदर, सुशिक्षित एवं सुशीला है। भाई रामचंद्र के कारण ही वसुमती को बचपन में ही अच्छी शिक्षा प्राप्त होती और पिता का अभाव भी नहीं खटकता। वसुमती का विवाह अपनी नौ साल की उम्र में ही आनंद से होता है। आनंद अपने हाईस्कूल की शिक्षा समाप्त कर नरसरावपेटा से उच्च शिक्षा के हेतु गुंटूर जाता है। वहाँ पर अपने मित्र गोपाल की कुसंगति के कारण दुर्व्यसनों का शिकार हो जाता है। उसी समय उसका परिचय नागमणि नामक एक वेश्या से हो जाता है। इस बात का पता आनंद के बड़े भाई तहसीलदार सुब्रह्मण्यम को रामचंद्र के द्वारा पता चलता है। वे और उसकी माँ कामाक्षम्मा आनंद को खरीखोटी सुनाते हैं। भाई की डाँट फटकार से आनंद सही रास्ते पर आने का प्रयत्न करता है। लेकिन नागमणि के प्रभाव में आकर उसके लिए अपनी संपूर्ण संपत्ति लुटाने लगता है। सुब्रह्मण्यम सोचता है कि वसुमती को घर ले आने से आनंद अपने आप सुधर जायेगा। इसलिए १३ साल की वसुमती को ससुराल लाया जाता है। वसुमती को घर लाने की बात पर ही सुब्रह्मण्यम्, आनंद को अपनी जयदाद का

---

१. कुमुद्वती–पृष्ठ : ५७

हिस्सा देना चाहता है। इस कारण भी आनंद वसुमती को घर लाना चाहता है। लेकिन वसुमती को वह किसी भी प्रकार का सुख चैन नहीं मिलता। इतने में सुब्रह्मण्यम् का स्थानांतरण होने के कारण अपनी माता के साथ मद्रास चला जाता है। आनंद स्त्री-शिक्षा का इतना कट्टर विरोधी है कि वसुमती की सभी पुस्तकों को अग्निदेव के सुपूर्द कर देता है। एक दासी के रूप में वसुमती के द्वारा नागमणि की सभी सेवाएँ करवाता है। इसी बीच नागमणि को आनन्द मद्रास घुमाने ले जाता है और वसुमती को मैके भेज देता है। मद्रास की सैर के पश्चात् नागमणि धनार्जन के लिए आनंद को प्रोत्साहित कर रंगून ले जाती है। जैसे जैसे आनंद की संपत्ति घट जाती है, वैसे नागमणि आनंद से दूर हो जाती है। तभी वह वसुमती के प्यार का मूल्य पहचान कर उसके नाम चिट्ठी भेजता है। पति के कुशल-समाचार के लिए तडपनेवाली रोगिणी वसुमती के लिए आनंद का पत्र दवाई का काम करता है। दुखी आनंद को वहीं सुंदररामय्या की फेक्टरी में छोटी नौकरी मिल जाती है। सुंदररामय्या जान लेता है कि आनंद का जीवन सही रास्ते पर नहीं चल रहा है। और आनंद को स्वदेश वापस भेज देता है। आनंद वसुमती से मिल कर क्षमा याचना करता है और उन दोनों का जीवन सुखमय बन जाता है।

वसुमती तथा आनंद की मुख्य कथा के साथ-साथ रामचंद्र तथा त्रिपु-सुंदरी की गौण कथा भी चलती है। त्रिपुसुंदरी का विवाह रामचंद्र से बिना दहेज से कराकर लेखिका ने एक आदर्श प्रस्तुत किया।

वसुमती इस उपन्यास की नायिका है जो तत्कालीन भारतीय पतिव्रता आदर्श नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वसुमति सुंदर, सुशिक्षित, सहृदय एवं सुसंस्कृत सीधी सादी नारी है जो अपनी त्यागमयी भावना तथा दृढ़ संकल्प के कारण नागमणि के पीछे पागल अपने पति को कुमार्ग से सुमार्ग पर लाने में समर्थ होती है। जिस में परिस्थितियों ने भी वसुमती की यथेष्ट सहायता की है। पति द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर भी वसुमती किसी से भी अपने पति के विरुद्ध कुछ नहीं कहती। वह इसी में विश्वास रखती है कि उसका पति एक न एक दिन अपनी भूल समझ कर उसे अवश्य अपनाएगा। वसुमती के चरित्र-चित्रण में लेखिका ने अपना पूर्ण कौशल दिखाया है। वसुमती कर्म-सिद्धांत

एवं ईश्वर में अटल विश्वास रखनेवाली और परंपरागत वातावरण में पली गयी नारी होने के कारण ही अपने पति के सभी अत्याचारों को क्षमा कर पाती है।

आनंद उच्च संस्कार परिवार का व्यक्ति होने पर भी गोपाल नामक एक धनवान के कुसंगति में पड़कर कामलोलुप बन जाता है। वसुमती जैसी नारीमणि को पाकर भी नागमणि जैसी वेश्या के पीछे पागल होने के कारण वसुमती का मूल्य पहचानने में असमर्थ रहता है। नागमणि आनंद को निर्धन एवं एकाकी बनाकर चली जाती है तब आनंद अपनी अक्षम्य अपराध को पहचान कर वसुमति से क्षमा याचना करता है। आनंद स्त्री शिक्षा का कटु विरोध करता है। आनंद पात्र के द्वारा लेखिका ने जहाँ एक ओर तत्कालीन पुरुषों के अत्याचार तथा दुर्बलताओं को प्रस्तुत करना चाहा वहाँ दूसरी ओर विद्यावान्, सुगुणसंपन्न, दयाद्र-हृदयी, स्त्री-शिक्षा-समर्थक तथा दहेज प्रथा के विरोधी रामचंद्र जैसे पात्र का चित्रण कर समाज में प्रचलित विपरीत मनः स्थितियों का सुंदर अवलोकन कराया है। रामचन्द्र के ही समान साधु-स्वभाव वाला पात्र है कृष्णमूर्ति भी। वेश्या नागमणि पात्र के द्वारा लेखिका ने तत्कालीन नारी समाज के दूसरे पक्ष पर भी प्रकाश डाला।

इस प्रकार समाज के भिन्न स्वभाववाले व्यक्तियों को लेकर तत्कालीन समाज का चित्रण करते हुए समाज को सही रास्ते पर लाने का, लेखिका ने प्रयत्न किया है। इस से लेखिका की सुधारवादी दृष्टिकोण का पता चलता है। इस युग में भी लेखिकाओं ने स्वयं तत्कालीन समाज में प्रचलित दुराचारों का प्रत्यक्ष रूप में कहीं भी खंडन नहीं किया है, केवल उनका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना ही अपना ध्येय माना है।

इस प्रकार लेखिका ने कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा उद्देश्य, तीनों तत्वों के द्वारा हमारे सामने तत्कालीन समाज की परिस्थितियों के आधार पर नारी के प्रमुख दो पक्षों का चित्रण प्रस्तुत किया है—सबल पक्ष तथा दुर्बल पक्ष। वसुमति सबल पक्ष का प्रतीक है तो नागमणि दुर्बल पक्ष का। इतना ही नहीं लेखिका ने यह भी संकेत दिया है कि नारी को अपने उद्धार केलिए सहनशीलता, क्षमा, सेवा-भाव, आदि आदर्शवादी गुणों को ही संबल के रूप में ग्रहण करना चाहिए जो व्यावहारिक जीवन में कुछ कष्ट-साध्य सा है। अतः कहा जा सकता है कि वस्तु पक्ष की दृष्टि से यह आदर्शवादी उप-न्यास है।

पुलगुर्तु लक्ष्मी नरसमांबा :-

'सुभद्रा' पुलगुर्तु लक्ष्मी नरसमांबा का सन् १९२५ में प्रकाशित एक पौराणिक उपन्यास है। लेखिका ने महाभारत की एक अनन्य पात्रा सुभद्रा के उत्कृष्ट चरित्र का उद्घाटन करने के उद्देश्य से ही इस उपन्यास की रचना की है। श्री विधुभूषण के द्वारा बंगला में रचित 'सुभद्रा चरित्र' इसका आधार है।[1]

'सुभद्रा' की कथा द्वापर युग में आरम्भ होती है जब भगवान श्रीकृष्ण मर्त्य लोक में अवतार-पुरुष के रूप में जन्म लेते हैं। श्रीकृष्ण, सुभद्रा से अर्जुन की योग्यता तथा उसके महान गुणों की प्रशंसा करता है तो सुभद्रा, अर्जुन के प्रति अनुरक्त होती है। श्रीकृष्ण की प्रेरणा तथा सहायता से सुभद्रा तथा अर्जुन का विवाह सम्पन्न होता है। सुभद्रा के विवाह के कारण यादव तथा पांडव कुलों में सम्बन्ध दृढ़तर हो जाता है। कुछ महीनों के पश्चात् अर्जुन, सुभद्रा के साथ इंद्रप्रस्थ चला जाता है। वहाँ द्रौपदी अपनी सपत्नी सुभद्रा का आदरपूर्वक स्वागत करती है।

इसी अवधि में श्रीकृष्ण, भीम तथा अर्जुन की सहायता जरासंध तथा शिशुपाल का वध कर राज्य में शांति की स्थापना करता है। दूसरी ओर दुर्योधन पांडवों को वनवास भेज देता है। उसी समय पांडवों के संग द्रौपदी भी वनवास करती है। तब सुभद्रा, अभिमन्यु तथा अन्य पाँच पुत्रों के संग, श्रीकृष्ण के उपदेशानुसार द्वारका चली जाती है। तेरह साल के वनवास के पश्चात् पांडव वनवास से लौट आते हैं। उसी समय अभिमन्यु के विवाह की बात मत्साधिपति विराट की पुत्री उत्तरा के साथ पक्की की जाती है। सुभदा को पांडवों के सकुशल लौटने की खुशी तो रहती है लेकिन उनके द्वारा कौरवकुल के नाश की शंका से विचलित हो जाती है। श्री कृष्ण, सुभद्रा को विश्वरूप का दर्शन करा कर उसे समझाते हैं कि इस विश्व में अधर्म का नाश तथा धर्म की स्थापना आवश्यक है। अत: कुरुक्षेत्र संग्राम अनिवार्य है। और यह भी उपदेश देता है कि उसे भगवान में ही संपूर्ण विश्वास रखना है तभी वह इस भवसागर से पार पायेगी। कुरुक्षेत्र-युद्ध के प्रारंभ में अर्जुन अपने गुरुजनों के साथ युद्ध करने से इंकार करने पर श्री कृष्ण फिर से अपना विश्वरूप दिखाकर, धर्म स्थापना के लिए उसको युद्ध

---

१) पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमांबा – सुभद्रा–भूमिका से उद्धृत

करने के लिए कहता है। फिर पांडवों के भीषण युद्ध से कौरव लोग भयकंपित होते और विजय की लालच से पद्म-व्यूह रचते हैं, जिसमें अभिमन्यु उस व्यूह में शत्रुओं का शिकार हो जाता है। सुभद्रा पुत्र वियोग के कारण शोक विह्वल हो जाती है तभी कृष्ण जीवन-मृत्यु, धर्म-अधर्म, आदि पर उपदेश देकर सुभद्रा को पुत्र शोक से विमुक्त कराता है। पांडवों के विजय के पश्चात् गांधारी अपनी सौ बहुओं को विधवा के रूप में देख कर पागल-सी, हो जाती है और श्री कृष्ण को शाप देती है कि ठीक ३६ साल पश्चात यादव वंश का सर्वनाश हो जायँगा। सुभद्रा को फिर से श्री कृष्ण धर्मोपदेश देता है। ठीक ३६ साल के पश्चात् प्रलय के कारण असंख्य यादव लोगों का नाश हो जाता है। उस समय श्री कृष्ण भी अपने अवतार की परिसमाप्ति कर लेते हैं। प्रलय शांत होने के पश्चात पांडव वानप्रस्थ ग्रहण कर लेते हैं। द्रोपदि भी उनके संग जाती है। युधिष्ठर, परीक्षित को हस्तिनापुर के सिंहासन पर तथा वजुड को इंद्रप्रस्थ के सिंहासन पर बैठा कर दोनों को सुभद्रा की देख-रेख में छोडकर जाते हैं। सुभद्रा, श्री कृष्ण के उपदेश के कारण राज्य में रहकर भी निष्काम योगिनी बनकर अपने कर्तव्यों को निभाती रहती है।

इस उपन्यास की कथा पौराणिक होने के कारण लेखिका की मौलिकता की उद्-भावना के लिए अवसर नहीं मिला है। इसकी घटनायें महाभारत की कथा से ग्रहण की गयी हैं। सुभद्रा के चरित्र पर प्रकाश डालनेवाली घटनाओं पर यथेष्ठ ध्यान दिया गया है। यह चरित्र प्रधान होने पर भी कथानक तत्व भी उतनी ही मात्रा में उभर आया है। सुभद्रा की मनोगत भावनाओं का कलात्मक वर्णन प्रस्तुत कर, कथानक को सहजता एवं स्वाभाविकता प्रदान करने में लेखिका काफी हद तक सफल रही है। वर्णनात्मक तथा संवाद शैलियों के माध्यम से कथानक का विकास दिखाई पडता है। जीवन-मृत्यु, पाप-पुण्य आदि तत्व-चिंतन गंभीर विषय भी सरस शैली के कारण सुबोध हुए हैं।

उपन्यास के सभी पात्र जगप्रसिद्ध महाभारत के ही पात्र हैं फिर भी उसके सहज विकास को प्रस्तुत करने में लेखिका की कुशलता दिखाई देती है। उपन्यास की केंद्र-बिंदु 'सुभद्रा' ही रही हैं जिसके चरित्र का विकास श्रीकृष्ण पात्र के द्वारा सूचित कराया गया है। सुभद्रा श्रीकृष्ण के द्वारा दिये गये उपदेशात्मक वचनों, दार्शनिक तथा धार्मिक सूत्रों से प्रभावित होकर अपने को सार्थक बनाती हुई चित्रित की गयी है। इस रचना में कई सामाजिक, राज-

नीतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के चित्रण के साथ पात्रों के आंतरिक संघर्ष तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का भी सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास के माध्यम से सुभद्रा पात्र का विकास सूचित करने के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के द्वारा कई दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया गया है।[1] इस प्रकार सुभद्रा एवं कृष्ण का चरित्र चित्रण, मूल उद्देश्य को उभारने में सहायक दृष्टिगोचर होते हैं। यह आलोच्य उपन्यास पौराणिक उपन्यास–क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है।

मल्लादि बुच्चम्मा :-

इनका 'लंकापति' सन् १९२५ ई. में प्रकाशित एक लघु उपन्यास है। अंग्रेजी कवि वाल्टर स्काट के काव्य 'दि स्टोरी आफ दि लार्ड आफ दि ऐलेंड्स' से कथा ग्रहण कर लेखिका ने उसमें यत्किंचित् परिवर्तन एवं परिवर्धन कर उसे उपन्यास का रूप देने का प्रयास किया है। लेखिका ने उपन्यास के आरंभ में लिखा है कि 'उपन्यास के कथानक का घटनास्थल तथा पात्रों के नामों का उल्लेख पाठकों की आवश्यकता के अनुसार मूल पद्य कथानक से भिन्न रूप में परिवर्तन किया गया है।[2]

लेखिका ने इस उपन्यास के कथानक को आंध्र प्रांत के गोदावरी नदी के इर्द–गिर्द घटित करवाया है। कथानक को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। यह कृति ४० पृष्ठों की होने पर भी इसे कहानी न कहकर लघु उपन्यास ही कहना अत्यंत समीचीन इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि इस में पात्रों के साथ साथ घटनाओं की बहुलता भी दिखाई देती है। कथानक को अन्य कृति से ग्रहण करने के कारण लेखिका की स्वतंत्र कल्पना संपूर्ण रूप से उभर नहीं पायी। प्रेम, विवाह जैसे सामाजिक समस्याओं को लेकर इस उपन्यास का कथानक ऐतिहासिक धरातल पर पनपता है। गोदावरी प्रांत में लंकापति के राजा रामराजु कडियम् की राजकुमारी सुंदरम्मा से विवाह

---

१. सुभद्रा – पृष्ठ : ७८, १४०, १४८

2. The scene of the story as well as the names of the characters that occur in the original poem are replaced by more familiar ones so as to suit the needs of the readers for whom this little book is intended. ---Perfactory note ... Lankapathi.

निश्चित किया जाता है। उन दिनों में प्रचलित परिपाटी के अनुसार विवाह केलिए वधु स्वयं वर के यहाँ जाया करती है। सुंदरम्मा भी अपने भाई गोपाल राजु तथा अन्य परिजनों के साथ रामराजु के घर आती है। विवाह के दिन सुंदरम्मा बहुत ही निराश एवं दुखित दिखाई देने लगती क्योंकि उसे यह पता है कि रामराजु किसी अन्य स्त्री से प्रेम कर रहा है तथा इसी कारण सुंदरम्मा से विवाह करने में विलंब भी कर रहा है। जिस दिन रामराजु के घर सुंदरम्मा का आगमन हुआ उस दिन रामराजु अनुपस्थित रहता है। विवाह के दिन पुरोहित के आने में विलंब होता है। इसी समय उस भवन में दो पुरुष तथा एक स्त्री का आगमन होता है। रामराजु तथा नवागंतुक स्त्री लीलावती एक दूसरे से आँखों ही आँखों में बातें कर लेते हैं, जिससे उनके पूर्व परिचय का आभास हो जाता है। लीलावती के साथ आये हुए उसके भाई रंगराजु तथा भूपति, गोपालराजु के शत्रु वर्ग के हैं। अतः उन दोनों में वहाँ पर झगड़ा छिड़ जाता है। पुरोहित के आगमन से यह संघर्ष रुक जाता है। रामराजु के द्वारा रंगराजु का पक्ष लिये जाने के कारण गोपालराजु कुपित होकर अपनी बहिन का विवाह किसी अन्य मित्र के साथ करना चाहता है। इसी बीच सुन्दरम्मा किसी से बिना बताये भाग जाती है। गोपालराजु, रंगराजु तथा रामराजु को युद्ध के लिए ललकार कर चला जाता है। दुर्भाग्यवश सुन्दरम्मा जंगली जाति के लोगों के फंदे में फंस जाती है। रंगराजु तथा रामराजु के द्वारा युद्ध के लिए अपने लोगों को सतर्क करने जाते समय मार्ग में किसी जँगल में रुकना पड़ता है। वहाँ पर संयोग-वश उनका परिचय उन शिकारियों से होता है जहाँ पर सुन्दरम्मा पुरुष वेष में कैद रहती है। शिकारियों को मारकर वे सुन्दरम्मा को मुक्त कर अपने साथ ले जाते हैं। सुन्दरम्मा पुरुष वेश में रहने के कारण और गूँगा सा अभि-नय करने के कारण, वे दोनों उसको पहचान नहीं पाते। पुरुष वेश में रहने वाली सुन्दरम्मा को रंगराजु ले जाकर अपनी बहिन लीलावती के पास रखता है जो एक मठ में रहती है। रंगराजु जब अपनी बहिन के समक्ष रामराजु से विवाह करने का प्रस्ताव रखने पर लीलावती नाराज होकर कहती है कि जब तक वह सुन्दरम्मा को रामराजु के द्वारा पहनायी गयी अंगूठी वापिस ला कर नहीं देगा तब तक वह उससे विवाह नहीं कर सकेंगी। इन बातों को सुनकर सुंदरम्मा एक दिन प्रातः काल मठ में आकर अपनी अंगूठी लीलावती के कमरे में छोड़कर चली जाती है। तभी लीलावती को यह पता चलता है कि पुरुष वेश में उसके भाई के साथ आया हुआ व्यक्ति उच्चकुल वंशजा

सुन्दरम्मा ही है। तुरंत वह दासी से सुन्दरम्मा को अपने पास ले आने का आदेश देती है। तब तक सुन्दरम्मा, गोपालराजु तथा रंगराजु के बीच होने वाले युद्ध स्थल में पहुंच जाती है। और वहाँ पर रामराजू का पक्ष लेकर उनकी सहायता करती रहती है। लेकिन दुर्भाग्यवश विश्राम करते समय, गोपालराजु के सैनिकों के हाथ में पड़ जाती। उसे गोपालराजु के आगे उपस्थित किये जाने पर मरणदंड सुनाया जाता है, फिर भी वह रामराजु के सैनिकों के अड्डों का पता नहीं बताती और भाई गोपालराजु से भी अपने संबंध में कुछ नहीं कहती है। लेकिन इतने में रंगराजु तथा रामराजु वहाँ पहुँचकर गोपालराजु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और सुंदरम्मा मुक्त होकर लीलावती के पास ले जायी जाती है। तब तक लीलावती सन्यास ग्रहण कर लेती है। लीलावती चाहती है कि सुंदरम्मा और रामराजु के बीच प्रेम बढ़े और स्वयं दोनों के बीच से हट जाये। सुंदरम्मा से मिलकर लीलावती अत्यन्त प्रसन्न होती है और कहती है कि सुंदरम्मा ही लंकापति की सच्ची साम्राज्ञी बनने योग्य है। रामराजु भी सुंदरम्मा के धैर्य-साहस तथा निस्वार्थ प्रेम की सराहना करता है और अंत में उससे विवाह कर लेता है।

इस उपन्यास के सभी पात्र कल्पित ऐतिहासिक पात्र हैं। इसमें सुंदरम्मा तथा लीलावती पात्रों के माध्यम से तत्कालीन प्रेम के मूल्यों का पता चलता है। सुंदरम्मा अपने मंगेतर की सेवा युद्धभूमि में करती हुई सच्ची प्रेमिका का परिचय देती है, इसलिए वह अपने भाई का पक्ष न ग्रहण कर युद्ध में रामराजु का पक्ष लेती है। अंत में रामराजु द्वारा प्रेम पाकर उस से विवाह कर लेती है। सुंदरम्मा की सहृदयता एवं निस्वार्थ प्रेम का पता तभी चलता है जब लीलावती की रामराजु से विवाह करने की इच्छा से अवगत होकर अपनी अंगूठी, लीलावती के कमरे में छोड़ जाती है। रामराजु तथा लीलावती के पूर्व परिचय को जानकर भी अपने भाई के प्रति वचनबद्ध होकर उससे विवाह करने को तैयार हो जाती है। लेकिन अंत में भाई के विरुद्ध तथा मंगेतर के पक्षपाती बनकर अपनी पति-भक्ति का परिचय देती है।

लीलावती एक आदर्श प्रेमिका होने के नाते ही वह रामराजु तथा सुंदरम्मा के सुखमय वैवाहिक जीवन के लिए स्वयं सन्यासिनी हो जाती है।

रामराजु. लीलावती से प्रेम रखकर भी विवशतावश सुंदरम्मा से विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है। लीलावती का भाई रंगराजु के

प्रति अपनी सच्ची मित्रता का परिचय देते हुए विवाह मंडप में गोपालराजु के विरुद्ध और रंगराजु के पक्ष में खड़ा हो जाता है। अंत तक रंगराजु का साथी बनकर, गोपालराजु से युद्ध कर विजय प्राप्त करता है। युद्ध भूमि में पुरुष वेश में मूर्छित अवस्था में रहनेवाली सुंदरम्मा के प्रति उसकी परिचर्या से उसकी सहृदयता का परिचय मिलता है। अंत में सहर्ष सुंदरम्मा से पाणिग्रहण कर लेता है।

इस उपन्यास में लेखिका ने पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों को अधिक सम्मान एवं प्राधान्य प्रदान कर उनके द्वारा आदर्श का स्थापना की है।

सुंदरम्मा पात्र के द्वारा भारतीय नारी की पति-भक्ति परायणता का आदर्श प्रस्तुत करना ही लेखिका का मुख्य उद्देश्य रहा है। लीलावती पात्र के द्वारा निस्वार्थ-प्रेम तथा त्याग को अंकित करने में ही उपन्यास की सिद्धि मानी जा सकती है।

कथानक मौलिक न होने पर भी सभी अन्य तत्वों में लेखिका ने आंध्र प्रांत का वातावरण लाने में पूर्ण रूप से सफल हो सकी है। यह लेखिका की प्रतिभा एवं रचना-कौशल का सुंदर उदाहरण है। इसकी नायिका के द्वारा प्राचीन क्षत्राणी के आदर्श फिर प्रस्तुत करने के कारण एवं संपूर्ण कथानक केवल क्षत्रिय परिवारों के मध्य में ही घटित होने के कारण यह कहा जा सकता है कि इस में आंचलिक उपन्यास शैली का आभास मिलता है। उस दृष्टि से यह एक विशिष्ट उपन्यास है।

चिल्लरिगे रमणम्मा :

श्रीमती चिल्लरिगे रमणम्मा जी का 'रामाश्रममु' ग्राम के अंचल में विद्यमान, आर्थिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में, सन १९२६ में लिखित एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें लेखिका ने अधिकार प्राप्त लोगों, जमींदार, तथा किसानों की विपरीत मनोवृत्तियों का तथा उसके फलस्वरूप उनके जीवन में होनेवाले परिणामों का सुंदर चित्रण किया है।

विशाखपट्टणम जिले के जन्नपुर गांव में जमींदार हैं—गोपालराजू तथा कृष्णंराजु, गोपालराजु के दो पुत्र हैं—रामराजु तथा नरसिंहराजु, गोपालराजु की मृत्यु के पश्चात् कृष्णंराजु ही सभी जमींदारी के कामों को देखता रहता है।

रामराजु तथा नरसिंहराजु की शादियाँ क्रमश: सरला तथा कमला से होती हैं। रामराजु उचित शिक्षा पाने के लिये विदेश जाने की इच्छा प्रकट करने पर कृष्णंराजु मना कर देता है जिससे रामराजु अपनी पत्नी को भी बिना बताये विदेश चला जाता है। नरसिंहराजु को अपनी जमींदारी का दंभ है। वह धनार्जन के पीछे इतना पागल रहता है कि वह अपनी जागीर में काम करनेवाले किसानों को सताकर विभिन्न करों के नाम पर उन से धन चूसता रहता है। वयस्क होने पर नरसिंहराजु स्वयं अपने जायदाद की देखभाल करना चाहता है। वह अपने चाचा कृष्णंराजु की परवाह नहीं करता।

हरहरपुरम में रहनेवाले नरसिंहराजु के मामा जमींदार केशवचंद की दो लड़कियाँ होती हैं। पहली पुत्री विमला बाल-विधवा है। नरसिंहराजु सोचता है कि विमला की कामवासना को भड़का कर, उसे अपने वश में कर लेने से, केशवचंद्र की संपूर्ण संपत्ति का वह मालिक बन सकता है। इसी लक्ष्य पूर्ति के लिए वह मैनेजर बनता है। नरसिंहराजु एक भक्त जैसे श्रीकृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन करते हुए, विमला को राधा के रूप में चित्रित करता है। विमला उसकी बातों में आकर, राधा के रूप में, नरसिंहराजु के प्रति आसक्ति प्रकट करती है। इनके अनुचित संबंध से अवगत होकर, केशवचंद्र कमला से अपने पति को उचित मार्ग पर लाने की चेतावनी देता है। लेकिन कमला अपने प्रयत्नों में असफल रह जाती है। इसके पश्चात् नरसिंहराजु, विमला की जायदाद का वारिश बनने के लिए अपने लड़के मोहन को कमला से पूछे बिना विमला को गोद देता है, इस आघात को सहन न कर सकने के कारण कमला आत्मघात कर लेती है। इस घटना से विमला की आँखें खुलती हैं। विमला, नरसिंहराजु से घृणा करने लगती है और मोहन को अपनी संपूर्ण सम्पत्ति का वारिश बनाकर, विदेश से लौटे हुए तथा सत्कार्यों में तल्लीन रामराजु की देखरेख में छोड़कर स्वयं तीर्थयात्रा से चली जाती है, जो उसके जीवन की अंतिम यात्रा बन जाती है।

नरसिंहराजु अपने चाचा कृष्णंराजु की उपेक्षा करता है। उसके परिवार के लिए जब विपत्ति के दिन आते हैं तो उनकी सहायता नहीं करता है। कृष्णंराजु का बड़ा पुत्र नारायणराजु, मेजिस्ट्रेट बनने पर भी अपने पिता तथा भाई-बहनों की सहायता नहीं करता। अंत में रामराजु के उपदेशों के कारण सन्मार्ग पर आ जाता है। मोहन को प्राप्त संपत्ति को देखकर बाल सहज ईर्ष्या के कारण कृष्णंराजु के दोनों छोटे पुत्र आत्महत्या कर लेते हैं।

रामराजु विदेश से लौटकर गाँव के किसानों के बीच रहकर उनके बीच सुख दुख का भागी बन जाता है। नरसिंहराजु के सेक्रेटरी माधवराव की हत्या के आरोप में जब गाँव के लोग कैद किये जाते हैं तो इन में रामराजु भी रहता है। रामराजु, निर्दोष साबित करके छोड दिया जाता है तो वह अपने प्रयत्नों द्वारा गाँव के लोगों को छुडवाता है। उसी की देखरेख में रह कर मोहन आदर्श चिंतन तथा उच्च विचारवाला युवक बनता है। वयस्क होकर जब मोहन विमला की संपत्ति का वारिश बनता है तो अपने विचारों को आचरण में रखने के उद्देश्य से संपूर्ण संपत्ति को गाँव के लोगों में बाँट देता है। अपने पुत्र मोहन की इस घोषणा से अपने जीवन भर धनार्जन के पीछे पागल नरसिंहराजु, पागल होकर समुद्रगर्भ में विलीन हो जाता है।

रामराजु प्रशांत जीवन व्यतीत करने के लिए उसी गाँव में एक आश्रम की स्थापना करता है जो 'रामाश्रमम्' नाम से प्रसिद्ध बनता है। रामराजु के सदाचार से प्रभावित होकर हिंदु मुसलमानों में एकता लाने के लिए स्थापित एक संस्था के चंदों को हडपनेवाला याकोब, सही मार्ग पर चलकर उस संस्था को समृद्ध एवं सक्रिय बनाने में सफल होता है।

लेखिका ने कथानक को अपने वर्णन कौशल द्वारा सजीव एवं प्रभावोत्पादक बनाया है। कथानक की घटनायें सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित हैं।

आलोच्य उपन्यास के सभी पात्रों की सृष्टि यथार्थवादी सामाजिक धरातल पर हुई है। उपन्यास के पात्र विभिन्न मानवीय स्वभावों को प्रकट करते हुए अत्यंत जीवंत लगते हैं। इस में सभी वर्गों के पात्र समाविष्ट हैं जो अपने वर्गों का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्रों का चित्रण युगानुकूल हुआ है। अत: उन में वास्तविकता, यथार्थता, बौद्धिकता तथा अंतर्द्वंद्वात्मकता आदि सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

इस उपन्यास में एक ओर नरसिंहराजु जैसा पात्र है जो धन मदांध होकर विलासमय जीवन-यापन करने में अपने जीवन की सार्थकता देखता है, तो दूसरी ओर रामराजु ऐसा पात्र है जो साधारण ग्राम्य-जीवन में सुख शांति का अनुभव करता है। नारायणराजु पात्र के माध्यम से लेखिका ने समाज में प्रचलित. घूसखोरी का मार्मिक चित्रण किया है। याकोब पात्र हिंदू-मुसलमनों में एकता की कड़ी के रूप में चित्रित किया गया है।

बाल-विधवा विमला, नरसिंहराजु के संपर्क में आने के क्षण से दमित वासनाओं का शिकार होती है। अंत में कला के आत्मघात से उस की आँखें

खुलती है और सन्मार्ग पर चल पडती है। नरसिंहराजु के कुटिल चरित्र का पता कमला के स्वगत कथनों से होता है।[1] कमला एक सुशील, ग्रामीण भोली युवती है जो अपने पति के अत्याचारों से उत्पीडित होकर प्राण तक त्याग देती है। इस प्रकार उपन्यास के सभी पात्र अत्यंत संवेदनशील बन पडे हैं।

लेखिका ने इस उपन्यास में जमींदारी प्रथा का खंडन तथा साम्यवाद का मंडन किया है।[2] अतः कहा जाता है कि उपन्यास का कथानक अत्यंत विचार-प्रधान तथा सामाजिक है, जिस में समाज में प्रचलित तत्कालीन बहुत ही समस्याओं का चित्रण किया गया है। रामराजु तथा मोहन पात्रों के द्वारा संपूर्ण जमीन को किसानों में बाँट कर लेखिका ने परोक्ष रूप से साम्यवाद का प्रतिपादन किया है। आलोच्य उपन्यास में संपत्ति के आधिक्य से होनेवाले दुष्परिणामों को नरसिंहराजु पात्र द्वारा व्यक्त कराया गया है। याकोब पात्र के द्वारा हिंदू-मुसलमानों के मध्य में मेल कराने का स्तुत्य प्रयास हुआ है।[3] नारायणराजु तत्कालीन समाज के रिश्वतखोरों के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित है जो अंत में रामराजु के सद्व्यवहार से स्वयं सदाचार संपन्न बन जाता है। तत्कालीन समाज में प्रचलित जमींदारों के अत्याचारों का तथा जमींदारी-प्रथा के विरुद्ध जमींदारी वर्ग तथा किसान वर्ग के बीच के संघर्ष को चित्रित कर अंत में किसान वर्ग के विजय को सूचित करना, लेखिका के स्वतंत्र एवं साहसी विचारों का द्योतक है।

कथावस्तु, चरित्र-चित्रण तथा उद्देश्य की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास इस चरण के समस्त तेलुगु उपन्यासों में विशिष्ट तथा परिपक्व घोषित किया जा सकता है। इस प्रकार समसामयिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्या को कथानक के रूप में स्वीकार करके सफल उपन्यास को प्रस्तुत करना वास्तव में लेखिका के बौद्धिक उत्कर्ष, सामाजिक-बोध की अनुभूति तथा मानवतावादी दृष्टिकोण का ज्वलंत उदाहरण है।

अट्लूरी सीतम्मा :-

श्रीमती अट्लूरि वेंकट सीतम्मा कृत 'रूपवती' सन् १९१८ में ही रचा गया है परंतु, उसका प्रकाशन सन् १९२६ में हुआ। ब्रह्मश्री चिलकमूर्ति नर-

---

१. रामाश्रममु – पृष्ठ : २३३ २. रामाश्रममु – पृष्ठ : २८७-८८
३. ,, ,, २०१

सिहम् द्वारा रचित 'राजस्थान कथावली' की एक कथा 'मोकल राणा चरित्रमु' इस उपन्यास का आधार है ।[1]

काच तथा मेरु मेवाड राज्य के मुकुळ राणा के चाचा हैं जो अपने भतीजे को मारकर सिंहासन हस्तगत करना चाहते हैं। इसकी नायिका क्षत्रिय कन्या 'रूपवती' है जो सुजा की एकमात्र पुत्री है रूपवती नाम के अनुरूप ही अत्यंत सौंदर्यवती है । बसंत के आगमन पर, एक दिन जब वह अपने घरवालों के साथ वन-विहार जाती है तो जंगली नेता भीम उनके गहने लूटकर रूपवती को भी उठाकर ले जाता है। काच-मेरु, मुकुळ राणा को मार डालने की योजना बनाते हुए इन जंगली नेता के पास पहुंचते हैं। सब मिलाकर षड्यंत्र रचते हैं कि राणा को आखेट के बहाने जंगल में बुलाकर वहीं समाप्त कर दें। राजा को काच-मेरु आखेट के बहाने जंगल में लाते हैं तो जंगली लोग उस पर प्रहार करते हैं इतने में राजा का सेनापति प्रतिविंदु, वहाँ पहुँचकर राणा की रक्षा करता है। फिर भी रात में काच--मेरु राणा की हत्या करने में सफल हो जाते हैं। सुबह होते ही रणा की हत्या का समाचार राज्य-भर में फैल जाता है किंतु हत्यारों का पता नहीं चलता । मुकुळ राणा का लडका श्री कुंभ राजगद्दी पर बैठता है। प्रत्यविंदु हत्यारे का पता लगाने के प्रयत्न में रहता है। काच--मेरु जंगली लोगों को रुपये देकर रूपवती को उठाकर ले जाते हैं। वे लोग अपने साथियों के साथ जंगल के एक गढ़ में रूपवती को बंदी कर देते हैं। काच, रूपवती से विवाह करना चाहता है। किंतु, रूपवती उसे अपने पिता तुल्य मानती है। काच की पुत्री सुनंदा, जो रूपवती के समवयस्क है, रूपवती को बंदी के रूप में देखकर उसकी सहायता करने केलिए तैयार हो जाती है। सुनंदा अपने पिता से घृणा करने लगती है। उसी जंगल के एक ऋषि के पास, जो राणा के हत्यारे को पकडने की तलाश में रहता है, काच पहुंचता है। काच के द्वारा ऋषि को विदित होता है कि रूपवती उसके घर बंदी बनायी गयी है। वही ऋषि सुजा से रूपवती की सहेली वृंदारिका से और प्रत्यविंदु से मिलकर रूपवती को मुक्त करने की तथा राणा के हत्यारों को पकडने की सफल योजना बनाता है। राणा के पुत्र श्री कुंभ पडोस के राजा की सहायता से प्रतिविंदु, काच तथा मेरु का वध कर, रूपवती को मुक्त कर उससे विवाह कर लेता है।

उपन्यास की कथा में मौलिकता की मात्रा के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें ऐतिहासिक वातावरण का भी

---

१. रूपवती – विज्ञप्ति – पृष्ठ : २

यथेष्ट मात्रा में समावेश पाया जाता है। फिर भी उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यों के संबंध में भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता क्योंकि लेखिका ने जैसे आरंभ में ही बताया है ऐतिहासिक घटना के स्थान पर कल्पित कथा को आधार रूप में लिया गया है। लेखिका ने चमत्कारपूर्ण संवाद तथा रोचक घटना-चित्रण के द्वारा कथानक में सजीवता लाने का सफल प्रयास किया है।

पात्र ऐतिहासिक होने के कारण चरित्र चित्रण में विशेष मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती। लेकिन जहाँ तक पात्रों का विकास सूचित है, लेखिका ने उनमें सहजता लाने का प्रयत्न किया है। रूपवती के चरित्र विकास पर लेखिका ने अधिक प्रकाश डाला है।[1] काच-मेरु, उपन्यास के दो खल पात्र हैं जो परिस्थितियों के वश में आकर, राज्याधिकार प्राप्त करने का असफल प्रयत्न करते हैं और रूपवती के रूपलावण्य पर मुग्ध होकर विवेकशून्य हो जाते हैं। राज्याधिकार तथा धनाकांक्षा के कारण वे राणा तथा जंगली लोगों के नेता की हत्या करने केलिए भी उद्यत होते हैं। भ्रत्यविंदु एक स्वामिभक्त सेनापति के रूप में चित्रित है।

उद्देश्य के संबंध में कहा जा सकता है कि इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने राज्याधिकार में, निस्सारता, धनाकांक्षी होने के दुष्परिणामों को सूचित करने की चेष्टा की है। उपन्यास के अंत में एक स्थान पर लेखिका प्रत्यक्ष रूप से उपदेश देती है – "हे पाठकगण। दूसरों के राज्य, दूसरों की स्त्री, दूसरों के धन की अपेक्षा करने वाले कभी प्रगति नहीं कर सकते। अपने निजी मनोरथ की पूर्ति भी नहीं कर सकते। अन्याय के द्वारा प्राप्त करने वाले लाभ या सुख थोडे समय केलिए बने रह सकते हैं किंतु बाद में बहुत ही दुख प्रदान करने वाले होते हैं। सज्जन यदि आरंभिक दशा में कठिनाइयों तथा दुख का सामना करते हैं तो भी वे कुछ ही समय केलिए होते हैं जो अंत में अनगिनत लाभ तथा अमिट सुख को पाते हैं।"[2] उक्त उद्धरण का प्रतिपादन ही लेखिका का उद्देश्य है।

इस उपन्यास की रचना तब हुई थी जब आंध्र का इतिहास उपन्यास की कथावस्तु के रूप में ग्रहण करने योग्य नहीं माना गया था न ही आंध्रों के इतिहास की महत्ता का प्रचार ही। अतः उत्तर भारत की कथा को ग्रहण करने

---

१. रूपवती – पृष्ठ : ९०–९५

१. रूपवती – पृष्ठ : ११८–११९

से तत्कथानक संबंधी वातावरण का निर्माण करना लेखिका केलिए अनिवार्य बन गया। तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यासों की आरंभिक दशा को प्रकट करने केलिए 'रूपवती' एक उत्तम उदाहरण होता है।

सन् १९३४ में रचित श्रीमती अट्लूरि वेंकट सीतम्मा का ही दूसरा सामाजिक उपन्यास है 'राधामाधवम्'। इसमें तत्कालीन आचार-विचारों का तथा रीति-रिवाजों का यथेष्ठ मात्रा में चित्रण संपन्न हुआ है।

आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के रामचन्द्रापुरम में श्लिष्टा शेषावधानी नामक विधुर रहते हैं। इनकी संतान रामावधानी, वेंकटनरसु तथा राधा हैं। रामावधानी की पत्नी सीतम्मा और वेंकटनरसु की पत्नी पार्वतम्मा, सब मिल कर एक ही घर में रहते हैं। राधा, अपने भाई तथा भाभियों के लाड़ प्यार में पलती हैं। आठ वर्ष की अवस्था में ही वेमूरि वेंकट शास्त्री के छोटे पुत्र माधव से उसका विवाह होता है। शेषावधानी तथा रामावधानी के झगड़ालू स्वभाव से उस गांव के लोग असंतुष्ट हैं। इसी कारण बदला लेने के उद्देश्य से गाँव के लोग रामावधानी के परिवार पर झूठा आरोप लगाते हैं, परिणाम स्वरूप राधा के ससुराल वाले उसे वहीं छोड़ कर चले जाते हैं। राधा के भाई राधा को चाहते हुए भी, उसके ससुराल वालों से क्षमा याचना नहीं करते। इसी कारण वे राधा को ससुराल न भेजकर शिक्षा-दीक्षा दिलवाते हैं। राधा पढ़ाई में अत्यंत रुचि लेती है और भाषण आदि प्रतियोगिता में भाग लेती है। एक बार राधा अपने रिश्तेदारों के यहां जाकर रात में लौटते समय कुछ चोर राधा को उठाकर ले जाते हैं। राधा के सारे गहने छीनकर किसी के घर के आगे छोड़कर चले जाते हैं। गाड़ी वाले को होश आने पर भागता हुआ रामावधानी के पास जाकर सारा वृतान्त सुनाता है। पुलिस स्टेशन में खबर देकर रामावधानी के घर वाले राधा की तलाश में निकलते हैं। राधा भी सुबह अपने को किसी घर के सामने पाकर उस घर की मालकिन रत्नम से अपना दुखड़ा सुनाती है। रत्नम एक वेश्या होने के कारण राधा को अपने मायाजाल में फँसाने के प्रयत्न में रहती है। लेकिन समझदार राधा लड़के का वेष धारण कर उस घर से भाग जाती है। भागते-भागते एक गांव में पहुंचती है। उसी समय उसके भाई के पास काम करने वाला एक गुमास्ता वहां आने पर उसकी सहायता से राधा अपने घर पहुँचती है।

वेंकटशास्त्री घर का सारा भार अपने ज्येष्ठ पुत्र सूरिशास्त्री पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाता है। वेंकटशास्त्री अपनी बहू राधा के प्रति विमुख तो

नहीं, किन्तु उसको स्वयं अपने घर लाने के लिए सहमत नहीं है। इसी कारण मरते समय भी अपनी पत्नी तथा पुत्र को यही संदेश देते हैं कि यदि स्वयं राधा घर आये तो उसका अपमान न करें। माधव अपने अठारहवें वर्ष में साहित्य और संगीत में प्रवीणता पाने के लिए दूसरे गांव जाकर अपने बन्धुओं के घर रहता है। इसी बीच एक मित्र के कारण वेश्या के मोह जाल में फंस-कर अपना घर तथा समय खो बैठता है। एक बार माधव अपने भाई के पास से उस वेश्या के लिए धन लाने जाता है तो बीच में ही उस वेश्या की माँ के द्वारा समाचार पाकर कुछ गुंडे लोग माधव को घायल कर उस धन को चुरा लेते हैं। इस विषय से अनभिज्ञ माधव वेश्या से मिलने जाता है तो वहां वेश्या की माँ निर्धन माधव को खरी-खोटी सुनाकर भगा देती है। इस घटना से माधव अपने किये कर्म पर पछताकर, अपने सच्चे मित्र जनार्दन की सहायता से सन्मार्ग पर आ जाता है। जनार्दन द्वारा ही अपनी सौंदर्यवती तथा विद्या-वती पत्नी राधा के बारे में जानकर उससे मिलने के लिए आतुर रहता है। लेकिन माधव तथा राधा के भाई अपनी-अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने के कारण उनका मिलन सम्भव नहीं हो पाता। इसी अवधि में माधव, जनार्दन तथा राधा के स्कूल के अध्यापक की सहायता से राधा को अपने घर बुलाने में समर्थ होता है। राधा के घर आने पर माधव के भाई तथा माँ भी संतुष्ट होते हैं।

उपन्यास का कथानक अत्यन्त मनोहर बन पड़ा है। इसकी सभी घटनायें कल्पित होती हुई भी यथार्थ का आभास प्रस्तुत करती हैं। घटनाओं का विन्यास सहज एवं सुन्दर है।

आलोच्य उपन्यास के मुख्य पात्र हैं राधा तथा माधव, जिनके नाम पर ही इस उपन्यास का नामकरण किया गया है। राधा पात्र के द्वारा बाल-विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। राधा अपने विद्यार्थी जीवन में तथा संकट के समय में साहस एवं सूझ-बूझ का परिचय देकर और अपने सहज माधुर्य गुणों के द्वारा अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाकर उस समय की नारी के लिए एक आदर्श को प्रस्तुत करती है। माधव, उत्तम वंश्ज होने पर भी कुसंगति के कारण वेश्यालोलुप हो जाता है और अपना धन उसी वेश्या पर लुटाने लगता है। लेकिन वेश्याओं के धन लूटने के स्वभाव से परिचित होने पर फिर से सन्मार्ग पर आ जाता है। राधा को अपनी पत्नी के रूप में पाकर अपने जीवन को धन्य समझता है। इस प्रकार माधव मानव-

सुलभ दुर्बलताओं से युक्त तत्कालीन समाज के युवकों का प्रतिनिधित्व करता है ।

सामाजिक कथानक होने के कारण तत्कालीन समस्याओं जैसे बाल-विवाह,[1] स्त्री-शिक्षा[2] आदि का वर्णन है । लेखिका प्रस्तुत उपन्यास में बाल-विवाह का समर्थन करती है । आगे स्पष्ट करती है कि पत्नी केलिए सदा उसका पति ही सर्वस्व है । राधा को सुशिक्षित चित्रित कर लेखिका ने स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया है । बुजुर्गों के बीच उत्पन्न वैमनस्य के कारण बच्चों को जिन यातनाओं को सहन करना पडा है, उसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में पाया जाता है ।

सन् १९३५ में रचित 'दिल्ली साम्राज्यमु' ऐतिहासिक वस्तु प्रधान श्रीमती अट्लूरि सीतम्मा का तीसरा उपन्यास है । यह २८ प्रकरणों में विभक्त है । इस में १६वीं शती के मध्यकाल में होने वाले दूसरे पानीपत के युद्ध से लेकर अकबर के सम्राट बनकर पूर्व में बर्मा तथा पश्चिम में अफ़गानिस्तान के भूभाग पर राज करने तक का इतिहास इसका कथानक है ।

इस उपन्यास में सम्राट अकबर के मन मे हिंदुओं के प्रति जो विश्वास, प्रीति रहा उसका सुंदर वर्णन प्रस्तुत है । सम्राट अकबर के विशाल साम्राज्य-स्थापना के पीछे मूल-स्तंभ माने जाने वाले बैरमखाँ, राजा तोडरमल, राजा मानसिंह, बीरबल आदि प्रमुख हिंदू राजाओं, कविशेखर तथा साधु स्वभावी अबुल फ़जल का, तात्कालीन राजपुत्रों का सहयोग आदि के संबंध में लेखिका ने जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है ।

लेखिका ने ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण अपनाकर, इतिहास की अच्छी रक्षा की । उपन्यास का कथानक १६वीं शती से संबंधित है जब भारत देश में राज्य केलिए युद्ध होने के साथ साथ सांप्रदायिक आंदोलन भी अधिक हैं । उत्तर भारत में ही सुन्नी, सिया तथा सूफी जैसी मुसलमानों की तीन शाखायें हैं । इन शाखाओं के बीच आपसी मतभेद अधिक हैं । हुमांयू तथा अकबर के जीवन–काल से संबंधित अनेक अंतरकथाओं का भी इस कथा में समावेश है ।

प्रधानतः हिंदू मुस्लिम संघर्ष यद्यपि उत्तर भारत का है तो भी लेखिका ने इस गंभीर सांप्रदायिक समस्या केलिए सुंदर समाधान प्रस्तुत कर राष्ट्रीय

---

१. राधामाधवमु – पृष्ठ : १०
२. राधामाधवमु – पृष्ठ : १९

भावना तथा एकता की दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से आलोच्य उपन्यास अत्यंत विशिष्ट भी माना जा सकता है।

उपन्यास के पात्र ऐतिहासिक होने के कारण चारित्रिक विकास में मौलिकता तथा कलात्मकता दृष्टिगोचर नहीं होती। अकबर को एक वीर, कर्मठ, धर्म–सहिष्णु तथा सफल शासक के रूप में चित्रित किया गया,[1] जो बैरमखान जैसे कुशल राजनीतिज्ञ तथा परमवीर की देखरेख में रहकर पलता है। अकबर की धर्म-सहिष्णुता तथा हिन्दुओं के प्रति विशिष्ट प्रेम तथा सद्भावना को देखकर बैरमखान तथा इस्लाम धर्म के कट्टरवादियों ने अकबर का अंत करने का विफल प्रयत्न किया। तब अकबर पितृवत् बैरमखान को पितृवत् क्षमा कर तीर्थयात्रा के लिए मक्का भेजकर बैरमखान के प्रति कृतज्ञता को प्रकट करता है।[2]

अकबर के चरित्र को उभारने के लिए ही बैरमखान बीरबल, भगवान-दास, भवानीसिंह आदि का विस्तृत परिचय आलोच्य उपन्यास में मिलता है। यथार्थ के धरातल पर निर्मित पात्र होने के कारण पात्रों में कृत्रिमता नहीं आयी है। पात्रों का चित्रण युग और वातावरण के अनुकूल हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका का उद्देश्य हिन्दु और मुसलमानों के बीच एकता की स्थापना करने की है। इस ऐतिहासिक उपन्यास में लेखिका ने अकबर के चरित्र की महत्ता का परिचय दिया है, तथा साथ साथ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं का विशद चित्रण भी किया है। ऐतिहासिक कथानक के कारण चरित्र-चित्रण की दिशा में लेखिका का स्वातंत्र्य सीमित हो गया है फिर भी चरित्र-चित्रण कथानक एवं उद्देश्य के अनुरूप ही बन पडा है।

लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से परतंत्र भारत को मुक्त कराने तथा लोगों में राष्ट्रीय-प्रेम जागृत करने का लक्ष्य भी जागृत करना चाहा है। चित्तौड़ पर मुसलमानों के आक्रमण के अवसर पर प्रतापसिंह के कथन से इस बात का आभास हो जाता है–'ओ ! राजपूत के योद्धारण ! आज फिर से मुसलमानों से युद्ध करने का समय आया है। अपनी शक्ति तथा भुज-बल का

---

१. ढिल्ली साम्राज्यमु–पृष्ठ : १८४

२. ढिल्ली साम्राज्यमु–पृष्ठ : १०३

परिचय देने का यह अच्छा मौका है। अपने मातृ-देश को मुसलमानों के आक्रमण से बचाने का भार आपके ही भुजस्कंदों पर है। आपकी बहनों व माताओं की, मान-प्राण की रक्षा करना आपही की वीरता पर निर्भर है। अपने को तथा अपने मातृदेश को दूसरों के हाथ सौंप कर गुलाम होना उचित है या राजपूतों के कुल की वीरता तथा साहस-धैर्य का परिचय देकर युद्ध-क्षेत्र में अपनी कुल की मर्यादा को ऊँचा कर दिखलना--कौनसा उपयुक्त है सोच लो।'[1] इस प्रकार कई राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं का चित्रण कर लेखिका ने उद्देश्य की पूर्ति की है।

रावूरि वेंकट सुब्बम्मा :

श्रीमती रावूरि वेंकटसुब्बम्मा जी का 'उदारपांडवमु' सन् १९३५ में प्रकाशित पौराणिक उपन्यास है। लेखिका ने महाभारत की सँपूर्ण कथा को संक्षेप में गद्य-शैली में लिखकर समय समय पर पांडवों की उदारता तथा युधिष्ठिर की न्यायशीलता, सहृदयता तथा सहनशीलता का अधिक विस्तार-पूर्वक चित्रण किया है। इस में पांडवों के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक की कथा वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया है।

इसके सभी पात्र महाभारत के ही पात्र हैं। अतः पात्रों के चारित्रिक विकास के संबंध में लेखिका को विशेष मौलिकता दिखाने के लिए स्थान नहीं मिला है। इस रचना में लेखिका ने श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर--पात्रों के द्वारा धर्म तथा न्याय की प्रतिष्ठा कराये जाने की बात कहकर तत्कालीन समाज के आगे सुलभ ग्राह्य गद्य-शैली में आदर्श प्रस्तुत किया है।

आरंभकालीन उपन्यास होने के कारण लेखिका का प्रमुख उद्देश्य उप-देश देना ही रहा है। लेखिका उपन्यास के अंत में अपने उद्देश्य को इस प्रकार प्रकट करती हैं--'युधिष्ठिर पात्र के माध्यम से न्याय-बुद्धि, औदार्य, सौभ्रातृत्व, भातृ-प्रेम, यथासंभव शत्रुओं का उपकार करना आदि बातों को सीखना चाहिए। इसी प्रकार राम पात्र के द्वारा पितृ-आज्ञा का पालन करना, शरणागत की रक्षा करना, सौभातृत्व आदि सीखने योग्य है। सत्य हरिश्चंद्र की कथा के द्वारा सत्य वचन का पालन करना तथा उस से लाभा-न्वित होना आदि बातें जानने योग्य हैं। पांडवों के भातृ-प्रेम में तथा दशरथ पुत्रों के भातृ-प्रेम में अंतर दृष्टिगोचर होता हैं। राम के भाई राम से बल-

१. ढिल्ली साम्राज्यमु--पृष्ठ : १५३

हीन तथा असमर्थ हैं अतः वे अपने अग्रज के प्रति गौरव एवं विनय का प्रदर्शन करते हुए उनकी आज्ञा का पालन करते आये। धर्मराज के भाई से भी शक्तिशाली तथा पराक्रमी होने पर भी अपने दुर्बल अग्रज के साम्राज्य खोने के पराभव को तथा वनवास के समय अनेक यातनाओं को सहकर अंत तक बड़े भाई की आज्ञा का पालन करते रहना प्रशंसनीय है। अतः दशरथ पुत्रों की तुलना में पाँडवों का भ्रातृ-प्रेम श्लाघ्य है।

हमारे भारत देश की सभी बालिकायें पंचाल राजा की पुत्री द्रौपदी के समान परम पवित्र, धर्म-बद्ध, राजनीति-विशारद, पतिसेवा परायण, तथा अनुपम सद्गुण सपन्ना बनकर उत्तम गृहिणियाँ तथा आदर्श माताएँ बनकर पीहर तथा ससुराल का नाम रोशन करें।'[1]

इस प्रकार महाभारत की कथा के माध्यम से उक्त उपदेश देना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है।

तत्कालीन समाज पर पुराणों का अधिक प्रभाव रहा है, इसलिए लेखिका ने पुराख्यानक कथा तत्वों को उपन्यास के वस्तु रूप में ग्रहण कर उसे प्रस्तुत करने में अपनी मौलिकता तथा कलात्मकता का परिचय दिया है। लेखिका ने यत्र--तत्र समाज में प्रचलित दुर्व्यसनों के दुष्परिणामों का भी चित्रण किया है।[2] आगे यह भी कहा है कि युधिष्ठिर दुर्व्यसनी होने के कारण ही स्वयं उसे ही नहीं बल्कि उसके समस्त परिवार को भी कई यातनाएँ सहनी पड़ी हैं। लेखिका ने कर्म सिद्धांत आदि कई दार्शनिक विचार-धाराओं को भी पात्रों के मुख के द्वारा कहलवाया है।

शत्रुओं के प्रति भी पाण्डवों की उदार बुद्धि के कारण शिष्ट व्यवहार करता दिखला कर पांडवों के चरित्र पर प्रकाश डालने की चेष्टा लेखिका ने की है।[3]

आचंट सत्यवतीदेवी :-

'भयंकर धनाशापिशाचमु' श्रीमती आचंट सत्यवतीदेवी का सन् १९३७ में रचित एक सामाजिक उपन्यास है। रचना की प्रेरणा लेखिका को एक गूँगे

---

१. उदार पाण्डवमु - पृष्ठ : १३२-१३३
२. उदार पाण्डवमु - पृष्ठ : ९०
३. उदार पाण्डवमु - पृष्ठ : १२६

फिल्म से मिली है जो नीति प्रधान है। कथानक का आरंभ निम्नांकित पौराणिक प्रसंग से होता है।

सभासदन में श्रीष्ण जब अपने पत्नियों के संग रासलीला में तल्लीन रहता है, उसी समय उद्धव वहाँ पहुचता है। श्रीकृष्ण उसके स्वागत में मोतियों का हार देता है। तब उद्धव श्रीकृष्ण से प्रार्थना करता है कि वे उसे इस प्रकार धन के मायाजाल में न डाले, श्रीकृष्ण प्रत्युत्तर में कहता है कि अच्छे लोग धन के लोभ में नहीं पड सकते और अपने कर्तव्य से च्युत होकर अविनीति के शिकार नहीं होते। यदि बुरे लोगों के हाथ संपत्ति लग जाती है तो वे उसके मोह में अंधे होकर निर्दयी, कामलोलुप तथा अन्यायी बन जाते हैं। इस नीति का प्रकटीकरण ही लेखिका का उद्देश्य रहा है।

लेखिका ने उपर्युक्त प्रसंग को केवल प्रेरणा के रूप में ही ग्रहण किया है। कथानक-नियोजन, वार्तालाप आदि में तो लेखिका की मौलिकता का तथा स्वतंत्र कल्पना का परिचय मिलता है। इस उपन्यास में सत्यवंतुडु तथा पापारायुडु दो बनिये हैं जो जहाज पर जाकर व्यापार करते रहते हैं। सत्यवंतुडु एक सगुण संपन्न व्यक्ति है तो पापारायुडु लोभी तथा छल–कपटी और कामलोलुप व्यक्ति, सत्यवंतुडु की पत्नी है सुशीला तथा बेटा है माधव. पापारायुडु की पत्नी है चारुमती जो सदाचार संपन्ना तथा बेटी है हेमवती। एक बार दोनों बनिये व्यापार केलिए दूर देश जाते हैं। रास्ते में एक साधु को रोटी खिलाकर सत्यवंतुडु अपने दयार्द्र हृदय का परिचय देता है। पापारायुडु चाहता है कि सत्यवतुडु को मारकर उसकी सारी संपत्ति हड़प ले। अपने नौकर अप्पन्ना की सहायता से पापारायुडु एक सफल षड्यंत्र रचता है। पापारायुडु के घर पहुंचने पर सुशीला उससे अपने पति के संबंध में पूछताछ करती है तो पापारायुडु कहता है कि सत्यवंतुडु व्यापार के निमित्त कहीं अन्यत्र गया हुआ है। एक दिन सुशीला पर बलात्कार करने की चेष्टा करने पर चारुमती तथा हैमवती आकर उसकी रक्षा करती हैं। सुशीला, पापारायुडु के घर से भागते समय उसे अपन्ना के द्वारा पता चलता है कि सत्यवतुडु, पापारायुडु के द्वारा समुद्र में डुबो दिया गया है। तब वह सती होने के लिए तैयार हो जाती है। उसी क्षण सत्यवंतुडु अचानक वहाँ पहुंच जाता है।

सत्यवंतुडु को बचानेवाला उसका मामा केशवदास, सत्यवंतुडु को पहचान कर आनद के अतिरेक में विभोर होने से उसके दिल की धड़कन तक रुक जाती है। अपने मामा की सारी संपत्ति के साथ आये हुए सत्यवंतुडु को

देखकर पापारायुडु आश्चर्य में पड जाता है। फिर से सत्यवंतुडु की हत्या करवाने के उद्देश्य से पापारायुडु अपने दो नौकरों को साधुओं के वेश में उसके घर भेजता है। जब वे सत्यवंतुडु की हत्या करने में असफल हो जाते हैं तो उसके लडके माधव को लेकर भाग जाते हैं। जब माधव को मारने का प्रयत्न करते हैं तब उन चोरों की माँ, माधव को पहचानती है। एक बार भूख से पीडित उस औरत को माधव स्वयं भूखा रहकर रोटी खिलाता है। इसी कारण वह अपने बच्चों को माधव को छोड देने के लिए गिडगिडाती है। इसी समय अप्पन्ना आकर माधव को जिंदा पाकर चोरों से लडता है। चोर लोग उल्टा अप्पन्ना को मार डालते हैं। और वे ही स्वयं माधव को, सत्यवंतुडु के घर छोडकर सन्मार्ग पर चलते हैं।

इसी गाँव में एक रईस व्यक्ति गोविंदस्वामी अपनी विधवा पुत्री लीला के साथ रहता है। एक बार गोविंदस्वामी, पापारायुडु को तथा लीला को काम वासना में फँसा देखकर दोनों की हत्या कर स्वयं आत्महत्य कर लेता है। मरने से पहले अपनी सारी संपत्ति को पापारायुडु की पुत्री हैमवती के हवाले कर देता है। चारुमती विधवा होकर अपनी पुत्री के साथ दीन दुखियों की सेवा में लग जाती है। एक बार एक गरीब की सहायता के लिए धन देने निमित्त तिजोरी खोलती है तो उसमें से एक सर्प निकलकर चारुमति को डंस देता है और उसी क्षण वह मर जाती है। हैमवती दुख के कारण विह्वल हो जाती है।

एक दिन शहर में एक साधु के आने पर उसके आदर सत्कार केलिए सत्यवंतुडु अपनी पत्नी के संग जाता है। वहाँ वह साधु रोगग्रस्त होकर अपनी इच्छा को इस प्रकार प्रकट करता है कि उसकी बीमारी तभी दूर हो सकती है जब कि वे (सत्यवंतुडु तथा उसकी पत्नी) अपने बेटे को मारकर उसका रुधिर देंगे। पति-पत्नी असमंजस में पड जाते हैं फिर भी साधु की इच्छा पूर्ति केलिए तैयार हो जाते हैं। माधव भी सहमत होता है।

सत्यवंतुडु की त्यागमयी बुद्धि से प्रसन्न होकर साधु उस बालक को बचा लेता है। अंत में हैमवती तथा माधव की शादी संपन्न होती है। इस प्रकार उपन्यास का अंत सुखात्मक और विस्मयात्मक है। इस उपन्यास में आकस्मिक एवं अद्भुत घटनाओं की बहुलता है।

आलोच्य उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं–सत्यवंतुडु, पापारायुडु, शुशीला तथा चारुमति सत्यवंतुडु एक सदाचार संपन्न, दयार्द्र हृदयी एवं निष्काम

भक्त है जबकि पापारायुडु एक कुटिल, लालची, कठोर-हृदयी तथा काम-वासना का पुतला है। वह सुशीला को अपनी वासनापूर्ति का शिकार बनाने का प्रयत्न करने पर चारुमति उसे मना करती है जिसकी परवाह किसी भी मात्रा में वह न कर उल्टे चारुमती से कहता है--"हि्--हि् -- यहां से निकल जाओ। मुझे आज्ञा देनेवाली तुम कौन होती हो? मेरी इच्छा है। तुम इस कमरे में कदम नहीं रख सकती हो। चली जाओ। इस कथन से कामांध पापारायुडु के स्वभाव का चित्रण हुआ है। पापारायुडु जहाँ रुपयों के लालच में पडकर अवैध रुप से धनार्जन करना चाहता है वहाँ सत्यवंतुडु सन्मार्ग से धन कमाता है और धन की लालच में पडकर अपनी कमाई हुई संपत्ति से संतुष्ट रहता है। जहाँ पापारायुडु दूसरों की संपत्ति को हड़पने के लिए प्राणों को लेने तक पीछे नहीं डिगता वहाँ सत्यवंतुडु दूसरों के प्राणों की रक्षा केलिए अपनी संपत्ति को ही नहीं बल्कि अपने प्राणों को तथा अपने पुत्र को भी बलि देने केलिए पीछे नहीं हटता।[2]

सुशील तथा चारुमती अत्यंत सुशील एवं सरल स्वभाव की है। भगवान के प्रति आस्थावान हैं। सुशीला पति परायण नारी है जो अपनें पति की मृत्यु का समाचार सुनकर स्वयं सती होने के लिए तैयार हो जाती है। चारुमती पति को सन्मार्ग पर लाने का पूरा प्रयास करती है, लेकिन असफल ही होती है। हेमवती उम्र में छोटी होने पर भी, पिता की काम-वासना के शिकार से सुशीला को बचाती है। माधव भी पिता का आज्ञाकारी पुत्र बन कर पिता की आज्ञा के अनुसार बलि वेदी पर चढ़ने के लिए तैयार हो जाता है।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने इस नीति का प्रतिपादन कराया है कि धनार्जन की कामना बहुत बुरी है, वह पिशाच के समान है। लालच स्वभाव से रहित व्यक्ति सद्कार्य कर अपने जीवन को आनंदमय एवं सार्थक बना सकते हैं, यही दिखाना लेखिका का उद्देश्य भी है।

सत्यवंतुडु तथा पापारायुडु समाज में स्थित दो विभिन्न वर्गों – अच्छे तथा बुरे का प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्रों का विकास यथार्थ के धरातल पर

---

१. भयंकर धनाशा पिशाचमु – पृष्ठ : ५६

२. भयंकर धनाशा पिशाचमु – पृष्ठ : १००

किये जाने के कारण उनमें स्वाभाविकता का पुट स्पष्ट परिलक्षित है। यत्र तत्र आकस्मिक घटनाओं के कारण रोचकता का समावेश भी हुआ है।

कहा जा सकता है कि उपन्यास सोद्देश्य है। पौराणिक प्रसंग को सूत्र के रूप में ग्रहण किया गया है। पर संदेश सामाजिक समस्या, धन लोलुपता के बारे में है। आलोच्य उपन्यास में सती सहगमन प्रथा[1] का वर्णन पाया जाता है। इस प्रकार इस उपन्यास में मनोरंजन के साथ-साथ समाज के लिए उपयोगी संदेश का समावेश भी प्रस्तुत है।

१. भयंकर धनाशापिशाचनु - पृष्ठ : ५८-५९

स्वातंत्र्यपूर्व तेलुगु उपन्यासों में वस्तु पक्ष : एक मूल्यांकन

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में तेलुगु गद्य के निर्माता एवं युग-प्रवर्तक श्री वीरेशलिंगम जी ने 'राजशेखर चरित्रमु' (१९१८) को रचकर उपन्यास विधा का श्रीगणेश किया था। पश्चात् सर्वश्री चिलकमूर्ति नरसिंहम, पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहम, वेंकटपार्वतीश्वरुलु, श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री प्रभृतियों ने अपने उपन्यासों को रचकर, उनके माध्यम से उस समय की स्त्रियों की स्थितिगतियों पर यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला। 'राजशेखर चरित्रमु' उपन्यास में हेतुवाद पर आधारित अंधविश्वासों का खंडन करना, स्त्रियों का उद्धार करना, स्त्री-शिक्षा तथा उसके जीवन के प्रति शास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाना और मानवों में नैतिकता का प्राधान्य, तत्कालीन समाज केलिए अत्यंत आवश्यक माना गया है। चिलकमर्ति जी का 'राजरत्नमु' (१९१९), उपन्यास के द्वारा उस समय के स्त्री की बुद्धिहीनता, श्रीपाद सुब्रह्ममण्यमजी के 'आत्मबलि' (१९१९) उपन्यास के द्वारा ग्रामीण स्त्रियों के जीवन का, तथा यौवन में रहने वाले विधवा-जीवन संबंधी समस्याओं का, श्री वेंकट पार्वतीश्वरुलु के 'मातृ मंदिरम्' (१९१९) उपन्यास के द्वारा विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या आदि के वर्णनों द्वारा तत्कालीन आंध्र प्रांत के नारी-समाज का जीवंत चित्रण प्रतिबिंबित हुआ है।

इस प्रकार ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के कारण ही स्त्री को चिंतन एवं व्यवहार में स्वच्छंद होने से तथा विद्यार्जन करने से

वंचित होना पड़ा । इन्हीं कारणों से साहित्य-सर्जना के क्षेत्र में भी पुरुषों की तुलना में नारी बहुत ही पीछे रह गयी है । समाज-सुधार के क्षेत्र में राजा राममोहनराय जैसे सुधारक तथा साहित्यिक क्षेत्र में स्त्री-जागरण के समर्थक वीरेशलिंगम पंतुलु जी जैसे महापुरुषों के आविर्भाव एवं मार्ग दर्शन से स्त्री समाज की सुधार एवं संस्कार द्रुतगति से होने लगे । वीरेशलिंगमजी ने विशेष-कर स्त्रियों के लिए ही 'सती हितबोधिनी' शीर्षक पत्रिका चलाई । उसमें स्त्री की ज्ञान वृद्धि तथा उसका मनोरंजन कराने का प्रयास भी दृष्टिगोचर होता है । वीरेशलिंगमजी के विचार में—"स्त्रियों को अंधकार में रखकर पुरुष कभी भी प्रकाश नहीं देख सकते । स्त्रियों में विद्या, विज्ञान के विकास के साथ-साथ ही समाज की तथा देश की उन्नति हो सकती है । पुष्प जितना भी सुंदर क्यों न हो उसमें यदि सुगंध न हो तो उसका मूल्य ही क्या ?"[1]

यह बात सत्य है कि स्वातन्त्र्यपूर्व रचित महिलाओं के उपन्यास संख्या में न्यून होने पर भी विषयवस्तु की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण दृष्टिगोचर होते हैं । नारी जगत के प्रति समाज में जो उपेक्षाभाव रहा है उसी प्रवृत्ति ने इनके साहित्य को प्रकाश में आने से वंचित कर रखा ।

हिन्दी के समान, तेलुगु में भी उपन्यास-साहित्य का आरम्भ अनुवादों से ही हुआ है—जैसे 'जागिलम्', 'योगेश्वरी, अन्नपूर्णा, मंत्र शक्ति, कमला आदि । इसके साथ-साथ किसी काव्य-कथा के आधार पर उपन्यास रचना की जाने लगी जैसे रूपवती, लंकापति आदि ।

महिलाओं द्वारा रचित सर्वप्रथम तेलुगु उपन्यास जयंति सूरम्मा कृत 'सुदक्षिणाचरित्रमु' (१९०६) में पौराणिक कथानक को आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर नीति-प्रधान उद्देश्य का प्रतिपादन किया गया है । इसके अति-रिक्त स्वातंत्र्य पूर्वकाल में 'कलावती चरित्र', 'सुगुणावली', 'सुभद्रा', 'उदार-पाण्डवमु' जैसे पौराणिक विषय-वस्तु-प्रधान उपन्यास ही नहीं बल्कि 'वसुमती', 'राधामाधवमु', 'रामाश्रममु', 'भयंकर धनाशापिशाचमु' जैसे सामाजिक इति-वृत्त प्रधान तथा 'कुमुद्वती', 'ढिल्ली साम्राज्यमु', 'रूपवति' जैसे ऐतिहासिक विषय वस्तु प्रधान उपन्यास भी रचे गये ।

---

१) डा० अक्किराजु रमापतिराव—तेलुगुलो महिळलु सृष्टिंचित साहित्यम्—स्रवंती, फरवरी, ७२

यद्यपि स्वातंत्र्यपूर्व की लेखिकाओं की संख्या पच्चीस से अधिक है, किन्तु उन सभी लेखिकाओं के सभी उपन्यास आज अध्ययन के लिए अप्राप्य हैं ।[1] अतः इस अवधि की कुछ ही प्रमुख लेखिकाओं के प्राप्य उपन्यासों के आधार पर ही वस्तु पक्ष का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है जिनका विवेचन विगत पृष्ठों में किया जा चुका है । इन उपन्यासों के वस्तु पक्ष पर दृष्टिपात करने से यह विदित होता है कि लेखिकाओं द्वारा स्वीकृत विषय वस्तु को तीन वर्गों में रखा जा सकता है--पौराणिक विषय वस्तु, ऐतिहासिक विषय वस्तु तथा सामाजिक विषयवस्तु ।

इसी धारा को आगे बढानेवाली और दो लेखिकायें हैं पुलगुर्तु लक्ष्मी-नरसमांबा तथा रावूरि वेंकट सुब्बम्मा । लक्ष्मीनरसमांबाजी ने 'सुभद्रा' उपन्यास के माध्यम से 'सुभद्रा' के आदर्श रूप को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । कथानक के आधार को बंगला से ग्रहण करने पर भी तत्कालीन आंध्र की नारी की स्थितिगतियों से अवगत होकर उपदेश देने की प्रवृत्ति से इसे रचा है । इस में श्रीकृष्ण के द्वारा सुभद्रा को धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतों का उपदेश दिया जाना ही लेखिका का प्रधान उद्देश्य जान पडता है । रावूरि वेंकटसुब्बम्मा जी ने 'उदारपाण्डवमु' उपन्यास में महाभारत की संपूर्ण कथा को अपनी मौलिकता तथा रचना से संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए पांडवों के उदार स्वभाव का वर्णन कर व्यसनियों की यातनाओं की विकटता पर प्रकाश डाला है । लेकिन यहाँ भी पांडवों के आदर्शवादी चरित्र को प्रतिष्ठित करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है ।

जैसे जैसे समाज में स्त्री की महत्ता प्रतिष्ठित होने लगी वैसे-वैसे उनकी साहित्यिक प्रतिभा को मुखरित तथा विकसित होने का अवसर मिलने लगा । स्त्री-शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ उनके सुशुप्त चैतन्य का विकास होने लगा । भारत की प्राचीन संस्कृति तथा इतिहास से भी इन्हें पर्याप्त प्रेरणा मिली । खंडवल्लि रामचन्द्रुडु, चिलकमर्ति, विश्वनाथ सत्यनारायण, वेंकटपार्वतीश कवुलु, नोरी नरसिंह शास्त्री जैसे उपन्यासकारों की ऐतिहासिक रचनाओं से प्रेरणा ग्रहण कर लेखिकाओं ने भी ऐतिहासिक क्षेत्र में लेखनी चलाई । श्रीमती अट्लूरि सीतम्मा का रूपवती तथा 'ढिल्ली साम्राज्यमु' इस के ज्वलंत उदाहरण हैं । दिल्ली साम्राज्यमु में १६ वीं शती के मध्यकाल में

---

१) आज अप्राप्य है ।

होनेवाले द्वितीय पानीपत युद्ध से लेकर अकबर के सम्राट बनकर पूर्व में वर्मा तथा पश्चिम में अफगानिस्तान के भू-भाग पर राज करने तक के इतिहास को इतिवृत्त के रुप में ग्रहण किया गया। पात्रों के द्वारा भारतीय संस्कृति की गरिमा पर प्रकाश डाला गया है।

पुलवर्ति कमलावती का 'कुमुद्वती' उपन्यास का कथानक महाराष्ट्र के १७ वीं शती के इतिहास से संबंधित है। महाराष्ट्र के ऐतिहासिक तथ्यों को आधार मानकर तत्कालीन स्त्री-पुरुषों के मनोभावों तथा रीति-रिवाजों का जीवंत चित्रण कर राजनैतिक क्षेत्र को अत्यंत प्रभावित करनेवाले नारी-पात्रों को उभारना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य को ग्रहण कर राजनैतिक क्षेत्र में तत्कालीन स्त्रियों के महत्व का उद्घाटन कराने के प्रति लेखिकाओं की अधिक रुचि रही है।

उक्त लेखिकाओं के समय तक आंध्र के इतिहास की महत्ता का ज्ञान नहीं हुआ था। आंध्र के इतिहास के संबंध में विशेष शोध-कार्य भी संपन्न नहीं हो पाया था। अतः लेखिकाओं ने आंध्रेत्तर इतिहास[1] से संबंधित कथानक को ही कथ्य के रूप में स्वीकार किया। फिर भी इन लेखिकाओं ने समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति जागरूकता का परिचय देते हुए, तत्कालीन आंध्र के नारी-समाज में राष्ट्रीय-चेतना को जागृत करने का स्तुत्य प्रयास किया। इनके अतिरिक्त ओलेटि सूर्यप्रभादेवी, आचंट सत्यवतीदेवी आदि ने भी ऐतिहासिक इतिवृत्ति के आधार पर उपन्यासों की रचना की है।

सामाजिक इतिवृत्त को लेकर उपन्यासों की रचना करने की प्रेरणा लेखिकाओं को तेलुगु के सर्वप्रथम उपन्यास 'राजशेखरचरित्रमु' से ही प्राप्त हुई है। स्वातंत्र्यपूर्व लेखिकाओं द्वारा रचित सामाजिक उपन्यासों में कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा का 'वसुमति', मल्लादि बुच्चम्मा का 'लंकापति', चिल्लरिगे रमणम्मा का 'रामाश्रममु', अद्लूरि वेंकट सीतम्मा का 'राधा-माधवमु', आचंट सत्यवती देवी का 'भयंकर धनाशापिशाचमु' आदि प्रमुख हैं।

---

१. आंध्रेत्तर, इसलिए कहा गया है चूंकि आंध्र के इतिहास की गौरव-घटनाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् स्वातंत्र्योत्तर काल में, उन से प्रभावित होकर श्रीमती मल्लादि वसुन्धरा ने आंध्र से संबंधित इतिहास पर आधारित 'तंजाऊरु पतनमु', 'सप्तपर्णी' जैसे उपन्यासों की रचना की।

लेखिकाएँ अपने सीमित अनुभवों तथा ज्ञान के कारण अपने समय से पूर्व प्रकाशित कथा रचनाओं के प्रभाव में आकर पुनः उन्हीं समस्याओं को अपने उपन्यासो में दुहराने लगीं जैसे विधवा-विवाह, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज-प्रथा, वेश्या-समस्या आदि उक्त समस्याओं को 'वसुमति' उपन्यास में भी हम पा सकते हैं।

वस्तुपक्ष की दृष्टि से चिल्लरिगे रमणम्मा कृत 'रामाश्रमम्' इस अवधि का एक विशिष्ट उपन्यास है। उन दिनों प्रकाशित श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री के 'आत्मबलि' के समान 'रामाश्रमम्' में भी ग्रामीण जीवन तथा विधवा–समस्या संबंधी पूर्व चर्चित विषयों के वर्णन के साथ-साथ कुछ मौलिक सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक समस्याओं का चित्रण भी पाया जाता है। इनमें वर्ग–संघर्ष, हिंदू-मुस्लिम समन्वय, रिश्वतखोरी, जमींदारी प्रथा का खंडन, साम्यवादी व्यवस्था का मंडन आदि विषयों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से परखा गया है।

स्त्री–शिक्षा का महत्व, बाल–विवाह, वेश्या–समस्या आदि सामाजिक समस्याओं को लेकर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखा गया सुखांत उपन्यास है अट्लूरि वेंकट सीतम्मा का 'राधामाधवम्'। श्रीमती आचंट सत्यवतीदेवी का 'भयंकर धनाशापिशाचम्' एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें धन के लोभ को 'भयंकर भूत' के रूप में चित्रित किया गया है। साथ ही साथ इसमें पुरुषों का वेश्यागमन, सती-प्रथा, विधवा–समस्या, का चित्रण हुआ है। लेखिका ने उपन्यास के दुष्ट पात्रों का अंत और शिष्ट पात्रों का उद्धार कर अन्याय पर न्याय की विजय दिखाई गयी है।

सारांश यह है कि सामाजिक विषय–प्रधान उपन्यासों के द्वारा लेखिकाओं ने तत्कालीन नारी को सुशिक्षित करने के साथ-साथ पारिवारिक जीवन संबंधी आदर्शों को भी प्रस्तुत किया है। जिसमें समाज–सुधार की भावना भी निहित है। किंतु कहीं भी प्रकट रूप से पुरुषों की वेश्या-लोलुपता, अथवा उनके स्त्री-शिक्षा विरोधी भावना आदि का खंडन इन्होंने नहीं किया है। नारी को पुरुष के अत्याचारों का सहन करने वाली, कर्म सिद्धान्त में आस्थावान् तथा संयम से अपने सद्व्यवहार के द्वारा उन्हें सन्मार्ग पर लाने वाली आदर्श नारी के रूप में ही चित्रित किया है। सारांश यह है कि लेखिकाओं ने स्वातंत्र्यपूर्व पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक इतिवृत्तों को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण से परखकर तत्कालीन नारी संबंधी समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

स्वातंत्र्यपूर्व हिंदी और तेलुगु उपन्यासों में वस्तु पक्ष : तुलनात्मक निष्कर्ष

स्वातंत्र्यपूर्ण उपलब्ध उपन्यासकर्त्रियों की हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों का वस्तुपक्ष की दृष्टि से जो विवेचन कर उनकी तुलना करने से निम्नांकित तथ्य प्रकाश में आये हैं।

कथानक की दृष्टि से आलोच्य उपन्यासों को परखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं की लेखिकाओं ने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक-तीन क्षेत्रों से संबंधित विषय को इतिवृत्त के रूप में ग्रहण किया है। कथ्य के संबंध में पुरुषों एवं महिलाओं के उपन्यासों में भी कोई विशेष अंतर पाया नहीं जाता। लेकिन प्राप्य उपन्यासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तेलुगु में पौराणिक ऐतिहासिक विषय वस्तु को लेकर लिखे गये उपन्यास संख्या की दृष्टि से अधिक हैं तो हिंदी में कम हैं।

हिंदी की उपन्यासकर्त्रियों ने यहाँ पौराणिक इतिवृत्त के रूप में 'सती सावित्री' तथा 'सती दमयन्ती' के आदर्श चरित्रों को ग्रहण किया है वहाँ तेलुगु में महाभारत संबंधी 'सुभद्रा' तथा पांडवों के जीवन-प्रसंगों को।

हिंदी की उपन्यासकर्त्रियों में अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए जहाँ अपने ही प्रांत की (उत्तर भारत की) ऐतिहासिक घटनाओं को वस्तु के रूप में ग्रहण किया है वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं ने आंध्रेतर ऐतिहासिक घटनाओं को स्वीकारा है।

ऐतिहासिक एवं पौराणिक उपन्यासों में दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने आदर्श पोषण के लिए इतिहास एवं पुराण गाथाओं की पृष्ठ भूमि के रूप में स्वीकार किया है। अतः उनमें मौलिक सद्भावनाओं की कमी एवं समस्याओं के विश्लेषण में तटस्थता देखी जाती है।

जहाँ तक सामाजिक विषय वस्तु को इतिवृत्त के रूप में ग्रहण करने का प्रश्न है दोनों ने आलोच्य उपन्यासकर्त्रियों ने समाज में पीड़ित नारी-जीवन से संबंधित समस्याओं को ग्रहण किया है। लेकिन नारी के प्रति पुरुष के अत्याचारों का चित्रण मात्र ही किया है, न कि उसका निर्मम खंडन।

दोनों के उपन्यासों में आदर्शवादी प्रवृत्ति समान रूप से दृष्टिगोचर होती है, किन्तु तेलुगु में चिल्लरिगे रमणम्मा के 'रामाश्रममु' (१९२६) उपन्यास में वैविध्यपूर्ण इतिवृत्त का यथार्थ परक चित्रण है। यह उपन्यास वस्तु पक्ष की दृष्टि से अधिक मौलिक, प्रगतिवादी तथा प्रभावात्मक माना जा सकता है। इसमें जमींदारी प्रथा का निर्मूलन, साम्यवाद की प्रतिष्ठा हिंदू-मुस्लिम एकता, रिश्वतखोरी का विरोध एवं शोषक एवं शोषित वर्गों के बीच का संघर्ष चित्रित किया है। स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के पूर्वार्ध में हिन्दी तथा तेलुगु में ऐसा कोई उपन्यास नहीं रचा गया, जो इसके समतुल्य रखा जा सके।

लेकिन स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उत्तरार्ध में हिंदी की लेखिका कंचनलता सब्बरवाल के 'भोला भूल' और 'संकल्प' उपन्यासों में साम्यवाद एवं गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार के उपन्यास तेलुगु में स्वातंत्र्योत्तर अवधि में ही पाये जाते हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से देखा जाय तो दोनों साहित्यों की लेखिकायें नारी पात्रों के प्रति अत्यंत सहानुभूति रखते हुए सभी प्रकार की परिस्थितियों में नारी को प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के चौखटे में बंधे हुए चित्रित किया है। नारी पात्रों के प्रति लेखिकाओं की विशेष सहानुभूति का प्रमाण यही है कि दोनों साहित्यों में स्वातंत्र्यपूर्व युग के अधिकांश उपन्यासों का नामकरण नायिकाओं के आधार पर ही किया गया है।

नारी पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चित्रण में लेखिकाओं को अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हुई है। तेलुगु में 'रामाश्रममु' के पात्रों का जैसा

मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत है उसी प्रकार का चित्रण कंचनलता सब्बरवाल तथा उषादेवी मित्रा के उपन्यासों में भी प्राप्त होता है।

जहाँ तक उद्देश्य तत्व है, आलोच्य उपन्यासकर्त्रियों ने नारी को अपने परिवार तथा समाज के प्रति धर्मपरायण बनने की शिक्षा समान रूप से दी है। तत्कालीन समाज में नारी पर किये जाने वाले अत्याचारों का चित्रण कर पुरुष को नारी के अस्तित्व से अवगत कराने का सफल प्रयास भी किया है। स्त्री-शिक्षा, बाल विवाह, विधवा-समस्या आदि पर प्रकाश डालकर लेखिकाओं ने नारी को जागृत करने के साथ-साथ समाज-सुधार की दिशा में भी अपना योग दिया है। प्रत्येक उपन्यास में स्त्री-पात्रों को विशेष रूप से गौरवान्वित कर तत्कालीन स्त्री जगत के सम्मुख एक उच्च आदर्श को प्रस्तुत करना भी दोनों साहित्यों की उपन्यासकर्त्रियों का उद्देश्य रहा है।

उद्देश्य की दृष्टि से दोनों साहित्यों के उपन्यासों में सम्मिलित परिवार का समर्थन अधिक पाया जाता है। पुरुषों की तुलना में नारियों में ही त्याग, धर्मावलंबन, कष्ट-सहिष्णुता, बलिदान आदि आदर्श गुणों का समावेश हुआ है। जहाँ पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण के प्रति हिंदी की उपन्यासकर्त्रियों ने आक्रोश व्यक्त किया है वहाँ तेलुगु की लेखिकायें इसके प्रति तटस्थ ही रहीं।

स्थूल रूप से निम्नांकित तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

१) हिंदी तथा तेलुगु में महिलाओं द्वारा रचित सर्वप्रथम उपन्यास के रचनाकाल में सोलह साल का अंतर पाया जाता है। हिंदी की सर्वप्रथम रचना सन् १८९७ में हुई है तो तेलुगु की सन् १९०६ में।

२) हिंदी का सर्वप्रथम उपन्यास सामाजिक इतिवृत्त प्रधान है तो तेलुगु का पौराणिक इतिवृत्त प्रधान।

३) ऐतिहासिक उपन्यासों के इतिवृत्त के रूप में हिंदी की उपन्यासकर्त्रियों ने अपने ही प्रांत के इतिहास को स्वीकार किया है तो तेलुगु की उपन्यासकर्त्रियों ने आंध्रेतर इतिहास को।

४) हिंदी तथा तेलुगु में रचित सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है। क्योंकि हिंदी का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'राजकुमार' एक लोककथा पर आधारित कल्पनाप्रधान है तो तेलुगु में 'रूपवति' एक राजस्थानी कथा पर आधारित कल्पनाप्रधान उपन्यास है।

५) दोनों साहित्यों के ऐतिहासिक उपन्यासों में साहसी नारी का रूप भी अंकित हैं – जैसे हिंदी के 'वीरपत्नी' उपन्यास में संयोगिता का तथा तेलुगु के 'कुमुद्वती' उपन्यास में कुमुद्वती का ।

६) गाँधीवाद का प्रभाव जहाँ हिंदी की लेखिकाओं पर देखा जाता है वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं पर नहीं ।

७) हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में जहाँ नारी के पतिव्रता एवं पति परायणा रूप के अतिरिक्त कंचनलता के उपन्यासों में उसके दूसरे रूप भी पाये जाते हैं वहाँ तेलुगु के सामाजिक उपन्यासों में नारी का केवल पहला रूप ही पाया जाता है ।

८) दोनों उपन्यासकर्त्रियों ने अपने उपन्यासों में आकस्मिक संयोग का सहारा लिया है जिससे कथानक में अस्वाभाविकता आ जाती है ।

चतुर्थ अध्याय

लेखिकाओं द्वारा विरचित स्वातंत्र्यपूर्व कालीन हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में शिल्प पक्ष : एक तुलना

लेखिकाओं के हिन्दी उपन्यासों में शिल्प पक्ष :

साध्वी सती पतिप्राणा अबला :-

आपके 'सुहासिनी' उपन्यास में संवाद अत्यंत साधारण कोटि के हैं। संवादों के माध्यम से कहीं-कहीं पात्रों के चरित्र का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है, जैसे लक्षमिन से देवीप्रसाद अपनी पत्नी को याद करते हुए कहता है कि- "हमारी सुहासिनी न मालूम खाये बिना कहाँ दुख पाती होगी, और मैं सुवर्ण पात्रों में ये सब मजेदार वस्तु भोजन करेंगे ? खाये बिना जीव नहीं बचता, इसलिए खाते हैं, नहीं तो हम को खाना उचित नहीं है।[1] उपर्युक्त कथन से सुहासिनी के प्रति देवीप्रसाद का सच्चा प्रेम भी ज्ञात होता है।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका ने समकालीन समाज के सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर भी यथेष्ट रूप से प्रकाश डालने की चेष्टा की है। देश में अंग्रेजों का अधिकार प्रबल था। उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन था। भारतीय लोग अंग्रेजों के द्वारा दी गयी नौकरियों से संतुष्ट होते

---

१. सुहासिनी—पृष्ठ : ३५

थे। वह उनके लिए गौरव का विषय भी था। इसका प्रमाण निम्नांकित उद्धरण से विदित होता है—"अंग्रेज बहादुर उनके ऊपर प्रसन्न होकर 'रानी' की उपाधि देने का प्रस्ताव किया, परन्तु सुहासिनी रानी बनने में सम्मत नहीं हुई।"[1]

तत्कालीन जनता की धार्मिक प्रवृत्ति का ज्ञान प्रस्तुत उपन्यास पात्रों द्वारा व्यक्त होता है। जैसे दरभंगा तट पर एक धनी व्यक्ति द्वारा कई स्त्री-पुरुषों के लिए अन्नदान करना, सुहासिनी की काशी यात्रा में भिखारियों तथा ब्राह्मणों को दान देने का वर्णन आदि विषयों से जनता में पायी जानेवाली धार्मिक प्रवृत्ति का आभास होता है।

आलोच्य उपन्यास का कला पक्ष शिथिल है। भाषा संबंधी अशुद्धियां पायी जाती हैं। इसके साथ लेखिका की शैली भी बंगला से प्रभावित प्रतीत है। जैसे—"सचमुच यह उसकी अंतर के बात था।"[2] बंगला से प्रभावित होने के कारण वाक्यों में लिंग, वचन आदि त्रुटियाँ भी पायी जाती हैं। भाषा की अशुद्धियां जैसे 'स्वशुराल', 'एकेले', 'रोसई', 'हेमेश', 'कव्या' इत्यादि हैं।

लेखिका ने कहीं कहीं भावावेश में आकर प्रश्नात्मक एवं प्रत्यक्ष कथन शैली का प्रयोग किया है लेकिन अधिकतर वर्णनात्मक शैली को ही अपनाया है, जैसे—"परंतु सुहासिनी गुणवती भार्या थी, वह सब तरह के क्लेश अपने ऊपर लेकर अपने स्वामी को जहाँ तक बन पडे, सुखी रखने की चेष्टा करती थी, आप अर्ध भोजन करके अपने स्वामी को भोजन कराती थी, इस तरह दिन बीतने लगे।"[3]

सरांश यह है कि आलोच्य उपन्यास शिल्प-पक्ष की दृष्टि से उतना सफल नहीं बन पडा जितना कि वस्तु पक्ष की दृष्टि से। शिल्प-पक्ष की अपरिपक्वता इस समय के प्रायः सभी उपन्यासों में सामान्य रूप से पायी जाती है।

सरस्वती गुप्ता :

आपका 'राजकुमार' उपन्यास शिल्प-पक्ष की दृष्टि से असफल माना जाता है।

---

१. सुहासिनी – पृष्ठ : ३५
२. सुहासिनी – पृष्ठ : ३
३. वही ३

प्रस्तुत उपन्यास में संवादों का अभाव पाया जाता है। यह उपन्यास घटना एवं कल्पना प्रधान होने के कारण लेखिका देश काल परिस्थितियों पर भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश नहीं डाल पायी।

आप पर भी बंगला का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। उच्चारण, लिखावट आदि में इसकी छाया परिलक्षित होती है। निम्नांकित उद्धरण से इसकी पुष्टि होती है--"ज्ञानलता जब आठ बरस की हुई उसी बखत उसकी माँ जाती रही। स्त्री के मरने के बाद से कभी-कभी मणिराम शिल्पी राज बहोत चिन्ता करते, ज्ञानलता को अब किस तौर से शिक्षा देवें और इसके वास्ते अच्छा वर कहाँ मिलेगा, लेकिन वह कभी घबड़ाते नहीं।"[1]

आपने इस उपन्यास में प्रत्यक्ष एवं वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है।

यह उपन्यास भी शिल्प पक्ष की दृष्टि से 'सुहासिनी' कोटि का ही माना जा सकता है।

प्रियंवदा देवी :-

आपके उपन्यास 'लक्ष्मी' में कथोपकथन यत्र तत्र दीर्घ होने के कारण उनमें एक प्रकार से नीरसता आ गयी है। जैसे शिवनाथ, के प्रति लक्ष्मी अपने मनोभावों को इस प्रकार व्यक्त करती है-"शिवनाथ, प्यारे शिवनाथ मेरे शिर के ताज और स्वामी शिवनाथ। आह इतने दिनों की बड़ी सख्त जुदाई और बेखबरी के बाद क्या मैं सचमुच तुम को देख रही हूँ। या मेरी आँखें धोखा खाती हैं? मैं जागती हूँ या स्वप्न देख रही हूँ। ऐ मेरी प्यारी वफादार और चमकीली आँखें। तुम को मेरी कसम जो सच सच न बताओ। क्या यह वही प्यारे शिवनाथ है जो अब तक मुझ में समाये रहे हैं। मेरे भोले और मासूम दिल (तू साफ और पवित्र है) तुझ को मेरी जान की कसम सच बता यह वही प्यारे शमशेर बहादुर हैं जो आजकल मेरे दिल में बसे रहे।'[2]

इस प्रकार उक्त कथन से विदित होता है कि लेखिका ने भावावेश में आकर ही संवादों को अधिक लंबे बना दिये हैं।

---

१. राजकुमार - पृष्ठ : ६

२. लक्ष्मी - पृष्ठ : ५९

लेखिका ने कहीं कहीं संवादों में भाव–वैविध्य की ओर ध्यान दिया है –जैसे रविदत्त के संवादों में लक्ष्मी के प्रति मंगलकामना का भाव प्रकट होना, लक्ष्मी के संवादों में रविदत्त के प्रति उदारता, क्षमाशीलता आदि भावों का व्यक्त करना आदि ।

आलोच्य कृति में लेखिका ने वातावरण के प्रति भी ध्यान दिया है । अपने उपन्यास में समीपवर्ती प्रदेश के जन-जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है और उपन्यास का प्रारंभ ही देशकाल चित्रण से हुआ है । जैसे–"नेपाल राज्य से थोडी दूरी पर उत्तर की ओर एक सुहावनी हरी–भरी घाटी है जहाँ पर कई पहाडी गृहस्थियों ने अपने रहने के लिए छप्पर डाल दिये हैं जिससे यह साफ मालूम होता है कि अपने जीवन के दिन यह यहीं व्यतीत करना चाहते हैं । इन झोंपडियों के पास पास होने से यह जगह एक छोटे से गाँव की न्याई दीख पडती है। यह बात छिपी नहीं कि नेपाल राज्य की सीमा सारे भारतवर्ष में सब से अधिक है और पर्वतों की श्रेणी जो कई सौ मील तक बराबर चली गई है ऐसी शोभायमान प्रतीत होती है कि मानो विश्वकर्मा का बनाया स्वर्ग यही है ।"[1]

बहु विवाह प्रथा तथा तत्संबंधी सपत्नीक ईर्ष्या आदि विषयों द्वारा लेखिका ने तत्कालीन सामाजिक वातावरण का चित्रण किया है । बहु-विवाह से उत्पन्न सपत्नीक ईर्ष्या के प्रति लेखिका ने भूमिका में अपने विचारों को इस प्रकार स्पष्ट किया है–आजकल प्रायः इस भारतवर्ष में सौतिया डाह इतना प्रचलित हो रहा कि जिसका वर्णन करना मुझ तुच्छ बुद्धि मे कहाँ हो सकता है ? स्त्री जाति में विद्या का अभाव हो एक मात्र इसकी जड़ है, यदि हम अबला विद्या रूपी भूषणों से सुसज्जित होवें तो क्या कभी स्वप्न में भी संभव है कि इस डाह रूपी आग में हमारा तन, मन, धन स्वाहा होता रहे ।'[2] इस उद्धरण से यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में नारी शिक्षा का अभाव है ।

आलोच्य उपन्यास में अनेक स्थानों पर भाषा की त्रुटियाँ पायी जाती हैं । भाषा में लिंग, वचन की भी अनेक अशुद्धियाँ हैं जैसे–'कल भोर क्रोध के मेरी आँख से एक बुँद आँसू भी नहीं निकली थी ।'[3]

---

१. लक्ष्मी – पृष्ठ : १
२. वही – भूमिका से उद्धृत
३. लक्ष्मी – पृष्ठ : ७७

प्रस्तुत उपन्यास में प्रत्यक्ष एवं स्वगत कथन शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रत्यक्ष कथन शैली का उदाहरण है–'बहनों को लक्ष्मी की भाँति अपने आचरण को शुद्ध रखने की चेष्टा करें और विद्या ग्रहण कर परम धाम की भागी बनें।"[1]

साराँश यह है कि शिल्प पक्ष की दृष्टि से इस उपन्यास में कथोपकथन तथा भाषा-शैली की अपेक्षा वातावरण का प्रस्तुतीकरण सफल बन पड़ा है।

प्रियंवदा देवी का ही दूसरा उपन्यास है–'कलयुगी परिवार का एक दृश्य'। आलोच्य उपन्यास के संवादों में हास्य-व्यंग्य का पुट पाया जाता है।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का वास्तविक चित्रण लेखिका ने इसमें किया है। लेखिका ने एक हिन्दू परिवार की कथा को कथावस्तु के रूप में ग्रहण कर उसमें पाये जानेवाले ईर्ष्या-द्वेष, आदि पारिवारिक समस्याओं का मार्मिक चित्रण करने का प्रयास किया है। अन्त में लेखिका ने यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इन सब समस्याओं का मूल कारण अज्ञान तथा निरक्ष-रता ही है। इसी कारण स्त्री-शिक्षा के प्रति आपने अधिक ध्यान दिया है। इस प्रकार आलोच्य उपन्यास में पारिवारिक वातावरण का सुन्दर चित्रण पाया जाता है।

अन्य उपन्यासों के समान इसमें भी भाषा सम्बन्धी शिथिलता है। जैसे कुलकामिनियें, शीधी (सीधी) आदि अशुद्ध शब्दों का यत्र-तत्र प्रयोग उपन्यास में पाया जाता है। तत्कालीन समाज में प्रचलित नारी वर्ग के कुछ शब्द––'दीवे बल चुके', 'जी न करता' आदि का भी प्रयोग पाया जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रत्यक्ष शैली का प्रयोग हुआ है जैसे–"बात ही बात में हमारे दृश्य का क्रम बहुत ही पीछे छूट गया इसके लिए मैं आपसे क्षमा माँग पुनः अपना सिलसिला आरम्भ करती हूँ।"[2]

साराँश यह है कि हास्य, व्यंग्य के समावेश के कारण शैली पक्ष कीं दृष्टि से, पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में यह उपन्यास विशिष्ट माना जा सकता है।

---

१. लक्ष्मी पृष्ठ ८१
२. कलयुगी परिवार का एक दृश्य – पृष्ठ : ६–७

हेमंतकुमारी चौधरी :-

आपके द्वारा विरचित 'आदर्श माता' उपन्यास के संवाद अति साधारण कोटि के हैं। यह उपन्यास मात्र उपदेश देने के लिए लिखा गया है। इसी कारण इसमें प्राप्त संवाद भी उपदेश प्रधान हो गये हैं। संवादों के माध्यम से ही सामाजिक कुरीतियों की अभिव्यक्ति हुई है। तत्कालीन समाज की निरक्षरता, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियों की निरक्षरता के सम्बन्ध में रामनारायण की यह उक्ति द्रष्टव्य है--"हमारे देश के अधिकांश शिक्षित युवक भी जो नीति-ज्ञान-शून्य होते हैं, सत्य, असत्य का विचार नहीं करते, जरा से लोभ के वश होकर झट झूठी गवाही दे देते हैं, और अपनी माता बहन और धर्मपत्नी की मर्यादा नहीं करते इसका कारण क्या है।"[1] लेखिका ने सँवादो की पुष्टि के लिए पौराणिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों को अपनाया है। जैसे--गर्भस्थ अभिमन्यु का व्यूह-रचना सीखना, एवं संगीत-शिक्षा के प्रसंग में क्षत्रिय नारियों की प्रशंसा करना आदि।

बाल-विवाह, निरक्षरता, विधवा समस्या आदि के प्रस्तुतीकरण के द्वारा लेखिका ने तत्कालीन सामाजिक वातावरण का प्रभावात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ विधवा जीवन को सुधारने के प्रयत्न में पार्वती के द्वारा कही गयी यह उक्ति द्रष्टव्य है--"लोग तो ऐसी विधवाओं की अवस्था को देखकर भी निष्ठुर की न्यायी अंधभाव से रीति का अनुसरण कर रहे हैं। देखो, एक दिन हमारे यहां एक ईसाई मिशनरी मेम आयी थीं उन्होंने ही सतघ्यारी को देखकर मुझे कहा तुम लोग विधवाओं को निरर्थक बैठाकर क्यों उनके दुख बढ़ाते हो। इससे तो उनको अर्थकारी कोई काम सिखा दो जिससे वह अपना और पुत्र-कन्याओं का भी निर्वाह कर सके।"[2]

आलोच्य उपन्यास में भाषा की अशुद्धियाँ बहुत अधिक हैं क्योंकि लेखिका पर बंगला तथा पंजाबी भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। बंगला प्रभाव जैसे 'सुमिष्ट', 'विकारा'[3] पंजाबी प्रभाव 'दोनो वेल'[4] आदि। वाक्य-रचना में भी अशुद्धियाँ हैं जैसे--"बड़े चिंता के साथ खास लेकर बोली।"[5]

---

१. आदर्श माता--पृष्ठ : १०-११

२. आदर्श माता - पृष्ठ : १४४

३., ४. आदर्श माता - पृष्ठ : ५, ५९, २७

५, आदर्श माता - पृष्ठ : ५०

भाषा में प्रभावात्मक एवं सुन्दरता लाने के लिए लेखिका ने यत्र तत्र कई मुहावरों का प्रयोग किया है जैसे—'आँखों का तारा', 'छाती फटना' आदि।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने प्रत्यक्ष कथन एवं वर्णनात्मक शैली को अधिक मात्रा में प्रश्रय दिया है।

सारांश यह है कि विवेच्य उपन्यास वातावरण के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से एक सफल एवं सुन्दर माना जा सकता है।

यशोदा देवी :—

'वीर पत्नी' उपन्यास में श्रीमती यशोदादेवी ने बहुत ही कम मात्रा में संवादों का प्रयोग किया है। सम्पूर्ण उपन्यास में केवल पाँच प्रसंगों पर ही कथोपकथन सम्पन्न हुए हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :—

१) संयोगिता और उसकी सखियों के संवाद,
२) संयोगिता के विवाह के सम्बन्ध में,
   जयचन्द्र तथा उनकी पत्नी के संवाद,
३) संयोगिता के स्वयंवर की आयोजना के सम्बन्ध में संवाद,
४) मुहम्मद गोरी तथा पृथ्वीराज के संवाद,
५) पृथ्वीराज तथा संयोगिता के संवाद।

इस प्रकार आलोच्य उपन्यास में संवाद अत्यंत न्यून ही नहीं प्रत्युत साधारण कोटि के भी हैं।

यह उपन्यास ऐतिहासिक होने के कारण देश काल वातावरण के प्रति लेखिका ने भी यथेष्ट ध्यान दिया है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रारंभ वातावरण के निरुपण में ही हुआ है। इसके अतिरिक्त 'संयोगिता स्वयंवर का स्वाभाविक चित्रण'[1], मुहम्मद गोरी तथा पृथ्वीराज की सेना के युद्ध का यथातथ्य चित्रण[2] आदि वर्णनों में देश काल का पर्याप्त वर्णन लेखिका ने करवाया है।

प्रकृति वर्णन के प्रति भी लेखिका सजग रही हैं जैसे — "बसंत ऋतु है। पेडों में नई नई पत्तियाँ निकल रही हैं। रंग बिरंगे फूलों से दिशायें

---

१. वीरपत्नी — पृष्ठ : ४३–६० २. वीरपत्नी — पृष्ठ : ३६,९०–९१

जगमगा गयी हैं, उनके कारण पृथ्वी ने एक नया रूप धारण किया है, उन अनेक प्रकार के फूलों के गंध फैल रहे हैं। आम की बौरों के आस पास दिन रात मधु मक्खियों की भन-भनाहट, मानो सदावर्त पर भिक्षुकों का गोल जुटा है। दक्खिनी वायु मतवाले के समान धीरे धीरे झूम रहा है। कभी–किसी फूल की पंखुडियों को और कभी लताओं को घूम घूम कर हिला रहा है।"[1]

आलोच्य उपन्यास की भाषा पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा सुधरी होने पर भी कहीं कहीं अशुद्धियाँ पायी जाती हैं जैसे–'पृथ्वीराज तो उनकी आँखों के काँटा है।"[2] यत्र तत्र अलंकारों का प्रयोग किया है जैसे "आम की बौरों के आसपास दिन रात मधु मक्खियों की भन भनाहट, मानो सदावर्त पर भिक्षुकों का गोल जुटा है।"[3] और संयोगिता इस भूतल में रहने वाली देवांगना है।"[4] इस प्रकार के अलंकारों के प्रयोग से भाषा में प्रभावात्मकता एवं मार्मिकता आ गयी है।

प्रासंगिक उपन्यास की रचना अधिकतर वर्णनात्मक शैली में हुई है। इस उपन्यास में वर्णन और विवरण को ही अधिक प्रश्रय मिला है। जैसे – "कारचोबी के काम की बनारसी साडी जिस में मोतियाँ टकी हुई हैं, और जिसमें सोनहले तारों की बेल बूटियाँ कढी हुई है पहनकर और नीले रेशम की ओढनी ओढकर संयोगिता स्वयंवर सभा में आई। पयजेबों की झनकार से उसके आते ही राजाओं की उस ओर इकटकी बंध गई। संयोगिता के साथ दो साथी हैं। जो सोने के थाल में फूल माला चंदन दूर्वा तथा सोने की झारी में निर्मल जल आदि सामग्री लिये हुए हैं।"[5]

आलोच्य उपन्यास में कहीं कहीं भाषा की अशुद्धियां होने पर भी यह एक ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण तत्कालीन देशकाल, वातावरण का जो यथातथ्य–चित्रण संपन्न हुआ है उसकी तुलना में उपर्युक्त दोष नगण्य हैं।

ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे :–

ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे का 'सौंदर्यकुमारी' उपन्यास के संवाद संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं। अधिकांश संवाद तो उपदेशात्मक हैं। सौंदर्यकुमारी

---

१. वीर पत्नी– पृष्ठ : १७–१८ 	२. वीर पत्नी– पृष्ठ : २१
३. वही पृष्ठ : २१ 	४. वही पृष्ठ : ९
५. वही पृष्ठ : ४६–४७

की माता के द्वारा अपने पुत्र को सत्य बोलने तथा चोरी न करने के उपदेश देना, उन्हीं के द्वारा सौंदर्यकुमारी को सदाचरण जीवन व्यतीत करने का संदेश देना, आदि प्रसंग इस तथ्य के सुंदर उदाहरण हैं।

लेखिका ने समकालीन सामाजिक वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया है। जैसे उस समय समाज में प्रचलित पर्दा-प्रथा का खंडन लेखिका शिवचंद्र के कथन के माध्यम से करवाती है, – "बाबू शिवचंद्र को परदा कराना बहुत नापसंद था इसलिए सौंदर्य भी परदा नहीं करती थी।"[1]

लेखिका ने प्रकृति-वर्णन का भी सुंदर समावेश उपन्यास में प्रस्तुत कर शैली-पक्ष को प्रभावात्मक बनाने का यत्न किया है। उदाहरणार्थ–'सूर्य अस्त हो गया है, इधर उधर से ठंडी हवा सनसना रही है, कहीं कही पक्षी-गण बसेरा लेने को आश्रय ढूंढ रहे हैं, बालकगण आँख मिचौनी खेल रहे हैं, कितने ही मनुष्य हवा खाने जा रहे है, कोई कोई अपने मित्रों से वार्तालाप करने आये हैं।'[2]

वर्णनात्मक एवं प्रत्यक्ष कथन की शैली के द्वारा चारित्रिक विशेषताओं पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। प्रत्यक्ष कथन शैली संबंधी निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है–'पाठकगण ! ऐसी दशा में सौन्दर्य अवश्य ही एक पति-व्रता और धैर्यवती थी। जिसने अपने धर्म के कारण तन मन धन सब अर्पण कर दिया था। उसने पति की मृत्यु के बाद किसी प्रकार के सुज की इच्छा नहीं की और सब का प्रेम तुच्छ समझ एक ईश्वर का प्रेम अचल समझा।'[3]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा बोलचाल की भाषा है। वाक्य रचना में अनेक दोष पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ–'उस साधु ने दूर से इसे आते देख जो बनावटी भजन करता था, नेत्र खोले और बोला–अरी बालिका, तू कौन है जो इस निर्जन स्थान में आई है।'[4]

सारांश यह है कि भाषा संबंधी दो एक त्रुटियों को अपवाद मानें तो, शिल्प-पक्ष की दृष्टि से यह एक सफल कृति मानी जा सकती है।

---

१. सौन्दर्य कुमारी–पृष्ठ : ६२

२. ३. सौंदर्य कुमारी–पृष्ठ : १, ८६ ४. सौंदर्य कुमारी–पृष्ठ : ७१

रुक्मिणी देवी :

'मेम और साहब' श्रीमती रुक्मिणी देवी का व्यंग्य प्रधान उपन्यास है। इसमें संवादों के लिए व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए नारायणस्वरूप और गाड़ीवान इब्राहीम के संवाद [1], नारायणस्वरूप और सुशीला के तर्कपूर्ण संवाद, जिसमें नारायणस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता की प्रशंसा करता है और सुशीला भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता की प्रशंसा करती है[2], प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

लेखिका ने चरित्र चित्रण के विकास में तथा वातावरण के चित्रण के लिए संवादों को माध्यम बनाया है।

लेखिका ने तत्कालीन देशकाल परिस्थितियों का वर्णन भी यत्र तत्र किया है। उस समय की पर्दा-प्रथा का वर्णन निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट होता है–'परदे में रहनेवाली स्त्रियों को कौतुक तमाशे देखने का बड़े भारी सौभाग्य से अवसर मिलता है। ऐसे अवसर पर ही उन्हें आनन्द नहीं होगा तो और कब होगा ?'[3] भारतीय युवकों ने अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित होकर पर्दा-प्रथा का खंडन किया है। नारायणस्वरूप के विचार इसके उदाहरण हैं।

उपन्यास में मुख्यतः वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने संबोधनात्मक शैली को भी अपनाया है, जैसे–'पाठकगण ! इस समय हमारे साहब की क्या दशा हुई होगी, आप स्वयं विचार सकते हैं।'[4]

संपूर्ण कथा व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गई है। फिर भी कथा में रोचकता का अभाव है। क्योंकि संपूर्ण कथा का केन्द्र केवल एक ही मुख्य घटना है और उसी को महत्व देते हुए कथा का आयोजन किया गया है।

भाषा अत्यंत साधारण कोटि की है। फजीहत, टालटूल जैसी बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग हुआ है। व्यंग्यात्मक शैली में रचित उपन्यासों का इस अवधि में अभाव है, अतः शिल्प की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास 'मेम और साहब' विशिष्ट कृति मानी जा सकती है।

१., २. मेम और साहब–पृष्ठ : २१-२२, २६-२९

३., ४. ,, ,, पृष्ठ : ३, १३

हुकमदेवी गुप्ता :

'गूढ़ भाव प्रकाश' उपन्यास में श्रीमती हुकमदेवी गुप्ता, वातावरण के प्रति अधिक महत्व देने के कारण संवादों की ओर उचित ध्यान नहीं दे पायी है। जहाँ कहीं संवाद पाये गये हैं उनमें उपदेशों की आधिक्यता ही पायी जाती हैं।

लेखिका ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशद तथा जीवंत वर्णन किया है। प्रस्तुत उपन्यास में सामाजिक रूढियों का भी चित्रण किया गया है। माता-पिता द्वारा लोभवश कुमारी कन्या का विधुर पुरुष से विवाह, स्त्री के प्रति उपेक्षा की भावना, आश्रम आदि संस्थाओं में होनेवाले नीच कार्य, सामाजिक अंधविश्वास आदि को लेखिका ने दृष्टि में रखकर उसका समुचित सभाधान भी अपनी ओर से प्रस्तुत किया है।

विवेच्य कृति में समकालीन नारी-समाज में प्रचलित व्यावहारिक भाषा-शैली का प्रयोग किया है जिसमें 'घिसड़ना', 'अनपढ़ी' आदि अनेक ग्राम्य शब्द पाये जाते हैं। प्रत्यक्ष कथन शैली को लेखिका ने अपनाया है, जैसे– "आओ ! पाठकगण ! हम तुम सब मिलकर पंडित शांतिप्रकाश के मकान पर चल कर देखें कि वहाँ क्या हो रहा है ? ओहो आज यहाँ पर बड़ा उत्सव मनाया जा रहा है। उनका मकान बहुत सजा हुआ प्रतीत होता है। स्त्रियों की बहुत अधिक भीड़ हो रही है कोई गीत गाती है, कोई बाजा बजाती है, कोई हंसती है।"[1]

प्रारंभकालीन अन्य उपन्यासों के समान इस उपन्यास में भी भाषा तथा व्याकरण संबंधी कई त्रुटियाँ पायी जाती है, जैसे–'इनकी वार्तालाप सुने', 'समाज दंडी देगी।' उक्त त्रुटियों के कारण भाषा-प्रवाह में शिथिलता आई है।

लीलावती देवी :

प्रारंभ कालीन लेखिकाओं में आपने ही 'सती दमयंती' तथा 'सती सावित्री' शीर्षक पौराणिक उपन्यासों का प्रणयन किया है।

---

१. गूढ़ भाव प्रकाश–पृष्ठ : २४

'सती दमयन्ती' उपन्यास में लेखिका ने चरित्र चित्रण में सजीवता एवं रोचकता लाने के लिए सारगर्भित संवादों का सृजन किया है। इसके साथ पौराणिक उपन्यास होने के कारण तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। इसी कारण लेखिका ने कथानक के प्रारंभ में विदर्भ देश की प्राकृतिक शोभा और जन-समाज के रीति-रिवाजों का विस्तार पूर्वक वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार उस समय के समकालीन प्रथाओं तथा समस्याओं की ओर उचित ध्यान दिया है जैसे मानवीय कार्यों में देवताओं के विघ्न, देवताओं द्वारा मनुष्यों की परीक्षा, स्वयंवर प्रथा, आदि। उक्त सभी बातें देश कालानुरूप चित्रित किये गये हैं।

लेखिका ने वर्णनात्मक शैली के साथ साथ नाटकीय शैली को भी प्रश्रय दिया है। भाषा-शैली के उदाहरण केलिए यह उक्ति द्रष्टव्य है - "इस प्रकार रोज रोज और बार बार दमयंती के रूप गुणों की बात सुनते सुनते राजा नल का अचल मन चलायमान हो गया। उनके हृदय में दमयंती के पाने की आशा जाग उठी। पर इस आशा को उन्होंने किसी के आगे जाहिर नहीं किया। स्वभाव की गहराई और धीरज ने उनके सारे भाव छिपा लिये।"[1]

'सती सावित्री' उपन्यास में लेखिका ने कथानक में नाटकीयता लाने केलिए पात्रानुकूल तथा सारगर्भित कथोपकथनों के समावेश करने की सफल चेष्टा की है। सावित्री और यम का वार्तालाप इस तथ्य की पुष्टि केलिए उद्घृतत किया जा सकता है।[2]

देशकाल वर्णन के प्रति भी उपन्यासकर्त्री ने अधिक बल दिया है। पौराणिक आदर्शों की अभिव्यक्ति में लेखिका ने अधिक रुचि दिखाई। जैसे भद्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य, सुखपूर्ण राज्य व्यवस्था आदि का अतिरंजित वर्णन उक्त उक्ति के प्रमाण हैं।

लेखिका ने उपन्यास का प्रारंभ कलियुग तथा सतयुग की तुलना द्वारा करके कथ्य के अनुरूप सुंदर वातावरण की पुष्टि की है।

इस उपन्यास में भी 'सती दमयंती' की भाँति तत्सम बहुल भाषा को स्थान मिला है। अर्थात भाषा परिष्कृत तथा साहित्यिक है। कथानक पौराणिक होने के कारण ऐसी भाषा का प्रयोग उचित ही लगता है।

---

१. सती दमयंती – पृष्ठ : १९
२. सती सावित्री – पृष्ठ : ५७–६९

उषादेवी मित्रा :–

श्रीमती उषादेवी मित्रा ने स्वातंत्र्यपूर्व की अवधि तक क्रमशः वंचन का मोल, 'पिया' तथा 'जीवन की मुस्कान' शीर्षक तीन उपन्यासों की रचना की है।

वचन का मोल उपन्यास में कथोपकथन की योजना पात्रानुकूल हुई है। संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र का विकास भी संपन्न हुआ है। जैसे कजरी की उक्तियों में उसके सादे जीवन तथा उच्च विचारों का प्रतिबिंब है, तो मनिका के वार्तालाप सर्वत्र उसकी विलासप्रिय-रुचि का द्योतन करते हैं। पाश्चात्य आदर्शों से प्रभावित नीरोजा के लिए गृह विज्ञान की अनिवार्यता तथा भारतीय संस्कृति का आदर्श आवश्यक बतानेवाली प्रतिभा की उक्तियाँ इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार मीना, मनिका, सरोज, प्रतिमा, नीरोज आदि अन्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को भी संवादों के माध्यम से लेखिका ने मुखरित किया है।

लेखिका ने देशकाल वातावरण के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया है। यह उपन्यास चूंकि स्वतंत्रता के पूर्व लिखा गया है। फलस्वरूप उस समय की सामाजिक परिस्थितियों को इसमें अधिक प्रश्रय मिला है। महात्मा गांधी का स्वदेशी आंदोलन उस समय विशेष बल पकडा हुआ था तथा अधिकांश स्त्री-पुरुष स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अपना आदर प्रकट करने लगे थे। उक्त कथन कीपुष्टि केलिए मनिका के प्रति डा. यतीश का निम्नांकित कथन उल्लेखनीय है–"आज जिसे मोटा और खराब कह रही हैं, उसे आदर और संतोष के साथ वे नर-नारियाँ भी अपना रही हैं जिन्होंने पहले सिल्क के सिवाय दूसरे कपडे छुये तक न थे। केवल यही नहीं, आज वे देश के अभाव, दुख, व्यथा को दर्द के साथ समझने भी लगे हैं।"[2] स्वदेशी आंदोलन के प्रति निखिल के ये विचार भी द्रष्टव्य हैं–"स्वदेशी आंदोलन, जो हमारे गाँवों में चिर-प्रचलित था, देश के लिए अनिवार्य व आवश्यकता है।"[3]

श्रीमती उषादेवी जी ने वर्णनात्मक शैली की अपेक्षा नाटकीय शैली को अधिक महत्व दिया है, जिसके कारण कथानक में रोचकता तथा सजीवता का समावेश हुआ है। नाटकीय शैली के अतिरिक्त कहीं-कहीं सूत्रशैली तथा चित्रात्मक शैली को भी अपनाया है।

१.,२. बचन का मोल – पृष्ठ : २०-२३, ९१

३. वही – पृष्ठ : ५७

ड्रेस, लेक्चर आदि अंग्रेजी शब्द[1], अभ्यस्त, उष्ण, दृष्टांत, अवहेलना आदि तत्सम शब्द[2] दोनों का प्रयोग स्वेच्छतया लेखिका ने किया है। कहीं कहीं व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ भी है जैसे, "कभी भी अपने को दूसरे से तुलना करने मत जाना"[3]।

सारांश यह है कि 'वचन का मोल' उपन्यास प्रारंभ कालीन उपन्यासों में शिल्प पक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

'पिया' उपन्यास में लेखिका ने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप ही संवादों की सृष्टि की है। तर्कपूर्ण संवादों द्वारा पात्रों की विचार-धारा को व्यक्त किया गया है। इस प्रसंग में पिया और यमुना का वह संवाद उल्लेखनीय है, जिसमें पिया भारतीय नारी की सहनशीलता को उसकी भीरुता कहकर पुरुष के दुर्गुणों का विश्लेषण करते हुए नारी द्वारा अपनी सम्मान-रक्षा की आवश्यकता पर बल देती है और यमुना भारतीय नारी के पतिव्रत-धर्म तथा कुल-गौरव को लेकर पिया की बातों का विरोध करती है।[4]

निशीध तथा पिया के बीच के तर्कपूर्ण संवाद जिस में निशीध भारतीय धर्मों को महत्व देता है तो पिया उनको रूढिगत मानकर उसका विरोध करती है।[5] लेखिका ने यत्र तत्र प्रत्यक्ष कथन की शैली द्वारा पात्रों के चरित्र का विकास किया है।

स्वातंत्र्य-उपन्यास होने के कारण तत्कालीन राजनीतिक वातावरण का भी कुछ आभास इस में पाया जाता है। पिया के द्वारा पिकेटिंग कराया जाना, तथा सरकार के विरूद्ध भाषण दिये जाना आदि इसी राजनीतिक परि-स्थिति को सूचित करने वाले प्रसंग हैं।

उषादेवी जी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस कृति में अधिकतर तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग मिलता है यत्र तत्र देशज शब्द भी पाये जाते हैं। आप कुछ शब्दों को विकृतकर के लिखती हैं जैसे 'निस्संकोच' के स्थान पर 'असंकोच'[6] का प्रयोग मिलता है। अलंकारिक वाक्यों का प्रयोग

---

१. वचन का मोल – पृष्ठ : २४-३८
२. वचन का मोल – पृष्ठ : ७, ९, ८४, ११६
३. वही १२३
४. पिया – पृष्ठ : २७-३१ ५. पिया–पृष्ठ : ५८-५९, ७५-७६
६. पिया – पृष्ठ : ७०

करना आपकी शैली की मुख्य विशेषता है, जिस से उपन्यास को पढते समय काव्य का सा आनंद प्राप्त होता है। जैसे-"किंतु वह सूर्य किरण सी दीप्त, स्वर्ग-किन्नरी सी अपरुप तरुणी नीलिमा तब भी तालाब के किनारे बैठी बासन माँझ रही थी।"[1]

'जीवन की मुस्कान' उपन्यास में संवाद, चरित्र-चित्रण के विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। जैसे सविता की उक्तियों द्वारा उसके भोलेपन की झलक, सत्यभामा के संपूर्ण वार्तालाप वात्सल्य से भरे हैं। पृथीश के संवादों के द्वारा दीनों के प्रति दया और समाज सुधारक के गुण व्यक्त किये गये हैं।

इन्हीं संवादों के द्वारा यत्र तत्र देश काल तथा उद्देश्य आदि तत्वों का भी प्रतिपादन हुआ है।

लेखिका ने देश काल संबंधी तथ्यों का यथातथ्य चित्रण यत्र तत्र किया है। फिर भी संवादों में ही इन तथ्यों की चर्चा अधिक हुई है। जैसे पृथीश और कमलेश के मध्य में, भूकंप से पीडित जनों की सहायता के विषय को लेकर जो चर्चा हुई है। उस में पृथीश उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करता है और उनकी सहायता करने की आवश्यकता को अनुभूत करता है। तब कमलेश उनकी निर्धनता तथा निरक्षरता का कारण उन्हीं के आलस्य को बता कर उन पीडित लोगों की सहायता करने से तिरस्कार कर देता है।[2] पृथीश और कमलेश के इस वार्तालाप के द्वारा देश काल संबंधी विषयों के प्रति कुछ संकेत भी प्राप्त होते हैं।

लेखिका की भाषा अन्य उपन्यासों के समान अलंकारिक और काव्य-मयी है। जैसे "वर्षा ऋतु की गहरी रात में सुप्त पृथ्वी के आंचल में पडी चाँदनी सिसक रही थी। न जाने वह कौन सी व्याधि कहानी, बिछुडे प्रेम की वह कौन सी याद इस एकांत में उसके आँसू बहाने में लगी थी। न जाने कितने पथिकों के पदचिह्न उसके रजपथ शुभ्र वसन पर अंकित थे। कितने ही चिता भस्म के कण उसके तुषार-शुभ्र पर पद लिपटे थे। अनेक स्थानों पर ध्वन्यात्मक शब्दावली के प्रयोगों से भाषा को प्रवाहपूर्ण बनाया गया हैं। जैसे-"सि झिन सि झिन, झिनक झिनक झिनक झिन नूपुर सिंजन से उद्यान का वायु झंकृत होने लगा।"[3] इसी प्रकार अनुप्रासात्मक शब्द-युग्मों के प्रति

१. पिया – पृष्ठ : ३   २. जीवन की मुस्कान – पृष्ठ : १०२-१०३
३. जीवन की मुस्कान – पृष्ठ : ४०

भी लेखिका का लोभ दिखाई पडता है जैसे मोह-मिठास. सुर-सुन्दरियाँ, आदि। लेखिका ने मूलत: वर्णनात्मक शैली का अंशतः संवादात्मक तथा चित्रात्मक शैली का प्रयोग भी किया है।

'पथचारी' सामाजिक विषमताओं पर प्रकाश डालनेवाला उपन्यास है।

इस उपन्यास में संवाद-योजना पात्रों के चरित्र-चित्रण में सर्वाधिक सहायक रही है। एक स्थान पर नीतान और माधुरी के संवादों के द्वारा नीतीन के निर्मल एवं पर दुख कातर हृदय का परिचय प्राप्त होता है, तो माधुरी की विलासप्रियता, धन के दंभ, कठोर हृदयता आदि दुर्गुणों का बोध होता है।[1]

आलोच्य उपन्यास में संवाद सभी संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं। राधिकारमण एवं वासुदेव के उक्तियों में बेकारी की समस्या और निर्धनता का परिचय मिलता।

लेखिका ने सामाजिक वातावरण की सृष्टि की है। अभिजात वर्ग निम्न-वर्ग एवं श्रमिक वर्ग की समस्याओं का चित्रण इस में पाया जाता है। धनिकों केलिए बेकारी जैसी कोई समस्या ही नहीं होती क्योंकि, उनका जीवन लक्ष्य विलासमय जीवन की ओर रहता है। मद्यपान करना, मोटरों में भ्रमण करना आदि विषयों में ही उनका समय व्यतीत होता है।[2] दूसरी ओर निम्न-वर्ग के व्यक्ति इतने निर्धन होते हैं कि दो जून रोटी भी परिवार को खिला भी नहीं पाते, और मृत्यु शय्या पर भी डाक्टर को बुलाने में असमर्थ होते हैं।[3]

आलोच्य उपन्यास में शैली वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक रही हैं। यत्र तत्र ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा शैली में विशेष सौंदर्य की सृष्टि की गई है।[4]

उपन्यास की भाषा मंजी हुई साहित्यिक भाषा है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि लेखिका की भाषा-शैली प्रभावपूर्ण एवं मधुर है।

१., २. पथचारी – पृष्ठ : ५३, ६९
३. वही १२४ १२८
४. वही ३, २०

कंचनलता सब्बरवाल :

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल ने स्वातंत्र्यपूर्व की अवधि तक क्रमशः 'मूक प्रश्न', 'भोली भूल', 'संकल्प' तीन उपन्यासों की रचना की है।

आपके उपन्यास 'मूक प्रश्न' ने कथोपकथन की योजना द्वारा घटनाओं तथा चारित्रिक विशेषताओं पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। संवाद पात्रानुकूल ही नहीं प्रत्युत मनोवैज्ञानिक भी है। यत्र तत्र हास-परिहासपूर्ण संवाद भी पाये जाते हैं। कतिपय स्थलों में संवाद दीर्घ होने के कारण भाषण नीरस प्रतीत होने लगे। जैसे 'निर्वाचन' और 'दलिपथ' आदि शीर्षकों के अंतर्गत सावित्री के प्रति सन्यासी के उपदेशात्मक संवाद और 'पूंजीपति' शीर्षक के अंतर्गत श्रमिक वर्ग का पक्ष लेते हुए निर्मला की ओजपूर्ण उक्तियाँ इसके लिए उदाहरण हैं।

उपन्यास में समकालीन समाज का सम्यक चित्रण भी संपन्न हुआ है। जैसे एक स्थान पर शोषित वर्ग की दयनीय दशा तथा पूँजीपतियों की स्वार्थ-परता का वर्णन किया गया है।[1] उस समय के सन्यासियों के विलासमय जीवन का भी वर्णन है।[2]

लेखिका ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं स्वयं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती हैं जैसे–'सावित्री ने बाल्यकाल से ही अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा था। मां की झिड़की और बहिनों के तिरस्कार में ही उसके जीवन का प्रभात आरंभ हुआ था। वह वृक्ष बन गई थी। अतः लता निर्भयतापूर्वक उसका सहारा ले सकती थी। किंतु लता बनकर उसे आश्रय की आवश्यकता न थी।[3]

इसकी भाषा सरल और व्यावहारिक है। कई देशज, विदेशी तथा व्यावहारिक मुहावरों के प्रयोग से भाषा अधिक सरल एवं सरस बनी है [4] और भाषा विषयानुकूल, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। इस विषय में श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' का यह कथन ज्ञातव्य है–'कंचनलता जी के व्यक्तित्व के समान ही

१., २. मूक प्रश्न–पृष्ठ : १०८, १३३

३. मूक प्रश्न – पृष्ठ : ३१

४. 'मुँह चिढ़ाना', 'हृदय हार होना' आदि

उनकी कला, सरल,स्पष्ट और सौम्य है।'[1] सारांश यह है कि आलोच्य कृति का शिल्पपक्ष अत्यन्त पुष्ट एवं प्रभावात्मक है।

'भोली भूल' उपन्यास में संवादों का निर्वाह सफलतापूर्वक हुआ है। उपन्यास में अधिकांश परिच्छेदों का आरंभ कथोपकथन से ही हुआ है। कथोपकथन के माध्यम से यत्र तत्र लेखिका ने चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला तथा देशकाल परिस्थितियों का भी वर्णन किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रसंगानुकूल संवादों द्वारा बंगाल के अकाल तथा भारत की स्वतंत्र-प्राप्ति के लिए, विजय तथा दिवा के वैयक्तिक प्रयासों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

लेखिका ने समकालीन समाज का यथार्थ चित्रण इसमें किया है। सुलभा और उसकी सहाध्यापिकाओं के संवादों के माध्यम से समकालीन अध्यापक वर्ग की कम वेतन, छात्रों में श्रद्धा का अभाव, समाज की उपेक्षा भावना आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।[2]

दिवा के माध्यम से कालेजी वातावरण का, श्यामा के द्वारा सन्यासी जीवन का जीवंत चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया।

व्यवहारिक भाषा के प्रयोग के साथ भावानुकूल भाषा का प्रयोग भी यत्र तत्र पाया जाता है। लेखिका पर पंजाबी भाषा का प्रभाव अधिक है। प्रस्तुत उपन्यास में भजन-गीतों का प्रयोग हुआ है।

'संकल्प' श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का एक अन्य उपन्यास है जिसमें विचारानुकूल शैली-प्रयोग पाया जाता है। कुछ संवाद सामाजिक चित्रण से संबंधित हैं तो कुछ राजनीतिक सिद्धान्तों से। सामाजिक विषयों से सबंधित संवादों में कुछ सरसता, हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, स्नेह-ईर्ष्या आदि मनोभावों का व्यक्तिकरण हुआ है। राजनीति-संबंधी संवादों का प्रमुख विषय गांधीवाद और साम्यवाद रहा है।[3]

---

१. मूक प्रश्न – मुख पृष्ठ से उद्धृत

२, भोली भूल – ६४, ६५, १४७

३. संकल्प – पृष्ठ : १२८-१४७, २४४-२५२, ३५६-३५७

संवादों के माध्यम से लेखिका ने देशकाल चित्रण पर भी प्रकाश डाला है। दरिद्रता, बेरोजगारी, निरक्षरता आदि भारत की समस्याओं पर भी चर्चा की गयी है। ऐसे स्थलों पर संवाद कुछ दीर्घ तथा गंभीर होने के कारण उनमें नीरसता आ गयी है। परन्तु इस प्रकार के संवादों के द्वारा कथानक का विकास भी संपन्न हुआ है।

लेखिका का यह भी विश्वास रहा है कि राजनीतिक पराधीनता के कारण भारतीयों के सामाजिक चेतना का अभाव पाया जाता है। इस कथन का समर्थन देवेंद्र की इस उक्ति से भी पता चलता है–'हमारा अभागा समाज, पराधीन देश, बुद्धि और श्रम को इस सीमा तक दूर कर डालना चाहता है कि एक दूसरे का प्रतिबिंब भी न छू पाये। जो बुद्धिजीवी वर्ग है वह अपने घर का आटा पिसवाना, घर की स्वच्छता, कपड़ों का मल साफ करना आदि किसी भी परिश्रम के काम को अपनी शान के विरुद्ध समझता है। दूसरी ओर जो श्रम को ही जीविका का साधन बना लेता है वह बुद्धि को, शिक्षा को एकदम अनावश्यक ही समझ लेता है।'[1]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने केवल सामाजिक वातावरण का ही नहीं, प्रत्युत राजनैतिक वातावरण का भी चित्रण प्रस्तुत किया है। हिंसा और अहिंसा के द्वंद्व का चित्रण भी अनेक स्थानों पर किया गया है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में साम्यवाद और गांधीवाद की तुलना प्रस्तुत की गयी है।

लेखिका ने प्रस्तावित कृति में वर्णनात्मक शैली के साथ-साथ नाटकीय तथा चित्रात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। चित्र शैली का यह उदाहरण द्रष्टव्य है–'इसी समय कहीं से एक काली कलूटी धोती पहने-धोती भी सतरह जगह से फटी हुई, कमर झुकी, मुँह पर अवस्था से अधिक झुर्रियाँ लिये–रमिया मिलखू की स्त्री भी आ पहुँची।[2]

प्रस्तुत उपन्यास में प्रायः व्यावहारिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। पंजाबी शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर पाया जाता है, जैसे–'जगदीश मेरे ताये का पुत्र था।'[3] आदि।

---

१ संकल्प – पृष्ठ : ९८ २. संकल्प – पृष्ठ : ४९

३. वही ,, ३४

निम्नांकित वाक्य सूक्ति-शैली सुंदर उदाहरण है-'याचक के प्रति दाता दया भले ही दिखा दे, किंतु प्रेम तो दिखा सकता नहीं।'[1] इस तरह लेखिका का यह उपन्यास भी शिल्प-पक्ष की दृष्टि से प्रौढ रचना ही है।

---

१. संकल्प – पृष्ठ : ४

आलोच्य हिंदी उपन्यासों में शिल्प पक्ष
एक मूल्यांकन

विगत पृष्ठों में आलोच्य हिंदी उपन्यासों के शिल्प पक्ष के संबंध में जो विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर उनके शिल्पगत वैशिष्ठ्य का मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। शिल्प पक्ष के अंतर्गत समाहित कथोपकथन, वातावरण तथा भाषा-शैली तत्वों की विशेषताओं के आधार पर यह मूल्यांकन किया गया है।

आरंभिक समय की रचनाएँ होने के कारण अनुवादों के प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में विवेच्य उपन्यासों में शिल्पगत शिथिलता देखी जाती है। विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक साहित्यिक वातावरण से उभर कर रचना क्षेत्र में प्रवृत्त लेखिकाओं से, इस से ज्यादा अपेक्षा करना भी संभव न था। फिर भी यह कहा जा सकता है कि इन कतिपय शिल्पगत त्रुटियों के कारण, वस्तु-पक्ष के प्रभाव से किसी भी मात्रा में कमी दिखाई नहीं देती।

इन उपन्यासों में जहाँ कहीं संवादों के माध्यम से आदर्शवादी दृष्टि-कोण को अपनाकर उपदेश देना. अथवा किसी धार्मिक या दार्शनिक विचार-धारा का प्रतिपादन कराने की बात हुई हैं, वहाँ संवाद अतिदीर्घ एवं नीरस बन पड़े हैं। कहीं-कहीं लेखिका ने प्रत्यक्ष कथन शैली को अपनाया है। अतः यह कहा जा सकता है कि विवेच्य उपन्यासों में संवादों का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया है। इसी बात को न्यूनाधिक मात्रा में श्रीमती ओम शुक्ला ने भी कही।[1]

---

१. श्रीमती ओम शुक्ला - हिंदी उपन्यास की शिल्प-विधि का विकास प्रारंभ कालीन उपन्यासों की अनगढ़-शिल्प का विवेचन करते हुए कहा है— 'प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासों में कथोपकथन का कोई निश्चित लक्ष्य न था और ना ही इनसे कथानक के विकास अथवा पात्रों के चरित्रचित्रण में सहायता ली जाती थी'—पृष्ठ ५१,

फिर भी स्वातंत्र्यपूर्व के उत्तरार्ध के उपन्यासों में संवादों का प्रयोग पात्रों के हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से हुआ है जिससे पात्रों के चरित्र का विकास हुआ है, जैसे 'आदर्श माता' में ।[1] इसके अतिरिक्त 'पिया' में जहाँ तर्कपूर्ण संवादों का प्रयोग हुआ है[2] वहाँ 'जीवन की मुस्कान' में संवादों के माध्यम से वातावरण की सृष्टि की गयी है [3]

'कलयुगी परिवार' तथा 'मेम और साहब' जैसे उपन्यासों में हास्य तथा व्यंग्यपूर्ण संवादों का प्रयोग भी पाया जाता है ।

लेखिकाओं को संवाद-योजना के बारे में यह कहा जा सकता है कि उपन्यासों में (उषादेवी मित्रा तथा कंचनलता सब्बरवाल को छोड़कर) कथोपकथन तत्व का निर्वाह कलात्मक शैली में नहीं हो पाया है ।

विवेच्य काल की अधिकांश लेखिकाओं ने सामाजिक इतिवृत्त को ग्रहण कर अपनी रचनाओं में समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण का सजीव चित्र स्पष्ट करने की चेष्टा की है । 'सुहासिनी' उपन्यास में जनता की धार्मिक-प्रवृत्ति का ज्ञान कराया गया है । 'लक्ष्मी' में समाज में प्रचलित सौतिया डाह तथा बहु-विवाह का[4], 'कलयुगी परिवार' में पारिवारिक समस्याओं का, 'आदर्शमाता' में तत्कालीन निरक्षरता, बाल-विवाह तथा विधवा-समस्या का[5], सौंदर्य कुमारी' तथा 'मेम और साहब' में पर्दा-प्रथा का, 'गूढ़भाव प्रकाश' में सामाजिक अंधविश्वासों का चित्रण कर लेखिकाओं ने स्वातंत्र्यपूर्व भारत के समाज को ही प्रतिबिंबित किया है । इसके अतिरिक्त कंचनलता तथा उषादेवी के उपन्यासों में आधुनिक समाज की समस्याओं के साथ-साथ राजनीतिक वातावरण की भी सृष्टि हुई हैं । 'संकल्प' में राजनीतिक पराधीनता के कारण भारत में फैली हुई बेकारी, दरिद्रता तथा निरक्षरता आदि समस्याओं का चित्रण हुआ है ।[6] 'वचन का मोल' में लेखिका पर महात्मा गांधी का तथा स्वदेशी-आंदोलनों का प्रभाव देखा जा सकता है । 'पिया' में हड़ताल तथा पेकेटिंग करना, सरकार के विरुद्ध भाषण देना आदि स्वातंत्र्यपूर्व कालीन राजनीतिक वातावरण का आभास कराने के साथ-साथ समाज में प्रचलित स्वदेश प्रेम तथा राष्ट्रीय-भावधारा का भी परिचय मिल

---

१. आदर्श माता – पृष्ठ : १०-११ २. पिया – पृष्ठ : २७-३१
३. जीवन की मुस्कान – पृष्ठ : १०२-१०३ ४. लक्ष्मी – पृष्ठ : १
५ आदर्श माता – पृष्ठ : १०-११ ६. संकल्प – पृष्ठ : ९८

जाता है। 'मूक प्रश्न' में शोषक एवं शोषित के बीच के वर्ग संघर्ष को चित्रित करते हुए पूंजीवादियों की स्वार्थपरता पर भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला गया है। 'भोली भूल' में लेखिका ने समकालीन अध्यापक वर्ग की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार लेखिकाएँ सामाजिक वातावरण का चित्रण करने में जितनी सफल हो पायी हैं उतनी सफलता उन्हें ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण में प्राप्त नहीं हुई। 'वीरपत्नी' तथा 'सौंदर्यकुमारी' कृतियों में प्राकृतिक वर्णनों के द्वारा उपन्यासों को अधिक मनोहर बनाने का सफल प्रयत्न द्रष्टव्य है।

'सती सावित्री' तथा 'सती दमयंती' शीर्षक पौराणिक इतिवृत्त प्रधान उपन्यासों में भी पर्याप्त मात्रा में कथ्य के अनुरूप वातावरण का समावेश भी है।

आलोच्य उपन्यासों में उषादेवी मित्रा तथा कंचनलता सब्बरवाल के उपन्यासों को छोड़कर शेष सभी में भाषा—अर्थात् शब्द प्रयोग तथा वाक्य विन्यास आदि की दृष्टि से शैथिल्य हैं। जैसे 'सचमुच यह अंतर के बात था'[1] आदि। अधिकांश लेखिकाओं पर बंगला अथवा पंजाबी का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

इतिवृत्तात्मकता, चारित्रिक आदर्श का प्रस्तुतीकरण, उपदेशात्मकता आदि के आधिक्य के कारण शैली संबंधी कलात्मक-सौष्ठव के प्रति लेखिकाओं ने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया। इन उपन्यासों में वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक शैलियों का प्राधान्य है। अधिकांश लेखिकाओं ने प्रत्यक्ष-कथन शैली को अपनाया है।[2] यत्र तत्र पात्रात्मक शैली का भी प्रयोग पाया जाता है। उषादेवी मित्रा ने नाटकीय तथा चित्रात्मक शैली का प्रयोग भी किया है।

---

१. साध्वी सती पतिप्राणा अबला – सुहासिनी – पृष्ठ : ३

२. जैसे—रूक्मिनी देवी का 'मेम और साहब' उपन्यास में—'पाठकगण। इस समय हमारे साहब की क्या दशा हुई होगी, आप स्वयं विचार कर सकते हैं।' (पृ. १३ और प्रियंवदा देवी) 'कलयुगी परिवार का एक दृश्य' उपन्यास में 'बात ही बात में हमारे दृश्य का क्रम बहुत ही पीछे छूट गया। इसके लिए मैं आपसे क्षमा माँग पुनः अपना सिलसिला आरंभ करती हूँ। पृष्ठ : ६–७

आलोच्य तेलुगु उपन्यासों में शिल्प पक्ष

पुलवर्ति कमलावती :

श्रीमती पुलवर्ती कमलावती का 'कुमुद्वती' उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित होने के कारण रचना के वस्तुपक्ष की अपेक्षा शिल्प-पक्ष में ही लेखिका की मौलिकता अधिक मात्रा में उद्घटित हुई है। संवादों के माध्यम से ही पात्रों के अधिकतर विचारों एवं आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। सौराष्ट्र गढ की रानी शोणावती कुमुद्सिंह से अपने को एक बार हृदय से लगाने की बात कहती है तो कुमुद्सिंह उत्तर देता है कि, 'मां ! तुम्हारे मुंह से ऐसे शब्द शोभा नहीं देते। तुम इस गढ़ के अधिपति की पत्नी हो, नाते की माता लगती हो।'[1] इस कथन से कुमुद्सिंह के आदर्श स्वभाव का परिचय प्राप्त होता है। कुमुद्सिंह के यह कहे जाने पर भी कि उसने किसी और कन्या से प्रेम किया है, शोणावती पुनः कहती है—'हे मनोहर ! ये नीसि-वचन मैं भी जानती हूँ। लेकिन मेरा मन तुम पर संलग्न हो गया है। युवती स्वयं चाहकर किसी पर पड़े तो ऐसा कौन मर्द हो सकता है जो उसे मना करता हो ? ऐसे मूर्ख को मैंने अभी तक नहीं देखा है। तुमने जिस से प्रेम किया है, उस से चाहे शादी कर लो, मैं उसके लिए मना नहीं करूँगी। षट्पद समस्त पुष्पों के मकरंद का स्वाद लेता है।'[2] शोणावती के उक्त कथन से उसकी चरित्रहीनता पर प्रकाश पड़ता है।

चंद्रगढ़ के आयुधागार में छिपे सतर्क कवचधारी शत्रुओं के मध्य फँसी हुई कुमुद्वती बच निकलने के लिए जिस स्वगत कथन का प्रयोग करती है उससे उसकी बुद्धि-कुशलता का परिचय मिलता है जैसे—'यह पत्र मुझे आज

---

१. कुमुद्वती – पृष्ठ : १४६ २. कुमुद्वती – पृष्ठ : १४६-१४७

किसी न किसी प्रकार पूरा करना ही पड़ेगा। हाँ, स्वयंप्रभा मेरा साथ दे सकती है। उसको यही बुला लाऊँगी। और यह पत्र आज पूरा करके रहूँगी।'[1]

इस उपन्यास के संवाद सुदीर्घ एवं तर्कपूर्ण हैं। घटनाओं को रोचक एवं स्वाभाविक बनाने के लिए ही नहीं बल्कि अभीष्ट देश काल तथा वातावरण के चित्रण को विश्वसनीय बनाने के लिए भी संवादों का प्रयोग हुआ है।

उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण अत्यंत सहज एवं स्वाभाविक बन पड़ा है। लेखिका ने रामचंद्र बाबाजी के पात्र के द्वारा इस बात पर प्रकाश डाला कि उन दिनों में महाराष्ट्र-प्रांत में धर्म प्रचारकों एवं धर्म के आचार्यों को अधिक प्रश्रय दिया गया है जैसे 'धर्म तथा झगड़ों का परिष्कार करना, धर्म के आचार्यों का काम था। आज के समान न्याय स्थान नहीं थे। धर्म के आचार्य ही अपने इर्द गिर्द के ग्रामवासियों के लिए न्यायाधीश बने रहे थे।'[2]

तत्कालीन समाज में स्त्री को प्राप्त स्थान तथा उसके प्रति नरेशों की उपेक्षा-दृष्टि पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। शंभाजी एवं दुष्टकेतु अपनी विवशता पर ही क्रमशः कुमुद्वती तथा लवण्यका से विवाह करने की बात को स्वीकारते हैं। इससे तत्कालीन राजाओं की निरंकुशता तथा कामाँधता का भी परिचय मिल जाता है।

उपन्यासों में संपन्न प्रकृति का परिवेश मानव मन की अभिव्यंजनाओं में सहायक हुआ है। सिंहबल की हत्या के आरोप में वीरपाल के ऊपर अभियोग लगाया जाता है। वास्तव में वीरपाल निर्दोष है। अभियोग के आरंभ होने के पूर्व वहाँ की निस्तब्ध एवं भयंकर रात्रि के वातावरण का वर्णन करते हुए लेखिका ने लिखा है—'उस समय महावृक्षों को भी समूल उखाड़ फेंकनेवाली तूफानी हवा चल रही। सारे ब्रह्मांड के टुकड़े-टुकड़े होने के समान आकाश में बिजली की कड़कड़ाहट सुनाई देने लगी।'[3]

तत्कालीन राजाओं के मध्य होनेवाले युद्धों का चित्रण कर, कोंकण राज्य में स्थित वैषम्य का तथा नरेशों के अनमेल व्यवहारों पर भी लेखिका ने प्रकाश डाला है।

---

१. कुमुद्वती – पृष्ठ : ८३   २. कुमुद्वती – पृष्ठ : ८३
३. ,, ,, ४६

उपन्यास में अधिकतः वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, लेकिन संवादात्मक तथा नाटकीय शैली का संपूर्ण अभाव नहीं है। लेखिका असंख्य घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ सुंदर शैली के उपन्यास में आद्यंत कौतूहल एवं जिज्ञासा का निर्वाह करने में सफल हुई।

उपन्यास की भाषा तेलुगु की साहित्यिक भाषा है जो तत्सम शब्द निष्ठ तथा समास एवं संधियो से पूर्ण हैं। लेखिका ने 'चंद्रवदना', 'चंद्रमुखी', जैसे प्राचीन उपमानों के साथ यत्र तत्र कहावतों तथा मुहावरों का भी सफल प्रयोग किया है।

कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा :

श्रीमती कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा कृत 'वसुमति' का शिल्प-पक्ष आरंभ कालीन विशेषताओं से पूर्ण है।

उपन्यास में कथोपकथन की योजना के संबंध में विचार करने पर यह विदित होता है कि जहाँ एक ओर कथानक के विकास के लिए संवादों को, लेखिका ने माध्यम बनाया है[1] वहाँ दूसरी ओर चरित्र-चित्रण प्रणाली में भी[2] कथोपकथनों का आश्रय लिया है। उपन्यास में कई स्थानों पर उपदेशात्मक संवादों का प्रयोग[3] किया गया है, जो लंबे होने के कारण नीरस बन गये हैं। भावात्मक कथोपकथनों का प्रयोग भी लेखिका ने यत्र तत्र किया है। स्वगत कथनों के द्वारा लेखिका ने पात्रों के हृदयगत भावों का प्रकटीकरण किया है।[4]

उपन्यासकर्त्री ने देश काल परिस्थितियों का चित्रण भी प्रस्तुत किया है। उस समय बाल-विवाहों की प्रचुरता रही है। इसलिए वसुमती का नवें वर्ष में ही विवाह हो जाता है। उन दिनों दहेज-प्रथा का प्रचलन रहने के कारण त्रिपुरसुन्दरी के विबाह में बाधा उत्पन्न होती है। समाज में उस समय स्त्री-शिक्षा को प्राधान्य नहीं दिया जाता था। प्रस्तुत उपन्यास में आनंदराव तथा उसकी माँ स्त्री-शिक्षा के बिरोधी रहे। आनंदराव का यह कथन, 'पढ़ी लिखी स्त्री क्या अपने आदमी की बात मानेगी ?'[5] उक्त सामाजिक दशा का बोध कराता है।

१., २. वसुमती – पृष्ठ : ३५, ६४ ३. वसुमती – पृष्ठ : ७३, ५१
४. ,, ,, ५९ ५. ,, ,, ५३

उन दिनों अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव लोगों पर अत्याधिक रहा है। रहन-सहन, शिक्षा आदि में लोग पाश्चात्यों का अनुकरण करने लगे। कुछ लोग अंग्रेजी भाषा को अपनाते हुए विदेशी चीजों–पैंट, हैट, बूट, सिगरेट, काफी इत्यादि से घृणा करते थे और उन्हें दुर्व्यसन मानते थे।[1]

उस समय वेश्यागामी गृहस्थ पुरुष अधिक मात्रा में पाये जाते थे। इसका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में आनंदराव है।

लेखिका ने इस उपन्यास में मूलतः वर्णनात्मक शैली को अपनाया है किंतु आँशिक रूप से प्रत्यक्ष कथन शैली, संवाद शैली तथा पत्रात्मक शैली का भी सहारा लिया है। प्रत्यक्ष कथन शैली के कुछ उदाहरण– "हे पाठकगण ! अब आज्ञा दीजिए।"[2] "हमें आनंद को गुंटुर में छोडकर छ. मास हो चुके हैं।[3]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा शिष्ट साहित्यिक भाषा है। इस में देशज शब्द भी हैं जैसे 'रेलगाडी' के लिए 'पोगबंडी' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

भाषा को सजीवता प्रदान करने केलिए उपन्यास में यत्र तत्र लोकोक्तियों तथा मुहावरों का सार्थक एवं सुंदर प्रयोग किया गया है।[4]

लेखिका ने यत्र तत्र सार्थक एवं सुन्दर उपमानों का भी प्रयोग किया है।[5]

उपन्यास में कहीं कहीं गीतों का भी समावेश किया गया है। इससे आरंभ-कालीन उपन्यासों की गद्य-पद्यमय शैली का उदाहरण प्रस्तुत होता है।[6]

पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमांबा :

पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमाँबा कृत 'सुभद्रा' पौराणिक उपन्यास होने पर भी उसके शिल्प-पक्ष में नवीनता यथेष्ट मात्रा में संपन्न हुई है।

---

१. वसुमती–पृष्ठ : १६ २. वसुमती–पृष्ठ : १६८ ३. वसुमती–पृष्ठ : ४९
४. जैसे 'वसुमती अपने पति के हृदय परिवर्तन की आस में उसी प्रकार लगी हुई है जैसे स्वाति-नक्षत्र की बूँद के लिए सीपी'–पृष्ठ : ७३ और 'धान के साथ सूप को भी सूखना ही है।
५. जैसे 'चंद्रबिंब के समान गोलाकार मुख'–पृष्ठ : ५६
'अष्टमी के चंद्रमा के समान मुख'–पृष्ठ : ५६
६. वसुमती–पृष्ठ : ४३,

इस उपन्यास में कथोपकथन, पात्रों के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने के साथ-साथ दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी हुआ है। संवादों के माध्यम से घटनाओं में गतिशीलता परिलक्षित होती है।

सुभद्रा से अर्जुन गाँधर्व विवाह न कर उसे कन्यादान के रूप में ग्रहण करना चाहता है। तब सत्यभामा सुभद्रा का कन्यादान करने को तैयार हो जाती है तो अर्जुन कहता है कि बलराम, श्रीकृष्ण तथा वसुदेव के रहते हुए उसे कन्यादान करने का अधिकारी नहीं है, और आगे पूछता है कि स्त्री होती हुई वह किस प्रकार कन्यादान कर सकती है ? तब सत्यभामा उत्तर देती है कि 'स्त्रियाँ किस लिए अधिकारिणी नहीं ? तुम स्त्री जाति के प्रति इतनी नीच-बुद्धि रखते हो, मुझे इसका पता नहीं था। सुभद्रा तुम्हारी दासी बनी रहने के लिए यहाँ नहीं आयी है। श्रीकृष्ण की बहन तथा सत्यभामा की प्रिय सखी सुभद्रा तुम्हारी देवी बनने के लिए आ रही है। महीषियों के लिए और स्त्रियों के लिए जो जो अधिकार हैं उन्हें सत्यभामा और सुभद्रा भली भाँति जानती हैं। वशीभूत स्त्रियों को पुरुष अपने दंभ के कारण हिंसित करते रहते हैं।'[1]

उक्त उद्धरण से तत्कालीन समाज में नारी की दयनीय स्थिति को परोक्ष रुप से संकेत कर, लेखिका ने उन्हें जागृत होने के लिए सचेत किया है।

महाभारत युद्ध समाप्त होने के पश्चात गाँधारी के शाप को सुनकर श्रीकृष्ण तथा सुभद्रा के मध्य होने वाले वार्तालाप से सृष्टि-रहस्य का उद्घाटन होता है। गाँधारी के शाप को सुनकर हँसनेवाले श्रीकृष्ण से सुभद्रा प्रश्न करती है कि—"भैय्य! पतिव्रता गांधारी के वाक्य क्या निष्फल होंगे?" तो कृष्ण का जवाब 'नहीं। कभी निष्फल नहीं होते।'

सुभद्रा—'तब तो यादव कुल का क्या निर्मूलन होगा ही?'

कृष्ण—'हाँ निश्चय ही—मैं किसी कुल को नहीं रहने देता।'

सुभद्रा—'क्या यही धर्मराज्य की संस्थापना है ?'

कृष्ण—'हाँ, यही धर्मराज्य संस्थापना है।'

सुभद्रा—'क्या यह विश्व विध्वंस नहीं है ?'

---

१. सुभद्रा—पृष्ठ : ६४

कृष्ण–'हाँ भद्रे ! विध्वंस ही प्रतिष्ठा की बुनियादी है। कुत्रुण उन्मूलन किये बिना सुगुण बीजारोपण करना सभव नहीं।[1]

सुभद्रा तथा श्रीकृष्ण के निम्नांकित संवादों में हिंदू धर्म में प्रचलित मृत्यु संबंधी दार्शनिक विचार-धारा द्रष्टव्य है–'बार-बार 'विध्वंश', 'विध्वंश' कहती क्यों हो ? मृत्यु का अर्थ विध्वंश नहीं है। संसार रूपी इस सागर में जन्म और मृत्यु तरंगों के रूप में आते जाते रहते हैं। मेदोस्थिशोशित पिंड से बने जड़ देह विनाश होने मात्र से क्या जीव भी नष्ट हो सकता है ? जीव अपने कर्म के वश में विविध गर्भों का भ्रमण करते हुए, अपने कर्म के लिए उचित देह को धारण करता रहता है। जैसे-जैसे कर्म क्षीण होते जाते हैं, वैसे-वैसे देह भी नाश होता जाता है। चिरकाल तक एक ही देह में वास करते रहना, जीव के लिए संभव नहीं है।'[2]

इस उपन्यास के कथोपकथन रोचकतापूर्ण, नाटकीय एवं सोद्देश्य बन पड़े हैं। दार्शनिक विचारधारा को प्रस्तुत करने के प्रयास के कारण, पात्रों के संवाद सुदीर्घ बन पड़े हैं जिससे कथानक में नीरसता आ गयी है। यत्र तत्र देश-काल परिस्थितियों का चित्रण, उद्देश्य की अभिव्यंजना, कथानक की आगामी घटनाओं का सूत्र नियोजन करने के लिए संवादों का आश्रय लिया गया है।

उपन्यास की भाषा तेलुगु की साहित्यिक भाषा है जो तत्सम शब्द प्रधान एवं समास तथा संधि युक्त है। पात्रोचित्र भाषा का प्रयोग हुआ है। युद्ध क्षेत्र का वर्णन, और सुभद्रा, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के रूप-सौंदर्य का चित्रण उपस्थित करते समय भाषा में चित्रात्मकता के गुण दृष्टिगोचर होते हैं।

मल्लादि बुच्चम्मा :

३. मल्लादि बुच्चम्मा का 'लंकापति' कल्पना प्रधान उपन्यास है। इसमें संवादों में रोचकता का अभाव है। स्वगत कथनों का आधिक्य है जिस से पात्रों के मनोगत भावों का आभास मिलता है। उदाहरणार्थ युद्ध-भूमि में सुन्दरम्या, रामराजु के संबंध में सोचने लगती है–"ये वे ही रामराजु हैं न, जिन्होंने मुझसे विवाह करना चाहा, तो क्या वे मुझसे बोलेंगे ? मुझे धोखा न देकर यदि इससे पहले ही मुझसे प्रेम कर विवाह कर लिया होता तो, आज मैं कितनी सुखी होती।'[3]

---

१. सुभद्रा–पृष्ठ : १३९ २. सुभद्रा–पृष्ठ : १४०

३. लंकापति–पृष्ठ : ३०

सामाजिक वातावरण के माध्यम से तत्कालीन रीति-रिवाजों पर यथेष्ट ध्यान दिया गया है। जैसे उस समय के रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह के लिए वर के घर वधु का जाना आदि। प्रस्तुत उपन्यास में उन दिनों के युद्ध-काल का भी परिचय मिलता है।

आलोच्य उपन्यास में वर्णनात्मक शैली के साथ प्रत्यक्ष कथन शैली का प्रयोग भी हुआ है जैसे–'रामराजु, लीलावती को बहुत पहले से ही चाहते होंगे, इस बात से पाठक अवगत हो गये होंगे।'[1] आदि।

उपन्यास की भाषा शिष्ट व्यावहारिक है। उपन्यासों में यत्र तत्र संस्कृत समासों के प्रयोग के द्वारा भाषा शैली में प्रवाह तथा सरसता का समावेश पाया जाता है।

श्रीमती चिल्लरिगे रमणम्मा :

श्रीमती चिल्लरिगे रमणम्मा के 'रामाश्रमम' में, वस्तुपक्ष के साथ शिल्प-पक्ष में भी उतनी ही नवीनता एवं कलात्मकता (इस से पूर्व प्रकाशित रचनाओं की तुलना में) दृष्टिगोचर होती हैं। लेखिका ने सन् १९२६ में ही प्रगतिवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण कथानक को ग्रहण कर वैविध्यपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास के कथोपकथन में लेखिका के बौद्धिक उत्कर्ष की पराकाष्टा देखी जा सकती है। उपन्यास में प्रयुक्त संवाद जनजीवन के अत्यंत निकट प्रतीत होने के कारण वे सहज एवं स्वाभाविक बन पड़े हैं। संवादों के माध्यम से लेखिका ने जहाँ एक ओर तत्कालीन समाज में जमींदार और किसानों के बीच के संघर्ष का चित्रण किया है[2] वहाँ दूसरी ओर मदाधिकारी अफसर लोगों के अत्याचारों का चित्रण भी किया है।[3] रामराजु और एक वृद्ध स्त्री के बीच होने वाले वार्तालाप से पता चलता है कि उस समय के जमींदार अपने किसानों के प्रति बहुत ही अत्याचार किया करते थे। वृद्ध स्त्री कहती है–'बाबूजी! क्या कहूँ? हमारे जमींदार बहुत क्रोधी हैं। मेरे दोनो लडकों को कैद में रखा है। बहुएँ बाहर नहीं आतीं। मैं मेहनत करूँ तो ही उन्हें खाने के लिए कुछ मिलता है।[4]

---

१. लंकापति – पृष्ठ : ८
२. रामाश्रमम – पृष्ठ : ३–६
३. रामाश्रमम – पृष्ठ : ४८ – ४९
४. रामाश्रमम – पृष्ठ : २१६

उपन्यास के तेरहवें प्रकरण में नरसिंहराव तथा रामराजु के बीच के वार्तालाप से उपन्यास का कथानक विकसित होते हुए दिखाई देता है और इस से घटनाओं में गतिशीलता संपन्न हुई ।[1] पात्रों के दीर्घ कथोपकथन के माध्यम से यत्र तत्र प्रगतिशील विचारों को प्रकट करने के साथ साथ ग्रामीण जन-जीवन को भी प्रतिबिंबित किया है। कथोपकथन को लेखिका ने कथा के प्रसार का, चरित्रोद्घाटन का, देशकाल चित्रण का साधन बनाया है। यत्र तत्र हास्योत्पादक संवादों का भी प्रयोग परिलक्षित होता है।

उपन्यास में रामराजु समाज के दुष्ट लोगों के एवं अधिकार के मद में डूबे सरकारी अफसरों के विरुद्ध लडकर लोगों में क्रांति की भावना को जागृत करता है। इस प्रकार राजनीतिक वातावरण को लेखिका ने सहज एवं सुंदर शैली में चित्रित किया है। ग्रामीण जीवन के विभिन्न रूपात्मक चित्रों को उपस्थित कर लेखिका ने वातावरण में आंचलिकता का भी समावेश किया है।

उपन्यास में वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों के प्रयोग के साथ साथ पत्र-शैली को भी अपनाया गया है।[2] सारांश यह है कि उपन्यास की शैली, प्रवाहमयता, भावात्मकता, व्यंग्यात्मकता आदि गुणों से युक्त है।

उपन्यास की भाषा सरल साहित्यिक भाषा है व्यवहारिक रूप लाने केलिये कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग भी यत्र तत्र पाया जाता है।[3]

अट्लूरि वेंकट सीतम्मा :-

अट्लूरि वेंकट सीतम्मा कृत 'रूपवती' ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण वस्तु पक्ष में मौलिकता का अभाव है पर शिल्पपक्ष में उसका समावेश अवश्य दृष्टिगोचर हुआ है।

आलोच्य उपन्यास के संवादों का संबंध उपन्यास के चरित्र के विकास से जुडा हुआ है। अत: कथोपकथन पात्रों के विचारों की अभिव्यक्ति के साधन बन पडे हैं। संवादों के माध्यम से घटनाओं में गतिशीलता आ गई है। वार्ता-

---

१. रामाश्रममु – पृष्ठ : ८६ – ९०
२. रामाश्रममु – पृष्ठ : ९६,२२४
३. रामाश्रममु – पृष्ठ : २१ 'जिस थाली में खाते हो उसी में छेद करोगे क्या ?'
५० 'पत्थर से भी हम दूध निकालना' कहावतों और मुहावरों का उदाहरण

लापों में पात्रोचित भाषा का प्रयोग किया गया है। संवादों के माध्यम से भी कथानक का विकास संपन्न किया गया है। संवाद सार्थक, सोद्देश्य तथा तर्कयुक्त बन पडे हैं। इस उपन्यास में प्रयुक्त नाटकीय कथोपकथन का एक उदाहरण यहाँ पर उद्धृत है। जंगली लोगों का मुखिया आज्ञा देते हुए यों कहता है – "रे ! वहाँ देखो ! कोई आदमी उस बगीचे में आये हुए हैं, लगता है उनके पास बहुत से गहने हैं, तुम तीनों वहाँ जाकर देखो, तुम में से कुछ लोग गाँव में जाकर धन लूटकर लाओ। कुछ लोग धन कहाँ मिल सकता है, पता लगाकर के आओ।"[1]

भावपूर्ण कथोपकथन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है। सुनंदा से रूपवती को कहने लगती है–"माँ ! कुछ भी नहीं, मेरे जनक तथा बंधुजनों की याद में कुछ विचलित हो गयी। देर हो गयी क्षमा करना। मेरी माता मुझे छुटपन में ही छोड़ गयी, वही फिर से तुम्हारे रूप में जन्म लेकर मेरी रक्षा कर रही है। तुम्हारे आदरपूर्वक वचनों तथा सदयवीक्षणों के सहारे ही, मेरे प्राण अब भी निकले नहीं हैं। वरना अब तक मैं कहाँ रहती।"[2]

काच एवं रूपवती के संवादों के माध्यम से, काच की चारित्रिक-हीनता पर प्रकाश पडता है। काच के द्वारा बंदी बनायीं गयी रूपवती, सुनंदा के पिता काच को पितातुल्य मानती है, तो काच उससे इस प्रकार अनुरोध करता है – हे स्त्री ! ये बातें बंद करो ! मुझे पतिदेव के रूप में स्वीकार क्यों नहीं कर सकती हो ? तुम्हारे सुकुमार रूप सौंदर्य को देखकर मेरी बुद्धि चकरा गयी है। जिस दिन मैंने तुम्हें जंगली लोगों के बीच बेहोश पाया था उसी समय मेरे मन की गहराइयों को तुम ने झकझोर दिया था और मैं तुम्हारे प्रति मोहित हो गया। तब से मैं सदा तुम्हारे रूप की कल्पना में तन्मय रह रहा हूँ। .... मेरे ऊपर तुम्हारे कटाक्ष-वीक्षणों को प्रसारित करो .. ।"[3] उक्त उद्धरण से बूढे काच की कामलोलुपता का परिचय मिलता है।

इसी प्रकार आलोच्य उपन्यास में यत्र तत्र सांकेतिक[4], व्यंग्यात्मक[5] तथा उपदेशात्मक[6] तथा उद्देश्यपूर्ण[7] संवाद परिलक्षित हुए हैं।

---

१. रूपवती – पृष्ठ : २०
२. रूपवती – पृष्ठ : १११
३. रूपवती – पृष्ठ : ७३
४. रूपवती – पृष्ठ : ८
५. रूपवती – पृष्ठ : ९२, ९३
६. वही १०४
७. वही ११८, ११९

आलोच्य उपन्यास कल्पना प्रधान अधिक होने के कारण देशकाल-वातावरण के प्रति लेखिका ने अधिक ध्यान नहीं दिया है। डा० बोड्डुपाटि वेंकट कुटुंबराव इस उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखते हैं – "लेखिका पात्र आदि के नामकरण जैसी अप्रधान बातों के अतिरिक्त शेष बातों में उत्तर भारत के वातावरण का सृजन कराने में असमर्थ रही है।"[1]

विवेच्य उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली को अधिक महत्व दिया गया है। फिर भी कहीं कहीं काव्यात्मक, नाटकीय, संवादात्मक, स्मृतिपरक तथा पत्रात्मक शैलियों का प्रयोग पाया जाता है। लेखिका ने वर्णनात्मक शैली के माध्यम से ऐतिहासिक तथ्यों[2] का और वातावरण का चित्रण[3] प्रस्तुत किया है।

उपन्यास की भाषा साहित्यिक भाषा है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है जिस से भाषा में सजीवता एवं सरसता का समावेश हुआ है।

अट्लूरि वेंकटसीतम्मा का ही दूसरा उपन्यास है 'राधामाधवमु'। जिस समय समाज में ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रचुरता रही, उस समय लेखिका ने सामाजिक उपन्यास की रचना कर अपनी प्रतिभा का सुंदर परिचय दिया है। लेखिका ने इस उपन्यास में वस्तुपक्ष के अंतर्गत जितनी सफलता प्राप्त की है, उतनी सफलता, शिल्प-पक्ष के संबंध में नहीं।

घटनाओं में गतिशीलता लाने के साथ साथ पात्रों का चरित्रोद्घाटन करने में, हास्य तथा व्यंग्य की सृष्टि कर मनोरंजन प्रदान करने में संवादों का प्रयोग किया गया है। संवाद यत्र तत्र सुदीर्घ बन पड़े हैं। अतः अस्वाभाविकता के भी लक्षण पाये जाते हैं। प्रश्नोत्तरों के माध्यम से राधा के चरित्र का उद्घाटन कराने के साथ साथ तत्कालीन देश काल तथा रीति-रिवाजों का भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला गया है। जैसे उस समय के समाज में स्त्री-शिक्षा का महत्व, बाल-विवाह का समर्थन, पति की कुसंगति या वेश्यालोलुपता को चुपचाप सहन कर उसे ही सर्वस्व मानने का पतिव्रता धर्म, आदि का वर्णन राधा के मुख से कराया गया है।[4]

---

१. श्री बोड्डुपाटि वेंकटकुतुंबराव–आंध्र नवलापरिणाममु – पृष्ठ : २२
२. ३. रूपवती – पृष्ठ : ६२, ८३
४. राधामाधवमु – पृष्ठ : ८५–९०

इस उपन्यास में लेखिका ने अधिकतर वर्णनात्मक शैली का प्रयोग, अंशतः संवादात्मक, विवरणात्मक प्रत्यक्ष कथन तथा उद्धरण शैलियों का प्रयोग किया है। लेखिका राधा के रूप लावण्य का वर्णन इस प्रकार करती है –"उस का बदन नींबू के रंग के समान, विशाल माथा, कानों तक फैली हुई आँखें, भौंरों के समान उसके काले लंबे बाल, गोल मुखड़ा, छरहरा बदन, संतुलित अंग–सौष्ठव, दिये की कांति में और भी प्रकाशमान हो रहे थे।"[1]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा शुद्ध साहित्यिक भाषा है। भावात्मकता से युक्त होने पर भी भाषा की प्रवाहमयता में बाधा उत्पन्न नहीं हुई है। समकालीन अन्य उपन्यासों में प्रयुक्त संस्कृत समास, क्लिष्ट भाषा की तुलना में इसकी भाषा अत्यंत सरल, स्वाभाविक एवं बोलचाल की भाषा के निकट की बन पडी है।

श्रीमती अट्लूरि वेंकटसीतम्मा कृत एक अन्य उपन्यास 'ढिल्ली साम्राज्यमु' ऐतिहासिक कथानक प्रधान होने के कारण उसकी कथावस्तु में मौलिकता की मात्रा कम पायी जाती है फिर भी उसकी शिल्पगत नवीनता की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता।

पात्रों के संवादों के द्वारा कथानक की घटनाओं पर[2] ही नहीं प्रत्युत पात्रों के चरित्र पर[3] भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला गया है। संवादों के माध्यम से एक ओर भावी घटनाओं का संकेत कराया गया है[4] तो दूसरी ओर पूर्व घटित घटनाओं की ओर संकेत भी कराया गया है।[5] संवादों के माध्यम से देशकाल का भी पर्याप्त बोध भी कराया गया है और उसमें विश्वासनीयता लाने का यत्न किया गया है।

लेखिका ने १६ वीं शती में उत्तर भारत में व्याप्त धार्मिक वातावरण का चित्रण इस प्रकार किया है कि उस समय मुसलमानों की ही तीन शाखायें रही हैं – सुन्नी, षिया और सूफी जो आपस में हमेशा लडते झगडते रहते हैं और लोगों को अपने धर्मावलंबी बनाने केलिए उन्हें विवश करते हैं और कभी कभी उनका वध भी।[6]

---

१. राधामाधवमु – पृष्ठ : २९
२, ३. ढिल्ली साम्राज्यमु–पृष्ठ : २१, १९
४, ५. ढिल्ली साम्राज्यमु–पृष्ठ : १२, ११
६. वही ७५,

बैरामखान तथा हीमू के बीच 'पानीपत' का जो युद्ध हुआ उसका तथा और युद्धांनंतर के रणक्षेत्र का अत्यंत भयानक वर्णन प्रस्तुत करने की लेखिका ने सफल चेष्टा की है।

इस प्रकार लेखिका आलोच्य उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक वातावरण के चित्रण करने में भी सफल रही है। लेखिका ने यत्र तत्र मार्मिक प्राकृतिक चित्रों को भी उपस्थित किया है।[2]

लेखिका ने उपन्यास में मूलतः वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों के साथ स्मृति-परक शैली का भी प्रयोग किया है।[3] कहीं कहीं प्रत्यक्ष कथन शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है।[4]

उपन्यास की भाषा तेलुगु की संधि एवं समासयुक्त तत्सम शब्द बहुलता साहित्यिक भाषा है।

श्रीमती राबूरि वेंकटसुब्बम्मा :

श्रीमती रबूरि वेंकटसुब्बम्मा का 'उदार पाण्डवमु' वस्तु पक्ष की अपेक्षा शिल्प-पक्ष की दृष्टि से अधिक विकसित माना जा सकता है। इसका कथानक महाभारत की कथा होने पर भी लेखिका ने उसके प्रस्तुतीकरण में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का आधिक्य होने के कारण संवादों की मात्रा कम है। आलोच्य उपन्यास में युधिष्ठर के कथनों से उसकी दयार्द्र बुद्धि का परिचय मिलता है।[5] इसी प्रकार यक्ष से अपने भाई नकुल को जीवित कराने की प्रार्थना में भी, उसकी उदार-बुद्धि का परिचय मिलता है।[6] अंत में इंद्र युधिष्ठर को स्वर्ग ले जाने की अपनी इच्छा प्रकट करता है तो वह अपने साथी कुत्ते की अपेक्षा न कर उसे भी स्वर्ग ले चलने के लिए इंद्र से कहता है।[7]

कथोपकथन के माध्यम से उपदेश तथा जीवन-दर्शन संबंधी बातों को स्पष्ट किया गया है

---

१. ढिल्ली साम्राज्यमु–पृष्ठ : ५८

२., ३. वही पृष्ठ : ११९–१२०, १३७

४. ढिल्ली साम्राज्मु – पृष्ठ : ८१ ५. उदार पांण्डवमु–पृष्ठ ४१-५३

६. उदार पांडवमु – पृष्ठ : ८३-८४ ७. वही – १३०-१३१

प्रस्तुत उपन्यास में देशकाल का चित्रण भी पाया जाता है। इसमें पौराणिक घटनाओं के साथ साथ धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों का भी कलात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास की भाषा शुद्ध साहित्यिक भाषा है जो संस्कृत संधि एवं समासों[1] से युक्त है। भाषा पात्रोचित, सहज एवं स्वाभाविक बन पडी है। लेखिका एक स्थान विविध गायों का वर्णन करती हुई कहती हैं – "उन में से कुछ चमेली के समान तथा सीपियों के समान सफेद थी और कुछ तमाल-वृक्ष के समान काली थी तो और कुछ गेहुँआ रंग को धारण की हुई थीं।[2]

उपन्यास में अधिकतर वर्णनात्मक शैली तथा आंशिक रूप से संवादात्मक [3] तथा प्रत्यक्ष कथन शैली[4] का प्रयोग जाता है।

आचंट सत्यवती देवी :

श्रीमती आचंट सत्यवती देवी का 'भयंकर धनाशापिशाचम्' में लेखिका ने अधिकतः वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। अत संवादों का बहुत ही कम मात्रा में प्रयोग हुआ है। संवादों में कलात्मक परिपक्वता का अभाव है। सुदीर्घ संवादों का प्रयोग होने के कारण, कथानक में नीरसता आ गई यत्र तत्र संवादों के माध्यम से चारित्रिक व्याख्या और अभिष्ट वातावरण की सृष्टि की गयी है। कहीं कहीं भावात्मक संवादों का प्रयोग हुआ है, उदाहरण-स्वरूप सत्यवंतुडु की पत्नी सुशीला, कामलोलुप पापारायुडु के पास सहायता के लिए आती है तो उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। तब सुशीला के विलाप को सुनकर पापारायुडु की पत्नी चारुमती, पति द्वारा उपेक्षित किये जाने पर भी कहती है– "अंदर स्त्री की बातें सुनाई दे रही हैं। कौन सी अभागिन है जो इस घर में आयी? दिन दहाडे अपने ही घर में अन्य स्त्री को अपमानित करना कहाँ तक न्याय है ? चार लोगों के बीच सिर उठा कर किस प्रकार चल सकेंगे ?"[5] इस बात को सुनकर पापारायुडु उसे तृण-तुल्य मानकर कहता है–"ही...ही... बाहर चली जा। मुझे आज्ञा देने वाली तुम कौन होती हो ? मेरी इच्छा है। तुम इस कमरे में कदम मत रखो,

---

१. उदारपांडवमु – पृष्ठ : ४१   २. उदारपांडवमु – पृष्ठ : ३३
३. वही ७९-८४   ४. वही १२६-१३२
५. भयंकर धनाशा पिशाचमु–पृष्ठ : ५३

जाओ ।"[1] इस कथन से पापारायुडु की कामलोलुपता का परिचय मिलता है ।

इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी भावात्मक संवाद दृष्टिगोचर होते हैं ।[2]

लेखिका ने उपदेश देने केलिए सुदीर्घ संवादों का सहारा लिया है जिस से कथानक में नीरसता एवं अस्वाभाविकता आ गई है ।

देशकाल तथा वातावरण का उपन्यास में यथेष्ट स्थान मिला है । कथानक को सजीव एवं सरस बनाने केलिए तत्कालीन नौका–व्यापारों का, साधु एवं ऋषि लोगों के लिए प्राप्त आदर सत्कारों का, सती–सहगमन प्रथा आदि रीति–रिवाजों का उपन्यास में वर्णन किया गया है । लेखिका ने समकालीन समाज का जो चित्रण किया है वह अत्यंत सरस एवं कलात्मक बन पडा है । उपन्यास में प्रकृति के भी कई चित्ताकर्षक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं ।

कथा के विकास को सूचित करने केलिए लेखिका ने संवादशैली, नाटकीय शैली तथा यत्र तत्र कुछ छंदों का प्रयोग कर[3] काव्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है । लेखिका ने उपन्यास में प्रत्यक्ष कथन शैली का भी प्रयोग किया है । शैली में आलंकारिकता, भावात्मकता, रोचकता आदि विशेषतायें पायी जाती हैं ।

विवेच्य उपन्यास की भाषा समास प्रधान साहित्यिक भाषा है । लेखिका ने तत्कालीन समाज में प्रचलित समासों तथा मुहावरों का भी प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है । निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'भयंकर धनाशापिशाचमु' वस्तुपक्ष एवं शिल्पपक्ष दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ माना जा सकता है ।

---

१. भयंकर धनाशापिशाचमु-पृ.५३ २. भयंकर धनाशापिशाचमु-पृ. ५६,७९,८६
३. वही – पृ. ४६, ८०

आलोच्य तेलुगु उपन्यासों में शिल्प-पक्ष : एक मूल्यांकन

विगत पृष्ठों में आलोच्य तेलुगु उपन्यासों के शिल्प-पक्ष के संबंध में प्रस्तुत विवेचन के आधार पर स्वातंत्र्य पूर्वकाल के उपन्यासकर्त्रियों की रचनाओं का शिल्पगत मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत किया जायेगा ।

स्वातंत्र्यपूर्व के उपन्यासों में वस्तुपक्ष में विषय और लक्ष्य की दृष्टि से विविधता परिलक्षित होने पर भी शिल्पगत क्षेत्र में इनको विशेष सफलता नहीं मिली ।

लेखिकाओं ने संवाद-योजना द्वारा पात्रों के हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की है तो कहीं आदर्श की दूसरी ओर संवादों के माध्यम से कहीं उपन्यास की घटनाओं का विकास कराया गया है[1] तो कहीं आगामी घटनाओं का संकेत ।[2] 'राधामाधवमु' के संवादों में जहाँ हास्य का पुट पाया जाता है वहाँ उस में नाटकीय गुणों से युक्त स्वगत कथनों का भी प्रयोग पाया जाता है । 'रूपवती' 'सुभद्रा', 'उदारपाण्डवमु' आदि उपन्यासों में प्रयुक्त संवादों में तर्क-शैली भी पाई जाती है । 'कुमुद्वती', 'वसुमती', 'सुभद्रा' जैसे उपन्यासों में उपदेशात्मकता तथा दार्शनिक विचारधाराओं का जहाँ प्रतिपादन हुआ है वहाँ संवाद अत्यंत दीर्घ और नीरस बन पडे हैं और कथानक के प्रवाह में भी बाधा उत्पन्न हुई है ।

---

२. ढिल्ली साम्राज्यमु – पृ. २१, १२

२. वसुमती – पृष्ठ : ५९

विवेच्यकाल में पौराणिक ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयवस्तु प्रधान उपन्यासों में लेखिकाओं में अभीष्ट वातावरण का चित्रण प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। 'सुभद्रा' जैसे पौराणिक उपन्यास में जहां धार्मिक वातावरण का चित्रण है वहां 'उदारपाण्डवमु' में हिन्दू धर्म की दार्शनिक विचारधारा को विश्वसनीय बनाने का प्रयास परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण करने में अर्थात् तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यासों की अधिकतर विषय-वस्तु आंध्रेतर प्रांत से सम्बन्धित होने तथा अपने सीमित ज्ञान के कारण तत्कालीन देश काल परिस्थितियों का तथा रीति रिवाजों का चित्रण करने में लेखिकाओं को अपेक्षित सफलता नहीं मिली है।

जहां तक सामाजिक उपन्यासों का प्रश्न है, लेखिकाएँ पारिवारिक वातावरण का तथा अपने तत्कालीन नारी-समस्याओं का[1] जीता-जागता चित्रण करने में अधिक सफल हुई।

लेखिकाओं ने इस प्रकार के अभीष्ट वातावरण का बोध कराने केलिए कहीं वार्तापाल को साधन बनाया है[2] तो कहीं प्रत्यक्ष शैली में वातावरण का चित्रण किया है।[3] इसके साथ उपन्यासों में घटनानुकूल प्राकृतिक वातावरण का भी वर्णन[4] प्रस्तुत किया गया है।

सारांश यह है कि लेखिकायें स्वातन्त्र्यपूर्व काल से ही अपने उपन्यासों में वातावरण के प्रति भी यथेष्ट ध्यान देने लगीं। आरंभिक काल के उपन्यास होने के कारण तथा स्त्री के प्रतिबन्धों को दृष्टि में रखते हुए वातावरण-चित्रण सम्बन्धी लेखिकाओं की उपलब्धि उपेक्षित नहीं की जा सकती।

लेखिकाओं ने ग्रंथ रचना के लिए अपने समय में प्रचलित तेलुगु की काव्य-भाषा (ग्रांथिक-भाषा)[5] का प्रयोग किया है, जो तत्सम्, तद्भव

---

१. जैसे स्त्री-शिक्षा तथा बाल-विवाह समस्या--'वसुमती' उपन्यास में, विधवा-समस्या- रामाश्रममु' तथा 'भयंकर धनाशापिशाचमु' उपन्यासों में, वेश्या समस्या-'वसुमती', 'राधामाधवमु' उपन्यासों में।

२ रामाश्रममु-पृष्ठ : २६० ३. कुमुद्वती-पृष्ठ : ३२ ४. कुमुद्वती-पृष्ठ :४६

५. स्वातन्त्र्यपूर्व के आलोच्य उपन्यासों में तेलुगु की साहित्यिक भाषा, (जिसको तेलुगु की ग्रांथिक भाषा की संज्ञा भी दी जाती है) का आद्यंत प्रयोग हुआ है जो कि तेलुगु की व्यावहारिक अर्थात् बोलचाल की भाषा से भिन्न है। संस्कृतनिष्ठ तथा परिष्कृत भाषा का प्रयोग होने के कारण ये उपन्यास साधारण जनता की दृष्टि से अद्यतन अपने महत्व एवं लोक-प्रियता को खो बैठे हैं।

शब्दों एवं समासों से युक्त है। यत्र तत्र लेखिकाओं ने भाषा में स्वाभाविकता लाने केलिए भाषा के व्यावहारिक रूप का मुहावरों तथा कहावतों का भी प्रयोग किया है, विदेशी भाषा के प्रभाव में आकर 'वसुमति' तथा 'रामाश्रमम्' उपन्यासों में अंग्रेजी तथा अरबी, फारसी शब्दावली का प्रयोग भी पाया जाता है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग, इन लेखिकाओं की प्रतिभा का परिचायक है। भाषा, उपन्यास की कथावस्तु, पात्र–योजना तथा वातावरण के अनुरूप बन पड़ी है।

विवेच्यकाल के उपन्यासों में अधिकतर वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त विविध स्थलों पर संवादात्मक एवं काव्यात्मक, आत्म-कथात्मक, पात्रात्मक आदि शैलियों का भी प्रयोग हुआ है।

आरम्भकालीन उपन्यासों की यह विशेषता रही कि हिन्दी के समान तेलुगु में भी उपन्यासकर्त्रियाँ स्वयं प्रत्यक्ष होकर कथा का स्पष्टीकरण करते हुए उसके विकास को सूचित करते दृष्टिगोचर होती हैं।[1]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि अपनी सीमित कलात्मकता से युक्त होने पर भी स्वातन्त्र्यपूर्व उपन्यासों का शिल्प–पक्ष, स्वातन्त्र्योत्तर के उपन्यासों के शिल्प–पक्ष की पृष्ठभूमि के रूप में अत्यन्त महत्व रखता है।

---

१. जैसे 'वसुमति' में लेखिका कहती है–"हे पाठकगण! अब आज्ञा दीजिए"—पृष्ठ : १६८

आलोच्य हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में शिल्प-पक्ष : तुलनात्मक निष्कर्ष

स्वातन्त्र्यपूर्व उपलब्ध महिलाओं के हिन्दी और तेलुगु उपन्यासों के शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नांकित तथ्य प्रकाश में आते हैं।

संवाद-योजना की दृष्टि मे जहां हिन्दी में कथोपकथन के माध्यम से पात्रों के मनोगत भावों का चित्रीकरण प्रस्तुत करने का आग्रह अधिक है, वहां तेलुगु में इसके अतिरिक्त कथानक के विकास, चारित्रिक-विकास, देशकाल-चित्रण आदि केलिए भी संवादों का प्रयोग हुआ है। दोनों उपन्यासों में जहां लेखिकाओं ने पात्रों के संवादों के माध्यम से उपदेश देना या दार्शनिक अथवा राजनीतिक विचारधाराओं का प्रकटीकरण कराना चाहा वहां संवाद अतिदीर्घ एवं भाषण-तुल्य बन पड़े हैं जिनसे कथानक के प्रवाह में नीरसता आ गयी है। लेकिन संक्षिप्त तथा प्रभावपूर्ण संवादों के प्रयोग के प्रति दानों लेखिकाओं का आग्रह दिखाई पड़ता है। दोनों ने स्वगत-कथनों का भी प्रयोग किया है। दोनों लेखिकायें उपन्यास के बीच में स्वयं पाठकों को सम्बोधित कर अपने हृदय-गत विचारों को अभिव्यक्ति देती दिखाई पड़ती हैं।

हिन्दी की तथा तेलुगु की ऊषा देवी मित्रा, कंचनलता सब्बरवाल तथा चिल्लटिगे रमणम्मा जैसी लेखिकाओं की रचनाओं में संवाद नाटकीय एवं प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं जबकि अन्य लेखिकाओं में नाटकीय संवादों का अभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

वातावरण के चित्रण के प्रति भी दोनों साहित्यों की लेखिकाओं नें यथेष्ट ध्यान दिया है। सामाजिक वातावरण का चित्रण कर, लेखिकाओं ने

तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों को जैसे बाल–विवाह, अनमेल विवाह, स्त्री–शिक्षा, वेश्या–गमन, बहु–विवाह आदि का चित्रण कर उस समय के समाज का जीता–जागता चित्र अंकित किया है जिस वातावरण में कथानक का सही विकास हुआ है।

समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति भी वे सजग रही हैं। फलतः उनके उपन्यासों में स्वतन्त्रता–आंदोलन सम्बन्धी विभिन्न दृश्य देखने को मिलते हैं। ग्रामीण वातावरण का यथातथ्य चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है। साम्यवाद, शोषक एवं शोषित वर्गों के चित्रण को दोनों लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है।

पौराणिक तथा ऐतिहासिक चित्रण में लेखिकायें इतनी सजग दिखाई नहीं पड़ती हैं। जहां तक पौराणिक उपन्यास हैं उनमें पौराणिक कथानक के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त कोई शैल्पिक विशिष्टता देखने को नहीं मिलती हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दी लेखिका सरस्वती गुप्ता, ऐतिहासिक तथ्यों से हट कर काल्पनिक जगत में विचरण करने के कारण ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के प्रति विशेष ध्यान नहीं दे पायीं। यही बात तेलुगु की लेखिका मल्लादि बुच्चम्मा की रचना 'लंकापति' में भी देखने को मिलती है। लेकिन तेलुगु की एक अन्य लेखिका कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा ने अपने उपन्यास 'कुमुद्वति में ऐतिहासिक वातावरण के प्रति यथेष्ट ध्यान देकर घटनाओं को सजीव बनाया है।

प्राकृतिक वातावरण के प्रति दोनों लेखिकाओं ने कम ही ध्यान दिया है।

भाषा शैली के संबंध में विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ हिंदी की लेखिकाओं की भाषा अनगढ़ एवं त्रुटिपूर्ण है वहाँ तेलुगु के उपन्यासों में समकालीन साहित्यिक–भाषा (तेलुगु की ग्रांथिक भाषा) का प्रयोग हुआ है। हिंदी लेखिकाओं की भाषा, शब्दावली तथा वाक्य-विन्यास की दृष्टि से बंगला पंजाबी तथा कुछ विदेशी भाषाओं से भी प्रभावित हुई हैं। लेकिन तेलुगु की लेखिकाओं की भाषा में कुछ इने गिने अंग्रेजी तथा अरबी, फारसी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का प्रभाव नहीं है।

दोनों साहित्य की उपन्यासकर्त्रियों ने प्रत्यक्ष-कथन शैली को अपनाया है, जो दोनों साहित्यों के आरंभकालीन उपन्यासों की प्रमुख शैलीगत विशेषता

मानी जा सकती है। हास्य का पुट आलोच्य लेखिकाओं के उपन्यासों में नहीं के बराबर है। सिर्फ इनको यत्र तत्र कुछ संवादों में इसकी झलक मात्र देखने को मिलती है।

विवेच्य उपन्यासों के शिल्पगत अध्ययन के निष्कर्ष–रूप में यही कहा जा सकता है कि जहाँ हिंदी में संवादों का प्रयोग कम हुआ है (कंचनलता सब्बरवाल एवं उषादेवी मित्रा के उपन्यासों को छोडकर) वहाँ तेलुगु में अधिक। स्वातंत्र्यपूर्व के पूर्वार्ध काल के हिंदी उपन्यासों में वातावरण तथा भाषा-शैली की श्रेष्ठता तेलुगु उपन्यासों की तुलना में कुछ कम है। लेकिन उत्तरार्द्ध काल के उपन्यासों में जो शिल्पगत वैशिष्ठ्य हिंदी में पाया जाता है वह तेलुगु में नहीं। कंचनलता सब्बरवाल तथा उषादेवी मित्रा के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर काल की शिल्पगत विशेषतायें–जैसे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि परिलक्षित होती हैं।

पञ्चम अध्याय

लेखिकाओं द्वारा विरचित हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में वस्तु-पक्ष

जिस प्रकार स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर अवधि की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साँस्कृतिक परिस्थितियों में गणनीय अंतर देखा गया है उसके अनुरूप साहित्यिक क्षेत्र में भी देशकाल परिस्थितियों का प्रत्यंकनन देखा जा सकता है। स्वातंत्र्यपूर्ण अवधि की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर काल में गद्य की साहित्यिक विधाओं को अधिक महत्व मिला। स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य का सृजन यथार्थ के धरातल पर प्रगतिवादी तथा मनो-विश्लेषणात्मक तत्वों से पूर्ण बन पड़ा है। इस प्रकार का परिवर्तन हिंदी तथा तेलुगु के उपन्यास साहित्यों में बराबर देखा जा सकता है। महिलाओं को साहित्यिक-सर्जना की ओर प्रवृत्त करनेवाले प्रेरक संदर्भों में जैसे-जैसे परिवर्तन होने लगा वैसे-वैसे उनके उपन्यास साहित्य में भी वस्तुगत विविधता तथा कलात्मक सौष्ठव दृष्टिगोचन होने लगा है।

विगत पृष्ठों के उपन्यास के कथानक, चरित्र चित्रण तथा उद्देश्य तत्वों को मिलाकर उनकी संबद्धता के आधार पर वस्तुपक्ष की संज्ञा दी गयी है और उसके आधार पर स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उपन्यासो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है उसी प्रकार यहाँ पर हिंदी तथा तेलुगु के स्वातंत्र्योत्तर अवधि के उपन्यासों का वस्तुगत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की तूलना में स्वतंत्र्योत्तर काल में। उपन्यास-कर्त्रियों की संख्या में गणनीय वृद्धि हुई है, विशेषकर साठोत्तर काल में।

यह प्रवृत्ति हिंदी तथा तेलुगु दोनों साहित्यों में देखी जा सकती है। दोनों ही साहित्यों की लेखिकाओं ने अपने अपने साहित्यों के इतिहास की सभी उपन्यास-कर्त्रियों की सभी रचनाओं के आधार पर यहाँ अध्ययन प्रस्तुत करना विषय विस्तार की दृष्टि से संभव नहीं है। अतः प्रतिनिधि लेखिकाओं के प्रतिनिधि उपन्यासों के आधार पर ही उनके उपन्यासों की वस्तुगत उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

लेखिकाओं के हिंदी उपन्यासों में वस्तु-पक्ष :

स्वातंत्र्योत्तर अवधि की हिंदी की लेखिकाओं में प्रमुखतया उषादेवी मित्रा, कंचनलता सब्बरवाल, रजनी पन्निकर, वसंत प्रभा, कृष्णा सोबती, लीला अवस्थी, चंद्रकिरण सोनरेक्सा, अन्नपूर्णा तांगड़ी, विमलवेद, कुँवरानी तारादेवी, सत्यवतीदेवी भैया 'उषा', सुषमा भार्टी, सुदेश रश्मि, शिवरानी विश्नोई, उमादेवी, शिवानी आदि नाम लिये जा सकते हैं। विषय विस्तार की दृष्टि से प्रमुख लेखिकाओं के सभी उपन्यासों की विवेचना प्रस्तुत करना संभव नहीं, अतः इनकी प्रतिनिधि रचनाओं का वस्तुगत अध्ययन यहाँ पर क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

उषादेवी मित्रा :

आपके स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में 'सोहिनी' तथा 'नष्ट नीड़' प्रमुख हैं। दोनों का विवेचन यहाँ पृथक पृथक प्रस्तुत किया जायेगा।

'सोहिनी' उपन्यास का केन्द्र सोहिनी है जो धनी कन्या है। वृद्ध दादा के अतिरिक्त उसका अपना कोई नहीं है। युवावस्था में असित से उसका परिचय होता है। लेकिन विपरीत परिस्थितियों के कारण दोनों एक नहीं हो पाते। असित क्रांतिकारी दल का सदस्य है। एक समय पुलिस के वारंट से वचने अपने मित्र सुनील के साथ इंग्लैंड चला जाता है। वहाँ से उन्माद रोग का विशेषज्ञ बन लौट आता है। फिर भारत में अपना चिकित्सालय खोलता है। असित की प्रसन्नता के लिए सोहिनी भी क्रांतिकारी दल की सदस्या बन जाती है। उसकी अनुपस्थिति में अपनी सारी संपत्ति दल को समर्पित कर देती है। परंतु वह क्षय रोग का शिकार वनती है। फिर भी असित के लौटने का समाचार सुनकर उसके द्वारा खोले गये चिकित्सालय में 'सोहन' नाम से काम करने लगती है। रोगग्रस्त होकर भी वह अधिक परिश्रम करती है।

एक दिन 'सोहन' का रहस्य खुल जाता है और असित अपने प्रेमी को पाकर प्रसन्न हो जाता है। लेकिन असित वैज्ञानिक अनुसंधान की निरंतर साधना और सोहिनी के प्रेम दोनों के अंतर्द्वंद्व के कारण मृत्यु का शिकार बन जाता है। सोहिनी, असित को बचाने का असफल प्रयत्न करती है। इस मुख्य कथा के साथ सुनील तथा सरला की मार्मिक कथा भी जुड़ी हुई है।

आलोच्य उपन्यास के मुख्य पात्र असित एवं सोहिनी तथा गौण रूप से सुनील एवं तूलिका हैं। इनके अतिरिक्त सोहिनी के दादा, क्रांतिकारी दल के गुरुदेव, तथा अन्य सदस्य, जैसे अन्य पात्र भी हैं जिनकी केवल प्रासंगिक चर्चा हुई हैं। असित, क्रांतिकारी दल का सदस्य है, एक प्रमुख वैज्ञानिक भी। विदेश से डाक्टर डिग्री प्राप्त कर भारत में उन्मादियों के लिए विशेष अस्पताल खोलकर उन रोगियों की सेवा में तन मन लगाता है। वह विज्ञान के महत्व एवं उसकी देन में विश्वास रखनेवाला युवक है। सोहिनी के प्रति निश्चल प्रेम तथा अपने लक्ष्य के प्रति एकनिष्ठ आस्था रखनेवाला है। सोहिनी असित से आत्मिक प्रेम करती है। क्षय की रोगिनी होकर भी दूसरों की सेवा-सुश्रुषा में ही तोष पानेवाली निस्वार्थ सेविका है। प्रारंभ में असित के प्रेम के लिए सारी संपत्ति क्रांतिदल को सौंप देती हैं। अंत में उसकी सेवा में अपना सब कुछ त्याग करने को तैयार होती हैं। और विपत्ति में भी धैर्य धारण करके वह अपनी कर्म-निष्ठा का प्रदर्शन करती है।

लेखिका ने चरित्र-चित्रण के विकास केलिए परोक्ष एवं प्रत्यक्ष प्रणालियों का सहारा लिया है। प्रत्यक्ष कथन के माध्यम से असित और सुनील का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है, जैसे– "एक उद्धत पुरुष–प्रकृति का था तो दूसरा गृहाबद्ध गृहिणी–सा। एक विचित्रता के भीतर अपनी शक्ति को पुष्ट करना चाहता है, दूसरा गृह के कोने में ही शक्ति को परिपुष्ट करने में संतुष्ट।"[1] एक अन्य स्थल पर सोहिनी और तूलिका के चरित्र पर सुनील के विचार इस प्रकार हैं– "उस नारी की आकृति में, अंग प्रत्यंग में ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसकी ओर से आँखें हटना ही नहीं चाहती ? तूलिका भी रूपवती है–परमरम्य रूपसी। किंतु इस आकृति में ऐसा कुछ है, जो कि प्रथम दृष्टिपात ही में दर्शक के मन में अपना घर बना लेती है।"[2]

---

१. सोहिनी – पृष्ठ : ६३
२. सोहिनी – पृष्ठ : १३६

लेखिका ने विवेच्य उपन्यास में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वैज्ञानिक अनुसंधान मानव-सेवा के लिए ही होना चाहिये, विध्वंसकारी कृत्यों के लिए नहीं। उपन्यास के आरंभ में असित को क्रांतिकारी दल के सदस्य के रूप में बम आदि बनाते दिखाया है लेकिन यौवनावस्था में विवेक जागृत होने पर वही असित्त वैज्ञानिक शक्ति को रचनात्मक कार्य में प्रयुक्त करने के मत का पोषण करता है। लेखिका ने अपना उद्देश्य असित पात्र के माध्यम से सिद्ध किया है।

'नष्ट नीड' श्रीमती उषादेवी मित्रा का एक अन्य सामाजिक उपन्यास है। इसमें देश के विभाजन से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण है।

इस उपन्यास में सुनंदा समस्त घटनाओं एवं पात्रोंकी केन्द्र बिंदु है। देश के विभाजन के पूर्व सुनंदा अपने धनी पती रवींद्र केसाथ पाकिस्तान में सुखपूर्वक जीवनयापन करती है। लेकिन पाकिस्तान विभाजन के कारण दोनों को अलग होना पड़ता है। कुछ आततायी रवींद्र की अनुपस्थिति में सुनंदा पर अत्याचार करके मृतकों के बीच उसे छोड़ जाते हैं। उस समय, सुनंदा को, सुप्रकाश जो कि सुनंदा का सहपाठी रहा, उसे भारत ले आता है। भारत में सुनंदा अपने पुराने घर में सुप्रकाश के साथ रहने लगती है। वहाँ अपने स्वभाव के अनुसार वह सभी को प्यार करने लगती है, जिससे उसका परिचय-क्षेत्र बढ़ जाता है। वृद्ध श्रीनाथ, उसका पौत्र मनीष, चौधरी दंपत्ति, उनकी पुत्री एला, नलिनी, श्रीमती भटनागर आदि विभिन्न प्रकृति के पात्र उसके संपर्क में आते हैं। एक दिन एला के वर के रूप में रवींद्र का दर्शन सुनंदा को होता है, किंतु वह इस भेद को अपने तक ही सीमित रख लेती है। जब सुप्रकाश को यह ज्ञात होता है कि सुनदा अब भी अपने पत्ति को ही चाहती है, तो तुरंत सुनंदा को वहीं छोड़कर अपने गांव विवाह करने के लिये चला जाता है। जब सभी लोगों को पता चलता है कि सुनंदा, सुप्रकाश की पत्नी नहीं, मित्र मात्र है, तो सभ्य समाज में उसका आदर नष्ट हो जाता है। केवल श्रीनाथ, मनीष एवं एला को छोड़कर सभी परिचित लोग सुनंदा को त्याग देते हैं। रवींद्र, एला से विवाह तो कर लेता है। फिर भी हृदय से सुनंदा को ही चाहने लगता। समाज के भय से रवींद्र, सुनंदा को अपनाने में असमर्थ रहता है। क्योंकि पाकिस्तान में उसके ऊपर अत्याचार हुए थे। रवींद्र, एला से भी प्रसन्न नहीं रह पाता। क्योंकि वह कुछ स्वतंत्र-विचारवाली एवं पाश्चात्य सभ्यता की पुतली है। फलतः दोनों के मध्य मनमुटाव बढ़ने लगता है। एक बार सिनेमा

में अभिनय करने के लिए अभिनेता विक्टर के साथ, एला बंबई चली जाती है, तो रवींद्र उसे त्याग देता है। एला बंबई से आते ही छूत की बीमारी का शिकार होती है तो सुनंदा उसकी सेवा कर उसे बचाती है। फिर अपने ही घर उसे आश्रय भी देती है। सुनंदा अपने सदाचार एवं औदार्य के कारण फिर से सभ्य समाज में गौरव प्राप्त करती है। लेकिन मानसिक वेदना का शिकार होकर अंत में स्वर्गस्थ हो जाती है। इसी समय रवींद्र अपनी प्रथम पत्नी सुनंदा को देखने की उत्कट इच्छा से उससे मिलने आता है। लेखिका ने इसका अंत नाटकीय ढंग से कराया है। सुनंदा की निद्रा के बाद एला के एक जागृत स्वप्न की चर्चा की है कि सुनंदा के घर में लगे आम पेड़ के निकट, जिस पर एक घोंसला भी है, जो व्यक्ति धीरे-धीरे आते हैं, किंचित काल तक उस पर लगे नीड़ को पकड़ कर खड़े रहे और फिर चले गये। इस नाटकीय अंत से लेखिका का तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि उस घोंसले के पास एला और रवींद्र आते हैं क्योंकि वे दोनों उस घोंसले को देखकर विलग हो जाते हैं क्योंकि अब कदापि पति-पत्नी बनकर एक घर में रहना असंभव है। इसका संकेत मात्र लेखिका ने देकर छोड़ दिया है। इसी से उपन्यास का समापन नाटकीय एवं प्रभावात्मक प्रमाणित हुआ।

आलोच्य उपन्यास में मुख्य कथा सुनंदा की है एवं प्रासंगिक कथायें मनीष, नलिनी, एला आदि अन्य पात्रों की हैं।

उषादेवी मित्रा के उपन्यासों में चरित्र चित्रण के संबंध में श्री गंगा-प्रसाद पांडेय का यह कथन द्रष्टव्य है–'मित्राजी के प्रायः सभी पात्र भावुक और आत्मपूर्ण है। वे अपने पात्रों की करुण स्थिति का चित्रण इतनी सहानु-भूति से करती हैं कि पाठकों के सामने पात्रों की अपेक्षा वे स्वयं करुण बन जाती हैं।'[1]

इस उपन्यास में सुनंदा भावुक है तथा आदर्श की प्रतिमूर्ति भी है। पर निंदा जैसे घृणित गुणों को भी अपनी ममता द्वारा सद्गुणों में परिवर्तित करने का सामर्थ्य उसमें है। इसी विशिष्टता के बल पर ही वह सब का प्रेम भाजन बनती है। विधवा नलिनी को लेखिका ने सुनंदा की तुलना में प्रस्तुत किया है। नलिनी प्रत्यक्ष में सती होने का ढोंग रचती है, लेकिन परोक्ष में अवैध प्रेम, भ्रूण-हत्या आदि कार्य करने में पीछे नहीं रहती। दूसरी ओर

---

१. हिंदी कथा-साहित्य – पृष्ठ : २१६

सुनंदा हृदय से पावन होकर भी, समाज की दृष्टि में कलंकिनी मानी जाती है। फिर भी अंत में सभी उसके निश्चल स्वभाव से प्रभावित होते हैं।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका, समाज में युवतियों की जो स्थिति है उसके संबंध में अपना मत इस प्रकार प्रकट करती है–आज भी हमारा देश ऐसा उन्नत नहीं है कि युवती या किशोरी निर्भय होकर अकेली जिंदगी बिता सके। विशेषतः अपढ नारी की जीविका-निर्वाह का प्रश्न तो पहले उठता है।'

समाज में प्रचलित पूँजीपतियों के शोषण पर लेखिका व्यंग्य कसती है कि–'आज हमारे समाज की बागडोर उन्हीं पूँजीपतियों के हाथ में है। आदमी भूखों मर रहा है। सुंदर युवती छिनी जा रही है। काले बाजार ने विश्व के हर्ष को ग्रसित कर रखा है।'

यत्र तत्र लेखिका ने सुनंदा पात्र द्वारा पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, उच्छृंखलता, फैशनपरस्ती, एवं कर्तव्य से विमुखता आदि आधुनिक सभ्यता की दूषित प्रवृत्तियों पर भी व्यंग्य किया है।

सुनंदा पात्र द्वारा उन्होंने आदर्श भारतीय रमणी की सृष्टि की है। लेखिका का उद्देश्य यही रहा कि वही स्त्री असति हो सकती है, जिसका मन अपवित्र है। यदि विपरीत परिस्थितियों में किसी नारी पर अत्याचार हो तो वह पूर्णतः पवित्र ही है। इसी तथ्य का तर्कपूर्ण प्रतिष्ठापन इस उपन्यास का लक्ष्य परिलक्षित होता है।

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल :

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का 'मूक तपस्वी' एक सामाजिक उपन्यास है।

इसकी कथा मुख्य रूप से गिरीश और नंदिनी से संबंधित है। गिरीश और नंदिनी एक दूसरे से प्रेम करते हैं और विवाह करना चाहते हैं। किन्तु मां और मौसी के कारण, नंदिनी को विवश होकर महेश नामक युवक से विवाह करना पडता है। वहाँ नंदिनी खुश न रह सकने के कारण क्षय का शिकार होकर मर जाती है। गिरीश भी उधर आजन्म अविवाहित रहने का प्रण करता है। इसी बीच गिरीश के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर शालिनी उसके प्रति ममता बढा लेती है। लेकिन वह अपनी इच्छा में सफल नहीं हो

पाती। अंत में हारकर अपनी संपत्ति को उसके हस्पताल के लिए दान के रूप में दे देती हैं। फिर अपनी ही कोठी में 'मातृ-मंदिर' की स्थापना कर कार्य करने लगती है। इस मुख्य कथा के साथ-साथ महेश का मित्र अनाथ रविदत्त की गौण कथा भी है। इस के साथ गिरीश के मित्र हरीश और उसकी पत्नी सुवीरा की गौण कथा भी है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं–गिरीश, नंदिनी, शालिनी और महेश। लेखिका ने भारतीय एवं पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव क्रमशः गिरीश एवं महेश तथा नंदिनी एवं शालिनी के माध्यम से दर्शाया। गिरीश भारतीय संस्कृति का उपासक है तो महेश पाश्चात्य संस्कृति का। इसी प्रकार नंदिनी भारतीय सभ्यता में पलने के कारण वह गिरीश से प्रेम करने पर भी, अपने पति महेश के साथ खुश रहने का ही प्रयत्न करती है।[1] दूसरी ओर शालिनी पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगने के कारण पति से प्यार करते हुए भी उससे अधिक लगाव नहीं रखती।[2]

नंदिनी और शालिनी की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए स्वयं लेखिका कहती है–'लांछना का उत्तर लांछना द्वारा, प्रतारणा का उत्तर प्रतारणा करके और कठोर शब्दों की प्रतिक्रिया कठोर शब्द सुनाकर करना नंदिनी ने सीखा ही नहीं था।'[3] इस के अतिरिक्त शालिनी का व्यक्तित्व इस प्रकार है–'शालिनी सदा से ही स्वतंत्र प्रकृति की है। उसने न तो कभी दबना ही सीखा और न झुकना ही।'[4]

आलोच्य उपन्यास में गिरीश के तपोनिष्ठ जीवन का चित्रण करना ही लेखिका का मुख्य उद्देश्य रहा है। लेखिका भारतीय सभ्यता और संस्कृत की उपासिका हैं। इसी कारण गिरीश, नंदिनी से प्यार करने के पश्चात् फिर जीवन में किसी और को प्यार नहीं कर पाता। शालिनी जैसी पाश्चात्य सभ्यता में पली हुई नारी जो भौतिक सुख एवं विलासिता को ही सर्वस्व मानने वाली थी, गिरीश के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपनी सारी संपत्ति रोगियों केलिए दान करके आत्म–शांति प्राप्त करती है। उक्त कथन से लेखिका का आशय यही लगता है कि त्याग में ही सच्चा सुख एवं शांति निहित है।

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का 'त्रिवेणी' एक और सामाजिक उपन्यास है। इसमें तीन आत्म कथाओं का संगम है। चंद्रिका, सुरभिदेवी और

---

१. मूक तपस्वी – पृष्ठ : १३१   २. मूक तपस्वी – पृष्ठ : १८७
३. वही १२७   ४. वही १८९

विजयश्री की आत्मकथायें। चंद्रिका और विजयश्री सहपाठिकायें हैं और सुरभि, विजयश्री की मौसी की पुत्री है। इन तीनों नारियों का संबंध सुरेंद्र युवक से होता है। सुरभि से सुरेंद्र की सगाई निश्चित होती है वह विजयश्री से प्रेम व्यवहार करता रहता है। दोनों से विवाह करने का वादा करता है। लेकिन अंत में चंद्रिका से विवाह करता है। क्योंकि वह धनी पिता की इकलौती पुत्री है। विवाह के कुछ ही दिन उपरांत चंद्रिका की माँ स्वर्गस्थ होती है। चंद्रिका के आग्रह से ही उसका पिता सुरभि से विवाह करता है। ससुराल में चंद्रिका सास तथा पति द्वारा उपेक्षित की जाती है। इस असह्य उपेक्षा भाव से तिलमिलाकर वह स्वर्गस्थ हो जाती है।

सुरभि कभी पहले सुधीर से प्यार करने पर भी, वह पक्की गृहिणी बनकर घर गृहस्थी को संभालने में लग जाती है। लेकिन विजयश्री सुधीर के प्रति प्रतिहिंसा का भाव अपनाती है। संयोगवश उसका परिचय क्रांतिकारी दल से हो जाता है जहाँ से वह पिस्तौल को प्राप्त करती है। एक दिन अवसर पाने पर सुधीर पर गोली चलाने का निश्चय कर लेती है। लेकिन सुरभि वहाँ संयोगवश उपस्थित होती तथा अपने प्राण खोकर उसकी रक्षा करती है। दूसरे समय फिर विजयश्री सुधीर की हत्या करना चाहती है। परंतु उसे संतप्त देखकर छोड देती है। इस मुख्य कथा के साथ चंद्रिका की पुत्री शैलजा की नर्स एलिस की प्रासंगिक कथा, विजयश्री के पुराने परिचित शरीफ अहमद की करुण-गाथा, सुधीर द्वारा वंचित नलिनी उर्फ अन्नपूर्णा आदि की गौण कथायें हैं।

इस उपन्यास में कथानक की अपेक्षा चरित्र चित्रण की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। इसमें सुरभि त्यागमयी, एवं संयमशील नारी है। और विजयश्री दृढ, तेजस्विनी एवं शक्तिशालिनी है और चंद्रिका पवित्र, सरल एवं सात्विक विचारवाली है। लेखिका स्वयं चंद्रिका के चरित्र को इस प्रकार उद्घाटित करती है कि "चंदर मानों सिर से पैर तक प्रेम निर्मित ही थी। विश्व भर को प्रेम करना, कर पाना ही उसका सहज स्वभाव था"[1]

एलिस, शैलजा की नर्स है। सुधीर, एलिस के साथ अवैध संबंध स्थापित करता है तो भावुक एलिस, चंद्रिका से सब बातें बता देती है। और जब चंद्रिका इसी मानसिक वेदना में घुल कर मर जाती है तो एलिस पश्चात्ताप करती है। नलिनी उर्फ अन्नपूर्णा एक भोली भाली ग्रामीण युवती है।

---

१. त्रिवेणी – पृष्ठ : २११

सुधीर उसके साथ भी प्रवंचना करता है। फिर भी उसके मन में सुधीर के प्रति कोमल भावनायें ही रहती हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वहाँ पर मिलता है जब वह जान लेती है कि विजयश्री, सुधीर की हत्या करने पर तुली होती है तो वह विजयश्री से अनुरोध करती है कि वह उसकी हत्या न करें।[1]

आलोच्य उपन्यास का मुख्य पुरुष पात्र सुधीर है। वह एक स्वार्थी, कामलोलुप युवक है। वह अपने संपर्क में आनेवाली सभी नारियों से संबंध स्थापित करता है, लेकिन हृदय से किसी को नहीं चाहता।

आलोच्य उपन्यास में नारी की गुण-गरिमा का उल्लेख है, जिसमें उपन्यास का उद्देश्य मुखरित हो उठा है। नारी जाति के गौरव गान के उद्देश्य से लेखिका ने चंद्रिका, सुरभि तथा नीलिमा का चित्रण किया। विजयश्री में आरंभ में विद्रोह की भावना को प्रदर्शित किया किंतु अंत में परिस्थितियों के वात्या-चक्र से वह भी समझ लेती है कि नारी माँ का रूप है, उसका काम क्षमा करना है, दंड देना नहीं।"[2]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में चरित्र चित्रण तथा उद्देश्य का ही प्राधान्य है।

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का एक अन्य उपन्यास 'भटकती आत्मा' सन् १९४२ की राजनीतिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि के आधार पर रचा गया है। योगेश मजूमदार एक धनी परिवार का युवक है वह ब्रिटिश सरकार का अनुयायी रह कर स्वल्प अवस्था में ही डी. एम. पी. का पद प्राप्त करता है। लेकिन वह वैवाहिक जीवन में सुखी नहीं रह पाता। क्योंकि उसकी पत्नी वारुणी, आधुनिक सभ्यता की दासी नहीं है। इसी कारण योगेश, अत्याधुनिक युवती संध्या से विवाह कर लेता है। लेकिन संध्या अपने प्रेमी अनिल से प्रतिशोध लेने की इच्छा से ही योगेश से विवाह करती है। संध्या की मनः प्रवृत्ति को जानकर योगेश दुखित हो जाता है तभी वह वारुणी के प्यार को समझने लगता है। वारुणी आत्महत्या करने की इच्छा से पति-गृह से चली जाती है लेकिन संयोगवश क्रांतिकारी दल की सदस्या बन जाती है। योगेश वारुणी को तभी पाने में समर्थ होता है जब कि क्रांतिकारी सदस्या होने के कारण दंड के रूप में उसे फाँसी की सजा दी जाती है। वह इच्छा रखते हुए

---

१. त्रिवेणी – पृष्ठ : २७७
२. त्रिवेणी – पृष्ठ : २९२–२९३

भी उसे बचा नहीं पाता। अनिल भी क्रांतिकारी सदस्य होता है, उसी कारण उसे भी फाँसी की सजा मिलती है। संध्या इस विषय को जानकर मानसिक रोग के कारण मर जाती है। इस मुख्य कथा के साथ, बसंती और श्रीधर की गौण कथायें जुडी हुई हैं। अनिल, वारुणी आदि द्वारा संगठित क्रांतिकारी दल की योजनाओं तथा पात्रों के तर्कपूर्ण एवं दार्शनिक संवादों ने कथानक के विकास में योग दिया है।

आलोच्य उपन्यास के मुख पात्र हैं – वारुणी, संध्या, बसंती, योगेश, अनिल तथा श्रीधर। लेखिका ने पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों को ही अधिक प्राधान्य दिया है। इसमें सभी स्त्री पात्र स्वतंत्र एवं सशक्त व्यक्तित्व-वाली हैं। वारुणी, सेवा पारायणा, दानशीला, कर्मनिष्ठा युवती है। दूसरी ओर संध्या स्वाभिमानिनी तथा किंचित् विलासिनी युवती है। वह वारुणी की भाँति प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने मनोविकारों को संयत करने में असमर्थ रहती है। वह अनिल से निश्चल प्रेम करत है, इसी कारण उसकी मृत्यु की खबर सुनते ही वह अपने प्राणों को त्याग देती है। बसंती त्यागी, सेवामयी भारतीय गृहिणी है, जो बीमार होकर भी पति तथा बच्चों की सुविधा केलिए निरंतर प्रयत्नशील रहती है। उसका पति श्रीधर देशद्रोही होता है। इसी कारण वह अनिल के दल को गुप्त रूप से सहायता करती रहती है। लेखिका ने उक्त तीनों पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं को तुलनात्मक दृष्टि से उल्लेख किया है।[1] पुरुष पात्रों के व्यक्तित्व, स्त्री पात्रों के प्रभाव से उत्कर्ष प्राप्त कर चुके हैं। बसंती के संपर्क से श्रीधर का, वारुणी के व्यक्तित्व से योगेश का तथा संध्या के चरित्र से अनिल के व्यक्तित्व निखर हो उठे हैं।

सन् १९४२ में भारत की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लेखिका ने क्रांतिकारी दलों का संघठन, विभिन्न विध्वंसक घटनाओं का वर्णन, सरकार की दमन-नीति आदि की विस्तार से चर्चा की है। बसंती के घरेलू जीवन के चित्रण द्वारा निम्न-मध्यवर्ग की दरिद्रता एवं विवशताओं का, दूसरी ओर संध्या और योगेश के माध्यम से धनिक वर्ग के विलासपूर्ण जीवन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। लेखिका ने यह सिद्ध करने की चेष्टा भी की है कि परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करते हुए मानव स्वयं अपने हृदय की गहराइयों को समझने में असमर्थ रहता है जैसे इस उपन्यास में संध्या, अनिल तथा योगेश हैं। संध्या, अनिल से एकनिष्ठ प्रेम करती हुई भी, अभिमान के

१. भटकती आत्मा – पृष्ठ : १८३, १९३

कारण अनिल को खो बैठती है । अनिल भी अपने हृदय की विह्वलता से अपरिचित होने के कारण संध्या को खो बैठता है । इसी प्रकार योगेश भी वारुणी के सच्चे प्रेम से अनभिज्ञ होने के कारण उसे प्राप्त करने में असफल हो जाता है ।

'स्वतन्त्रता की ओर' कंचनलता सब्बरवाल का एक अन्य सामाजिक विषय-वस्तु प्रधान उपन्यास है । इसमें भारतीय संस्कृति में पली नारी तथा पाश्चात्य सँस्कृति से प्रभावित नारी दोनों की तुलना प्रस्तुत की गयी है ।

इसमें ऋचा एक पुरोहित की कन्या है, जो अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त जमींदार परिवार के आश्रय में जाती है । उस घर में उसे गृह-स्वामिनी विधवा श्यामसुन्दरी तथा उसके पुत्र रूपेन्द्र उसकी पत्नी शिखा एवं सत्येन्द्र से अत्यन्त स्नेह प्राप्त होता है । श्यामसुन्दरी के संसर्ग में पलने के कारण, उसमें भारतीय नारी के उज्ज्वल गुण विकसित होते हैं । उसका विवाह पाश्चात्य संस्कृति के अनुयायी विवेक से सम्पन्न होता है । विनय प्रारम्भ में ऋचा से प्यार नहीं कर पाता लेकिन अपनी रुग्णावस्था में उसकी सेवा-सुश्रुषा को देख उसके निश्चल प्रेम से परिचित होता है । दुर्भाग्यवश उसी समय विवेक की मृत्यु हो जाती है । तब ऋचा स्वेच्छापूर्वक सारी संपत्ति को जेठ-जिठानी को सौंपकर, जेठानी की सेवा करने लगती है । इसी बीच, उसका पूर्वपरिचित रवि को पुनः सम्पर्क बढ़ाते देख कर वह अपने आप को संयत रखने के लिए फिर से जमींदार परिवार में रहने चली जाती है । वहाँ एक बार सत्येन्द्र को एक चमारी की सेवा करते देख कर, रूपेन्द्र उसे घर से बाहर निकाल देता है । तब ऋचा तथा सत्येन्द्र, बढ़ियाल गाँव में जाकर वहाँ के लोगों की सेवा करने में तत्पर हो जाते हैं । इस मुख्य कथा के साथ शीला और रवि की जीवन-गाथा भी है । शीला, समाज सेविका है । वह अपनी रुग्ण माता की सेवा से अधिक समाज-सेवा में रुचि लेती है । माता-पिता द्वारा प्रस्तावित वर सत्येन्द्र को ठुकराकर, श्रमिक रवि से विवाह कर लेती है । लेकिन रवि के विचारों से सहमत न हो सकने के कारण, एक कालेज में नौकरी करके पति से अलग हो जाती है । लेकिन वहां भी शीला टिक नहीं पाती, क्योंकि मुख्य अध्यापिका और अधिकारी वर्ग की इच्छाओं के आगे वह झुकना नहीं चाहती है । इसी कारण त्यागपत्र देकर बढ़ियाल गांव में ऋचा द्वारा संचालित आदर्श-शिक्षा-संस्था में काम करने लगती है । वहां पर सत्येन्द्र के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, उससे विवाह करने की इच्छा

प्रकट करती है। लेकिन सत्येन्द्र, अपने मित्र रवि से विश्वासघात करना अनुचित समझता है। आगे शीला को उसके पति से समझौता करने का मार्ग सुझाता है जिसे शीला स्वीकार कर लेती है। अन्त में बढ़ियाल गांव को सुधारने का भार ऋचा, शीला और रवि पर छोड़ कर स्वयं सत्येन्द्र अन्यत्र जन-सेवा करने का निश्चय कर लेता है।

आलोच्य उपन्यास में कथानक की अपेक्षा चरित्र चित्रण के प्रति अधिक महत्व दिया गया है। इस उपन्यास में ऋचा, शीला, सत्येन्द्र और रवि की चारित्रिक विशेषताओं पर अधिक प्रकाश डाला गया है। ऋचा, सरल, ममता, सेवा, सहनशीलता आदि गुणों की प्रतिमूर्ति हैं। शीला पाश्चात्य सभ्यता की अनुयायिनी है जो स्वाभिमानिनी होते हुए भी स्वेच्छापूर्वक जीवन यापन करने वाली है। वह निस्वार्थ सेवा से अधिक यश को चाहती है। इसी कारण घर में रोगी माता को छोड़कर बाहर श्रमिकों की सेवा करना पसन्द करती है। दूसरी ओर ऋचा, उसके रुग्ण पति के पास नर्स के रहते हुए भी स्वयं दिन रात उसकी सेवा सुश्रूषा करती है। ऋचा को आदर्श की प्रतिमूर्ति सिद्ध करने के लिए लेखिका ने यत्र तत्र उसके चरित्र में अतिरंजित विशेषताओं का समावेश प्रस्तुत किया है। जैसे—"पति की बीमारी के दस दिनों में ऋचा का केवल एक बार खाना और तीन बार सोना।"[1] आदि प्रसंगों को प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

सत्येन्द्र और रवि के चरित्रों में भी इस प्रकार की विपरीत प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। सत्येन्द्र ग्राम-सुधारक है तो, रवि श्रमिक-उद्धारक। सत्येन्द्र भारतीय नारी का गौरव करने वाला है तो रवि पाश्चात्य नारी के आदर्शों का। प्रारम्भ में सत्येन्द्र, अपनी सहपाठिका शीला के प्रति आकृष्ट होता है, इसी कारण शीला का भाई आकर विवाह का प्रस्ताव रखता है तो सत्येन्द्र सहर्ष स्वीकार कर लेता है। परन्तु जब शीला, उसे ठुकरा कर रवि से विवाह कर लेती है तो ग्राम-सुधार को ही अपना जीवन-लक्ष्य बना लेता है। बाद में शीला, रवि से बिछुड़कर, सत्येन्द्र से विवाह का प्रस्ताव रखती है तो सत्येन्द्र शीला और रवि के बीच समझौता कराकर अपने दृढ़ व्यक्तित्व का परिचय देता है।

रवि प्रारम्भ में ऋचा को छोड़कर शीला से विवाह कर लेता है। बाद में शीला से विमुख होकर विधवा ऋचा से पुनः विवाह का प्रस्ताव

---

१. स्वतन्त्रता की ओर—पृष्ठ : ११३

रखता है तो ऋचा अस्वीकार कर देती है। उपन्यास के ये ही मुख्य पात्र हैं। इनके अतिरिक्त श्यामसुन्दरी, रूपेन्द्र, शिखा, विवेक आदि अनेक पात्र हैं जिनके द्वारा मुख्य पात्रों के चरित्र में विकास पाया जाता है। इस उपन्यास में विवेक, रवि और शीला प्रारम्भ में पाश्चात्य संस्कृति के अनुयायी रहे लेकिन अन्त में भारतीय आदर्शों को ही मान्यता देने लगे।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका ने यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में आदर्श की स्थापना की है। इस उपन्यास में नारी के अति-स्वेच्छा का खंडन किया है। लेखिका भारतीय आदर्शों को अधिक महत्व देती है, साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता को भी चाहती हैं फिर भी थोड़े परिवर्तित रूप में उनका कथन है कि भारतीय नारी का गौरव सहनशीलता, त्याग, तथा संयम, में ही है। लेखिका ने जनसेवा का आदर्श ग्राम-सुधार को ही माना है।

'अनचाहा' लेखिका का एक और सामाजिक उपन्यास है। इसमें मध्यमवर्गीय परिवार की मंजुला तथा मन्त्री की पुत्री मृदुला के जीवन कथाओं का वर्णन है। मंजुला, पिता की मृत्यु के पश्चात् बी. ए. की परीक्षा देकर एक कालेज में नौकरी करने लग जाती है। उसका भाई शिक्षित होने पर भी बेकारी समस्या के कारण, नौकरी नहीं प्राप्त कर पाता। मंजुला, उस नौकरी को अधिक दिन नहीं कर पाती। क्योंकि एक ओर शिक्षा-संस्था में प्रचलित विषमताओं से विवश हो जाती है और दूसरी ओर माता की बीमारी के कारण थोड़े दिन पश्चात् ही उसकी माताकी मृत्यु हो जाती है जिससे दोनों भाई बहन एक पिछडे हुए गांव में जाकर जन-सेवा में तत्पर हो जाते हैं। उस गांव में केवल कुम्हार, चमार, जुलाहे, धोबी आदि निम्न वर्ग की जातियाँ ही रहती हैं। उस गाँव के लोग प्रारंभ में तो दोनों भाई-बहन को देवता स्वरूप देखते हैं। लेकिन कुछ ही दिन पश्चात् अपने संकुचित स्वभाव के कारण, वे उन दोनों से पृथक रहने लगते हैं। इस बात की परवाह न कर, मंजुला तथा अरुण ग्राम-सुधार में डटे रहते हैं।

दूसरी ओर मृदुला, धनिक परिवार की कन्या होने के कारण सभी प्रकार के ऐश्वर्यो में पलकर उच्च-शिक्षा को प्राप्त करती हैं। शिक्षा के पश्चात् कामुक एवं विलासी कुंवर वीरेश्वर प्रताप की बातों में आकर विवाह कर लेती है। विवाह के अनंतर अपने पति के कुकर्मो से अवगत होकर दुखित हो जाती है। मृदुला को अरुण पढ़ाने आता है। अरुण के प्रति मृदुला को गौरव

भाव रहता है। इसी कारण वह अपने वैवाहिक-संबंधी विषयों को अरुण को सुनाती है। इस परिचय को कुँवर वीरेश्वर शंकालु दृष्टि से देख कर, एक दिन अरुण पर गोली चलाता है। वह गोली अरुण को न लगकर, कुँवर साहब की दाई को लगती है। कुँवर साहब धन के कारण इस हत्या को अरुण के मत्थे मढकर उसे जेल भिजवाने में सफल होता है। मृदुला के वैवाहिक जीवन को दृष्टि में रखकर अरुण भी इस झूठे आरोप को स्वीकार कर लेता है। लेकिन मृदुला पति के इस व्यवहार से रुष्ट होकर गृह त्याग कर उसी गांव में चली जाती है, जहाँ अरुण और मंजुला काम करते रहते हैं। लेकिन मंजुला जो पहले से ही क्षय की रोगिणी है, मर जाती है। तब से मृदुला उस गांव के संपूर्ण भार को अपने कंधे पर ले लेती है। जब अरुण का दंड समाप्त हो जाता है तो मृदुला स्वयं आकर उसे उस गांव में ले चलती है।

मृदुला और मंजुला की पारिवारिक जीवन-कथाओं के साथ-साथ राधा धनिया, किसान, गिरजा आदि पात्रों की जीवन-कथायें भी गौण रूप से चित्रित की गयी है।

आलोच्य उपन्यास के मुख्य पात्र हैं–अरुण, मंजुला, कुंवर वीरेश्वर प्रताप और गिरिजा। अरुण और मंजुला मध्यम वर्ग के हैं जिनके मन में गरीबों और अपाहिजों के प्रति गहरी सहानुभूति है। अपने सुख तथा सुविधाओं के लिए धोखा या चाटुकारिता का आश्रय उपर्युक्त पात्रों ने कभी नहीं लिया। इसी कारण उन्हें जीवन से निरंतर संघर्ष करना पड़ा। मृदुला, मंत्री की पुत्री होते हुए भी साथ-साथ अनेक ऐश्वर्यों को प्राप्त करके भी विलासमय जीवन तथा छल, कपट, दुराचार से दूर ही रही। इसी कारण अंत में अरुण के संग ग्राम-सुधार में ही अपना जीवन व्यतीत करने का निश्चय करती है।

कुंवर वीरेश्वर प्रताप और उसका मित्र गिरिजा अभिजातवर्ग के प्रतिनिधि हैं। कुंवर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अरुण और मृदुला से व्यवहार करता है। अपने धन के माध्यम से कितने भी अन्याय करे, बड़े लोगों की कोटि में कुंवर ही माना जाता है। गिरिजा भी चाटुकारिता का आश्रय लेकर उच्च पद को प्राप्त कर लेता है। लेकिन उसके मन में अरुण और मृदुला के प्रति सच्चा प्रेम रहता है, जो चारित्रिक विशेषता है।

विवेच्य उपन्यास में अभिजात वर्ग एवं मध्य-वर्ग के परिवारों का विशद वर्णन मिलता है। अभिजात वर्ग के ऐश्वर्य, स्वार्थ आदि की तुलना में निम्न मध्यम वर्ग की विभिन्न समस्याओं का जैसे बेकारी, महंगाई, अंध-विश्वास आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। बेकारी समस्या पर गिरिजा यह कथन द्रष्टव्य है—'आज जब तक स्वयं ही अपने द्वार पर सुशिक्षित, सुसंस्कृत, सभ्य युवक-युवतियों को घंटों दीनतापूर्वक अकारण अपनी प्रशंसा करते पाता हूँ, नयनों में अतुलित करुणा और याचना भरे हुए केवल एक छोटी सी नौकरी के लिए केवल तनिक-सी वेतन वृद्धि के लिए तो सचमुच मुनिया जान पड़ता है कि दास युग अभी समाप्त नहीं हुआ है।'[1]

लेखिका ने समाज में फैली हुई विसंगितियों पर करार व्यंग्य किया है जैसे सिफारिश करना, अधिकारी वर्ग के सामने अनायास ही झुकना, अयोग्य छात्र-छात्राओं को उत्तीर्ण कर देना आदि विषयों पर। इसी प्रकार ग्राम्य वातावरण का भी व्यंग्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है। अंधविश्वास, पारस्पारिक द्वंद्व, स्त्री-पुरुषों के गुप्त संबंध आदि विषयों का विस्तारपूर्वक चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पूँजीवादी शोषण का विरोध करते हुए आर्थिक परिस्थितियों के द्वारा उत्पन्न समस्याओं का तथा मध्यवर्ग की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है।

'पुनरुद्धार' श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का ऐतिहासिक उपन्यास है। भारत के बौद्ध मतावलंबियों द्वारा विदेशी कुशनों की सहायता के फलस्वरूप भारत में विदेशी सत्ता की स्थापना होने का वर्णन इस में किया गया है। कुशनों द्वारा शैव मतावलंबी भावशिवों का उत्पीडन, भारशिवों द्वारा पचास वर्ष तक अज्ञातवास और उसके पश्चात् राजा नवनाग द्वारा कुशनों को परास्त कर के पूर्वजों के राज्य की पुनःप्राप्ति आदि ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के सहारे रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाया गया है। कुशन साम्राज्य के प्रति विजय प्राप्त करना कठिन कार्य रहा है। नवनाग एवं नवनंदी की यह विजय सामूहिक प्रयास के कारण संपन्न हुई है। जिसमें नवनंदी के पुत्र वीरसेन और बहिन नवदेवी के अति-रिक्त मालव-वंशज कीर्तिप्रभु, कुणींद्र वंश के कुमार अनंतदेव और उनकी

१. अनचाहा — पृष्ठ : १०५

बहिन अनता, भाल वंश के दीपक चंद्रभाल और उनकी पत्नी विशालाक्षी, वत्सवंशी राजवत्स एवं श्रीवत्स, शूरवंश की एकमात्र वंशजा विजया, यौधेय वंश के कांतिदत्त जो नवदेवी का पति भी है, अत्रिवंश की पुत्रवधु सुलभा, अत्रि ऋषि के शिष्य शंखचूड और उनकी प्रेमिका शुभा आदि अनेक पात्रों ने योग दिया। उपन्यासकर्त्री ने उक्त समस्त पात्रों के वंशों के पूर्व इतिहास, वर्तमान स्थिति, भावना, विचार, क्रिया-कलापों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में पात्रों और घटनाओं का बाहुल्य है जिससे कथा के प्रवाह तथा प्रभाव में न्यूनता आ गयी है।

आलोच्य उपन्यास में भारशिव-मतावलंबी अनेक पात्र हैं और कथानक को विकासोन्मुख करने में भी उनका योगदान रहा है। उनमें वैराग्य, त्याग, संयम, दृढता, देशभक्ति, शिव के प्रति अचल निष्ठा, वीरता, साहस आदि विभिन्न गुणों का समावेश पाया जाता है। फिर भी आलोच्य उपन्यास में पुरुष की अपेक्षा नारियों के चरित्र को ही अधिक गौरवमय रूप में अंकित किया गया है। विशालाक्षी, नवदेवी, अनंता, विजया, शुभा आदि पात्रों के चारित्रिक विशिष्टताओं के प्रति लेखिका ने अधिक आदर-भाव व्यक्त किया है। पति के प्रति एकनिष्ट प्रेम, परोपकार, राष्ट्रीय-भाव आदि गुणों से युक्त ये नारियाँ, युद्ध में भाग लेकर अपने साहसी रूप को भी प्रदर्शित करती हैं। उपन्यास के अन्य पात्रों ने बौद्ध संघाराम के महास्थीवर आनंदभिक्षु को एक ओर भारशिवों के विरोधी रूप में चित्रित किया है और दूसरी ओर विदेशी कुशनों की सहायता देनेवाले के रूप में। पद्मावती और मगध क्षेत्रों के लिए कुशन सम्राट कनिष्क द्वारा नियुक्त किये गये क्षत्रिय खेगपल्ल की क्रूरता एवं विलासमय जीवन का भी प्रसंगानुकूल चित्रण लेखिका ने चित्रित किया है।

विवेच्य उपन्यास में भारशिवों के गौरवस्पद अतीत को दर्शाना ही लेखिका का उद्देश्य प्रतीत होता है। उक्त विचार की पुष्टि निम्नांकित कथन से होती है–'यदि इसे पढ़कर कोई एक भी पाठक अनंत शिवभक्त त्यागी भारशिवों की स्मृति, उनका पुनीत कार्य, उनका अद्भुत पराक्रम हृदयंगम कर सके, यदि कोई भी एक जोड़ा नेत्र उनकी स्मृति से भीग उठे तो मेरा आनंद द्विगुणीत हो जायेगा।'[1] उद्देश्य पूर्ति में एवं भावशिव वीरों और

१. पुनरुद्धार – अपनी बात – पृष्ठ : 'ख'

वीरांगनाओं के उज्ज्वल चरित्रों को वर्णित करने में लेखिका पूर्ण रूप से सफल हुई हैं।

रजनी पनिकर :

लेखिका का सामाजिक उपन्यास है, 'मोम के मोती'। इस उपन्यास का केंद्रबिंदु 'माया' है। माया एक निर्धन परिवार की कन्या है। आर्थिक अभाव के कारण वह सेठ धनपति के वैज्ञानिक फार्म में नौकरी करती है और कर्तव्य-निष्ठा के साथ सेठ के व्यापार की श्रीवृद्धि में सहायता करती है। धीरे-धीरे आर्थिक दशा सुधरने पर भी माया खुश नहीं रह पाती। उसके जीवन में तीन पुरुषों का आगमन होता हैं। एक हैं उसका बाल-सहचर कैलाश जो उस से प्रेम करते हुए भी, कायर होकर अन्यत्र विवाह कर लेता है। दूसरा व्यक्ति है कवि मधुकर, जो अपने मन की शांति के लिए माया से दोस्ती का नाता जोडता है। लेकिन हर समय सेठ धनपति का नाम लेकर उसका अपमान किया करता है। इसी कारण माया उस से विरत हो जाती है। तीसरा व्यक्ति है राजन, जो सेठ धनपति का अवैध-पुत्र है। उसके सौम्य गुणों से माया प्रभावित होती है और अंत में उसकी पत्नी बन जाती है। इस मुख्य कथा के साथ मेजर कबाड, मधुकर का भाई सुधाकर, चंपा बिंदिया, एलिस, बिमला आदि कई पात्रों की प्रासंगिक कथायें जुडी हुई हैं। इन सभी पात्रों का संबंध माया के जीवन से किसी न किसी प्रकार अनुबंधित है। सुधाकर का विवाह, माया की प्रिय सखी कला से होता है। लेकिन कामुक सुधाकर, नारी-आश्रम से चंपा को भगा लाकर उसके साथ रहने लगता है। माया के द्वारा समझाये जाने पर फिर कला के साथ सुखपूर्वक रहने लगता है।

लेखिका का यह उपन्यास चरित्र-प्रधान है। सभी पुरुष पात्रों को केवल राजन को छोडकर लेखिका ने कामलोलुप तथा स्वार्थी व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया है। सेठ धनपति, बाल-बच्चोंवाला होते हुए भी, कामलोलुप है। मेजर कबाड, अपनी पत्नी को त्याग देता है क्योंकि वह अनपढ़ है। माया, रमणी आदि स्त्रियों से वह अपना संबंध स्थापित करना चाहता है। निम्नांकित कथन के द्वारा मेजर कबाड के चरित्र पर प्रकाश डाला है। कबाड पुरुषों की उस नीच श्रेणी का कीटाणु है, जो रोग फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ते।"[1]

---

१. मोम के मोती – पृष्ठ : १५०

कैलाश, माया से प्यार करते हुए भी अपने पिता के भय से भीरु बनकर माया के साथ विवाह नहीं करता। सुधाकर, प्रेम विवाह करके भी अपनी नीच बुद्धि के कारण, पराई नारी चंपा के साथ भाग जाता है। एलिस से प्रेम करके एक बच्चे का पिता बनकर भी जान उससे विवाह करने के लिए सहमत नहीं होता।

राजन, अवैद्य-संतान होते हुए भी, कर्तव्य-निष्ठ एवं निस्वार्थ व्यक्ति है। लेखिका ने केवल पुरुषों में राजन को ही आदर्श एवं सुगुण संपन्न पुरुष के रूप में चित्रित किया है।

नारी पात्रों में सबसे सबल व्यक्तित्व माया का ही है। वह निर्धन होते हुए भी, नौकरी के दौरान कई कष्टों को सहते हुए भी अपने शील की रक्षा करती है। अंत में राजन से विवाह करके सुखी जीवन बिताती है। माया की सखियां कला और एलिस ममतामयी नारियाँ हैं, जो पुरुष के सम्मुख केवल आत्मसमर्पण करना ही जानती हैं। चंपा पति द्वारा त्यक्ता है और सुधाकर के साथ भाग जाती है। लेखिका ने आलोच्य उपन्यास में उसके इस तरह दूसरे पुरुष के साथ भागने वाली घटना में चंपा को दोषी न ठहराकर सुधाकर के चारित्रिक दुर्बलताओं को ही दोषी ठहराया है। माया की दासी बिंदिया का पति किसी और स्त्री के साथ भागने पर बिंदिया भी एक अन्य पुरुष के साथ भाग जाती है। लेखिका ने इस प्रकार दलित वर्ग के व्यक्तियों के संस्कारगत दुर्बलताओं को स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

उक्त विवेचन से यह विदित होता है कि इस उपन्यास में केवल पुरुष वर्ग की कामलोलुपता, स्वार्थपरता, अधिकार लिप्सा आदि दंभी गुणों का यथार्थ चित्रण करना लेखिका का उद्देश्य रहा है। इसी कारण नारी पात्रों को ममतामयी, निस्वार्थ प्रतिष्ठित कर तुलनात्मक रूप में पुरुषों के दुर्गुणों को बढा चढाकर चित्रित करने की चेष्टा की है। केवल उद्देश्य की पूर्ति केलिए ही कथा का विकास तथा चरित्र चित्रण का नियोजन हुआ है।

'साहित्य साधिकायें' पुस्तक में अपने विचारों को इस प्रकार लेखिका व्यक्त करती है–"पुरुष प्रत्येक महिला को अपनी पत्नी के रूप में देखने की प्रवृत्ति छोड़ दें। यह एक ऐसी भावना है जो अच्छे-अच्छे साहित्यकारों और विचारकों में भी पायी जाती है। वे एक बार उसे अपने व्यक्तित्व के आगे

झुकाने का प्रयास अवश्य करते हैं । इस प्रवृत्ति का निवारण पुरुषवर्ग से होना ही चाहिए ।"[1] उक्त उद्देश्यों को पूर्ण रुप से प्रस्तुत उपन्यास में व्यक्त करने का लेखिका ने सफल प्रयास किया है ।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका ने नौकरी करनेवाली स्त्रियों की समस्याओं को वर्णित किया है । एक स्थान पर माया पात्र के द्वारा अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट करती हैं —"आज हमारे समाज की व्यवस्था बदल गई है । पहले एक पुरुष, परिवार भर की नारियों का भार अपने ऊपर ले लेता था । आज अपना पति भी भार लेने को तैयार नहीं । भाई हो, तो वह भी मुंह चुराता है ।"[2] इसी कारण आज नारियाँ नौकरियाँ करने के लिए विवश है । फलतः उनका गौरव समाज में और भी गिरता जा रहा है । और नौकरी-पेशा नारियों में कोमलता, ममता, दया आदि नारी-सुलभ गुणों का विकास भी शारीरिक थकान, संत्रास आदि के कारण नहीं हो पा रहा है । उक्त कथन की पुष्टि इस कथन में भी होती है–"लगातार नौकरी करने से नारी-जीवन की आत्मसत्ता जाती रहती है । नारी हृदय की कोमल वृत्तियों का विनाश हो जाता है । दिन रात अफसरों की खुशामद और आफिस के सहकर्मियों की त्रुटियां पकडने की धुनमें रहते-रहते मनकी कोमल भावना दग्ध हो जाती हैं । यहां तक कि आफिस के क्षुद्र घेरे से दूर पहुँचने वाली दृष्टि भी बिलकुल क्षीण पड जाती है ।"[3] फिर भी नारी के प्रति पुरुष का गौरव बढने की अपेक्षा और भी गिरता जा रहा है वह और भी कामलोलुप बनता जा रहा है । इस प्रकार लेखिका ने नारी की दयनीय स्थिति का मूल कारण पुरुष समाज को ही माना है ।

लेखिका ने आलोच्य उपन्यास में माया के विचारों के माध्यम से श्रमिक वर्ग के जीवन के संबंध में अपने विचारों को भी इस प्रकार प्रकट किया है. जैसे – श्रमिकों द्वारा अपनी कमाई शराब, सिगरेट तथा सिनेमा देखने में फूंको जाना, पत्नियों की कमाई से घर का खर्चा चलाना, पेट भर खाने को तरसना, रुग्णावस्था में पत्नियों के प्रति पतियों द्वारा उपेक्षा दृष्टि आदि ।[4]

अभिजात्य वर्ग के प्रति भी यत्र तत्र लेखिका ने तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है । उदाहरणार्थ मूल्यवान गहनों के प्रति महिलाओं की आसक्ति, स्त्रियों द्वारा मद्यपान, पुरुषों के साथ नृत्य, पुरुषों के संग मिलकर दूसरी स्त्रियों की आलोचना करना आदि[5] प्रसंगों पर दृष्टिपात किया जा सकता है ।

---

१. साहित्य साधिकायें – कैलाश कल्पित – पृष्ठ : १०८
२. मोम की मोती – पृष्ठ : ९२ ३. मोम की मोती – ९४
४., ५. मोम के मोती – पृष्ठ : ५६, ५९

श्रीमती रजनी पनिकर का 'प्यासे बादल' एक और सामाजिक उपन्यास है। इसकी कथा का मुख्य पात्र धनवान जयंत है। जयंत के परिवार में दो ही जीव हैं – उसका छोटा एवं अपाहिज भाई बलराज, उसकी चचेरी बहिन कांता रोज शीला की माँ एक धनी परिवार में आया का काम करती हुई पुत्री को मेट्रिक तक पढवाती है। लेकिन उसकी मृत्यु के पश्चात् रोजशीला निराश्रित हो जाती है, जिसे दयार्द्र जयंत अपने घर में आश्रय देता है। जयंत के सहृदयतापूर्ण व्यवहार से प्रभावित रोजशीला अपने व्यक्तित्व को निखार पाती है। जयंत, रोजशीला से विवाह करने की इच्छा प्रकट करता है तो रोजशीला ही उसे सामाजिक-मर्यादा के प्रति सचेत करती है। इसी कारण जयंत अपनी वाग्दत्ता बेला से विवाह कर लेता है। लेकिन बेला, पुत्री जया को जन्म देते ही मर जाती है। रोज शीला और जयंत को फिर विवाह करने का अवसर मिलता है। लेकिन बलराज की ईर्ष्या और क्रोध के कारण उन दोनों का प्रेम, विवाह में परिणत नहीं हो पाता। जयंत, अपने भाई के सुख केलिए स्वयं विदेश चला जाता है।

इस उपन्यास में उच्च वर्ग तथा निम्न–वर्ग की जीवनियों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जयंत उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो रोजशीला निर्धन वर्ग की। इन दोनों वर्गों के जीवन की समस्याओं को तथा दोनों वर्गों के बीच के संघर्ष को लेखिका ने अत्यंत स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया है।

आलोच्य उपन्यास में रोजशीला, जयंत को चाहती है लेकिन बलराज, रोजशीला को चाहता है और जयंत रोजशीला की मधुर–स्मृतियों को सहेजते हुए देश छोड देता है। इस प्रकार तीनों पात्र एक दूसरे केलिए प्यासे बादलों के समान तरसते रहते हैं।

इस उपन्यास में सभी पात्रों का सहज एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। जयंत उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह सहृदय एवं उदार व्यक्ति है। रोजशीला और कांता को आश्रय देने में उसकी उदारता का परिचय प्राप्त होता है। भ्रातृ–प्रेम से प्रेरित होकर शीला के प्रति प्यार होने पर भी भाई के लिए उसे त्याग कर विदेश चला जाता है।

रोजशीला एक निर्धन युवती है। उसने अपने दरिद्र जीवन में केवल स्वार्थ, घृणा तथा कटुता का अनुभव ही किया है। लेकिन जैसे ही जयंत के

घर में वह आश्रय पाती है तो उसका हृदय कृतज्ञता से भर जाता है उसे जयंत का सच्चा प्रेम पाती है जो बेला और कांता को भी अप्राप्य रहा । डा. उर्मिला गुप्ता, रोजशीला के चरित्र के विकास के संबंध में लिखती हैं – "यदि समाज के कोढ़ समझे जानेवाले पात्रों के साथ सरल एवं सहज व्यवहार किया जाय तो वे भी समाज के प्रतिष्ठित सदस्य बन सकते हैं । अभाव, क्षुदा एवं वेदना की पृष्ठभूमि में विकसित होने से ऐसे पात्रों का व्यक्तित्व बडे घर के पात्रों की अपेक्षा अधिक स्पृहणीय एवं उज्ज्वल होता है ।"[1] रोजशीला सामाजिक मर्यादा के लिए ही जयंत से विवाह नहीं करती । लेखिका ने रोजशीला के विचारों में परिवर्तन दिखाकर यही सिद्ध करने की चेष्टा की है कि निर्धन एवं अशिक्षित लोग भी अनुकूल वातावरण मिलने पर सुसंस्कृत एवं सभ्य बन सकते हैं ।

कांता पात्र के द्वारा लेखिका ने अभिजात वर्ग की नारियों के मनस्तत्व पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है । कांता विशृंखल जीवन यापन करती है और जीवन के प्रति अपने कुछ निजी विचार भी बना लेती है । अपने निजी विचारों को त्याग न सकने के कारण वैवाहिक जीवन को नरकतुल्य बना लेती है और अंत में तलाक देने केलिए भी तैयार हो जाती है । फिर भी लेखिका ने यहाँ तलाक की समस्या को न लाकर, भारतीय सभ्यता के अनुरुप कांता का अपने पति से पुनः समझौता करवाती है ।

बेला अभिजात्य वर्ग की युवती है जिसके जीवन के प्रति लेखिका के व्यंग्यपूर्ण शब्द द्रष्टव्य हैं–"आखिर बेला में क्या कमी है ? सीनियर कैंब्रिड्ज की परीक्षा में फेल हो गई है तो क्या ? उसे कौन सी नौकरी करनी है ? एक सफल पत्नी में जितने गुण होने चाहिए, वे सब बेला में है । वह खूबसूरत से मुस्करा सकती है, जिस व्यक्ति के सामने मुस्कराती है चाहे उस मुस्कराहट के योग्य वह हो या न हो । वह सुंदर कपडे और गहने पहन सकती है । बढिया 'मैकअप' इस्तेमाल करने के सब तरीके जानती है । पार्टी में बैठकर बडी से बडी गप्प हाँक सकती है । नौकरों को डाँटना भी जानती है ।"[2]

परेश वर्तमान समाज के पथभ्रष्ट युवक का प्रतिनिधि है ।

लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से यही संदेश देना चाहती है कि यदि उच्च वर्ग के लोगों के द्वारा निम्न वर्ग के लोगों को शिक्षा-दीक्षा एवं

---

१. डा. उर्मिला गुप्ता–स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकायें – पृष्ठ : १८८
२. प्यासे बादल–पृष्ठ : २२७

जीवन-यापन के समान अवसर प्रदान किये जाने पर और उनके प्रति नम्रता का व्यवहार दिखाने पर वे भी शिक्षित एवं सभ्य बन सकते हैं।

श्रीमती रजनी पनिकर का 'जाड़े की धूप' समस्याप्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसकी मुख्य कथा भारती, पवन और अजय के परिप्रेक्ष्य में चलती है। भारती, पवन की पत्नी और पाँच वर्षीय टीपू की माँ है। भारती नौकरी करने के कारण आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहती है। संयोग से अजय का परिचय भारती से होता है। भारती का यही परिचय क्रमशः प्रेम में परिणत हो जाता है। परंतु भारतीय संस्कृति में पलने के कारण, अपने पति को तलाक नहीं दे पाती। अंत में भारती यह जान लेती है कि अजय का प्रेम कपटपूर्ण है। चूंकि अपनी एक कहानी के लिए अनुभव प्राप्त करने के हेतु ही उसने भारती से प्रेम का ढोंग रचा है। भारती इस आघात से संभल नहीं पाती। लेकिन पवन सब कुछ जानते हुए भी भारती को क्षमा कर उससे समझौता कर लेता है। भारती नौकरी से त्याग–पत्र देकर निर्धन तथा अशिक्षित बालकों को शिक्षित कर के अपने दुख को भूलने की चेष्टा करती है। इस मुख्य कथा के साथ एक प्रासंगिक कथा जुडी हुई है। भारती की बुआ की लडकी मालती का विवाह एक धनी परिवार में होता है। उसका पति गर्वीला तथा व्यसनी पुरुष है। जिस से उसका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक दूसरी प्रासंगिक कथा लालाजी के परिवार से संबंधित है, जिस के घर भारती ट्यूशन पढ़ाने जाती है।

आलोच्य उपन्यास में चरित्र-चित्रण की प्रमुखता रही है। पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों की समस्याओं एवं भावनाओं के चित्रण में लेखिका अधिक सफल रही हैं। सभी पात्रों में वैविध्यपूर्ण मनस्तत्व पाया जाता है। भारती और मालती ऐसी स्त्रियाँ हैं जो विवाहित होकर भी सुखी नहीं हैं। भारती, पति के होते हुए भी अजय के कपटी प्यार में फँस जाती है। फिर भी भारतीय नारी होने के कारण पति को तलाक नहीं दे पाती। इसी बात को वह अजय को पत्र लिखते समय व्यक्त करती है कि "मैं अपनी दहलीज लांघने से घबराती हूँ, हिचकिचाती हूँ, यह तुम ने लिखा है। सच लिखा है अजय। भारतीय पत्नी घर की दहलीज पार करने में सदा से घबराती रही है। अपना टटोलती रही है, ठिठकती रही है।"[1]

१. जाड़े की धूप – पृष्ठ : ८१

मालती, अपने पति से द्वेष करती हुई भी अपने आप को व्यस्त रखने के लिए अपने बच्चों का सहारा लेती है। लालाजी की पत्नी, अपने ड्राइवर के चाचा से प्रेम व्यवहार करती है तो, उसकी पुत्री ड्राइवर से ही। इस प्रकार उक्त पात्रों की मानसिक कुंठाओं एवं वासनाओं का चित्रीकरण प्रस्तुत किया गया है।

पवन एक आदर्श पति है, पत्नी की भूल से अवगत होकर उसे तुरंत क्षमा करके फिर से अपने जीवन में स्थान देकर एक आदर्श की स्थापना करता है। अजय के माध्यम से लेखिका ने स्वार्थी पुरुष का चित्रीकरण किया है जो अपनी कला को सुन्दर एवं भावपूर्ण बनाने के लिए किसी की भी पत्नी से हो कपट प्रेम रचने में संकोच नहीं करता है।

मालती का पति धनी और व्यसनी है। लेखिका ने मालती के पति के विचारों का उल्लेख करते समय पुरुषों की कामलोलुप दृष्टि पर प्रकाश डाला है–'पुरुष की दृष्टि में नारी का केवल एक ही मूल्य है, उसका शरीर, उसका सौन्दर्य। आजकल का प्रगति प्रेमी पुरुष किसी भी नारी से बात करता है तो कुछ ऐसा असभ्य भाव लिये हुए कि वह नारी उन क्षणों के लिए उसकी पत्नी के समान होती हो।'[1]

आलोच्य उपन्यास में लेखिका ने विवाहित स्त्री द्वारा पर पुरुष से प्रेम की, समस्या का चित्रण किया है।

लेखिका ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि आजकल की शिक्षित-नारी, प्राचीन अशिक्षित नारियों के समान पति का अंधानुकरण न कर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखती है। आज की शिक्षित नारी पर पुरुष के कृत्रिम प्रेम तथा वाग्जाल में पड़ने के कारण, मानसिक अशांति का अनुभव करती है। फलस्वरूप पति-पत्नी के बीच तलाक की समस्या उत्पन्न होती है। किंतु लेखिका इस के पक्ष में नहीं है। इसी कारण इस उपन्यास का अंत मर्यादा की सीमा के अंदर है।

श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार के निम्नांकित विचार यहाँ उल्लेखनीय हैं– 'इस उपन्यास का विषय ऐसा है, जिसे वासना से बचाकर रखना बहुत कठिन था। पर लेखिका इस बात में पूरी तरह सफल हुई है कि 'जाड़े की धूप'

१. जाड़े की धूप – पृष्ठ : १०४

कहीं भी वासना-पूर्ण नहीं बनने पाया। भारती की उन दिनों की मनोदिशा का अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण इस उपन्यास में है, पर अजय के चरित्र और मनोविज्ञान पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है। मेरी राय से यही इस रचना की सबसे बड़ी कमजोरी है।'[1] उक्त कथन से यही प्रमाणित होता है, क्योंकि लेखिका ने नायिका भारती के विचारों को व्यक्त करने की दृष्टि से ही अजय पात्र को अधिक महत्व नहीं दिया है। 'उपन्यास की सफलता के संबंध में श्रीमती ऊर्मिला गुप्त का यह निष्कर्ष द्रष्टव्य है—'उपन्यास में कथानक के चुनाव की अपेक्षा उसके निर्वाह का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण होता है।'[2] आलोच्य उपन्यास में कथा-निर्वाह भावात्मक है। अतः कहा जा सकता है कि वस्तुपक्ष की दृष्टि से लेखिका का यह उपन्यास अत्यंत सफल एवं सशक्त रचना है।

श्रीमती रजनी पनिकर का 'काली लड़की' एक और सामाजिक इतिवृत्त प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की प्रधान पात्रा रानी है, वह काली है। अपने घर में केवल पिता और नौकरानी चाँदी के प्यार के अलावा उसे किसी और का प्यार नहीं मिलता। छुटपन से ही उपेक्षित दृष्टि से देखे जाने के कारण उसके मन में ग्रंथि सी बस जाती है। किशोरावस्था में उसकी बहिन कावेरी का पति भी उपेक्षा दृष्टि से देखने के कारण उसके दिल को ठेस पहुँचती है। वह समझ लेती है कि यह सभ्य समाज केवल बाहरी सौन्दर्य को ही अधिक महत्व देता है। अपनी सहेली सुंदरी और कमल बाबू के अवैध संबंध तथा सुंदरी और कावेरी को सिगरेट पीते हुए देखकर उसके मन में सभ्य समाज के प्रति घोर घृणा सी उत्पन्न हो जाती है। एक बार कावेरी के संग मसूरी जाती है। वहाँ कमल बाबू के मित्र धीरेंद्र के साथ कावेरी का व्यवहार देखकर खिन्न हो जाती है। तब कावेरी, रानी की प्रतिक्रिया से असंतुष्ट होकर उसे तथा नौकरानी को घर से निकाल देती है। तब रानी सुंदरी के घर कुछ दिन रहती है। इसी बीच कमल बाबू रानी के आंतरिक सौंदर्य से प्रभावित होकर मुग्ध हो जाता है। कमलबाबू की पत्नी कावेरी पति का धन लेकर धीरेंद्र के साथ विदेश चली जाती है। यहाँ रानी की माता भी अपने पति का त्याग कर विदेश में धनी विधुर से विवाह कर लेती है। जिस

१. आजकल – अक्तूबर, १९५८, पृष्ठ : ५२
२. स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकायें – पृष्ठ : १९१

से उसके पिता विरक्त होकर संपत्ति को रानी के नाम लिखकर स्वयं सन्यास ग्रहण कर लेता है। अंत में रानी और कमल वहीं रहने लगते हैं।

इस मुख्य कथा के साथ सुंदरी और टंडन परिवार की गौण कथायें भी इसमें हैं। आधुनिक सभ्य समाज की वैश्या के रूप में सुंदरी को चित्रित किया गया है। सुंदरी, समाज की दृष्टि में कुआरी ही मानी जाती है।

बाहरी आडंबरों से युक्त परिवार के रूप में टंडन परिवार को चित्रित किया गया है। इस परिवार को धनी वर्ग का प्रतिनिधित्व न करने पर भी दास-दासियाँ, गवर्नेस, फैशन आदि के प्रति अत्यंत मोहित दिखाया गया है।

आलोच्य उपन्यास में रानी के माध्यम से उपेक्षिता काली लड़कियों की विचारधारा, प्रतिक्रिया, हीनभाव, विद्रोही आदि का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। रानी के लिये माँ का प्यार दुष्प्राप्य हो गया है क्योंकि वर्तमान सभ्य समाज में आंतरिक सौन्दर्य का ही प्राधान्य है। नौकरानी चाँदी के द्वारा अपनी मालकिन रानी के प्रति प्रेम, ममता प्रदर्शित करवाकर लेखिका ने यह सिद्ध किया है कि वर्तमान सभ्यता से अछूत हृदयों में स्नेह निर्मलधारा अब भी हैं।

कावेरी, सुंदरी पात्रों के माध्यम से वर्तमान सभ्य समाज के नारी का दूसरा रूप लेखिका ने प्रस्तुत किया जो धन दौलत को ही सब कुछ मानती है। कमल भी इसी वर्ग का पुरुष है। उसने बचपन से ही धन के प्रति माँ का मोह देखा है। दुर्भाग्यवश ऐसे ही पत्नी तथा सास भी मिलती हैं। इस प्रकार उसके चारों ओर के वातावरण के कारण कमल नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करता है लेकिन अंत में रानी के सच्चे प्रेम से अवगत होकर जीवन का अर्थ समझता है।

लेखिका ने अपना उद्देश्य रानी पात्र के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है कि 'किसी उपन्यास में किसी काली लड़की की समस्या का वर्णन नहीं किया गया था। किसी ने भी काली लड़की को उपन्यास की हीरोइन नहीं बनाया था—बंकिमचंद्र ने अंधी लड़की ले ली, रवींद्रनाथ ठाकुर ने गुंगी लड़की को चित्रित किया, परंतु दोनों में से किसी ने भी यह आवश्यक न समझा कि किसी काली लड़की को भी हीरोइन बनायें।'[1]

---

१. काली लडकी – पृष्ठ : ६१

इसके अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता की निस्सारता को स्पष्ट करना भी लेखिका का लक्ष्य रहा है। सुंदरी और कमल, तथा कावेरी और धीरेंद्र के बीच अवैध संबंध को सुंदरी और कावेरी का आधुनिक सभ्यता मानकर सिगरेट आदि पीना, आधुनिक सभ्यता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्त्रियों का धन के प्रति मोहित हो जाना, आदि सभी बातों से लेखिका ने वर्तमान अत्याधुनिक सभ्यता पर घृणा प्रकट की है। कवियों एवं कवयित्रियों के खोखले एवं घृणित रूप का वर्णन[1] संपन्न मध्यवर्गीय तथा उच्चवर्गीय समाज के स्वार्थपूर्ण जीवन का विस्तृत उल्लेख[2] आदि प्रसंग भी उक्त कथन के प्रमाण हैं।

लेखिका वर्तमान सभ्यता की घृणित रूप के माध्यम से यही कहना चाहती है कि आजकल के लोग उस सभ्यता से दूर रहकर ही सुख-शांति पा सकेंगे। पाश्चात्य-सभ्यता के अंधानुकरण द्वारा पारिवारिक-सुख से लोग वंचित रह जाते हैं। इस प्रसंग में रानी का यह कथन उल्लेखनीय है–'मुझे धीरे-धीरे इस नयी सभ्यता और इस नये रहन-सहन से चिढ हो गयी, क्योंकि इसने सुखी परिवार तोड डाले थे। मुझे लगता है कि कमलबाबू का परिवार भी टूट रहा था। मेरे माता-पिता का परिवार तो टूट ही गया था। नई सभ्यता और नए ढंग के रहन-सहन ने मां को चकाचौंध में डाल दिया था।'[3]

लेखिका का यही उद्देश्य परिलक्षित होता है कि इस उपन्यास के द्वारा निस्सार आधुनिक सभ्यता के प्रति मोहित नारियों को लेखिका ने उपदेश एवं शिक्षा देनी चाही है। क्योंकि जैसे डा. उर्मिलागुप्त ने कहा है कि 'नई सभ्यता ही वर्तमान समस्याओं की जन्मधात्री है। उससे पृथक रहकर ही भारतीय युवक-युवतियाँ तथा उनके अभिभावक मानसिक शांति पा सकते हैं। क्योंकि यह सभ्यता उन्हें भौतिकता की ओर उन्मुख करती है।'[4]

लेखिका की हार्दिक कामना यही है कि इस समाज में रानी जैसी काली लडकियों का जीवन विषमय न हो। 'उनके अभिभावक और उनके माता-पिता उनकी यातना का अनुमान लगा पायें।'[5]

---

१. काली लडकी – पृष्ठ : ३५-४२ २. काली लडकी – पृष्ठ ५६-५९
३. काली लडकी – पृष्ठ : १२४
४. उर्मिला गुप्त – स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ – पृष्ठ : १९६
५. काली लडकी – भूमिका से उद्धृत – पृष्ठ : ख

श्रीमती रजनी पनिकर के 'एक लड़की : दो रूप' उपन्यास में माला नामक युवती की आत्मकथा का चित्रण है। माला मध्यवर्गीय परिवार की कन्या है। बचपन से ही आर्थिक अभाव के कारण वह सदा कल्पनालोक में ही विचरण करती रहती है। उसका पिता पैसा कमाने के उद्देश्य से सेठ कनौडिया की दुकान में नकली आभूषणों पर मुलम्मा लगाते रहता है। उसकी मां सिलाई का काम करती रहती है। आर्थिक अभाव के कारण ही माला को सेठ कनौडिया के पास नौकरी करनी पडती है, जो उसकी मां को कतई पसंद नहीं है। सेठ के पास नौकरी करने से उसे धन का तो अभाव नहीं होता फिर भी अपनी इच्छाओं के विरुद्ध कुछ ऐसे काम करने पडते हैं जिससे वह मानसिक अशांति का अनुभव करने लगती है। लेकिन कल्पनालोक में विचरण करनेवाली उसके अंदर की माला, जिसको लेखिका ने 'गुडिया' की संज्ञा दी है, वाह्याडंबर के प्रलोभन में आकर धन के पीछें पागल बनती है। उसका विवाह निश्चित हो कर भी दहेज न दे सकने के कारण, विवाह रुक जाता है। माला का परिचय राजू नामक धनी युवक से होता है जो विवाहित है। अतः घर के बाहर माला के साथ अपना मन बहलाया करता है। माला भी राजू के व्यवहार को जान कर भी, धन के प्रलोभन में उसके साथ मैत्री को चाह कर भी नहीं तोड़ पाती है। इसी बीच माला का पिता, नकली आभूषणी में मुलम्मा चढ़ाने में सहयोग देने के अभियोग में पकडा जाता है। फलतः वह ग्लानिवश आत्महत्या कर लेता है। माला इस घटना से व्यथित होकर नौकरी छोड देती है। अपने मुहल्ले के बच्चों को शिक्षा प्रदान कर, आत्म-शांति पा लेती है। तब से वह राजू के साथ भी अपना संबंध तोड लेती है।

माला का भाई रवि निर्धन होने पर भी नैतिक मूल्यों का आदर करने वाला युवक है। माला की सखी अचला, स्वार्थी मदन द्वारा जीवन में धोखा खाकर, आत्मघात करते समय रवि उसका हाथ थाम कर नया जीवन प्रदान करता है। माला की दूसरी सहेली उमा का पति चरित्रहीन पत्रकार है। उसकी चरित्रहीनता के कारण ही उसका जीवन दुखमय बन जाता है।

इस प्रकार मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का आयोजन कर लेखिका ने आधुनिक समाज की युवक और युवतियों के मनोभावों का चित्रीकरण किया है।

इस उपन्यास की मुख्य पात्रा माला के चरित्र चित्रण में लेखिका सफल हुई है। माला के दो रूप हैं – एक उसका बाह्य रूप जो आडंबरों के आकर्षणों से बचना चाहता है तथा दूसरा रूप जिसे 'गुडिया' की संज्ञा दी गयी है – यह माला को आर्थिक प्रलोभनों की ओर प्रेरित करता है। इन दोनों रूपों के संघर्ष का लेखिका ने मनोवैज्ञानिक रीति से चित्रण कर, माला के चरित्र विकास की ओर विशेष ध्यान दिया है।

माला अपने घर की आर्थिक स्थिति के कारण विवश होकर नौकरी करती है और आर्थिक प्रलोभन से कुछ समय तक छली जाती है तो अचला जैसी स्त्रियाँ मदन जैसे कामलोलुप पुरुषों के मोह जाल में फँसकर धोखा खाने के कारण विवश होकर नौकरी करती है।

पुरुष पात्रों में केवल रवि को छोडकर शेष सभी स्वार्थी, धनाकांक्षी एवं कामलोलुप हैं। पत्नी की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने वाला राजू बाहर की दुनिया में माला को धन की लालसा दिखाकर अपना मन बहलाव करता है। इस प्रकार लेखिका ने राजू के माध्यम से आधुनिक धनी युवकों की अनैतिकता पर आक्षेप करने के साथ उनके दुहरे व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला है। सेठ कनौडिया नकली आभूषणों का मालिक है जो किसी न किसी प्रकार 'धन' कमाना ही जीवन का ध्येय मानता है। कितने ही कुकर्म करने पर भी वह सभ्य समाज के गौरवव्यक्ति के रूप में व्यवहृत होता है। लेखिका ने इस पात्र के द्वारा पूँजीपतियों पर करारा व्यंग्य किया है। इसी धन के अभाव के कारण माला का पिता कैद कर लिया जाता है।

इन सभी पात्रों में रवि एक ऐसा पात्र है जो नीति के सम्मुख धन को तुच्छ समझता है। उसने पिता के अर्थ लोभ का खुलकर खंडन किया तथा अचला जैसी स्त्री का उद्धार कर आधुनिक युवकों के सामने एक अनुसरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

रवि का पिता कैद होने पर सेठ कनौडिया उन्हें पैसे देकर उसके परिवार को सांत्वना दिलाना चाहता है तो रवि सेठ को मुंह तोड उत्तर देता कि–"ले जाइए यह रुपया। आप के रुपये ने एक इमानदार आदमी को हैवान बनाया। वह आपा भूल कर आप के चंगुल में फँस गये। अपनी लडकी भी बेच डाली और अपना ईमान भी।"[1]

---

१. एक लडकी : दो रूप : पृष्ठ : १०८

लेखिका ने चरित्र चित्रण के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रणालियों को अपनाया है । पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते समय यत्र तत्र आधुनिक नारी के मनोभावों का भी चित्रण किया है । उदाहरणार्थ – "औरत की यह भूख जाने क्यों बढ़ गई है कि वह नायिका बने । गृहिणी बनकर भी वह सुखी नहीं । मानो पति का प्यार तो उसे मिलना ही चाहिए था, उसका अधिकार था, परंतु दस-पाँच का और भी मिल जाए तो क्या बुरा है ।"[1] इस उक्ति से यही सिद्ध होता है कि आधुनिक समाज की युवतियाँ नैतिक मूल्यों को भूलकर 'काम' और 'धन' प्रलोभन की शिकार बन रही हैं ।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका ने समाज के उच्च एवं मध्यम वर्गों के बीच के वैषम्यों को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । इसीलिए तदनुरूप पात्र एवं कथानक को चुना है । आज के सभ्य समाज में प्रचलित विषमता को दिखाकर लेखिका ने उस प्रकार की परिस्थिति से बचने का संकेत भी दिया है ।

आज का मनुष्य नीति तथा आदर्श का गला घोंट कर ही सुख की साँस ले रहा है । लेकिन लेखिका ने माला को इस रूप में चित्रित नहीं किया है । वह आरंभ में भौतिक सुखों की ओर आकर्षित जरूर हुई है, लेकिन उसका विवेकशील रूप उसे सदा सचेत करता रहा । इसी कारण वह अशांत रही । 'काम' ने उसे राजू की ओर प्रेरित किया तो 'अर्थ' ने सेठ कनौडिया की ओर । परंतु अंत में जान पाती है कि सच्चा सुख इन दोनों में नहीं । तभी से वह बच्चों को पढ़ा कर उनकी संगति में सच्चा सुख प्राप्त करती है ।

श्रीमती बसंत प्रभा :

'सांझ के साथी' उपन्यास के अन्तर्गत एक मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इसमें मातृहीन मोहन की जीवनगाथा है । मोहन अपनी भाभी के कठोर नियंत्रण में पलकर बड़ा होता है । भाभी की पक्षपात-बुद्धि के कारण ही पिता और भाई के प्रेम से भी वंचित हो जाता है । धन-लोलुपता के कारण सुखदेवी उसका विवाह एक धनिक युवती रोगी कमला से करा देती है । जो शीघ्र ही रोग के कारण चल बसती है । भाभी की इस कुटिल चाल के कारण मोहन अपने परिवार से अलग हो जाता है । प्रौढ़ावस्था में विधवा लीला से विवाह कर अपने जीवन को कुछ सरस बनाना

---

१. एक लड़की : दो रूप : पृष्ठ : ५३

चाहता है। भारत विभाजन के उपरान्त मोहन और लीला विवश होकर दिल्ली में मोहन के भाई-भाभी को अपने घर स्थान देते हैं। भाभी के कटु तथा व्यंग्यपूर्ण वचनों से आहत होकर एक पुत्र को जन्म देकर लीला आत्म-हत्या कर लेती है। मोहन, अपने पुत्र के साथ फिर से एकाकी बन जाता है। लेखिका ने लीला को मोहन के लिए 'सांझ के साथी' की संज्ञा दी है।

इस प्रधान कथा के साथ-साथ मोहन की पहली पत्नी कमला की मौसी पुष्पवती और पश्चिमी सभ्यता में पली उनकी कन्या तथा लीला की नानी आदि पात्रों की जीवनियाँ भी आंशिक रूप में वर्णित हैं। सम्पूर्ण कथानक में सुखदेवी की कूटनीति एवं स्वार्थ का ही जाल फैला हुआ है।

आलोच्य उपन्यास में सर्वाधिक चरित्र का विकास सुखदेवी का ही है। सुखदेवी अपनी कुटिल बुद्धि को स्वार्थ के लिए नित्य नये रूपों में प्रयोग करती हुई एक विशिष्ट नारी-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उसके दूसरे व्यक्तित्व को उसके परिवार का कोई भी सदस्य सही रूप से समझ नहीं पाते हैं। यह तथ्य मोहन की इस उक्ति से स्पष्ट होता है। मोहन के जीवन को भीतर से विषाक्त बनाते हुए भी, ऊपर से ऐसा व्यवहार करती है कि, मोहन कई बार यों सोचने के लिए बाध्य हो जाता है---'"भाभी जबान की कितनी भी कड़वी क्यों न हो, फिर भी दिल से बुरी नहीं है।"[१]

अन्य नारी पात्रों में लीला का गंभीर व्यक्तित्व, तथा उसका मोहन के प्रति अनन्य प्रेम आदि का वर्णन सराहनीय रहा है। मोहन की बहिनों--पार्वती, गंगा का भातृ-प्रेम भी उल्लेखनीय है। पुष्पवती और उनकी दोनों पुत्रियों के माध्यम से लेखिका ने पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाली नारियों के प्रति व्यंग्य किया है। वस्तुतः इस उपन्यास में सुखदेवी का व्यक्तित्व इतना सबल रहा है कि इसकी आड़ में और सभी पात्र दब से गये हैं।

पुरुष पात्र इस उपन्यास में बिलकुल उपेक्षित किये गये हैं। मोहन के पिता और भाई वास्तविक रूप से सुखदेवी का चरित्र जानते हुए भी उसका विरोध नहीं करते। मोहन भी अंत तक भाभी के अत्याचारों को सहता रहता है।

---

१. साँझ के साथी -- पृष्ठ : २०५

इस उपन्यास के द्वारा लेखिका ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अपने कुटिल स्वभाव के कारण नारी कितनी भयंकर एवं स्वार्थपूर्ण हो सकती है। नारी का केवल स्वार्थपूर्ण चित्रण ही नहीं बल्कि मृदु एवं कर्मठ नारियों का भी चित्रण इसमें पाया जाता है। एक ओर कमला जैसी मृदुल और लीला जैसी कर्मठ और सुशील नारियां होती हैं तो दूसरी ओर सुखदेवी जैसी कटुहृदया नारियों का भी इस संसार में अभाव नहीं है, जो दूसरों के मार्ग में कांटे बिछा कर खुशियाँ मनाती हैं।

श्रीमती बसंता प्रभा का दूसरा उपन्यास 'अधूरी तस्वीर' है लेखिका उपन्यास के लिए कथावस्तु की खोज में निकलती है तो उन्हें नई दिल्ली के एक होटल के कमरे में रमा द्वारा लिखे गये बीस पत्र हाथ लगते हैं। रमा का पति विज्ञान की खोज में लीन होने के कारण पत्नी की ओर उचित ध्यान नहीं दे पाता। जिससे रमा निराश तथा क्रुद्ध होकर गृह-त्याग देती है। रमा अपने पत्रों में अपने विगत जीवन की सुख-दुखमयी अनुभूतियों के अतिरिक्त गृह त्यागने के बाद के कटु एवं कटु अनुभवों का भी विवरण देती है। रमा अपने किये पर लज्जित है और साथ से पति के प्रति अपार श्रद्धा रखती है। वह अपने पत्रों को पति के पास भेज कर समझौता करना चाहती है, लेकिन एक दिन अपने पति को सुधा नामक एक लड़की के साथ नृत्य एव मद्यपान में तल्लीन देखकर, अपना निर्णय बदल लेती है। अतः पत्रों के बंडल को होटल के कमरे में ही छोड़कर अपनी पीड़ा को भूलने अन्यत्र चली जाती है।

उपर्युक्त कथानक को विस्तृत रूप देने के लिए रमा के गृह-त्याग के पश्चात् रमा की सखी प्रेम, रमा की बहिन सुजाता, रमा का प्रेमी विजय, रमा का पड़ोसी सिन्हा साहब, फातिमा सइया, सत्या आदि पात्रों का समावेश किया जाता है। उन पात्रो की जीवन-घटनाओं का आंशिक उल्लेख अनुभूतियों के संसर्ग म किया जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में रमा के मनोभावों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास लेखिका ने किया है। रमा एक महान् वैज्ञानिक की पत्नी है, फिर भी सांसारिक सुख से वंचित रहती है। उसकी मानसिक वेदना की एक झलक यहां प्रस्तुत की जा रही है—"काश की मेरी जिन्दगी मायके में ही कट रही होती। काश मैं बूढ़ी होकर भी कुमारी रह जाती, ताकि प्रियतम के घर जाने के साथ खत्म तो न होती। सोचती हूँ, तुम्हारे साथ रहकर मैंने क्या

पाया ? मैं तुम्हारी प्रेयसी भी वनी । मैंने पत्नीत्व को भी निभाया, मालकिन वनकर तुम्हारे घर की व्यवस्था भी की । पर इतना सब करके भी मेरा जीवन रीता ही रह गया है ।"[1] रमा अपने ऊपर पति का अधिकार नहीं होने के कारण पति-गृह त्याग देती है । निम्नांकित कथन के द्वारा रमा के मनोभावों पर प्रकाश डाला गया है–'राज मैं जानती हूँ कि स्त्री के ऊपर किसी का अधिकार इसलिए होना जरूरी है कि वह बिना किसी अधिकारी के किसी भी समय उद्दंड हो सकती है । उस रात मैंने स्पष्ट अनुभव किया कि मुझे पाकर अगर तुमने मुझ पर अपना अधिकार दिखाया होता तो मैं किसी कारण से भी तुम्हारे घर की देहरी को लांघने की कोशिश न करती और न करती वह सब कुछ जो करना मेरे लिये उचित न था ।'[2]

रमा अपने गृह-त्याग के लिए कभी अपने को तो कभी पति को और कभी परिस्थितियों को दोषी ठहराती है ।

सभी अन्य पात्रों का उतना ही विकास चित्रित किया गया है जो रमा के चरित्र-विकास में सहायक हो सकते हैं । अन्य पात्रों में प्रभा, सुजाता, सत्या, सईदा, आदि नारी पात्र हैं जिनके चरित्रों में ममत्व, सौंदर्य, सहानुभूति आदि सद्‌गुण पाये जाते हैं ।

पुरुष पात्रों में सुजाता का पति राजु डाक्टर साहब, विजय तथा सिन्हा साहब उल्लेखनीय हैं । राज एक महान् वैज्ञानिक है, किंतु अपनी पत्नी के मनोभावों को समझने में वह असफल ही रहता है । जब तक वह विज्ञान की साधना में लीन रहा तब तक पत्नी के प्रति की गई उसकी उपेक्षा सराहनीय है, लेकिन जब वह विज्ञान के शोध में विजय प्राप्त कर लेता है उसके बाद भी पत्नी को भूलकर सुधा के साथ विलासपूर्ण जीवन यापन करने से, उसके प्रति पाठकों का गौरव घट जाता है । रमा गृह–त्याग के बाद विजय के सौम्य व्यक्तित्व एवं आकर्षित बातों के प्रति आकृष्ट हो जाती है । किंतु जब उसे लोक–निंदा की भट्टी में झोंक कर, स्वयं विजय लापता हो जाता है वहाँ विजय की स्वार्थपरता तथा कृत्रिम व्यक्तित्व का आभास मिलता है । सिन्हा साहब वा नापूर्ति की आकांक्षा में, रमा के जीवन में प्रविष्ट तो होता है, लेकिन रमा के वेदनामय तथा गंभीर व्यक्तित्व से अवगत होकर तथा स्वयं लज्जित होकर, उसके जीवन से हट जाता है ।

---

१. अधूरी तस्वीर – पृष्ठ : ५१ २. अधूरी तस्वीर – पृष्ठ : १८-२०

इस प्रकार सभी पात्र रमा के जीवन के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। तथा उसके चरित्र के विकास में सहायक होते हैं।

इस उपन्यास में भावावेग को प्राधान्य मिला है। इस विषय में उपन्यासकत्री का कथन पठनीय है–"अधूरी तस्वीर को मैं उपन्यास कह सकती हूँ, इसे मैं कविता भी कह सकती हूँ, क्योंकि इसमें मेरे मन का संगीत है, मेरे अंतर की संवेदना है।"[1]

इस उपन्यास में अनमेल दांपत्य जीवन की मर्मांतिक पीडा का वर्णन है। इस उपन्यास द्वारा रमा के माध्यम से पति द्वारा उपेक्षित नारी-जीवन की विडंबना का चित्रांकन करना भी लेखिका का प्रधान उद्देश्य रहा है।

कृष्णा सोबती :–

'डार से विछुडी' कृष्णा सोबती का एक लघु उपन्यास है। इसमें एक भोली और अल्हड़ युवती की जीवन-कथा वर्णित है जो अपने माता-पिता की भूल के फलस्वरूप जीवन में कई यातनाओं का शिकार बनती है।

कथानायिका पाशो की माता शेख जाति के एक भद्र सज्जन से विवाह करती है। जिसे उसके क्षत्रिय वंश के लोग अपमान समझते हैं। इस अपमान एवं क्रोध का फल भोगना पडता है पाशो को। पाशो के प्रत्येक क्रिया-कलाप को उसके मामा, मामी, नाना आदि शंका की दृष्टि से देखते हैं और उस पर कडी नजर रखते हैं। इसी कारण वह एक दिन रात को अपनी माँ के पास चली जाती है। तब उसके पिता उसके मामाओं की क्रूरता से डरकर पाशो को एक व्यक्ति द्वारा उसके मित्र दीवानजी के घर पहुंचा देता है। दीवानजी उम्र में बडे होने पर भी पाशो को पत्नी के रूप में अत्यंत आदरपूर्वक अपनाता है। उनके प्रेम में पाशो अत्यंत सुखी दिन व्यतीत करती है। दीवानजी की मौसी भी उसके सुखी-जीवन में अपना सहयोग देती है। लेकिन एक पुत्र के पैदा होते ही दीवानजी की मृत्यु हो जाती है। तब से पाशो के सुखमय जीवन का अंत हो जाता है। दीवानजी की मृत्यु के उपरांत उनके रिश्ते का भाई बरकत एक दिन उसका सतीत्व नष्ट करता है और उसे एक लाला के हाथ बेच देता है। घर में मौसी के न रहने के कारण बरकत अपना काम बडी सरलता से पूरा करता है। लाला जी उसे, अपने तीन पुत्रों की पत्नी के रूप में तथा घर

---

१. अधूरी तस्वीर – दो शब्द से उद्धृत

की देखभाल करने के निमित्त खरीदता है। उसका मंझला पुत्र उस से विशेष प्यार करता है। वह अंग्रेजों से युद्ध करने जाता है तो पाशो को भी बलपूर्वक अपने साथ ले जाता है। लेकिन विधि उस के साथ और एक बार खेलती है। युद्ध में उसकी मृत्यु के उपरांत वह फिर से अनाथ बन जाती है। तब मालिक राजाओं का वंशज उसे अपने साथ लाकर उसे बहिन के नाते अपनाता है। युद्ध में लालाजी के मंझले भाई के मृत्यु के उपरांत उसे फिरंगी की कचहरी में ले जाते हैं तो वहाँ उसका भाई जो शेख जी का पुत्र है, उसे पहचान कर घर ले जाता है। वहीं पर दीवानजी की मौसी तथा स्वयं उसके अपने बेटे से भी मुलाकात होती है।

इस उपन्यास में पंजाब के अंचल की विशेषतायें बहुत मात्रा में उपलब्ध हुई हैं। श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में 'संभवतः पंजाब की किसी पुरानी लोकगाथा या किंवदंती के आधार पर इस आंचलिक लघु उपन्यास की रचना की गई है।'[1]

लेखिका द्वारा चुनी गयी यह कथावस्तु व्यापक लोक-जीवन को समेटी हुई है तथा इनमें मानव जगत के विविध प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है।

लेखिका ने पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उतना ही विस्तार दिया है जितना कथावस्तु के विकास के लिए पर्याप्त हो। इसमें पाशों का चरित्र ही मुख्य है। उसका भोलापन, अल्हडता और अपने भाई, पति तथा पति के मौसी के लिए उसका अगाध-प्रेम तथा आदर मुख्य रूप से प्रकट हुए हैं। क्रूर नियति के थपेडों को वहन करने की सहनशक्ति उसके चारित्रिक विकास का मुख्य गुण है।

शेख जी, दीवानजी, पाशो का भाई, दीवानजी की मौसी तथा मलिक राजा के चरित्रों में विशेष ममता तथा दया के गुण अधिक पाये जाते हैं। दीवान बरखत वासनाग्रस्त मानव है जो अपने भ्रातृजाया पाशो का सतीत्व नष्ट करके पैसों के लिए उसे बेच भी डालता है। लालाजी भी इसी कोटि के अंतर्गत आता है।

पाशो के मामा-मामी तथा नानी के अत्याचार उसके प्रति इतने अधिक इसी कारण रहे क्योंकि पाशों की मां ने एक अपमानित कार्य किया। आलोच्य

---

१. आजकल, मई, १९६० पृष्ठ : ४३

उपन्यास में इस कथा द्वारा यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार माता-पिता की करनी का फल भोले भाले तथा निरपराध बच्चों को सहना पड़ता है। यौवन की अल्हड़ता किस प्रकार युवक-युवतियों को विवेकहीन बना देती है, जिसके कारण सारा जीवन दुखमय बन जाता है। पाशो की माता के विश्वास-घात के कारण वैसे ही घर में पाशो के ऊपर कडी नजर रखी हुई थी तो दूसरी ओर उसने अपने यौवन की अल्हड़ता के कारण करीमू के सामने मुस्कराकर रुमाल देने की प्रेरणा दें तो उसके मामा उसकी हत्या तक करने की ठान ली है। इस बात से डरकर वह घर से भाग जाती है। रहरह कर वह मन में सोचने लगती है कि–''नानी झूठ न कहती थी एक बार का थिर कर पाँव जिदगानी धूल में मिला देगा। सच होके निकली नानी की वाक्-वाणी।''[1]

लेखिका ने चारित्रिक पतन के कारण जीवन के दुष्परिणामों का उल्लेख किया। लेकिन वह उद्देश्य तो पूर्ण रूप से प्रतिफलित नहीं हो पाया। क्योंकि इस उपन्यास में अपमानित कार्य तो पाशो की माता ने किया। लेकिन वह अपनी जिंदगी में संपूर्ण सुख-ऐश्वर्य की स्वामिनी बन गई। लेकिन उसका फल भोगना पडा पाशो को। किस प्रकार गलती किसी के द्वारा हुई तो उसका फल किसी और को भोगना पडा है।

लीला अवस्थी :

सुश्री लीला अवस्थी का सामाजिक उपन्यास 'दो राहें' में भी अधिक-तर लेखिकाओं की तरह इन्होंने में भी अभिजात एवं निम्न-मध्य वर्गों का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की मुख्य कथा का केन्द्र कैप्टन रघुनाथ का परिवार है। इस परिवार में कैप्टन रघुनाथ, उनकी पत्नी हेमा, उनके काका तथा उनकी पुत्रियाँ रूबी तथा बेबी हैं। दुर्भाग्यवश एक बार हिंडन नदी की बाढ़ में चार वर्षीय बेबी वह जाती है और निस्संतान हैडमास्टर चंद्रप्रकाश के घर 'गौरी' के नाम से पलने लगती है। एक दुर्घटना में चंद्रप्रकाश मर जाता है। निर्धनता के कारण उनकी पत्नी जामकी रघुनाथ के घर दासी के रूप में काम करने लगती है। विधि की विडंबना है कि कैप्टन रघुनाथ की पुत्री उन्हीं के घर उनकी दासी की पुत्री के रूप में रहती है। एक दिन अचानक उनके घर में जानकी को गौरी का चित्र मिलना है जिससे वह समझ जाती है कि असल में गौरी कैप्टन रघुनाथ की पुत्री बेबी है। सत्य के अवगत होने पर भी उसके ममत्व ने सत्य को प्रकट करने नहीं दिया। फल-

---

१. डाक से बिछुडी – कृष्णा सोबती, पृष्ठ : ६०

स्वरूप गौरी उनकी सेवा में ही अपना जीवन यापन करने लगी। जानकी के सुसंस्कारों के कारण गौरी ने उच्च विचार प्राप्त किये तथा दसवीं कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। दूसरी ओर रूबी अश्लील साहित्य को पढते हुए और विनय तथा जानी जैसे प्रेमियों के चक्कर में पडकर विलासपूर्ण जीवन बिताते रहती है। एक दिन काका बीमार पड़ जाता है। बीमारी में भी वह खोई हुई 'बेबी' की ही रट लगाता रहता है तो दयाद्रहृदयी जानकी सत्य का उद्घाटन करके स्वयं अपने ननंद के पास चली जाती है। गौरी एक सच्च-रित्रवाली कन्या है। कैप्टन रघुनाथ उसका विवाह प्रोफेसर कैलास से करवाता है। इधर रूबी विनोद की वासना का शिकार बनकर गर्भवती हो जाती है। वह आत्म हत्या करने तैयार हो जाती है तो हिंदी के अध्यापक कुंजीलाल उसे बचाकर उससे विवाह करने का वादा करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में दो वर्ग के पात्र पाये जाते हैं, मध्यवर्ग तथा अभि-जात वर्ग। लेखिका ने इन दोनों वर्गों के पात्रों का तुलनात्मक चित्रण किया है। मध्यवर्ग के पात्र हैं जैसे चंद्र प्रकाश, जानकी, राधा जो चंद्रप्रकाश की बहिन, गौरी तथा कुंजीलाल। ये पात्र सुसंस्कृत तथा उच्च विचारवाले हैं। इनमें जानकी तथा राधा ही ऐसे पात्र हैं जो स्वयं अशिक्षित होने के कारण अपनी लडकियों की शिक्षा के प्रति अधिक महत्व नहीं दे पातीं। लेकिन वे घर-गृहस्थी के कार्यों तथा आचार-व्यवहार के प्रति सजग रहती हैं। अभि-जात वर्ग के पात्रों में कैप्टन रघुनाथ तथा उनकी पुत्री रूबी जो पूर्ण रूप से पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी है। कैप्टन की पत्नी हेमा तथा बूढा काका भारतीय सभ्यता में सिंचित गौरव पात्र हैं। लेखिका लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए कई पात्रों को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। जैसे कुंजीलाल तथा विनोद और रूबी तथा गौरी के चरित्रों को। उदाहरण के लिए उपन्यास में रूबी और गौरी के व्यक्तित्वों का तुलनात्मक परिचय इस प्रकार लेखिका ने प्रस्तुत किया है—'गौरी जो सुबह उठकर और रात को सोते समय हाथ जोडकर भगवान से सफलता के लिए प्रार्थना करती। रूबी सोने से पहले और सवेरे उठकर सबसे पहले जानी का प्रेमपत्र पढती है। गौरी अपना समय पढाई के संबंध में सोचने में व्यतीत करती, रूबी जानी के।'[1]

कैप्टन रघुनाथ के परिवार द्वारा लेखिका ने पाश्चात्य सभ्यता के खोखलेपन को चित्रित किया है। हेडमास्टर चंद्रप्रकाश का परिवार भारतीय

१. दो राहें – पृष्ठ : ७३

सभ्यता का अनुगामी है। ईश्वरोपासना, पति-पत्नी का आदर्श प्रेम, दूसरों के दुख को बांट लेना आदि इस परिवार के प्रमुख गुण हैं।

लेखिका का उद्देश्य यही रहा कि वर्तमान समाज में दो ही वर्ग हैं और "दोनों के बीच विषमता की खाई है और उपन्यास का उद्देश्य इस खाई को भरने का प्रयत्न हैं।"[1]

उपन्यास का शीर्षक दो राहें भी सार्थक है। लेखिका ने 'दो राहें' शब्द का प्रयोग मध्य तथा अभिजात वर्गों के अर्थ में किया है। लेखिका ने गौरी के माध्यम से दोनों वर्गों का संयोग करवाया है। इस उद्देश्य के प्रति लेखिका का संपूर्ण ध्यान केन्द्रित रहा है।

इनका दूसरा उपन्यास 'बिखरे काँटे' में भाई विक्रम और बहिन नलिनी की जीवन गाथा है जो अपने पिता की मृत्यु के पश्चात्, निर्धनता, बेकारी आदि विषम परिस्थितियों के कारण समाज में अनेक कष्टों का सामना करते हैं। कुछ समय पश्चात् उन्हें माता के प्यार से भी वंचित होना पड़ता है। लेकिन वे दोनों समस्त कष्टों का सामना बड़े धैर्य के साथ करते रहते हैं। धीरे-धीरे उनके कष्टों का अन्त होता है। विक्रम की नौकरी मिल जाती है तथा नलिनी अपनी पढ़ाई को फिर से शुरू करती है। नलिनी एवं बंगाली युवक दिलीप चटर्जी से प्रेम करती है। विक्रम जाति-भेद जैसे संकुचित विचारों से ऊपर उठकर उन दोनों का विवाह करवाता है। स्वयं श्यामा नामक एक सुन्दर युवती से विवाह करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में विक्रम और नलिनी को विशेष कर्मठ और आदर्श पात्रों के रूप में लेखिका ने चित्रित किया है। दिलीप चटर्जी, नलिनी की सखी पारो, विक्रम का मित्र मोहन आदि पात्र भी आदर्श पात्रों के अंतर्गत ही रखे जा सकते हैं। उक्त पात्रों के अतिरिक्त विक्रम के चाचा-चाची, पीपल वाली गली के पंडित जी जो वृद्ध होते हुए भी अपने धन को रिश्वत के रूप में नलिनी के चाचा-चाची को देकर नलिनी से विवाह करना चाहते थे, मोहन का भाई अखिल जो अपने सहपाठी कैलाश सिंह के बहकावे में आकर नलिनी से अनुचित सम्बन्ध रखना चाहता था तथा कैलाश आदि पात्र समाज के निम्नस्तर के पात्र माने जाते हैं। इन सब का यही लक्ष्य रहा कि अनाथ विक्रम तथा नलिनी को अधिक से अधिक कष्ट पहुँचा सकें। लेखिका ने इन सभी पात्रों को उपन्यास के अन्त तक सुधरते दिखाया है।

---

१. वही – निवेदन से उद्धृत

लेखिका का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान सामाजिक कुरीतियों को दृष्टि में रखकर उनका समाधान भी देना ही रहा है । जैसे दहेज प्रथा के कारण गरीब घर की कन्याओं के विवाह में कठिनाई, जाति-पाति के बंधन के कारण बेमेल विवाह, वृद्ध विवाहों के कारण समाज में युवती-विधवाओं की संख्या, बेकारी, जातिगत भेदभाव, प्रांतीय संकीर्णता आदि राष्ट्र में प्रचलित रूढ़ियों तथा कुरीतियों को लेखिका मार्मिक एवं व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है ।[1] लेखिका का प्रमुख उद्देश्य इन कुरीतियों पर प्रहार करना रहा है जिसके लिए उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है ।

श्रीमती चंद्रकिरण सौनरेक्सा :

'चंदन चाँदनी' आपका सामाजिक उपन्यास है । इसमें निम्न-मध्य-वर्ग की ज्वलंत समस्याओं को स्थान मिला है । कथा का केन्द्र गरिमा है, जो एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की शीलवती कन्या है । गरिमा साँवली होने के कारण तथा अधिक दहेज जुटा न पाने के कारण माता-पिता, पुत्री का विवाह करने में असमर्थ होते हैं । इसी बीच उसके माता-पिता गिरीश नामक एक युवक से जैसे तैसे बात पक्की करते हैं, किन्तु गरिमा की बहिन प्रतिमा जो अधिक गोरी एवं चंचल है, से गिरीश विवाह करना पसंद करता है । गरिमा धीरे से एम. ए. पढ़कर अपनी सखी शान्ता की सहायता से एक विद्यालय में नौकरी प्राप्त कर लेती है । शान्ता के माध्यम से उसका परिचय राज से होता है, जो नाटकों में विशेष रुचि लेता है । दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं । माता-पिता के विरोध की उपेक्षा करके विवाह-बंधन में बंध जाते हैं ।

ससुराल की निर्धनता को मिटाने के लिए गरिमा एक कार्यालय में काम करती है । बहू की कमाई पाकर सास-ससुर उससे खुश होते हैं । लेकिन राज बेकारी तथा अहं के कारण गृह-त्याग कर भाई-भाभी के पास नौकरी की तलाश में चला जाता है । विरहावस्था में राज मुक्ता नाम की विलासिनी नारी की उच्छृंखलता का खिलौना बनता है और गरिमा अपने साहब की विलासी वृत्ति का शिकार होते-होते बचती है । दोनों की आंतरिक दृढ़ता उनके चरित्रों की रक्षा करती है । और वे पुनः आदर्श दम्पति बनते है ।

गरिमा तथा राज की जीवन-गाथा के साथ-साथ गरिमा की सखी शान्ता की कथा भी निहित है जो मुख्य कथा में विशेष सहयोगिनी रही है ।

१- बिखरे काँटे – पृष्ठ : ४४-५०, ६०-६१

लेखिका ने सीमित घटनाओं से ही कथानक को सुनियोजित एवं स्वाभाविक गति से आगे बढ़ाया है। मध्यवर्गीय परिवार की छोटी-छोटी समस्याओं को लेखिका ने सूक्ष्म रूप से परखा है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास एक प्रौढ़ रचना है। गरिमा का व्यक्तित्व स्वस्थ एवं सबल है। आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में आने पर भी वह उसका अंधानुकरण नहीं करती, प्रत्युत भारतीय रीति-रिवाजों के प्रति अनन्य विश्वास रखती है। किन्तु अन्याय तथा कुरीतियों से घृणा करती है। ऐसी परिस्थितियों का वह डटकर विरोध करती है तथा अपने सौजन्य एवं चारित्रिक गरिमा से परिस्थियों को अनुकूल भी बना लेती है। शांता के चरित्र-चित्रण में भी लेखिका विशेष सफल रही हैं। शांता पहले जेम्स से प्यार करती है लेकिन वह विश्वासघात करके चला जाता है। शांता को समाज चरित्रहीन समझता है, लेकिन इस चरित्रहीनता के पीछे वह कैसी वेदना को भोगती है इसका अंदाजा किसी को नहीं होता। विवाह के पूर्व उस का लक्ष्य था, रोटी खाओ घी शक्कर से, दुनिया जीतो मक्कारी से। उसका यह लक्ष्य भी परिस्थितियों के दबाव के ही कारण था। अपने दुखिया भाई-बहनों के पोषणार्थ उसने वृद्ध, किंतु धनी वकील को अपना जीवन-साथी बना लिया, जिसके साथ उसने जीवन भर निभा लिया। इनके अतिरिक्त मुक्ता ऐसी पात्रा है जो राज को विवाहित जानकर भी उस पर अपना प्रेम-जाल फैलाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में राज एक उच्च चरित्रवाला है। फिर भी बेकारी के कारण उसमें कमाऊ पत्नी, के विरुद्ध ईर्ष्या जागृत होती है और उसका चोट खाया 'अहं' उसे गरिमा को पीड़ित करने बाध्य करता है। उसमें साहस एवं दृढता का अभाव है। अतः वह पिता का खुलकर विरोध नहीं कर पाता और अपने आदर्शों का गला घोंटने को बाध्य हो जाता है। एक ओर वह नारी की शिक्षा तथा उसकी प्रगति का समर्थक है तो दूसरी ओर परंपरागत संस्कारों के प्रति भी मोह रखता है। अंत में वह अपने दोष से अवगत होकर निर्मल-हृदय से पत्नी का स्वागत करता।

लेखिका ने स्त्री पात्रों को पुरुष पात्रों की अपेक्षा अधिक विकसित होने दिया है। पुरुष पात्रों के प्रति लेखिका ने अपेक्षाकृत उदास रहीं। गिरीश, पहले गरिमा से विवाह को ठुकराकर प्रतिमा से विवाह करता है,

विवाह के उपरांत गरिमा से प्रेम याचना करता है। इससे उसके वासनाजन्य प्रवृत्ति का पता चलता है। शांता के साथ विश्वासघात करनेवाला जेम्स भी इसी श्रेणी का है।

गरिमा के माता-पिता तथा राज के परिवार के सदस्य मध्यम वर्ग के साधारण पात्र है। लेखिका ने उक्त पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रस्तुत उपन्यास में अत्यंत स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया है। गरिमा की जेठानी की गर्वीली प्रवृत्ति बात-बात में ताना मारने की प्रवृत्ति पति के अधिक कमाने पर गर्व आदि नारी-सुलभ प्रवृत्तियाँ अत्यंत सजीवता से चित्रित की गई है।

बाह्य परिस्थितियों की प्रतिक्रिया में पात्रों की मानसिक विचारधारा के विभिन्न रूपों का भी लेखिका ने मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। विवाह के पश्चात परस्पर मनमुटाव होने पर राज एवं गरिमा की मानसिक स्थितियों का चित्रण उक्त कथन का प्रमाण है।[1]

आलोच्य उपन्यास में भारतीय निम्न मध्यवर्ग की छोटी बड़ी विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है। इनमें सबसे प्रमुख हैं दहेज समस्या, जिसके कारण समाज में माता-पिता निश्चित जीवन यापन करने में असमर्थ रहते हैं। यही समस्या इस उपन्यास में गरिमा के पिता और उसके श्वसुर (ननंद शिला का विवाह करते समय) दोनों के समक्ष उपस्थित होते। एक अन्य समस्या है बेकारी जो मध्यवर्ग को सालती है, प्रस्तुत उपन्यास में राज और उसके भाई देव के सामने बहुत दिनों तक यही बेकारी समस्या रही है।

इस उपन्यास में लेखिका का प्रमुख उद्देश्य रूढ़िगत जीवन-मूल्यों की निस्सारता को सिद्ध करना ही रहा है। निम्न मध्यवर्ग दहेज-प्रथा, छुआछूत, पर्दा-प्रथा, जातीय भेद-भाव आदि कुरीतियों से पीड़ित है और आज की युवा-पीढी इन कुरीतियों को सहन कर नहीं पाती। फलतः प्राचीन तथा अर्वाचीन का संघर्ष उपस्थित होता है। इसी संघर्ष को प्रस्तुत करना लेखिका का उद्देश्य रहा है। इसी विचार को स्पष्ट करने के लिए लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में गरिमा तथा शांता की सृष्टि की है जो रूढिग्रस्त आचार-विचारों के स्थान नये जीवन मूल्यों को स्थापित करना चाहती हैं। गरिमा तथा उसकी देवरानी के निम्नांकित कथन इस विचार के प्रमाण हैं–'गरिमा ने उसकी

१. चंदन चाँदनी – पृष्ठ : २४०, २५२, २५३

गाल पर ठुनका देकर कहा– देखती रह मैं इस घर से घूँघट-प्रथा समाप्त करके ही रहुँगी।''

'तुम बड़ी विकट हो जीजी।'

'विकट की इसमें क्या बात है। जीने की साधारण सुविधाओं के लिए भी हमें यह क्यों सोचना पड़े कि बुढऊ लुढक जायें तो हम अपने मन की निकालेंगे या पति के साथ अन्य स्थान पर बदली हो जाय तो हम इस प्रकार मौज करेंगे? वह समय लद गया जब बहुओं के शोषण पर सारा परिवार पाँव पर पाँव रखकर फूली-फूली खाता था।'[1]

इस प्रकार समाज के निम्न मध्यवर्ग की समस्याओं के सर्वांगीण चित्रण की दृष्टि से यह कृति अनुपम है।

सुश्री अन्नपूर्णा ताँगड़ी :

इनका 'निर्धनता का अभिशाप' उपन्यास सामाजिक वस्तु प्रधान है। जमींदार पंडित कैलाशनाथ का पुत्र मोहन अपने ग्राम के निर्धन अध्यापक पंडित की पुत्री मीरा से प्रेम करता है। वह विवाह का स्वप्न देखने लगता है तो उसका पिता उनके प्यार में विघ्न बनता है और कुपित होकर पुत्र को संपत्ति से वंचित कर गृह-त्याग का आदेश देता है। मोहन, मीरा से विवाह करने के दृढ़ संकल्प में गृह-त्याग देता है। फिर शहर में पढाई चालू करता है। लेकिन मरणासन्न पिता की जीवन-रक्षा के लिए उसे उनके अनुरोध पर धनवान की पूत्री सरस्वती को जीवन-संगीनी बनाना पडता है। मीरा, मोहन की मजबूरी जानकर उसके बलिदान की प्रशंसा करती है। और आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत लेने की ठान लेती है। उसके पश्चात् वह अपने भाई अतुल की स्नेह छाया में जीवन-यापन करने का निश्चय करती है। मोहन तथा अतुल द्वारा खोले गये कृषक-संघ में निरंतर परिश्रमपूर्वक कार्य करने लगती है। इसके कारण वह एक साल के अन्दर ही क्षय का शिकार हो कर जीवन-लीला समाप्त कर लेती है। मोहन उसे सदा के लिए खोकर पागल हो जाता है। सरस्वती सहनशीलता से मोहन की सेवा -सुश्रूषा ईर्ष्यारहित करती है। फिर भी वह उन्मत्त सा अपना जीवन यापन करने लगता है। इस मुख्य कथा के साथ कोई प्रांसंगिक कथा के न होने के कारण, कथानक में विविधता तथा प्रभविष्णुता का अभाव रहा है।

---

१. चंदन चाँदनी – पृष्ठ : १२४

लेखिका ने कैलासनाथ और रामनाथ के परिवारों के चित्रण के द्वारा निर्धन वर्गतथा अभिजात वर्ग के आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों की तुलना प्रस्तुत की है। कैलाशनाथ अपने वर्ग के अधिकांश लोगों की तरह हठी, दंभी तथा रूढिवादी है। इन के विपरीत पंडित रामनाथ संतोषी, विवेकशील, कर्मठ तथा स्वाभिमानिनी अध्यापक है। लेखिका ने इन दोनों के चरित्रों की तुलना प्रस्तुत की है। जहाँ कैलाशनाथ धन के लिए तथा समाज में गौरव प्राप्त करने के लिए अपने पुत्र के अरमानों का गला घोंटने में भी पीछे नहीं हटते वहाँ पं. रमानाथ अपनी पुत्री के संतोष के निमित्त और उसकी प्रेम को अनुमोदित करने में जमींदार तथा उसके कारिंदे मनोहर से भी भय नहीं रखते। मोहन सच्चा प्रेमी है। वह विवशता के कारण सरस्वती से विवाह करने पर भी मानसिक रूप से मीरा को ही चाहता है।

मीरा, पं. रमानाथ की पुत्री है। स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा एकनिष्ठ प्रेम उसके चरित्र को प्रमुख विशेषताएँ हैं। उसकी सखियाँ रजनी और नीला, जमींदार की पुत्रियाँ हैं, वे अपने पिता की तरह अत्यधिक दंभी न होकर, नारी होने के नाते कुछ उदार स्वभाव की हैं। मीरा की माता गंगा उदार हृदया है। उपन्यास में एक एक स्थान कैलासनाथ और श्यामा की चारित्रिक प्रवृत्तियों की तुलना द्रष्टव्य है–'जमींदार साहब तो रुक्ष-स्वभाव के थे, किन्तु उसकी पत्नी श्यामा अपनी परोपकार-वृत्ति, उदारता, धर्मशीलता तथा स्नेही स्वभाव के कारण संपूर्ण ग्राम में प्रसिद्ध थीं। प्रत्येक ग्रामवासी माता के सदृश उनका आदर करता था। जहाँ एक ओर पं. कैलासनाथ की भृकुटियाँ देखकर सारा ग्राम भय से काँप जाता था और उनके सम्मुख न पडने का यत्न करता था, वहीं दूसरी ओर सारे ग्रामवासी कोई भी आपत्ति पडने पर दौडकर अपनी मातास्वरूपा श्यामा की शरण में जाते थे।'[1] पं. रमानाथ का पुत्र अतुल भी कर्मठ तथा परोपकारी युवक है।

विवेच्य उपन्यास के पात्रों के विषय में प्रो. गुरुदत्त सोलंकी का यह कथन द्रष्टव्य है–'उपन्यास में जो भी आदर्शवाद है, उस पर भारतीय सात्विकता की गहरी छाप है। पात्रों के चरित्र में कहीं-कहीं भावुकता की अतिरंजना होते हुए भी आस्था का स्वर उभर कर आता है।'[2] उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि उनके पात्र यथार्थ का विश्लेषण करने की अपेक्षा आदर्श की ओर विशेषतः उन्मुख है।

---

१. निर्धनता का अभिशाप – पृष्ठ : ९

२. समिति वाणी (त्रैमासिक) : जुलाई–अक्तूबर १९६३, पृष्ठ : १२६

लेखिका ने तत्कालीन समाज में आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। जाति-भेद, दहेज-प्रथा, जमींदारी-प्रथा, आदि कई परंपराओं ने भारतीय समाज को खोखला बना दिया है। इन्हीं परंपराओं के कारण समाज में धनिक तथा निर्धन वर्ग बन गये हैं। धनिक वर्गों की तुलना में निर्धन लोगों की दयनीय-स्थिति का मार्मिक चित्रण भी लेखिका ने प्रस्तुत किया है। जाति-भेद के कारण मोहन मीरा से विवाह करने में असफल रहता है। मोहन और मीरा के विवाह द्वारा निर्धन वर्ग तथा अभिजात वर्ग की समस्याओं का हल कुछ हद तक संभव हो सकता था। लेकिन लेखिका ने इस चेतावनी को परोक्ष रूप से संकेत मात्र किया है। प्रत्यक्ष रूप से सही चेतावनी मिलती है कि वर्ग-संघर्ष दूर करना उतना सरल नहीं है।

निर्धन लोगों के कष्टों का मार्मिक एवं जीता-जागता वर्णन लेखिका ने प्रस्तुत किया है। मीरा की मृत्यु पर, अतुल के शब्दों में लेखिका का आक्रोश साकार हो उठा है—"इस निर्मम समाज ने इस अत्याचारी दहेज रुपी दानव ने इन पुरानी परंपराओं ने इस असमय में ही हमारी कली सी कोमल भगिनी को कवलित कर लिया। आज धन की पिपासा शांत हो गई। आज ऊँच-नीच की दिवारें, धनी-निर्धन की मर्यादा और बढ गई, मेरी लाडली बहन के प्राणोत्सर्ग से। हँस, समाज हँस ! उच्च अट्टहास कर।"[1] उक्त कथन द्वारा निर्धनों का आक्रोश मुखरित हो उठा।

वस्तुत: लेखिका का उद्देश्य, सामाजिक वैषम्य की विभिषिकाओं के मार्मिक चित्रण के द्वारा सामाजिक चैतन्य को लोगों में जागृत करना ही है। इसके संबंध में श्री भगवती चरणवर्मा का यह कथन पठनीय है—"सामाजिक विषमताओं से न जाने कितनी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, और मनुष्य किन विषमताओं में पडकर अपना जीवन नष्ट कर देना पडता है—इस उपन्यास में इस सत्य का बडा करुण संकेत है।'[2] इन समस्याओं तथा विषमताओं तथा विषमताओं का समाधान उपन्यास में लेखिका ने 'ग्रामोद्धार संघ' के द्वारा किया है।

सारांश यह है कि इस उपन्यास के द्वारा लेखिका ने समाज में प्रचलित विषमताओं का चित्रण करना ही अपना प्रमुख लक्ष्य माना हैं।

१., २. निर्धनता का अभिशाप, पृष्ठ : १९५

'चिता की धूल' आपका और सामाजिक उपन्यास में शिव एवं रंभा बाल्यकाल से साथ साथ रहने के कारण प्रेमसूत्र में बंध जाते हैं। लेकिन दोनों विजातीय होने के कारण विवाह सूत्र में बंधने में असमर्थ रहते हैं। अपने पिता तथा रंभा के आग्रह से शिव को सजातीय कन्या कुमुद से विवाह करना पड़ा। रंभा बालिका-विद्यालय की आचार्या के रूप में जन-सेवा को अपना लेती है। रंभा अपने कार्य में समय-समय पर शिव से सहयोग लेती रही जिससे उन दोनों के चरित्र पर लांछन लगाया जाता है। इस कलंक के प्रसार में मुख्य हाथ शिव की पत्नी कुमुद तथा शिव के मित्र राजन की पत्नी नीलिमा का रहा है। इस कलंक को असह्य पीडा के कारण रंभा की मृत्यु हो जाती है। इस कथा के विस्तार में शिव और रंभा के परिवारों के सदस्यों, जैसे माता-पिता, भाई-बहिन, भाभी आदि के स्वभाव, आचार-विचार, रहन सहन आदि की विस्तृत चर्चा की जाती है। लेकिन मुख्य कथा शिव तथा रंभा की ही रही है। शिव और रंभा के पारिवारिक सदस्यों का जन्म, विवाह, मरण, व्यर्थ के आलाप-प्रलाप, नायक-नायिका के एक ही प्रकार के संवाद उनकी मानसिक कुंठा आदि प्रसंगों के अनावश्यक विस्तार के कारण कथानक में शिथिलता आयी है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र शिव तथा रंभा है। नाम पौराणिक हैं, लेकिन उन नामों के अनुरूप, उनमें कोई चारित्रिक विशेषतायें नहीं पायी जातीं। शिव विषम-परिस्थियों से सामना करने में असमर्थ होकर अपने स्वजातीय लड़की कुमुद से विवाह कर लेता है और रंभा भी एक विद्यालय की आचार्या बन कर संतुष्ट हो जाती है। इस उपन्यास में राजन तथा नीलिमा के पात्र शिव तथा रंभा के परिपार्श्व में ही चित्रित की गई हैं। राजन, रंभा के अनुपम सौन्दर्य पर आसक्ति रखता है तो नीलिमा, शिव को अपनी वासना का शिकार बनाती है. इन दोनों के माध्यम से शिव तथा रंभा के चरित्रों की दृढता का परिचय प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के अन्य पात्रों में कोई उल्लेखनीय विशेषतायें नहीं पायी जाती।

इस कृति में समकालीन समस्याओं का समावेश पाया जाता है। जैसे विजातीय विवाह न करने देना, हिंदू समाज में अविवाहित कन्या पर उँगली उठाना और उसके माता-पिता पर व्यंग्य करना, आदि मानवीय प्रवृत्तियों का चित्रण। विजातीय विवाह की समस्या का युगानुरूप महत्व है, लेकिन

१. चिता की धूल : ४

लेखिका का विचार है कि भारतीय आदर्शों के अनुसार विवाह के लिए माता-पिता की अनुमति अनिवार्य है। वैसे तो रंभा अपनी उक्तियों के द्वारा समाज से टक्कर लेने की दिशा में पूर्ण उत्साह प्रदर्शित करती है।[1] लेकिन व्यवहारिक रूप में उसने जन-सेवा और विद्यालय की स्थापना के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया।

इस प्रकार अन्नपूर्णा तांगडी जी ने कुछ नयी समस्याओं का सफल चित्रण किया है। 'मिलनाहुति' में अन्नपूर्णा तांगडी जी ने अंबिका सहाय और सुलेमान की कथा का वर्णन किया है, जिनके परिवारों में इतना सौहार्द और स्नेह है कि उनके बीच सांप्रदायिक भेदभाव या द्वेष कहीं भी नहीं रहते। सुलेमान की विधवा बहिन सफिया इस प्रकार के स्नेह को पसंद नहीं करती, विशेषत: अपनी भतीजी नजमा और अंबिका सहाय के पुत्र हेमंत का मेल-जोल उससे बिलकुल सहा नहीं जाता। वास्तव में हेमंत और नजमा के बीच भाई-बहिन का ही रिश्ता है। फिर भी सफिया उन पर कई प्रकार के आरोप लगाकर नज़मा के भाई महमूद और उसके भावी पति शौकत तथा शौकत के माता-पिता को खूब बहकाती है। कुछ समय तक सफिया अपनी चेष्टा में सफल होती है धीरे-धीरे महमूद तथा शौकत हेमंत और नज़मा के पवित्र स्नेह को पहचानते हैं। एक बार शौकत सांप्रदायिक दंगों में घायल होनें पर हेमंत द्वारा बचाया जाता है। इस घटना के द्वारा शौकत के मन की सारी उलझनें दूर हो जाती हैं। नज़मा का विवाह हो जाने पर भी हेमंत का उसके प्रति वैसा ही स्नेह बना रहता है। कालांतर में सांप्रदायिक द्वेष की आग भड़कने पर नज़मा, हेमंत की रक्षा के लिए अपना बलिदान देकर इस आहुति से अपने मजहब के सदस्यों के हृदय में परिवर्तन ला देती है-इस घटना के साथ उपन्यास का अंत हो जाता है। लेखिका ने प्रत्येक घटना को संक्षिप्त तथा सोद्देश्य वर्णन किया है।

कथानक की भाँति चरित्र-चित्रण भी उद्देश्य के स्पष्टीकरण में ही सहायक रहा है। सफिया के अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों में जैसे सुलेमान और उसकी पत्नी फातिमा, अंबिका सहाय और उनकी पत्नी उमा, राधा, हेमंत, नज़मा, महमूद, शौकत के पिता अकबरअली और माता आयशा आदि में स्नेह का अटूट प्रवाह है। सफिया के कुचक्र से महमूद तथा शौकत और उसके माता-पिता पहले तो फंस जाते, परन्तु अंत में वे भी बदल जाते हैं। हेमंत और नज़मा मुख्य पात्र हैं तथ एक दूसरे के कष्ट में सहयोग प्रदान करते हुए आत्म-बलिदान के लिए उत्सुक रहते हैं। लेखिका ने पात्रों के सभी पहलुओं पर ध्यान

१. चिता की धूल – पृष्ठ : ४

न देकर केवल उनके सद्‌भावों पर ही प्रकाश डाला है। अतः यथार्थ चित्रण के अभाव से कहीं-कहीं कथानक में अस्वाभाविकता आ जाती है।

अपने उद्देश्य को स्पष्ट करती हुई उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने लिखा—'अंत में नज़मा की आकस्मिक मृत्यु उसके कौम के लोगों के हृदय परिवर्तन के कारण होती है और सांप्रदायिकता के थोथे मिथ्या अभिमान में पथभ्रष्ट लोगों को एक शिक्षा मिलती है, इसमें संदेह नहीं और यही मेरा अभिष्ट भी है।' लेखिका का ध्यान आद्यंत इसी उद्देश्य, अर्थात् हिंदू-मुस्लिम ऐक्य की ओर ही रहा है। और अन्य तत्वों का संयोजन इसी दृष्टि से किया गया है। भारत के दो खंड हो जाने पर भी अगर भारतीयों में भेदभाव के स्थान ऐक्यता उपस्थित हो तो भारत में सुख-शांति स्थापित हो सकती है। यही लेखिका का उद्देश्य है। अतः कहा जा सकता है कि यह एक उद्देश्य प्रधान उपन्यास है।

श्रीमती विमल वेद :

इनका 'ज्योति किरण' उपन्यास सामाजिक है इसमें दो परिवारों की कथा सम्मिलित है। एक और मध्यवर्ग का प्रतीक, रमानाथ है जो अपने माता, बहिन और भाई के भरण-पोषण के लिए नौकरी की तलाश में निकलता है। लेकिन धन के अभाव में उसे नौकरी भी नहीं मिलती। निर्धनता के कारण उसकी मां चल बसी, उसके घर के सब लोग भूखे दिन काटते हैं। दूसरी ओर तिवारी जी हैं, जो धनिक वर्ग का प्रतीक है। उनके लिए धन ही सर्वस्व है। उसकी प्राप्ति के लिए वे अपनी अनुचित की परवाह नहीं करता। यहाँ तक कि धन के लिए अपनी बड़ी पुत्री आशा को उपयोग मे लाने के लिए भी वह नहीं हिचकिचाता। उसका प्रयत्न यही रहा कि छोटी पुत्री उषा भी इसी काम में लगी रहे। लेकिन उषा को उसके माता के पवित्र संस्कार मिलने के कारण, वह इस घृणित मार्ग पर नहीं चलती। उषा तथा रमानाथ का प्रेम दिखाकर लेखिका ने इन दोनों परिवारों अर्थात् दोनों कथाओं के बीच संबंध स्थापित किया।

उषा, अभिजात्य वर्ग की होती हुई भी वह दया, सहृदयता, पवित्र आदर्श आदि गुणों से संपन्न हैं। वह रमानाथ से प्रेम करती है। फिर भी वह निस्पृह प्रेमिका ही है। माता के पावन संस्कार तथा अपनें पवित्र हृदय के कारण रमानाथ से प्रार्थना करती है, वह उसके स्थान उसकी बहिन को पत्नी के रूप मे ग्रहण कर उसका उद्धार करे। आशा उषा की बडी बहिन होकर

भी पिता के संस्कारों के कारण कुमार्ग मे चलने के लिए वाध्य हो गई। उषा की माता शांता देवी एक तिरस्कृत पत्नी के रूप में सामने आती है। इसी कारण वह अपना संपूर्ण प्यार उषा पर उंडेल देती है। रामनाथ की बहिन कांता एक स्नेहमयी युवती के रूप में सामने आती है। रमानाथ बादर्श युवक है फिर भी कुछ मानवोचित दुर्बलताएँ भी उसमें पायी जाती हैं। तिवारी धनिक वर्ग का प्रतिनिधि है जिसके लिए धन ही सर्वस्व है। इनके अतिरिक्त रणजीत, शर्मा, लीलावती अ दि गौण पात्र हैं जिनका विशेष रूप से चित्रण नहीं किया गया है।

उपन्यास का मुख्य उद्देश्य साधारण मध्यवर्ग जीवन की समस्याओं का यथार्थ-चित्रण करना रहा है। फिर भी आदर्श की ओर उनका ध्यान अधिक है। इसके लिए लेखिका ने उआ को आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। अंत में 'ज्योति-किरण' बनकर सबको आदर्श की दिशा में ले जाती है। दूसरी ओर निर्धनता तथा बेकारी की समस्या के बारे में भी लेखिका ने अधिक चर्चा की हैं। निर्धन वर्ग तथा अभिजात वर्ग के बीच की खाई को पाटने के लिए लेखिका रामनाथ तथा उषा के प्रेम का प्रसंग प्रस्तुत किया।

दूसरा उपन्यास 'अर्चना' में अर्चना धनी व्यक्ति दीनानाथ की एकमात्र पुत्री है। धन के द्वारा प्राप्त सभी सुख अर्चना केलिए प्राप्त हैं। फिर भी वह एक निर्धन तथा अपंग लेखक अरुण से प्रेम करती है। दीनानाथ जी प्रत्यक्ष रूप से व्यापार करते हैं, किंतु परोक्ष रूप से वे सरकार की आँखों में धूल झोंक कर निर्यात किये जानेवाले कच्चे माल में सोना छिपाकर विदेश भेजते रहते हैं। इस प्रकार अनुचित कार्य करके समाज में धन के कारण उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। साथ साथ वह अपने इकलौते पुत्र राजेंद्र को भी उसी राह पर ले जाने केलिए तत्पर रहता है। दीनानाथ जी का विचार रहा कि अर्चना का विवाह मंत्री श्री लाडली मोहन के पुत्र डाक्टर विनोद से हो ताकि उस में भी उनकी स्वार्थ की पूर्ति हो। इस प्रकार लगभग डाक्टर विनोद तथा अर्चना का विवाह निश्चित हो जाता है। किंतु संयोगवश विवाह के पूर्व ही विनोद से अर्चना अपनी प्रेम–कहानी सुना देती है। जिस से विवाह रुक जाता है और विनोद अर्चना को यह भी आश्वासन देता है कि उसका विवाह अरुण से करवायेगा, साथ साथ अरुण के पाँव का लंगडापन भी ठीक करवायेगा। परिस्थिति को जानकर पुत्री पर दीनानाथ इतने क्रुद्ध होते हैं कि वे अर्चना को पीटने में भी पीछे नहीं हटते। कुछ समय बीतने पर बंबई में उनके माल की चेकिंग होने से उनके कुकर्मों का भंडा फूट जाता है और पिता तथा पुत्र बंदी

बनाये जाते हैं। तभी दीनानाथ जी की आँखें खुलती हैं उसी समय पत्र द्वारा अर्चना से क्षमा याचना करता है।

इस में भी लेखिका ने आदर्शवाद को अपनाया है। अर्चना एक धनी व्यक्ति की इकलौती पुत्री है। सुख और ऐश्वर्य में पली अर्चना एक दिन कालेज के समारोह के लिए लेखक अरुण को आमंत्रित करने जाती और उसके रूप-लावण्य से इतनी प्रभावित हो जाती कि तुरंत उसके प्रति आकर्षित हो जाती है। उस आवेश में उसे लंगडापन भी नहीं खटकता। फिर भी वह अपने प्रेम को अपने तक ही सीमित रखती है क्योंकि उसके पिता एक धनी युवक विनोद से उसका विवाह पक्का कर चुके थे। यह उसका सौभाग्य था कि विनोद विवाह से पहले ही उसकी मानसिक स्थिति से अवगत होकर अरुण को उसे सौंपने का वादा करता है। इस प्रकार अर्चना तथा विनोद आदर्श पात्र के रूप में चित्रित किये गये हैं।

अर्चना की भाभी रमा भारतीय आदर्श पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित की गई है। उसे सदा पति से तिरस्कार ही प्राप्त हुआ फिर भी वह पति के प्रति आदर तथा मातृहीना अर्चना को अपनी बेटी की तरह ही पालती है। अरुण की माता के व्यक्तित्व में लेखिका ने आदर्श माता की सृष्टि की है। वह स्वयं कष्ट सह कर भी अंत तक अपने पुत्र की सुविधाओं के प्रति ही जागरुक रहती है। संपूर्ण उपन्यास में प्रभा तथा अर्चना का भाव सराहनीय रहा है।

लेखिका ने नारी पात्रों में कर्तव्यपरायणता, कष्ट सहिष्णुता, सेवा परायणता आदि विशेषताओं का समावेश किया है।

विनोद पहले कभी स्त्रियों को खिलवाड़ के रूप में मानता आया है जैसे लेखिका ने एक स्थान स्वयं कहा है।[1] लेकिन जो त्याग उसने अर्चना केलिए किया वह कोई साधारण युवक नहीं कर सकता। एक जगह विनोद की प्रशंसा अर्चना से उसकी भाभी यों करती हैं–"तुझ में या मुझ में क्या रखा है अची। मनुष्यता तो विनोद ने दिखाई है। उसके साहस को हमें भी तो अपनाना चाहिए।"[2] अर्चना, अरुण से प्रेम भी करती है फिर भी विनोद के बिना उसे पाने में असमर्थ ही रह जाती है।

१, अर्चना – पृष्ठ : १०३

२. अर्चना – पृष्ठ : ११८

दीनानाथ पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि है जिसका आशय किसी न किसी रूप में धनार्जन करना ही है। वह अपने स्वार्थ केलिए किसी भी प्रकार के काम को करने में पीछे नहीं हटता। एक जगह इसी बात को वह अपनी बेटी अर्चो से कहता है-"जानती हो बेटी, अपने स्वार्थ केलिए मनुष्य किसी भी तरह का काम करने में संकोच नहीं किया करता।[1] उनका पुत्र राजेंद्र भी ठीक उसी प्रकार का है जैसे उसका पिता। वह अपनी सुसंस्कृत पत्नी की उपेक्षा करता है। वह नारी को केवल भोग्या समझता है। राजेंद्र के गुणों का उल्लेख स्वयं लेखिका इस प्रकार करती है – "धनी पिता का सत्ताधारी पुत्र राजेंद्र स्वयं एक सत्ता था और सत्ता ने आज तक किसी का मूल्य नहीं समझा। नारी को वह सदा से इतनी सस्ती खिलवाड समझता आया था कि रमा का महत्व वह समझता भी कैसे ?"[2]

लेखिका का मुख्य उद्देश्य यही रहा कि इस जीवन में मानव केवल धन केलिए ही न जिये बल्कि उस में स्नेह, ममता, सदाचरण आदि गुणों का भी समावेश हो। पूँजीपति लोग केवल धन को ही अपना सब कुछ समझते हैं उन में स्वार्थ इतना अधिक होता है कि वे नारी को अति निकृष्ट समझते हैं। लेखिका ने रमा के माध्यम से नारी की दयनीय अवस्था का चित्रण किया हैं। अर्चना अपने भाई के व्यवहार से चिढकर उसके बारे में सोचने लगती है कि "घर में सुंदर व सुशील पत्नी के होते हुए भी वह जो बाजारु औरतों के पीछे भागता फिरता था – निर्लज्जता की हद थी। पिता सामने खडा था और पुत्र पराई औरत की कमर में हाथ डाले चला जा रहा था।"[3] उक्त कथन से पूँजीपति लोगों की मनोवृत्तियों का तथा नारियों की दयनीय स्थिति का पता लगता हैं। धन की प्राप्ति से किस तरह लोग बाह्य आडंबरों में सुख पाने की कोशिश करते हैं उसका उदाहरण राजेंद्र तथा उसका पिता हैं।

लेखिका आदर्श कथानक के प्रति इतनी सजग थी कि उनका कथानक, पात्र, संवाद आदि सब इस आदर्श की ओर ही बढते दृष्टिगोचर होते हैं जिस से कथानक में यथार्थता की मात्रा कुछ न्यून हो गयी।

लेखिका का एक और सामाजिक उपन्यास है असली हीरा–नकली हीरा।

यह उपन्यास भी पूंजीपति की पुत्री तथा निर्धन वर्ग के पुत्र के बीच की सफल प्रेम कथा है। अपर्णा मिल मालिक नवलराय वर्मा की बडी बेटी है।

---

१. अर्चना – पृष्ठ ६९
२. अर्चना – पृष्ठ : ४२
३. अर्चना – पृष्ठ : ६४

नवलराय वर्मा धनिक वर्ग का प्रतिनिधि है फिर भी उच्च–नीच का ख्याल रखता है। लेकिन उनकी पत्नी सुलोचना धन को ही सब कुछ मानती। इसी कारण नवलराय वर्मा मिल का सारा काम बेटी तथा पत्नी के हाथ सौंपकर खुद इस धंधों से अलग होते हैं। पहले अपर्णा ने किशोर खन्ना को अपने भावी साथी के रूप में चुना, जो एक धनी पुरुष का पुत्र था, किंतु धीरे धीरे वह उसके कुसंस्कारों को जानने के कारण उससे संबंध तोड लेती है। फिर लेखक तथा पत्रकार रमानाथ को अपना जीवन साथी बनाने का निश्चय करती है। पहले वह रमानाथ से घृणा करती थी, क्योंकि वह उनके मिलके मजदूरों का पक्ष लेकर उनके न्याय के लिए लडता था। लेकिन बाद में घटित होने वाली अनेक घटनाओं से अपर्णा जान लेती है कि रामनाथ निस्वार्थ सेवा करने वाला एक आदर्श पुरुष है। और किशोर खन्ना दंभी, तथा स्वार्थी है। वर्मा जी अपनी बेटी के इस प्रकार के भाव परिवर्तन से बहुत खुश हुए क्योंकि वे प्रारंभ से ही रामनाथ के सच्चे व्यक्तित्व को पहचान सके। इस प्रकार के परिवर्तन से उसकी माता को बडा खेद पहुँचा। क्योंकि वे कृत्रिम तडक–भडक को ही अधिक पसंद करती थीं। उपर्युक्त मुख्य कथा के साथ साथ श्रमिक सूरज और उसकी पत्नी पन्ना की गौण कथा भी साथ साथ चलती है। उन दोनों के बीच परस्पर स्नेह, कृत्रिम क्रोध, मार-पीट, मीठी फटकार, आदि विषयों से कथा में एक प्रकार की रोचकता आ गई है। मुख्य कथा के साथ साथ इस प्रासंगिक कथा के मेल से उपन्यास में शिथिलता नहीं आने पाई है, बल्कि उसकी रोचकता तथा प्रभाव में चार चांद लग जाते हैं।

इस उपन्यास में मुख्य स्त्री पात्रों में अपर्णा का स्थान प्रमुख है। अपर्णा को कोमल चित्त की स्वाभिमानी स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। पहले तो उसमें धन के कारण अहं पैदा होता है जिससे मनुष्यों को परखने की शक्ति उसमें नहीं रहती। बाद में धीरे धीरे लोगों के मनस्तत्व को जानने के कारण असली तथा नकली लोगों को पहचान लेती है। रामनाथ की बहिन किरण के स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व का विशद चित्रण लेखिका ने किया है। अपर्णा की छोटी बहिन वंदना की बाल–सुलभ प्रवृत्तियों का अंकन करने में भी लेखिका को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

प्रस्तुत उपन्यास में रामनाथ और किशोर के चरित्रों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्री वर्मा सुदृढ व्यक्तित्व तथा विवेकशील उद्योग-पति हैं। उनकी पत्नी सुलोचना उनके गुणों को न समझने के कारण उन्हें आलसी एवं लापरवाही की संज्ञा देती है, जो वास्तव में सच नहीं है।

इस उपन्यास में लेखिका का उद्देश्य है कि व्यक्ति के चरित्र का मूल्यांकन उनके धन तथा वैभव के आधार पर न होकर अंतर्मत की प्रवृत्तियों के विश्लेषण द्वारा किया जाना चाहिए। इसी उद्देश्य के स्पष्टीकरण में लेखिका ने किशोर और रामनाथ के चरित्रों को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करके अंत में किशोर के दंभ तथा गर्वीले व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हुए, रामनाथ की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है। उपन्यास का शीर्षक भी उक्त उद्देश्य का ही संकेत करता है।

कुँवरानी तारादेवी :

लेखिका का 'जीवन दान' एक समस्या प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थितियों की चर्चा की गई है। इस उपन्यास में चार मुख्य पात्र हैं–बृजपुर के जमींदार का पुत्र प्रभात, उसकी मौसी की पुत्री मुरला, रामा काकी द्वारा पालित मातृ-हीन निर्धन मनहर, मंदिर की देवदासी महाश्वेता। ये चारों बाल-सहचर हैं, किन्तु यौवन-काल में सभी का जीवन कष्टों में ही बीतता है। प्रभात और मुरला परस्पर प्रेम-सूत्र में बंध जाते, किन्तु प्रभात के पिता के हठ के कारण विवाह नहीं हो पाता। जब प्रभात डाक्टरी पढने इंग्लैण्ड जाता है तब वे मुरला का विवाह बसीपुर के जमींदार से करा देते हैं। मनहर, प्रभात को मुरला के विवाह की सूचना नहीं देता। क्योंकि वह स्वयं मुरला को चहाता है। मुरला की विवाह की सूचना जब प्रभात पाता है तो वह निराश होकर आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाता है। लेकिन डा. जानसन उसके प्राणों की रक्षा करता है। उसके प्राण तो बच जाते हैं लेकिन वह पागल हो जाता है। तब उसकी सहपाठिनी शिवाला उसकी सेवा करने लगती है। उधर रामा काकी की भांजी रेवा अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरांत उसके पास रहने लगती है और मनहर को दिल से चाहने लगती है। किन्तु मुरला के वियोग से विकल मनहर उसके प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाता। वह गरीबों की सेवा में ही आनंद पाता है, उसके निमित्त धन एकत्रित करने के लिए जुआ खेलने लगता है। जुआ खेलकर जितना धन इकट्ठा किया जाता उससे एक होटल खोलता है और उन्हीं पैसों से गरीबों की सेवा करने लगता है। इस काम के लिए जितने पैसों की कमी होती है उसके लिए महाश्वेता अपने आभूषण बेचकर मनहर को धन देती है। देवदासी होने के नाते उसका यह कृत्य अपमानित माना जाता हैं जिसके लिए उसे जमींदार तथा पुजारी के क्रोध का शिकार बनना पड़ता है। फलतः वह मंदिर को त्याग कर मनहर

के पास भगिनी के रूप में रहने लगती है। समाज के डर से मनहर, महाश्वेता को लेकर गोआ भाग जाता है। महाश्वेता, प्रभात से प्रेम करने पर भी देव-दासी होने के कारण वह अपने प्रेम को अपने अंदर ही छिपा लेती है। गोआ में मनहर का परिचय एक नर्तकी मौली से होता है जो मनहर से प्रेम करने लगती है। लेकिन मनहर के स्वदेश लौटने पर विरह के कारण वह प्राण त्याग देती है। मुरला का पति प्रेम का अभाव नहीं है और एक सुगृहस्थिनी के रूप में घर को भी संभालती है। फिर भी प्रभात तथा मनहर के स्थायी जीवन का उत्तरदायी स्वयं को मानकर, अंदर ही अंदर कुढने लगती है फलतः क्षय का शिकार बनकर इहलीला समाप्त कर लेती है। इस दुखद समाचार से प्रभात प्रायः फिर से पागल हो जाता है, किन्तु शिवाला फिर से उसकी सेवा सुश्रूषा करती है। इसी प्रकार रेवा भी मनहर की मन की स्थिति को जानकर उसकी सेवा में लग जाती है।

इस मुख्य कथा के साथ ताराचंद, बिज्जी और वासुदेव की प्रासंगिक कथाओं का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कथानक में परिस्थितियों की विविधता की ओर अधिक ध्यान दिया गया है । सब पात्रों के विविधरूपी जीवन चरित्र का अंकन कर लेखिका ने कथानक में रोचकता प्रदान की है। कथा में वासुदेव की प्रासंगिक कथा एक प्रकार से अनावश्यक ही प्रतीत होता है। मुरला के प्रति वासुदेव की कुदृष्टि मुरला द्वारा उसे प्रभात की सहायता से नौका-विहार के लिए जाना और वहाँ उसे नदी में डुबो देना महत्वपूर्ण हैं। उन घटनाओं से मुख्य कथा में किसी प्रकार का विशेष महत्व नहीं होता।

प्रस्तुत उपन्यास में कथा के सहज विकास की अपेक्षा चरित्र-व्यंजना पर अधिक बल दिया गया है। इस उपन्यास में युवक-युवत्तियों की प्रेमकथाओं का उल्लेख है, फिर भी वे अपने असफल प्रेम के लिए दुखी न होकर कर्तव्य-पथ में आगे बढे हैं। पुरुष पात्रों में प्रभात और मनहर का चरित्र प्रमुख हैं। उन दोनों का मुरला के प्रति अनन्य प्रेम है। उसका विवाह अन्यत्र हो जाना दोनों ही सह नहीं पाते। प्रभात तो प्रायः पागल सा हो जाता है। स्वस्थ होने पर भी वह मानसिक वेदना से मुक्त नहीं हो पाता और न ही उसकी आत्मा मुरला के पति से भेंट करने की उसे अनुमति देती है। प्रभात की मनः स्थिति का वर्णन इस कथन मे स्पष्ट दीखता है–'लोग कहते हैं, प्रभात सुंदर, विद्वान एवं प्रतिभाशाली नवयुवक है, पर मुरला ने इसका जीवन बिगड़ा कर दिया।'[1]

१, जीवनदान – पृष्ठ : २७३

मनहर का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक महत्व रखता है। क्योंकि वह मुरला के विवाह के उपरांत अपने को जन-सेवा में रत रखा। अपना एकमात्र अपराध जो कि मुरला का विवाह का प्रस्ताव प्रभात को सूचना न देने का, उसे जीवन भर पाश्चात्ताप करने का कारण बना और इसी से उसका व्यक्तित्व निरंतर विकासोन्मुख रह सका। महाश्वेता जो मनहर को भगिनी के रूप में प्रेम करती थी, उसके कथानक द्वारा मनहर का व्यक्तित्व प्रकट होता है– 'यही वह शराबी, जुआरी, आवारा मनहर है। अपने को मिटाकर दूसरों को बनानेवाला।'[1]

पुरुष पात्रों की अन्य प्रवृत्तियों में प्रभात के पिता का हट तथा मुरला के पति की रसिकता जमींदार-वर्ग के अनुरूप है। स्त्री पात्रों में मुरला महाश्वेता, शिवाला, मौली और रेवा आदि आत्मोत्सर्ग करनेवाली प्रेममयी नारियाँ हैं। मुरला ने प्रभात के पिता को प्रसन्न रखने के लिए बासीपुर जमींदार से विवाह किया। महाश्वेता, प्रभात से प्रेम करते हुए भी देवदासी बन गई और मनहर को अपने कर्तव्य-पथ पर आगे बढाने के लिए अपने गहनें तक दे दी। और उन आभूषणों को मंदिर में देने के लिए फिल्म में काम करके उन आभूषणों को वापिस करती है। बाल-विधवा शिवाली ने प्रभात को कष्ट में देख कर उसकी सदैव सेवा-सुश्रूषा की। मौली एक सामान्य नर्तकी होती हुई भी मनहर के प्रति अनुरक्त होकर उसके सुख की आकांक्षा में स्वयं अपने जीवन का उत्सर्ग करती है। रेवा उक्त सभी स्त्री पात्रों से कुछ विशेष क्रांतिकारी विचारोंवाली नारी है, जो मनहर से प्रेम करती हुई उसे स्वस्थ राह पर लाने का भरसक प्रयास करती है। रामा काकी तथा प्रभात की माता स्नेहमयी नारियाँ है। वस्तुतः नारी पात्रों के चरित्र में लेखिका ने त्याग तथा निस्वार्थ सेवा का समावेश प्रस्तुत किया है।

लेखिका ने इस उपन्यास में मार्क्सवादी विचारधारा को अधिक प्रामुख्यता दी है। जिस से विदित होता है कि वे साम्यवाद से प्रभावित हैं। लेखिका प्रगतिवादी विचारधारा के प्रति अधिक सजग रही हैं। फलतः मनहर रेवा, महाश्वेता आदि प्रमुख पात्रों के द्वारा यत्र-तत्र क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त करवाया।[2]

'दाल-रोटी' को ही जीवन का लक्ष्य मानकर उन्होंने परोपकार तथा देश-सेवा को ही जीवन का प्रमुख लक्ष्य माना है।[3] लेखिका का यह भी

---

१. जीवनदान – पृष्ठ : १८५ २. जीवनदान – पृष्ठ : ४३
३. जीवनदान – पृष्ठ : ४०

उद्देश्य इस उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है कि प्रेम की तुलना में कर्तव्य की ही अधिक महत्ता प्रदान करना उचित है।[1] इस उद्देश्य के प्रतिपादन के निमित्त नारी को भी पुरुष की भांति जीवन-यापन करना आवश्यक सिद्ध किया है।[2] इसमें जन सेवा को ही सच्ची ईश्वर-पूजा माना गया है। इसका प्रमाण महाश्वेता के इस कथन से स्पष्ट होता है–"मेरा मन कहता है, भगवान के ऊपर उत्सर्ग होने का अर्थ है उसके प्राणियों पर उत्सर्ग हो जाना, देश पर मर मिटना।"[3] इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के चित्रण के कारण यह कृति सफल मानी जा सकती है।

सत्यावतीदेवी भैया 'उषा' :

'मृदुला' की कथा सामाजिक इतिवृत्त प्रधान है। कमलाकांत अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के उपरांत सुनंदा से विवाह करता है। लेकिन उसकी सप्तवर्षीय बालिका मृदुला को विमाता द्वारा अनेक कष्ट सहने पडते हैं। मृदुला, अपने पडोस में रहने वाले भाई–बहन वृजेंद्र एवं विभा के स्नेहपूर्ण व्यवहार द्वारा शांति पाती रहती है लेकिन उसकी विमाता इस स्नेह से भी जलती रहती है। यौवन में वृजेंद्र और मृदुला प्रेम–सूत्र में बंध जाते हैं। लेकिन विजातीय होने के कारण उस प्रेम को अपने तक ही सीमित रखते हैं। मृदुला का विवाह सुनंदा अपने भतीजे अरुण से करवाना चाहती है लेकिन मृदुला उसे भ्रातृवत् मानकर इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। फिर उसके माता-पिता उसका विवाह सेठ रमाकांत से निश्चित करते हैं, किंतु मृदुला लग्न-मंडप में अपने का किसी दूसरे की वाग्दत्ता बताकर चली जाती है। इस घटना के उपरांत उसे, अपने माता-पिता से कई कष्ट सहने पडते हैं। उस समय वह गृह–त्याग कर स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन करती हुई अनेक कष्टों एवं विषम परिस्थितियों का सामना धैर्यपूर्वक करती है। किंतु अंत में अरुण और विभा के प्रयत्न से मृदुला और वृजेंद्र से विवाह हो जाता है। कथानक में घटनाओं का बाहुल्य है। प्रायः सभी घटनायें चरित्र को निखारने केलिए ही आयोजित हुई हैं। मृदुला कई कष्टों को सहती है। वह वृजेंद्र से एक निष्ठ प्रेम करती है, इसी कारण उसे प्राप्त करने केलिए जीवन में सभी विषमताओं का सामना करती है। अंत में सब कष्टों पर विजय पाकर अपने लक्ष्य को पा लेती है। वृजेंद्र भी दृढ चरित्रवान् युवक है। वह मृदुला से निश्चल प्रेम करने के कारण ही, जीवन

---

१. जीवनदान – पृष्ठ : ५४ २. जीवनदान – पृष्ठ : २१७

३. वही ९४

में किसी और से विवाह नहीं कर पाता है। अंत में अपने माता-पिता को विजातीय विवाह के लिए राजी कर मृदुला से विवाह कर लेता है। अरुण का त्यागमय आदर्श चरित्र, विभा का स्नेहशील हृदय उल्लेखनीय है। लेखिका ने जितना ध्यान कथानक के विकास में रखा है उतना चरित्र–चित्रण की ओर नहीं। पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व अथवा संघर्षशील स्थितियों के प्रति लेखिका ने ध्यान नहीं दिया है और चारित्रिक विशेषताओं को व्यक्त करने केलिए मुख्य रूप से कथोपकथन का सहारा लिया है। लेकिन भावुक संवादों के द्वारा अतिशयोक्ति पूर्ण चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया है जैसे अरुण, वृजेंद्र से, मृदुला के चारित्रिक विशेषताओं का गुणगान करता है। जैसे – "इंद्र तुम पुरुष होकर इतना कातर होते हो। मृदुला के विषय में कैसी भी चिंता करना अपनी कमजोरी है। वह देवी है, इस से भी भयानक कष्ट झेल लेगी। तुम्हारे लिये इंद्र। मैंने मृदुला का तेज, उसकी दृढता देखी है। विवाह के दिन का वह साहस मैं कभी न भूल सकूंगा भाई। मालूम होता है वह श्रापभ्रष्ट देवकन्या है कोई। वह कलियुग की दूसरी सावित्री है इंद्र।"[1]

आलोच्य उपन्यास में वर्तमान समाज की पारिवारिक समस्याओं का विविधतापूर्ण चित्रण हुआ है। वर्णांतर प्रेम के मार्ग में आनेवाली अनेक समस्याओं का चित्रण, दहेज के अभाव में अनमेल विवाह की संभावनायें, स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन करनेवाली नारी के विषय में मिथ्या लोकोपवाद, विमाता का कटु व्यवहार आदि कई तथ्यों का लेखिका ने इस उपन्यास में विशद वर्णन किया है। मृदुला के चरित्र में दृढता, कष्ट-सहिष्णुता एवं शक्ति का समन्वय करके लेखिका ने भारतीय नारी के गौरवपूर्ण चरित्र को मूर्त रूप प्रदान किया है। यही इस उपन्यास का प्रधान लक्ष्य परिलक्षित होता है।

'क्षितिज के पार' इनका दूसरा उपन्यास है। लेखिका ने इसमें हिंदू-विधवा की पारिवारिक एवं सामाजिक दुर्दशा का चित्रण प्रस्तुत किया है।

अनुमति, एक धनी परिवार की इकलौती पुत्री है और उसका पति प्रवीण भी संपन्न जमींदार घराने के ही हैं। दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में उसके माता–पिता की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद पति की अकाल मृत्यु भी हो जाती है। इसी कारण सास के अत्याचारों को सहन कर सकने के कारण अनुमति गृह त्याग देती है और जीविकोपार्जन के लिए दर दर भटकती है। वह

१. मृदुला – पृष्ठ : १६०–१६१

एक विधवाश्रम में आश्रम लेने जाती है तो वहाँ के संचालक तथा धनी सेठ द्वारा उसका सतीत्व नष्ट होते होते बचता है। सभी विपत्तियों का सामना करते करत अनुमति का चरित्र उज्ज्वल बनता है। उपन्यास के अंत में अपनी सखी ध्वजा के पुत्र को अग्निकांड से रक्षा करते समय अपने प्राणों की आहुति दे देती है।

यह उपन्यास, केवल अनुमति के चरित्र को आदर्शमय रूप में चित्रित करने के लिये रचा गया है, ऐसा प्रतीत होता है। इसी कारण सभी घटनाओं एवं पात्रों का सृजन किया गया है। प्रवीण की अकाल मृत्यु भी इसी कारण दिखायी गयी है कि वैधव्य के कष्टों में अनुमति की चारित्रिक दृढता का परिचय मिल सके।

यह एक चरित्रप्रधान उपन्यास है। अनुमति का चरित्र केवल आदर्श मात्र नहीं है। उसमें भी नारी–सुलभ दुर्बलतायें पायी जाती हैं। जब वह नर्स के रूप में डाक्टर निरंजन के पास कार्य करती रहती है तो संयमशील डा. निरंजन के समक्ष किंचित चारित्रिक दुर्बलता का शिकार बनती है। इस घटना द्वारा लेखिका ने उसे दैवी गुणों से ही युक्त न दिखाकर, साधारण मानवी के रूप में भी चित्रित किया है। फिर भी संयम और दमन द्वारा अपनी दुर्बलताओं पर अंकुश रखनेवाली अनुमति निश्चय ही आदर्श नारी है।

प्रवीण, ध्वजा और उसके पति समीर, डा. निरंजन, अनुमति के आश्रयदाता कृषक राधोबा, गुप्ता परिवार के सदस्य आदि पात्र उदात्त गुणों से युक्त हैं। दूसरी ओर अनुमति की सास, देवर दीपक, विधवाश्रम के संचालक आदि पात्रों में दुर्गुणों का समावेश है। चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने में लेखिका ने संक्षिप्त एवं सारगर्भित संवादों का सहारा लिया है। इस दृष्टि से अनुमति और ध्वजा के संवाद विशेष रोचक बन पडे हैं।[1]

आलोच्य कृति का उद्देश्य विधवा जीवन की दयनीय दशा का वर्णन करना ही है। उसके साथ साथ सास का अहंकारपूर्ण व्यवहार, पुरुषों की कामलोलुपता, आदि पर भी यथेष्ट रूप से लेखिका ने प्रकाश डालने की चेष्टा की है। और अनुमति का आदर्शपूर्ण चित्रण उपस्थित करके यही सिद्ध किया है कि सभी विधवाओं को इसी प्रकार का आदर्शमय जीवन व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है।

---

१. क्षितिज के पार – पृष्ठ : ४-६, ७९-८०, ८६-८८

सुषमा भाटी :

इनके 'गेट कीपर' में वासना और प्रेम के अंतर को स्पष्ट कर प्रेम को ही वरेण्य प्रमाणित किया गया है। उपन्यास की कथा पूजा, दीप्ति, यामिनी, दलजीत आदि छात्र-छात्राओं के समक्ष गेटकीपर दीनूदादा के द्वारा प्रस्तुत की गयी उसकी आत्मकथा है। अतः उपन्यास का केंद्र देवेंद्र (दीनू दादा) की जीवनी है। इस कथा के अतिरिक्त यत्र-तत्र उक्त छात्राओं के संवादों को भी स्थान दिया गया है। उपन्यास की कथा श्रृंखला निम्न लिखित घटनाओं के द्वारा विकसित होती है। देवेंद्र और नयना का प्रेम, नीरज द्वारा छलपूर्वक देवेंद्र को जेल भिजवाने का वर्णन, असहाय नयना से नीरज का विवाह करना, जेल से लौटकर निराश देवेंद्र मद्यपान और वेश्यागमन का शिकार होना नीरज की उपेक्षा से आहत होकर नयना, देवेंद्र से मिलने की आकांक्षा से वेश्या वृत्ति को अपनाना, आकाँक्षा की पूर्ति होने पर देवेंद्र के समक्ष इहलीला को समाप्त करना आदि घटनाओं को उपन्यास में स्थान दिया गया है। इसके साथ अर्चना, भारती, और बुलबुल को नीरज अपनी वासना का शिकार बनाता है। इस से संबंधित घटनाओं को आलोच्य उपन्यास में गौण स्थान है।

देवेंद्र पहले भावुक एवं आदर्शवादी युवक है। लेकिन नयना को पाने में विफल होने पर मद्य एवं वेश्यालोलुप बन जाता है। नयना, देवेंद्र से प्यार करती हुई भी अंत में उसे पाने स्वयं वेश्या हो जाती है। उपन्यास में पात्रों की बहुलता होने के कारण, सभी पात्रों का सम्यक चारित्रिक विकास दिखाने में लेखिका असमर्थ रही है। सभी पात्रों के जीवन में संघर्ष, दुख आदि का समान रूप दर्शित किया गया हैं। दूसरी ओर वेश्यागृह से संबद्ध पात्रों जैसे अमीर बानु, बेगम आरा, देवेंद्र द्वारा जीवन के मनोभावों का चित्रण अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक कुशलता से प्रस्तुत किया गया हैं।[1]

विवेच्य उपन्यास में बलात्कार, हत्या, व्यभिचार, और वेश्यावृत्ति आदि समकालीन नारी समस्याओं पर विशद प्रकाश डाला गया है। नीरज बुलबुल से बलात्कार करता है, अंत में उसकी हत्या कर देता है। कई लडकियों को व्यभिचारवृत्ति अपनाने को नीरज बाध्य करता है। इन समस्याओं की अपेक्षा वेश्याओं तथा वेश्यालयों का अति-यथार्थ चित्रण लेखिका ने इस कृति में प्रस्तुत किया है। इस चित्रण में लेखिका ने अश्लील घटनाचित्रों का भी मार्मिक वर्णन

---

१. गेट कीपर – पृष्ठ : २२७–२२८, ३०८–३०९

किया है। जैसे नीरज द्वारा बुलबुल का शीलभंग करने और अमीर बानु द्वारा देवेंद्र के प्रति आत्मसमर्पण करने के दृश्य ऐसे ही घटना-चित्र हैं।[1]

आलोच्य उपन्यास में समाज की कुरितियों तथा अत्याचारों का उल्लेख कर, परोक्ष रूप से सदाचार के महत्व का गान करना दृष्टिगोचर होता है।

'ममता' उपन्यास लेखिका का दूसरा सामाजिक उपन्यास है। इस में लेखिका ने घटना-बाहुल्य का आश्रय लेकर नायक-नायिकाओं का प्रेम, विरह एवं पुनर्मिलन की कथा अंकित है।

इसमें पंकज और शशि एक ही कॉलेज के विद्यार्थी है। धीरे-धीरे उन दोनों के मध्य प्रेम-भावना जागृत होती है। पंकज का सहपाठी अवधेश ईर्ष्या-वश शशि पर चारित्रिक पतन का खुला आरोप करने लगता है। फलस्वरूप पंकज, शशि से विमुख हो जाता है। एक दिन शशि की विधवा माता शारदा, एक दुर्घटना से मूर्छित पंकज को घर लाती है। उसे देखते ही उसकी इच्छा होती है कि अपने मृत पुत्र के स्थान उसे पुत्र तुल्य माने। लेकिन माता पर यह रहस्य खुल ही जाता है कि वह शशि का पूर्व प्रेमी है। पंकज से मिलते ही दोनों के बीच उत्पन्न वैमनस्य दूर हो जाता है और उन दोनों का विवाह संपन्न हो जाता है। शारदा, पंकज के दोस्त हेमंत को गोद लेती है। पंकज की माता मरते समय शैलजा को पुत्रवधु मानती आयी, वही हेमंत की पत्नी बन जाती है।

आलोच्य कृति में पंकज, शशि, के अतिरिक्त हेमंत, शैलजा, शारदा, सिंधु जो रिश्ते की पंकज की बहन लगती है, पंकज का भाई भूषण, पंकज की भाभी लीला, अवधेश आदि कई गौण पात्र हैं जिन्होंने कथानक के विकास में यथोचित योग प्रदान किया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वतंत्ररूप से न होकर परिपार्श्व में ही किया गया है। अत: कहा जा सकता है कि केवल स्थूल रूप से पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

आलोच्य उपन्यास केवल चमत्कार और मनोरंजन के लिए ही हुआ, ऐसा भी दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण विशेष रूप से सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश नहीं डाला गया है। इस कारण यह उपन्यास वस्तुपक्ष अथवा उद्देश्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास नहीं माना जा सकता।

---

१. गेट कीपर – पृष्ठ : १२८–१७५,

श्रीमती सुदेश रश्मि :

'एक ही रास्ता' लेखिका द्वारा रचित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस में बंगाल के नवाब सरफराज जो नवाब सिराजुद्दौला का पुत्र है, के पतन एवं अलीवर्दी के उत्थान की ऐतिहासिक घटनायें अंकित हैं। सरफराज की विलासप्रियता के कारण जनता में असंतोष, कासिम अली और असर अली की गद्दारी, सरफराज द्वारा जगतसेठ का अपमानित होना और प्रतिशोध लेने की भावना से अपना धन दे कर अलीवर्दी को आक्रमण के लिए आमंत्रित करना आदि ऐतिहासिक घटनायें, पृष्ठभूमि के रूप में यथास्थान उल्लेखित हुई हैं। इस के अतिरिक्त लेखिका ने कल्पना के समावेश द्वारा कथानक में रोचकता लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से जगतसेठ की पुत्र-वधू रेखा का चित्रण उल्लेखनीय है। जब सरफराज रेखा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपने वजीर कासिम के सहयोग से उसे बंदी बनाता है तब रेखा के ससुर, पति तथा अन्य हिंदू भीरु होकर रह जाते हैं। लेकिन उसकी वीरता एवं निर्भीकता पर मुग्ध होकर नवाब श्रद्धा भाव से उसे मुक्त कर देता है। रेखा पुनः जगतसेठ के घर में प्रविष्ठ होना चाहती है, किंतु उसे भ्रष्टा कह कर त्याग दिया जाता है। इस पर रेखा उन्हें शाप देती है कि उनका धन-मान पठानों द्वारा पददलित होगा। कुछ समय पश्चात् जब सरफराज से गद्दारी करने के अपराध में उन्हें कारावद्ध कर दिया जाता है तब रेखा का अभिशाप पूर्ण होता है। रेखा एक दस्यु दल के सहयोग से सेना का संगठन कर सरफराज से प्रतिशोध लेती है। जब विजय के पुत्र कुमार के ओजस्वी शब्दों एवं रण-कौशल के प्रभाव से सरफराज की विजय एवं अलीवर्दी की पराजय निश्चित थी, ठीक उसी समय रेखा ने दल-बल-सहित आक्रमण करके सरफराज को परास्त किया।

रेखा आलोच्य उपन्यास का मुख्य केंद्र रही है। लेखिका ने उसके व्यक्तित्व में शौर्य, निर्भिकता, सतीत्व, सहनशीलता जैसे हिंदू-वीरांगना के गुणों का समावेश किया। उपन्यास की दूसरी मुख्य पात्रा है पार्वती जो सरफ-राज के एक सामान्य पदाधिकारी की पुत्री है। जब सरफराज, पार्वती को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहा तो पार्वती उससे पहले ही अपने वक्ष में तलवार भोंक लेती है। लेकिन उसका चरित्र अत्यंत गौण है। इनके अतिरिक्त हुस्न बानु, नर्तकी जुबेदा आदि पात्राओं का भी गौण उल्लेख हुआ है जिस में वेश्या हुस्नबानु का अत्यंत प्रभावित चरित्र है। जब वह

कासिम से प्रेम करने लगती है तो वह अपने पेशे को स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार त्याग कर उसी के ध्यान में जीवित रहना पसंद करती है ।

पुरुष पात्रों में सर्वाधिक गौरवपूर्ण चरित्र विजय का है जो पहले सरफराज का अंगरक्षक रहकर में सेनापति बनता है । विजय का पुत्र कुमार भी पिता की तरह वीर एवं कर्तव्य-निष्ठ है । सरफराज, कासिम के संपर्क में विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, लेकिन बाद में रेखा, विजय तथा कुमार की सत्संगति में उसका सारा कालुष्य मानो धुल जाता है । जयंत रेखा का पति है । फिर भी उसमें पुरुषोचित पौरुष तथा वीरता का अभाव है । जब उसके सामने ही उसकी पत्नी को बंदी बनाया जाता है तो भी वह चुप ही रहता है । उसके बाद रेखा अपने सतीत्व की रक्षा कर अपने ही घर लौट आती है तो उसका पति अहं के कारण उसे आश्रय देने से इनकार कर देता है । कासिम, अमरअली, जगत्सेठ आदि पात्रों की गद्दारी का मार्मिक चित्रण लेखिका ने इतिहास के अनुरूप ही किया है ।

लेखिका का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि बंगाल के इतिहास के कुछ विशिष्ट पृष्ठों को उपन्यास के तौर पर पाठकों के सामने रखा जाय । इसके साथ साथ राजपूत वीरों एवं वीरांगनाओं के वीर्योचित कार्यों का उल्लेख किया जा सके, जिस केलिए रेखा, पार्वती, विजयकुमार आदि पात्रों की सृष्टि की गयी है । अपने उद्देश्य में लेखिका को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है ।

श्रीमती शिवरानी विश्नोई :

'भीगी पलकें' आपका एक पारिवारिक उपन्यास है । सुषमा और नीरजा क्रमश: मध्यम तथा धनी परिवार की कन्यायें रही हैं । किंतु दोनों में घनिष्ट स्नेह पाया जाता था । संयोगवश एक धनी परिवार का इकलौता पुत्र विजय दोनों केलिए भावी वर के रूप में प्रकट हुआ । विजय की माता अधिक धन पाने की इच्छा में नीरजा को ही अपनी बहू बनाना चाहती है । फिर भी विजय के हठ के कारण उसे सुषमा को ही अपनी बहू बनाना पडता है । फिर भी पुत्र से कहे बिना वह सुषमा के पिता मुंशी जी से २० हजार रुपये दहेज में मांगती, मुंशी जी ने अपनी कन्या को सुखी रखने की इच्छा से मकान गिरवी रखकर दहेज की पूर्ति करता है । किंतु इसी दहेज लोलुपता से हो विजय के दांपत्य जीवन में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । सुषमा अपने सभी संस्कारों को त्यागकर विजय को अपना क्रीत दास समझती और उधर नीरजा विजय को

सच्चे दिल से प्रेम करने लगती है। अत: वह दूसरा विवाह करने से इंकार कर देती है और विजय को मन में प्रतिष्ठित कर एक विद्यालय स्थापित कर बच्चों को पढाने में तथा जन सेवा में ही जीवन यापन करने लगती है। अंत में विजय नीरजा के सरल जीवन से प्रभावित होता है। तथा अपनी पत्नी के गर्वीले व्यवहार से तंग आकर नीरजा से दूसरा विवाह करने के लिए प्रस्ताव रखता है। लेकिन नीरजा, सुषमा के भविष्य को दृष्टि में रखकर अगले जीवन में पत्नी बनने की इच्छा प्रकट कर विवाह का प्रस्ताव टाल देती है। इस प्रकार यह कथा सुखांत होती हुई भी पाठकों के मन में वेदना जागृत करने में समर्थ है।

उपन्यास को पढते समय ऐसा आभास होता है कि उपन्यास उद्देश्य प्रधान ही है। क्योंकि उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त कथानक का विकास हुआ है। इस कारण कहानी में कुछ अस्वाभाविकता आ गयी। कथानक का प्रारंभ तो अत्यंत सहज एवं रोचक है। लेकिन विजय और सुषमा के विवाह के उपरांत कथा के प्रवाह में कुछ अस्वाभाविकता आ गई है।

श्री वृंदावनलाल वर्मा ने चरित्र चित्रण के विषय में जो लिखा है वह द्रष्टव्य है "उपन्यास के सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण कुशलता के साथ किया गया है। उपन्यास में संपत्तिशाली, मध्यवर्गीय और नित्य के श्रम से पेट पालने वाले सभी प्रकार के पात्रों का उपयोग किया गया है।"[1]

मुंशी जी के परिवार के सदस्यों के चित्रण में लेखिका सफल ही है – मुंशी जी, उनकी पत्नी लक्ष्मी, पुत्र निर्मल, पुत्री सुषमा – के पात्रों द्वारा मध्य-वर्गीय पात्रों की विशेषताओं को जैसे सादगी, सरलता, मितव्ययता, महत्वकांक्षा आदि का अत्यंत जीवंत चित्रण किया है।

इसी प्रकार धनी परिवार के चित्रण में जहाँ दीवान जी उनकी पत्नी आशा, पुत्री नीरजा तथा विजय के माता-पिता, चाचा-चाची आदि की अभिजातवर्गीय विशेषताओं का जैसे पार्टी, लिपस्टिक, सूट-बूट, धन का गर्व आदि का पात्रानुकूल चित्रण लेखिका ने किया है। विजय की माता के चरित्र में अधिक गर्व की प्रवृत्ति दीखता है, एक तो धन के कारण दूसरा अपने लाडले पुत्र विजय के कारण। उनमें वधु को दबाकर रखने की प्रवृत्ति तथा सब को

---

१. भीगी पलकें – भूमिका से उद्धृत

इच्छाओं पर शासन करने का रोबीला व्यक्तित्व उनके चरित्र चित्रण में दृष्टि-गोचर होते हैं ।

निम्नवर्गीय पात्रों को जैसे तांगेवाले, आया, दासी आदि व्यक्तियों को उनकी वर्गगत प्रवृत्तियों के अनुरूप चित्रित किया गया है ।

विजय, सुषमा तथा नीरजा इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं । सुषमा मध्यवर्गीय युवती होने के कारण सरलता, लज्जा, विनय आदि गुणों से आभूषित हैं । विजय धनिक वर्ग का होते हुए भी माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध निर्धन युवती सुषमा से विवाह करता है । लेकिन जैसे ही सुषमा को पता चलता है कि विजय के माता-पिता दहेज के रूप में बीस हजार ले चुके हैं तो उसके स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है । वह अधिक गर्वीली, विलासिनी, ढीठ तथा कलहप्रिय बन जाती है । जिससे दोनों का दांपत्य जीवन नरकतुल्य बन जाता है । यहाँ नीरजा जो पहले ही विजय से प्यार करने लगी, उसे जीवन-पर्यंत निभाती और आजन्म, अविवाहित ही रह जाती है । नीरजा अपना जीवन सादगी में बिताने लगती और अपना समय जन-सेवा में ही बिताने लगती है । विजय जब सुषमा के व्यक्तित्व से ऊब कर नीरजा से ब्याह का प्रस्ताव रखता है तो सुषमा को दृष्टि में रखकर उसे मन से चाहते हुए भी उस प्रस्ताव को ठुकराती है । इस प्रकार उपन्यास के तीनों मुख्य पात्रों का जीवन सुखी नहीं रहता । स्वगत-कथनों द्वारा पात्रों के चारित्रिक विकास पर प्रकाश डाला गया है जैसे विजय की दार्शनिक चिंतनधारा[1], नीरजा का मानसिक अंतर्द्वंद्व[2] और सुषमा के आंतरिक भावों का संघर्ष[3] उपर्युक्त कथन के प्रमाण हैं ।

लेखिका ने उपन्यास की भूमिका में अपने उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है—'यह उपन्यास इसी भावना को लेकर लिखा गया है कि पढी लिखी धनवान घर की सब ही लडकियाँ बुरी नहीं होती । जो कोई भी भला बुरा होता है, वह परिस्थितियों के कारण ही । देवी भी राक्षसी बन सकती है, और राक्षस भी देवता बन सकता है ।'[4] उक्त उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने सुषमा तथा नीरजा का चित्रण किया है । उपन्यास के सभी तत्व इस उद्देश्य द्वारा संचालित हुए है ।

---

१. भीगी पलकें—पृष्ठ : ११४—११५ २. भीगी पलकें—पृष्ठ : २३२, ३३९
३. भीगी पलकें — पृष्ठ : ३२६ ४. भीगी पलकें : दो शब्द से उद्धृत

उपर्युक्त उद्देश्य के अतिरिक्त लेखिका ने इस उपन्यास द्वारा भारतीय नारी के चरित्र-पतन के बारे में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी कारण उन्होंने विभिन्न पात्रों के माध्यम से उक्त तथ्य की अभिव्यक्ति कराई है। जैसे सुषमा और विजय का निम्नलिखित कथन–"क्या पश्चिमी सभ्यता हमारी भारतीय संस्कृति को बिलकुल ही लोप करके साँस लेगी ?"[1] 'आपकी शिक्षाभिमानिनी नारी अपने प्राकृतिक गुणों को छोड कर पुरुषों को नचाने का दंभ करती हैं, जिससे दोनों के जीवन में अशांति ही अशांति भरती चली जा रही है।'[2] लेखिका का विचार है पाश्चात्य सभ्यता ने केवल स्त्री को ही नहीं पुरुष को भी छला है। भारतीय नारी ने गुण त्याग, तप और संयम आदि गुणों को पुरुषार्थ न समझकर उसने पाश्चात्य का अंधानुकरण कर पुरुष ने अपने आप को भी छला है।[3]

उपर्युक्त उद्देश्यों के स्पष्टीकरण में लेखिका को सफलता प्राप्त हुई है।

सुश्री उमादेवी :

इनका 'आलिंगन' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें मुगलराज्य की स्थापना के पूर्व के भारत की राजनीतिक स्थिति पर दृष्टि डालते हुए बाबर द्वारा भारत-विजय के प्रकरण को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास के पूर्वार्द्ध के प्रारंभ में त्रिविक्रमकुमारी के जागीरदार की वीर तथा बुद्धिमती कन्या मणिमाला के चरित्र का विस्तृत परिचय देते हुए चंदेरी के राजकुमार मेदिनीराय से उसका प्रेम तथा विवाह का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् चंदेरी के राजा द्वारा पुत्र को राज्य गद्दी सौंपकर स्वयं सन्यास ग्रहण करना, मुसलमानों द्वारा भारत की लूट-खसोट मेदिनीराय द्वारा बादशाह खलील को पराजित करना आदि घटनाओं को इतिहास तथा कल्पना के तानेबाने से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

राजकुमार मेदिनीराय के राजतिलक के उपरांत उपन्यास का उत्तरार्द्ध प्रारंभ होता है। लेखिका ने राणासांगा तथा इब्राहीम लोदी से बाबर के असफल युद्धों को पृष्ठभूमि में रखकर अंत में बाबर की सफलता का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण किया है। राजा मेदिनीराय राणासांगा के पक्ष में जो युद्ध किया है, इस युद्ध वर्णन को उक्त घटनाओं के केंद्र रूप में प्रस्तुत उपन्यास में रखा

१. भीगी पलकें – पृष्ठ : ७ २. भीगी पलकें पृष्ठ : ३६१
३. भीगी पलकें – पृष्ठ : ३६२

गया है। पानीपत के द्वितीय युद्ध में सुल्तान इब्राहीम लोदी तथा बाबर की सेनाओं के विभिन्न भागों का इतिहासानुरूप परिचय तथा युद्ध की स्थिति में दोनों सेनाओं के मोर्चों का सम्यक विश्लेषण[1] आदि इस कथन का साक्षी है कि लेखिका इतिहास के प्रति अधिक सजग रही हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य रूप से राजा मेदिनीराय और उनकी पत्नी मणिमाला का चित्रांकन हुआ है। क्षत्रिय होने के कारण उनमें शौर्य, स्वदेश-प्रेम, मानसिक दृढता, दया, बुद्धि–कौशल आदि अत्यंत उत्तम गुणों का समावेश पाया जाता है। बाबर से युद्ध करते समय पत्नी की दर्शन की लालसा के कारण मेदिनीराय युद्धभूमि से लौट आते हैं। लेकिन उनके लौटने से पहले ही मणिमाला चितारोहण करके अपने पति–गौरव की रक्षा करती है। उस समय की वीरांगनाओं का गौरव उक्त कथन का प्रमाण है। बाबर, राणा, सांगा, इब्राहीम लोदी अन्य पात्रों के चरित्र को इतिहास के अनुरूप ही लेखिका ने प्रस्तुत किया है। बाबर की वीरता तथा युद्ध-कौशल प्रशंसा लेखिका ने जगह जगह किया है।"[2] मणिमाला तथा मेदिनीराय के पारिवारिक सदस्यों तथा अन्य गौण पात्रों की चारित्रिक विशेषतायें प्रसंगानुकूल किये गये हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के संबंध में लेखिका अपना उद्देश्य इस प्रकार प्रकट करती है। भारत में मुगल राज्य की स्थापना के कारण, राजपूत वीरों तथा वीरांगनाओं का गौरव-गान, तथा तत्कालीन रीति-नीतियों, भौगोलिक स्थितियों आदि का यथातथ्य चित्रण।

प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त लेखिका ने राजपूतों की आपसी फूट तथा हिंदू राजाओं द्वारा मुसलमानों को परास्त करके भी उन्हें क्षमा करके छोड देना तथा बाबर की कठोर नीति एवं अत्यंत महत्वकांक्षाओं का चित्रण किया गया है। दूसरी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त लेखिका ने मेदिनीराय तथा मणिमाला का चरित्र उपस्थित किया है। और तीसरी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त त्रिविक्रम पुरी, नर्मदा आदि स्थानों के भौगोलिक एवं राज्याभिषेक जैसे विभिन्न आचार-व्यवहारों का उल्लेख प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष रूप से लेखिकाओं द्वारा रचित ऐतिहासिक उपन्यासों में इस उपन्यास का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान माना जा सकता है।

---

१. आलिंगन – पृष्ठ : ६९–७०, ७२

२. आलिंगन – पृष्ठ : ६८, ६९, ७४

शिवानी :

'मायापुरी लेखिका का एक अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास है। इसमें पहाडी कन्या शोभा के संघर्षपूर्ण जीवन की कथा अंकित है। शोभा सुन्दर और सुशिक्षिता है। परन्तु माता, पिता तथा भाइयों की मृत्यु से निराश्रित होकर मामी के घर पहुंचती है। कुछ दिन कटु स्वभाव वाली मामी के आश्रय में रहती है। फिर उस प्रांत की रानी की सेक्रेटरी बनकर शांति से अपना समय व्यतीत करती है। वहां सतीश नामक युवक से शोभा का परिचय होता है। क्रमशः दोनों का परिचय प्रेम का रूप धारण करने लगता है। लेकिन सतीश का विवाह राजदूत तिवारी की कन्या सविता से स्थिर हो जाता है। सतीश में इतना धैर्य भी नहीं रहता कि वह माता-पिता के विरूद्ध अपनी प्रेयसी शोभा को अपना सके। रानी के साथ रहते समय ही शोभा को ज्ञात होता है कि सविता दुश्चरित्रा है, अतः सतीश सविता से प्रसन्न नहीं है। एक दिन दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में सतीश के दोनों पैर कुचले जाते हैं और शीघ्र उसकी मृत्यु हो जाती है।

लेखिका ने समाज के विभिन्न वर्गों का परिचय कराया है, सतीश का मित्र अविनाश के सरल एवं सरस व्यक्तित्व द्वारा कथानक में यत्र-तत्र सजीवता की सृष्टि की है। अविनाश, उषा से धोखा खाकर समस्त नारी-जाति से घृणा करने लगता है। लेकिन सतीश की बहिन मंजरी, जो अविनाश से सोलह साल छोटी है, फिर भी अविनाश से प्रेम करती है, और उस में सफल हो जाती है।

सविता अभिजात वर्ग की युवती है जो सिगरेट, मद्यपान, स्वच्छंद प्रेम आदि को दुर्गुण नहीं मानती। उस के पिता, धन को ही सब कुछ मानते हैं। उस धन के बल पर ही सतीश जैसे योग्य युवक को अपनी पुत्री के लिए खरीद लेते हैं। स्नेहमयी रानी, क्रूर एवं विलासी राजा, शोभा की कर्कश मामी सक्की, रानी की सेविका शिवकाली जो मन से स्नेहशील है, आदि गौण पात्रों के चित्रण में लेखिका ने वर्गगत विशेषताओं का सफल समावेश किया हैं।

इसके अतिरिक्त शिवानी ने ग्रीमीणजनो को सरल एवं साधु-स्वभाव वालों के रूप में चित्रित किया है। रसिया चाचा, पधान दादी, चूडीवाला आदि पात्र शोभा के साथ अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हैं। वे सरल हृदयवाले तथा एक दूसरे के दुख में भाग लेते हैं।

मुख्य रूप से परिस्थितियों तथा संवाद-योजना द्वारा चरित्र-चित्रण का विकास दिखाया गया। यत्र तत्र पात्रों के चिंतन-प्रवाह में अन्य पात्रों की विशेषताओं का समावेश भी पाया जाता है जैसे सतीश की विचारधारा शोभा के प्रति द्रष्टव्य है–"वह सामान्य लडकी नहीं थी, उसकी आँखों में अगाध गांभीर्य था, उसकी दुर्बल देह-लता में बुद्ध जैसा तेज था।"[1]

आलोच्य उपन्यास का उद्देश्य यही रहा कि वर्तमान भौतिकवादी युग में धन की महत्ता आवश्यक है, परंतु मानसिक शांति धन द्वारा खरीदी नहीं जा सकती, भले ही भौतिक सुख खरीदा जा सके। धन के कारण ही शोभा एवं सतीश पृथक हो जाते हैं और सविता को पाकर सतीश एवं उसके माता-पिता, कर्ज जरूर चुका चुके हैं फिर भी मानसिक अशांति के शिकार हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त लेखिका ने उच्च वर्ग एवं मध्यमवर्ग की प्रवृत्तियों का सुन्दर चित्रण तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

'कृष्णकली' में एक शिवानी जी ने एक असाधारण सौंदर्यवती कन्या के जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है। जिसे न अपने बाप का पता है न माँ का। और न ही अपने कुल का। कृष्णकली कोढी माँ-बाप की अवैध संतान है। उसकी माँ पार्वती कृष्णकली के जन्म लेते ही गला घोंटकर मार डालने का असफल प्रयास करती है। कोढ़ियों के कृष्णाश्रम की डा. रोज़ी नन्हीं कली को बचा लेती है। पन्ना नामक वेश्या के यहाँ उसका पालन-पोषण होता है। कली का जन्म कृष्णाश्रम में होता है और डा. रोजी के द्वारा वह पन्ना को सौंपी जाती है। पन्ना कृष्णकली को अपनी ही पुत्री के समान पाल-पोसती है। पन्ना की बडी दीदी के यहाँ कली का बचपन पाँच साल तक बडे ही लाड-प्यार से बीतता है। डा. रोज़ी कृष्णकली को बोर्डिंग-हाऊज में रख-कर पढाना चाहती है। पन्ना तो डा. रोजी से सहमत हो जाती है। परंतु उसकी बडी दीदी इस बात पर असहमत होकर सदा के लिए पन्ना तथा कली से अपना संबंध तोड लेती है। पन्ना, कली को बोर्डिंग में भर्ती करवा कर एकांत जीवन व्यतीत करने लगती है। पन्ना वैश्या कुल की होती हुई भी केवल जमींदार विद्युत रंजन के अलावा किसी और से अपना संबंध नहीं

१. मायापुरी – पृष्ठ २०३

रखती है । लेकिन विद्युत रंजन अपनी-कुल मर्यादा का निर्वाह करने के उद्देश्य से पन्ना को छोड देता है ।

कृष्णकली, बोर्डिंग हाऊस के प्रशांत वातावरण में पलती है । लेकिन जिस दिन उसे अपने पिता का उसका काल्पनिक 'इमेज' टूटा और अपनी जन्म की घिनौनी वास्तविकता का पता चला, उसी दिन वह प्रखर मेधावनी एवं अनिद्या श्यामासुन्दरी 'नरभक्षिणी' 'दस्युकन्या' बन गयी ।[1] पन्ना के प्रति उसका कटु व्यवहार एवं तिरस्कारयुक्त भावना के फलस्वरूप कृष्णकली नौकरी की तलाश में कलकत्ता पहुँच जाती है । वहाँ पर उसका परिचय रेवती शरण तिवारी से हो जाता है । उनके दो लड़के तथा दो लड़कियाँ होते हैं । लड़कियों की शादियाँ हो चुकी । परिस्थितियाँ इतनी विपरीत हो जाती हैं कि रेवती-शरण का छोटा पुत्र मर जाता है और उनकी बहू किसी साधु के मायाजाल में पडकर भाग जाती है । रेवतीशरण की पत्नी कृष्णकली को बहुत चाहने लग जाती है और बिना किराये के अपने ही घर में उसके लिए कमरा दे देती है । कली पहले 'स्मगलर', बाद में 'मॉडल गर्ल' और अंत में 'रिसेप्शनिस्ट' बनती है ।

जिसकी (कृष्णकली की) मुस्कानों में बिजलियाँ और चितवनों में बर्छियाँ बसी हैं, उसका अंतर कितना रीता, उसका जीवन कितना अकेला, उसका अस्तित्व कितना निरर्थक है, कोई नहीं जानता, न ही जानना चाहता । उसके तन से खेलनेवाले बहुत हैं । मन का ताप हरनेवाल कोई नहीं । ऐसे में उसके जीवन में आता है–प्रवीर–कठोर, संयमी, मर्यादावान, उच्चपदस्थ, सुंदर–पिता के उसके अपने काल्पनिक 'इमेज का युवा प्रतिरूप । दुर्निवार आकर्षण से उसकी ओर खिंची कृष्णकली, उसे छल-बल, कौशल से जीतना चाहती है, किन्तु सचमुच उसके हृदय में प्रवेश पाती है, उस दिन उसने निश्चल भाव से विक्टोरिया के मैदान में अपने जन्म की, जीवन की, उसके प्रति अपने प्रणय की गाथा अकुंठ भाव से कह सुनाई । उसकी अनेकानेक विकृतियों से परिचित रहने पर भी उसके रूप से प्रभावित प्रवीर उसकी साहसपूर्ण सच्चाई से मुग्ध हो जाता है । तब तक सामाजिक स्तर पर कुल, गौत्र, धन प्रभाव से समृद्ध पांडेजी की कन्या कुन्नी जीत चुकी थी । किन्तु कली हार कर

---

१. विष्णुकांत शास्त्री – कुछ चँदन की कुछ कपूर की – पृष्ठ ३११

भी नहीं हारती, क्योंकि प्रिय के मंगल के लिए अपने सुखों का उत्सर्ग उसकी हार को भी भास्वर बना देता है ।'[1]

अंत में कृष्णकली कैंसर का शिकार बन जाती है । मृत्यु के पूर्व वह पन्ना तथा प्रवीर को अपने पास बुला लेती है । – – – – श्मशान में जिसे उसने पति के रूप में वरण किया था, उसी की 'मिस्ट्रेस' बनकर वह जीना नहीं चाहती । उसी रात को स्लीपिंग पिल्स की पूरी शीशी खाली कर प्रिय के सान्निध्य में ही वह प्राण त्याग देती है ।

लेखिका ने वांछित लक्ष्य-सिद्धि के लिए उपन्यास में कई स्थानों पर आकस्मिक संयोगों का सहारा लिया है । जैसे पार्वती के द्वारा नवजात शिशु का गला घोंट दिये जाने पर भी उसका न मरना, पन्ना की लड़की का जनमते ही मर जाना, ताकि कृष्णकली उसका स्थान ले सके । वर्षों बाद विद्युत रंजन से पन्ना का मिलन और कृष्णकली का अपने जन्म की वास्तविकता को सुनकर पन्ना को छोडकर चला जाना. इसके अतिरिक्त यह भी संयोग की ही बात है कि एल. एस. डी, का सेवन कर अपने कमरे के द्वार पर ही अचेत पडी कली को प्रवीर ही देखता है और उसे उसके पलंग पर लिटा आता है और यह भी कि ऐसा करने में उसकी अंगूठी अनजाने ही वहाँ गिर पड़ती है, जिसकी याद उसे तब तक नहीं आती जब तक कली उसे लौटाने उसके कमरे में नहीं आती । विक्टोरिया के मैदान में प्रवीर और कली का परिचय होना भी बिलकुल संयोग की बात है । सिलोन जाते समय रेल में तानी मौसी से कली को मुलाकात जितनी आकस्मिक है, उसका अज्ञात स्टेशन पर उतर पडना और उससे भी अधिक आकस्मिक तथा संयोगात्मक घटना है, उसका हावडा की ओर रेल पर बैठे जाने के कारण सीलोन जा ही नहीं पाना ।

इतने संयोगों से भरे उपन्यास के इतिवृत्त की विश्वसनीयता संदिग्ध है । जिससे उपन्यास की प्रभाविश्णुता कुछ न्यून होती दृष्टिगोचर होती है ।

इस उपन्यास की प्रमुख कथा कृष्णकली के जीवन से संबंधित होने पर भी, कई अंतर्कथायें तथा उपकथाओं का भी इसमें समावेश पाया जाता है । पन्ना के जीवन की उसकी सहेली विवियन की, लौरेन आंटी की तथा रेवतीशरण तिवारी के परिवारों के सदस्यों की जीवन-गाथाओं का संबंध किसी न

---

१. विष्णुकांत शास्त्री – कुछ चंदन की कुछ कपूर की – पृष्ठ: ३११

किसी रूप में कृष्णकली की जीवनी से जुडा हुआ है। अतः इस उपन्यास का केंद्र बिंदु कृष्णकली ही मानी जा सकती है।

शिवानी जी के उपन्यासों के संबंध में श्री विष्णुकांत शास्त्री जी का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है – "इसमें कोई संदेह नहीं कि कथा की रोचकता बनाये रखने में और करुणा का उद्रेक कराने में शिवानी जी को कमाल हासिल मिली है। इस केलिए अपनी लेखनी पर अधिक से अधिक सान चढाकर उसे असिधार पैनी बनाने का प्रयास इन्होंने किया है, किंतु वे दो बातें भूल जाती हैं। एक तो यह कि कलाकृति की उत्कृष्टता केलिए सृजन की तन्मयता में कलाकार की तटस्थता भी आवश्यक है। दूसरी यह कि छाती तक धँस जाने केलिए तलवार में केवल धार ही नहीं, भार भी चाहिए।"[1]

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से देखें तो इस उपन्यास में कृष्णकली ही प्रमुख पात्र है। कृष्णकली, कोढी माँ–बाप की पुत्री होकर, एक वेश्या के घर में पली जाने का उसके मन में तथा शरीर पर अत्यंत विपरीत प्रभाव पडता है। वह विद्रोही–मार्ग पर चलकर जीवन का सामना करती है और जीवन में अपेक्षित सफलता न मिलने पर आत्मघात कर लेता है। कल्याणी एक अपरूप सौंदर्यवती के रूप में चित्रित की गयी है। बोर्डिंग हाऊज में रहते समय वह पढाई की अपेक्षा फैशनों के प्रति अधिक रुची दिखाती है। चौर्य-कला में भी प्रवीण बनती है। छुटपन से ही उसे यह प्रश्न "पिता जी कहाँ पर रहते हैं ? और वे कैसे हैं इसी संबंध में बोर्डिंग स्कूल की मदर डा. रोजी को चिट्ठी भी लिखती है–"सालता रहता है। – अपने जन्म की अनजान पिता की इस उलझी गुत्थी को सुलझाना चाहती हूँ, पर सुलझा नहीं पाती और वही तनाव मुझे अस्वाभाविक रूप से क्रूर हृदयहीन विद्रोहिणी बना रही है।"[2] इस अवस्था में वह अपने जन्म वृत्तांत को जानकर कृतघ्न बन पन्ना को बेसहारा छोडकर अपने रूप-सौंदर्य का लाभ उठाकर 'स्मगलर' तथा 'माडलगर्ल' का पेशा अपना लेती है। उसके भोले-भोले चेहरे को देखकर किसी को भी उसके विद्रोही-स्वभाव का गुमान नहीं होता। उसके चेहरे के संबंध में टिप्पणी करती हुई लौरेन एक स्थान पर कहती है – "किसी का खून भी कर लेगी, तब भी अदालत तुम्हें छोड देगी – ऐसा निर्दोष चेहरा, ऐसी निष्पाप आँखें और देशी उस्तरे की धार-सी तेज उँगलियाँ।[3] कली को अपने रूप पर बहुत ही गर्व रहता है।

---

१. विष्णुकांत शास्त्री – कुछ चंदन की कुछ कपूर की – पृष्ठ : ३१२
२. कृष्णकली – पृष्ठ : ५५
३. कृष्णकली – पृष्ठ : ८२

नौकरी करते समय कई तरह के लोगों से मिलती है – सभ्य, असभ्य, हिप्पीज आदि से। किंतु वह कभी भी गलत राह पर नहीं चलती। उसने एक ही बार अपना दिल लुटाया, वह भी प्रवीर से। प्रवीर की सगाई एक धनवान पांडे जी की कन्या कुन्नी से होने पर पहली बार वह कुन्नी के प्रति नारी सुलभ ईर्ष्या प्रकट करती है। प्रवीर को पाने में असफल कृष्णकली कलकत्ता छोड देती है किंतु मानसिक वेदना के कारण कैंसर का शिकार हो जाती है। आत्म-घात करने के पूर्व एक सच्ची प्रेमिका के नाते प्रवीर को तथा बेटी के नाते पन्ना को अपने पास बुला लेती है। समाज के प्रति तथा अपने को चाहने वालों के प्रति कली जैसी स्त्री पात्र की मनोगत प्रतिक्रिया का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत करना ही लेखिका का प्रधान लक्ष्य रहा है।

कृष्णकली परिस्थितियों का सामना करती हुई भले ही टूटने केलिए तैयार हो, लेकिन उनके आगे कभी झुकना नहीं चाहती।

इस उपन्यास में कृष्णकली के अतिरिक्त कई गौण–पात्र भी हैं जैसे पन्ना, डा. रोजी, लौरेन, रेवतीशरण तथा विवियन आदि। कृष्णकली की देख-भाल करनेवाली पन्ना जो वेश्या कुल की होती हुई भी केवल विद्युत रंजन से संतुष्ट रहती है। विवियन कली की एकमात्र सहेली है। विवियन हर समय कली की उन्नति की ही कामना करती रहती है।

रोजी, डा. पैंद्रिका के नाम से प्रसिद्ध है और अपना सारा समय कृष्णा-श्रम में कोढियों की तन मन से सेवा सुश्रूषा करने में ही लगा देती है। डा. पैंद्रिका का कहना है कि 'सच्चा आनंद केवल सेवा सुश्रूषा में ही प्राप्त होता है।'[1] लौरेंस सरकार की आँखों में धूल झोंक कर, स्मगलिंग का व्यापार करती रहती है। इसी काम केलिए वह कई सुंदर लडकियों को अपने यहाँ रखते है। विवियन की दूसरी आँटी जो इलाहबाद में रहती है, लोगों से प्यार करना ही सीखा है। खुद ईसाई होने पर भी हिंदू धर्म में भी वह आस्था रखती है। यहाँ तक कि वह हिंदू-धर्म से संबंधित आचार-विचारों का भी पालन करने लगती है। विवियन के साथ जाकर नदी संगम में तीर्थ-स्नान करना, इस बात की पुष्टि करता है।

रेवतीशरण की पत्नी ममतामयी माँ के रूप में चित्रित किया गया है। अपने परिवार में घटित दुर्घटनाओं के कारण, उसका प्रेम कलि के प्रति बढ

१. कृष्णकली – पृष्ठ : ५१

जाता है। उन्हीं की पुत्रियाँ हैं जया और माया। जया का पति दामोदर, दो बच्चों का बाप होकर भी स्त्री लोलुप बना रहता है। फलस्वरूप जया का जीवन दुखमय हो जाता है। माया एक स्नेहमयी नारी है। कुन्नी एक धनवान् की बेटी होने पर भी अहंभाव रहित होकर गृहिणी के रूप में अपना जीवन सफलतापूर्वक बिताने में समर्थ होती है।

पुरुष पात्रों में रेवतीशरण का जेष्ठ पुत्र प्रवीर को प्रमुख रूप से उल्लिखित किया जा सकता है। कलि से प्यार करते हुए भी, कुल की मर्यादा को निभाने के लिए वह कुन्नी से विवाह कर लेता है। विद्युतरंजन तथा पांडे जी कितने ही बूरे क्यों न हों, धन की आड में समाज में गौरवमय जीवन बिताते रहते हैं।

इस प्रकार आधुनिक जीवन में एक सुन्दर लावारिस कन्या के आगे उपस्थित होने वाली समस्याओं को प्रस्तुत कर, विपरीत परिस्थियों में उसे उलझाकर, उसकी प्रतिक्रिया में होनेवाले मनोभावों का मनोवैज्ञनिक चित्रण करना ही लेखिका का लक्ष्य रहा है। यथा प्रसग वेश्या जीवन, कोडियों का दुर्दशा, लावारिश लडकियों की मनःस्थिति, पुरुषों की कामलोलुपता आदि बातों पर प्रकाश डालकर आधुनिक जीवन के कटु सत्यों को प्रतिबिंबित करना भा लेखिका का उद्देश्य परिलक्षित होता है।

श्रीमती शिवानी जी का ही एक अन्य सामाजिक उपन्यास है। 'भैरवी' इसका कथानक पार्वती कन्या की जीवनी है।

उपन्यास की नायिका है पर्वतीय किशोरी चंदन। उसकी माँ राज-राजेश्वरी, पुत्री को यौवन सुलभ उन प्रभावों से बचाना चाहती है जिनका शिकार बनकर उसका अपना जीवन मरुस्थल बन चुका है। संयोगवश पर्वता-रोहण के लिए आये दिल्ली के समृद्ध नौजवानों की टोली का, उसी की जाति का एक युवक (विक्रम) चंदन पर मोहित हो जाता है। उन दोनों का विवाह भी हो जाता है। उनके सुखी वैवाहिक जीवन में अचानक वज्रपात सी घटना घटित होती है। एक बार जब विक्रम और चंदन रेल यात्रा करते रहते हैं, तब कुछ आततायी उनके डिब्बे में प्रवेश कर विक्रम को बाँधकर उसी के सामने चंदन पर बलात्कार करते हैं। मानसिक ग्लानि के कारण चंदन चलती ट्रेन से कूद पडती है। लेकिन संयोगवश बच जाती है। पहाडी प्रांत का एक तांत्रिक तथा उसकी शिष्याओं की दवा-दारु तथा सेवा-सुश्रूषा से वह क्रमशः स्वस्थ हो

उठती है। अपने प्राण–रक्षक तांत्रिक के द्वारा चंदन को भैरवी की संज्ञा दी जाती है। और उसके स्वस्थ होते होते एक साल तक उसी तांत्रिक के पास रह जाना पडता है। इसी अवसर को पाकर लेखिका ने तंत्र साधना के कुछ रोमांचक पहलुओं का रोचक चित्रण किया है।

चंदन के रूप और सौंदर्य के ताप से शिव–स्वरूप जिद्रिय गुरुदेव की साधना भी भग्न हो जाती है। चंदन के प्रति गुरुदेव का विशेष अनुराग सहन न करने वाली 'शक्तिस्वरूपिणी' माया विचलित हो जाती है और गुरुदेव के कण्ठहार प्राणहारी की काटका शिकार बन जाती है। चंदन को कोठरी में बंदकर बाहर से साँकल लगाकर जब गुरुदेव माया के शरीर को तथा नागराज को नदी में प्रवाहित करने जाते हैं, तब माया की चेतावनी के अनुसार अपने रूप सौंदर्य पर आसक्त गुरुदेव से बचने के लिए चंदन खिडकी से कूदकर अपने पति के घर भाग जाती है। अपराधिनी एवं भिखारिणी-सी जब वह पतिगृह पहुंचती है तो उसका रूप पिपासु पति पहले तो सप्रेम उसे स्वीकारता है, किंतु बदली परिस्थिति को याद करते ही वह विकल हो जाता है। क्योंकि मृत्यु से जूझकर उसकी दूसरी पत्नी ने उसी दिन पुत्र को जन्म दिया है। अपने एक साल की कालिमा–मंडित इतिहास स्मरण कर चंदन पति की विवशता से अवगत होकर वह जीवन के अनजान चौराहे पर पाँव बढाती चली जाती है।

चंदन की मूलकथा के साथ साथ इस में राजराजेश्वरी की जीवन-गाथा भी गौण रूप से प्रस्तुत की गई है जो इस प्रकार है – राजराजेश्वरी ब्राह्मण परिवार की अतिरूपसी कन्या है। जब उसका परिचय वेश्या की पुत्री चंद्रिका से होता है। चंद्रिका वेश्यापुत्री होने के कारण राजराजेश्वरी के घर जाने से उसकी माँ मना कर देती है। किंतु दोनों का स्नेह इतना बढ जाता है कि वह चंद्रिका के घर गये बिना नहीं रह पाती। वहाँ पर चंद्रिका का भाई कुंदन राजराजेश्वरी के प्रति आकृष्ट होता है। दोनों में प्रेम बढने लगता है। दोनों घरवालों से डरकर कहीं सुदूर जाकर शादी करना चाहते हैं। राजाराजेश्वरी के पिता तिवारी को इस बात का पता चलने पर वह अपनी पुत्री को रेल से उतारकर घर ले जाता है। लेकिन कुंदन रेल से उतरते ही भाग जाता है। एक वेश्या के लडके से भाग जाने के आरोप से रूपसी होने पर भी राजराजे-श्वरी से कोई भी ब्याह करने केलिए तैयार नहीं होता। अतः तिवारी अपनी कन्या की शादी एक पचास साल के बूढे से कर देता है। अपने किये का फल

मानकर राजराजेश्वरी इस विवाह के बंधन में बंध जाती है और 'चंदन' को जन्म देती है। चंदन जब दो साल की थी तब उसका बूढा पिता मर जाता है। चंदन के पिता की सारी जायदाद की मालकिन बनती है। राजराजेश्वरी अपनी हवेली में एक पाठशाला चलवाती। पाठशाला की प्राध्यापिका शारदा खन्ना राजराजेश्वरी को भी शिक्षित करती है। अंत में जब तक चंदन सयानी बन जाती है तब तक राजराजेश्वरी उसी पाठशाला की प्रधानाध्यापिका भी बन जाती है। शारदा खन्ना अवकाशग्रहण करते करते राजराजेश्वरी को चेतावनी देती है कि वह अपरूप सौंदर्यवती चंदन के हाथ जल्द पीले कर दें। खन्ना के इस उपदेश का पालन करने में तथा अपनी बेटी के द्वारा यौवन-काल की स्वाभाविक भूलों से बचाने में राजराजेश्वरी सफल होती है।

इस प्रकार 'भैरवी' उपन्यास की प्रमुख कथा चंदन को केंद्र बिंदु बनाकर विकसित होती हैं। कथानक को रोचक तथा प्रभावात्मक बनाने में लेखिका को आशातीत सफलता प्राप्त हुई हैं।

कृष्णकली के ही समान 'भैरवी' में भी लेखिका ने आकस्मिक संयोगों का कई स्थानों पर सहारा लिया है। जैसे, चंदन-विक्रम का विवाह, रेल में चंदन पर आततायियों द्वारा अत्याचार, चलती रेल से कूदकर भी चंदन का न मरना, नागराज का माया दी को डस लेना आदि इसी प्रकार के घटनास्थल हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखे तो चंदन एक स्वाभिमानिनी, भावुक, रूपसी नारी के रूप में अंकित की गयी है जो अपने पति के भविष्य को दृष्टि में रखकर उसे दुविधा में न डालकर और सद्यः पिता बने विक्रम को नयी सास के आगे अपदस्थ न कर, स्वयं अपने प्रेम का उत्सर्गकर अनजान चौराहे की ओर चल पडती हैं।

चंदन के अतिरिक्त इस उपन्यास में प्रमुखतया राजराजेश्वरी के चरित्र पर विशेष ध्यान दिया गया है। राजराजेश्वरी पहाडी लोगों के पिछडे हुए मनस्तत्व का तथा पर्वतीय प्रांत के आचार विचारों का शिकार बनकर पचास वर्षीय बूढे से ब्याह कर कर्म सिद्धांत में विश्वास करनेवाली के रूप में चित्रित की गयी है। यौवनकालीन भूलें पुनः पुत्री चंदन के जीवन में भी पुनरावृत्त न हो, इस दिशा में भी वह विशेष सतर्क रहती है। राजराजेश्वरी के अति-

रिक्त चंद्रिका तथा माया दी के चारित्रिक विकास का चित्रण भी गौण रूप से पाया जाता है लेकिन इससे राजेश्वरी तथा चंदन के चरित्र को उभारने में ही लेखिका को सहायता मिली है।

इस उपन्यास के गौण पात्रों के रूप में विक्रम, कुंदन, तथा तांत्रिक विद्या-प्रवीण गुरुदेव का नाम लिया जा सकता है। लेकिन उपन्यास नायिका-प्रधान होने के कारण विक्रम तथा कुंदन भी चंदन तथा राजेश्वरी के चारित्रिक विकास में ही योग देते प्रतीत होते हैं। विक्रम अपनी दूसरी शादी के पश्चात् जहाँ चंदन को स्वीकारने में असमर्थ रहता है वहाँ कुमुद, तिवारी जी के डर से राजराजेश्वरी को अपने भाग्य पर छोड़ भाग जाता है। इस प्रकार दोनों ही समाज के रीति-रिवाजों से बंधे उनका विरोध करने में असमर्थ होकर उसी के होकर उसी के दायरे में अपना जीवन बिताते दृष्टिगोचर होते हैं। गुरुदेव को तांत्रिक विद्या में प्रवीण तथा योगी के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन चंदन के रूप और सौंदर्य के ताप ने गुरुदेव की साधना को भी पिघला दिया। इस प्रकार मानव सुलभ कमजोरियों का गुरुदेव में भी दिखाकर, योग के खोखलेपन का चित्रण किया है।

उपन्यास को घटना प्रधान बनाकर भी लेखिका ने चंदन पात्र के द्वारा भाग्य की मारी नारी को समाज में प्राप्त स्थान के चित्रण के प्रति तथा विपरीत परिस्थितियों में नारी की प्रतिक्रिया के चित्रण के प्रति विशेष ध्यान दिया है। इसके अतिरिक्त गुरुदेव पात्र के माध्यम से तांत्रिक-विद्या का विवरण प्रस्तुत करना, कुंदन तथा राजेश्वरी के प्रेम के माध्यम से वैश्या परिवार का समाज में जितना अनादर होता है और पर्वतीय प्रांत में लोग कितने पिछड़े रहते हैं, उनके आचार-विचार किस प्रकार के होते हैं, आदि विषयों पर प्रकाश डालना भी लेखिका का लक्ष्य रहा है। विक्रम पात्र के माध्यम से भाग्य की मारी पत्नी की उपेक्षा करनेवाले पुरुष के दुर्लभ मनस्तत्व का चित्रण करना भी लेखिका का उद्देश्य रहा है।

शिवानी जी ने आलोच्य उपन्यास के द्वारा यह भी संकेत करना चाहा कि अगर स्त्री कभी जाने अनजाने में घर की देलीज पार करे तो फिर चाह कर भी अपने घर लौट आने में असमर्थ होती है। कई जगहों पर इसका स्पष्टीकरण भी हुआ है। जैसे मायादी एक बार चंदन से कहती है 'स्वामी के घर से भागना कठिन नहीं होता भैरवी—कठिन होता है लौटना, जिस द्वार को खोलकर कूद गयी हो, उससे क्या अब लौट पाओगी।'[1]

---

१. भैरवी – पृष्ठ : १५९

अंत में चंदन को देखकर उसका पति विक्रय खुश हो जाता है, लेकिन स्वयं चंदन अपने जीवन के बारे में सोचती है कि 'दयालु न्यायाधीश ने सचमुच ही उसके सातों खून माफ कर दिये थे। किन्तु मुक्ति पाकर भी क्या कारागार के कलंक की अमिट छाप स्थायी रूप से छूट सकती है? बेडियाँ छूटने पर भी तो काल-कोठरी से छूटा कैदी, मृत्युदंड को नहीं भुला पाता, स्वयं उसकी ही अंतरात्मा उसके पैरों में बेडियाँ डाल देती है।'[1]

चंदन पात्र के द्वारा आधुनिक सभ्य समाज में भी नारी का दृष्टिकोण किस प्रकार संकुचित ही रह गया है, तथा इस प्रकार संकुचित दृष्टिकोण को अपनाने के लिए कौन-कौनसी परिस्थितियाँ सहायक रही हैं उनका विशद विश्लेषण लेखिका ने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

१, भैरवी – पृष्ठ : १६३

स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिंदी उपन्यासों का वस्तुपक्ष : एक मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर काल की बदलती हुई पारिवारिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप नारी, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति करती हुई दिखाई देती है। साहित्य–रचना के क्षेत्र में भी उस की प्रतिभा को पनपने का और पल्लवित होने का अवसर मिला। अनुभवों की सीमा का विस्तार उनकी रचनाओं में वैविधता लाने में समर्थ हुई।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी की उपन्यासकर्त्रियाँ, स्वातंत्र्यपूर्व की उपन्यासकर्त्रियों की तुलना में श्रेष्ठ मानी जा सकती हैं, क्योंकि इनके उपन्यास वस्तुपक्ष की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ तथा विकसित हैं। स्वातंत्र्यपूर्व की लेखिकायें पर्दा–प्रथा, अशिक्षा, अंधविश्वास आदि प्रतिबंधनों एवं विवशताओं के कारण अपनी रचना-प्रतिभा को मुखरित कर उसका पूर्ण परिचय देने में असमर्थ रही हैं। इसके अतिरिक्त गृहिणियों के रूप में पारिवारिक उत्तरदायित्व के सीमित दायरे से मुक्त होकर कुछ करने की उनमें तीव्र आकांक्षा भी नहीं थी, जब कि लेखक उक्त बाधाओं से मुक्त थे। फलतः स्वातंत्र्यपूर्व काल में पुरुषों की तुलना में नारियों के द्वारा रचित उपन्यास–साहित्य गुण एवं राशि की दृष्टि से साधारण कोटि का बन पड़ा है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् द्रुतगति से भारत के सभी क्षेत्रों में विभिन्न परिवर्तन उपस्थित हुए। प्रधानतः राजनीतिक एवं सामाजिक नवोत्थान के परिणाम स्वरूप, साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उपन्यास विधा में विशेष रूप से वस्तुपक्ष में पर्याप्त परिवर्तन संपन्न होने लगा। ज्यों ज्यों लोग शिक्षित

होने लगे और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव बढने लगा त्यों त्यों नैतिक पूर्वाग्रहों में उदारता आने लगी। जैसे जैसे लेखक अपनी रचनाओं में नवीन प्रयोगों को प्रश्रय देने लगे वैसे वैसे लेखिकायें इस वस्तु-स्थिति से प्रभावित होकर इस दिशा में अग्रसर हुई तथा नये प्रयोगों और नवागत परिवर्तनों को स्वीकार भी करने लगीं।

पश्चिम की सभ्यता तथा शिक्षा से प्रभावित होकर भारतीय नारी भी सामाजिक बंधनों आदि को तोड़कर पुरुषों के साथ समानाधिकारों की माँग करने लगीं। फलस्वरूप नारी को आत्मोन्नति के अधिकाधिक अवसर प्राप्त हुए। इसका फल यह हुआ कि उपन्यास–रचना के क्षेत्र में भी महिलायें अपने पूर्ववर्ती लेखिकाओं की अपेक्षा अधिक सामाजिक चेतना एवं जागृति का परिचय देने लगीं।

स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर अवधियों में समान रूप से रचनाकार्य में प्रवृत्त होने वाली लेखिकाओं में श्रीमती उषादेवी मित्रा तथा श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल विशेषरूप से गिनी जा सकती हैं। श्रीमती उषादेवी मित्रा ने अपने स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में नारी को संघर्षशील परिस्थितियों में प्रतिष्ठित कर उसकी प्रतिक्रिया का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'सोहिनी' उपन्यास में उषादेवी मित्रा ने मुख्यतः जहाँ त्याग तथा प्रेम के मूल्यों को स्पष्ट किया है, वहाँ गौणतः मानव जीवन केलिए आवश्यक वैज्ञानिक अनुसंधान की ओर संकेत किया है। अपने एक अन्य उपन्यास 'नष्टनीड़' में आदर्श भारतीय नारी का चित्रण प्रस्तुत करने के साथ साथ पूंजीपतियों के शोषण का खंडन किया है। पाश्चात्य–सभ्यता का अंधानुकरण तथा फैशन परस्ती पर व्यंग्य भी कसा है। इनके उपन्यासों में कथानक तथा चरित्र-चित्रण अन्योन्याश्रित होकर विकसित हुए हैं। लेखिका ने लक्ष्यसिद्धि हेतु घटना-संयोजन करने के कारण, कथानक में यत्र तत्र अस्वाभाविकता तथा असंबद्धता के दोष पाये जाते हैं। उसके उपन्यासों के संबंध में डा. प्रतापनारायण टंडन जी का कथन द्रष्टव्य है–" इन उपन्यासों का महत्व जीवन की जटिल विषमताओं का परिचय देने की दृष्टि से विशिष्ट है। इनमें कथा का आधार उन नारी पात्रों को ही बनाया गया है, जिन्हें विविध क्षेत्रों में पग पग पर संघर्ष करना पडता है। यदि नारी–जीवन के इन मार्मिक चित्रणों से अलग करके उसे देखा जाय तो वह अपने उस रूप में अवश्य ही खटकने लगता है, क्योंकि इतने पूर्व निश्चित

ढंग से कथा में मोड आते हैं, फिर उनमें कोई विशेषता शेष नहीं रह जाती प्रतीत होती।"[1]

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल के उपन्यासों में पारिवारिक ईर्ष्या-द्वेष मान-अभिमान, स्नेह-सौहार्द आदि के समन्वित रूप-चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। इन्होंने 'मूक तपस्वी' में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की गुण-गरिमा की प्रशंसा की है, निश्चल एवं पवित्र प्रेम में आस्था प्रकट करती हुई लेखिका ने त्याग में ही सुख और शांति की खोज की है। 'स्वतंत्रता की ओर' में भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हुए पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति पर व्यंग्य किया है। इस उपन्यास में लेखिका पर विनोबा भावे तथा गांधी जी के ग्राम-सुधार संबंधी विचारों का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। 'भटकती आत्मा' में पूर्व स्वतंत्र कालीन राजनीतिक वातावरण जैसे क्रांतिकारी दलों का संघठन, सरकार की दमन नीति आदि का प्रभाव लेखिका पर स्पष्ट परिलक्षित है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने निम्न-मध्य तथा उच्च वर्गों के लोगों के बीच के संघर्ष का भी चित्रण प्रस्तुत किया है। 'अनचाहा' में भी लेखिका ने उच्च वर्ग के विलासपूर्ण जीवन, निम्नवर्ग के दरिद्र जीवन तथा मध्य वर्ग के साधारण जीवन का वर्णन करने के साथ साथ बेकारी, महंगाई, घूसखोरी, आदि सामाजिक कुरीतियों का खंडन किया है। ऐतिहासिक उपन्यास 'पुनरुद्धार' में भारशिवों के गौरवपूर्ण अतीत को दर्शाना तथा भारशिव वीरों और वीरांगनाओं के चरित्रों को प्रस्तुत करना लेखिका का उद्देश्य रहा है। इनके सभी उपन्यासों में आदर्श की स्थापना हुई है जहाँ जन-सेवा को अधिक प्राधान्य दिया गया है। जैसे डा. उर्मिला गुप्ता के निम्नांकित कथन से इसकी पुष्टि होती है—'प्रायः प्रत्येक उपन्यास में तुलनात्मक चरित्रों की सृष्टि की गयी है। और अंत में हृदय परिवर्तन द्वारा विरोधी पात्रों को आदर्श पात्रों के प्रभाव में लय होते दिखाया गया है। भारतीय नारी का गौरव-गान, और वसुधैव-कुटुंबकम् का संदेश इनके उपन्यासों की उल्लेखनीय विशेषतायें हैं।'[2]

श्रीमती रजनी पनिकर के संबंध में उर्मिला गुप्त के विचार द्रष्टव्य हैं—'वर्तमान युग की उपन्यास लेखिकाओं में श्रीमती पनिकर का अग्रणी स्थान है।'[3] श्रीमती रजनी पनिकर ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन संबंधी विभिन्न

---

१. डा. प्रतापनारायण टंडन—हिन्दी उपन्यास का उदभव और विकास : पृष्ठ : २०७-२०८

२. हिन्दी कथा साहित्य में महिलाओं का योग—पृष्ठ : ३६०

३. स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकायें—पृष्ठ : १७४

पहलुओं पर तथा उनकी समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिया है। इनके 'ठोकर' उपन्यास में भारतीय नारी की गुण-गरिमा का आदर्श प्रस्तुत किया है। साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण के प्रति करार व्यंग्य भी किया है। 'मोम के मोती', प्यासे बादल', जाडे को धूप', काली लड़की' तथा 'एक लड़की दो रूप' उपन्यासों में निम्न, मध्य तथा उच्च वर्ग के लोगों की व्यक्तिगत समस्याओं का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'मोम के मोती' तथा 'एक लड़की : दो रूप' में नौकरी करनेवाली स्त्रियों की समस्याओं का वर्णन है। 'प्यासे बादल' में यह सिद्ध किया गया है कि श्रमिक एवं शोषित लोगों को शिक्षा प्रदान किया जाय तो वे भी सुसंस्कृत बन सकते हैं। 'जाडे की धूप' में विवाहित नारी तथा पर पुरुष के बीच के प्रेम में उत्पन्न समस्याओं का चित्रण है। 'काली लड़की' में रूप रंग के कारण उपेक्षित काली लड़की के विवाह की समस्याओं का चित्रण किया है तो 'एक लड़की : दो रूप' में अविवाहित स्त्रियों के मानसिक संघर्ष तथा दहेज प्रथा, पुरुष की काम-लोलुपता, उत्तरदायित्वहीन माता-पिता आदि का चित्रण प्रस्तुत है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन संबंधी विभिन्न पहलुओं पर तथा उनकी समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिया है। इनके उपन्यासों के कला-कौशल पर श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार का निम्नांकित निष्कर्ष द्रष्टव्य है—'श्रीमती रजनी पनिकर के सभी उपन्यास लघु उपन्यास की श्रेणी में आते हैं। वे सब नारी के संबंध में हैं और उनके किसी भी उपन्यास में गुथ लापन या उलझन नहीं, अपितु एक सहज स्वाभाविक प्रवाह है। यों सभी उपन्यासों में नारी जीवन के पृथक पृथक पहलु या समस्यायें ली गयी हैं, अपने पात्रों के प्रति लेखिका की संवेदना और प्रतिपाद्य विषय के प्रति लेखिका की अधिकार की बात सभी रचनाओं में लगभग समान रूप से प्राप्त होती हैं।'[1] मानसिक चिन्तन के माध्यम से पात्रों के आंतरिक संघर्ष का चित्रण करना भी लेखिका का लक्ष्य रहा है।

श्रीमती बसंत प्रभा ने अपने उपन्यासों का प्रारंभ कथानक के अंतिम बिंदुओं से आरंभ कर शेष घटनाओं को 'फ्लैश बैक' (Flas back) के रूप में चित्रित किया है। 'सांझ के साथी' में पात्रों की बहिर्मुखी प्रवृत्तियों एवं घटनाओं के विविध उतार-चढाओं को प्रश्रय दिया गया है। इसमें खल नारी पात्र के आधीन में पले सम्मिलित परिवार की विडंबनायें प्रमुख विषय हैं तो 'अधूरी तस्वीर' में अनमेल दांपत्य-जीवन का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है।

---

१. चंद्रगुप्त विद्यालंकार-हिंदी कथा साहित्य में पंजाब का अनुदान : पृष्ठ ३२

श्रीमती कृष्ण सोबती इस अवधि की उदीयमान लेखिकाओं में विशिष्ट स्थान रखती हैं। क्योंकि इन्होंने 'डार से बिछुडी' शीर्षक आंचलिक उपन्यास का प्रणयन कर, लेखिकाओं द्वारा विरचित कथा–साहित्य की आधुनिकतम प्रवृत्ति के विकास में योग दिया। इनके उपन्यास में शिल्पगत नवीन प्रयोगों के आग्रह के कारण वस्तु पक्ष का सहज सौंदर्य उभर नहीं पाया।

श्रीमती लीला अवस्थी के उपन्यासों के पात्र संघर्षशील परिस्थितियों में पडकर समाज के द्वारा निर्धारित विधि–निषेधों के आगे सिर न झुका कर उनका सामना करते हैं। इनके 'दो राहें', तथा 'बिखरे काँटे' उपन्यासों में उच्च एवं निम्न वर्ग के बीच के संघर्षमय जीवन को चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों का खंडन किया है। दहेज–प्रथा के कारण मध्यवर्गीय परिवार की कन्याओं का अविवाहित रहना, जाति–पाँति के भेदभाव के कारण वैवाहिक जीवन की असफलता, अनमेल–विवाह के कारण युवा-विधवाओं की समस्यायें, बेकारी आदि का चित्रण करना लेखिका का उद्देश्य रहा है। इनके उपन्यासों के संबंध में डा. त्रिभुवनसिंह की उक्ति स्मरणीय है – "लीला अवस्थी के दो सामाजिक उपन्यास 'दो राहें' और 'बिखरे काँटे' मुख्यतः नारी वर्ग की यथार्थ जीवन-चर्या प्रस्तुत करते हैं। लेखिका द्वारा प्रस्तुत किये चित्र इसलिए विश्वसनीय हैं कि उन्हें उसने निकट से देखा और स्वयं उनका अनुभव किया है।"[1]

श्रीमती चंद्रकिरण सौनरेक्सा ने अपने उपन्यास 'चंदन चाँदनी' में रूढिग्रस्त जीवन मूल्यों की निरर्थकता पर प्रकाश डाला है।

श्रीमती अन्नपूर्णा ताँगडी ने नायिका प्रधान कथानकों की सृष्टि की है। 'निर्धनता का अभिशाप' में लेखिका ने समाज में आर्थिक विषमताओं के फल-स्वरूप उत्पन्न समस्याओं का चित्रण विस्तृत रूप से किया है। इसमें धनिक की तुलना में निर्धन लोगों की दयनीयता, विवशता आदि का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'चिता की धूल' में विजातीय विवाह, अविवाहित कन्या पर लगाये जानेवाले आरोप आदि मानवीय प्रवृत्तियों का चित्रण पाया जाता है। 'मिलनाहूति' में लेखिका का उद्देश्य आद्यंत हिंदू–मुस्लिम एकता की ओर ही रहा है। लेखिका ने सामाजिक विषमताओं की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए वर्ग–भेद, जाति भेद सांप्रदायिक वैमनस्य, पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा आदि समकालीन समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

---

१. डा. त्रिभुवनसिंह–हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद – पृष्ठ : ४९६

श्रीमती विमलवेद के 'ज्योति किरण' उपन्यास में जहाँ मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण है वहाँ 'अर्चना' में शोषक और शोषित के बीच होनेवाले संघर्ष का चित्रण करते हुए यह सिद्ध किया है कि मानव केलिए जीवन में धन-दौलत के अतिरिक्त प्रेम, ममता, सदाचरण आदि मानवीय गुणों का भी समावेश होना अत्यंत आवश्यक है। 'असली हीरा नकली हीरा' उपन्यास में भी लेखिका ने व्यक्ति के चरित्र का मूल्यांकन उसकी धन-दौलत के आधार पर न कर उसके आंतरिक मानवीय प्रवृत्तियों के विश्लेषण के आधार पर करने का संदेश दिया है।

कुँवरानी तारादेवी ने अपने 'जीवन-दान' उपन्यास में मार्क्सवादी विचार-धारा का समर्थन करती हुई मनहर, रेवा, महाश्वेता आदि प्रमुख पात्रों के द्वारा यत्र तत्र क्रांतिकारी विचार-धारा को व्यक्त किया है। इसी उपन्यास में उन्होंने प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य को अधिक महत्व दिया है।

श्रीमती उमादेवी ने अपने उपन्यास 'आलिंगन' में ऐतिहासिक वस्तु को कथानक के रूप में ग्रहणकर नारी के वीरांगना एवं साहसी रूप का चित्रण किया है। श्रीमती 'सुदेश रश्मि' ने अपने उपन्यास 'एक ही रास्ता' में बंगाल के इतिहास के कुछ विशिष्ट पृष्ठों को इतिवृत्त के रूप में स्वीकार कर इसके द्वारा राजपूत वीरों एवँ वीरांगनाओं के वीर्योचित कार्यों का उल्लेख किया है। श्रीमती शिवरानी विश्नोई ने 'भीगी पलकें' उपन्यास की भूमिका में अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि "यह उपन्यास इसी भावना को लेकर लिखा गया है कि पढी लिखी धनवान घर की सभी लडकियाँ बुरी नहीं होतीं, जो कोई भी भलाबुरा होता है वह परिस्थितियों के कारण ही है। देवी भी राक्षसी बन सकती है और राक्षस भी देवता बन सकता है।"[1]

श्रीमती सत्यवती देवी भैया 'उषा' के 'मृदुला' शीर्षक उपन्यास में, जहाँ आधुनिक समाज की पारिवारिक समस्याओं का विविधतापूर्ण चित्रण हुआ है और विजातीय प्रेम के मार्ग में आनेवाली अनेक समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है, वहाँ 'क्षितीज के पार' में हिंदी विधवा के आगे भारतीय समाज में उपस्थित होनेवाली समस्याओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है।

श्रीमती सुषमा भाटी ने 'गेट कीपर' में वासना और प्रेम के अंतर को प्रस्तुत कर, प्रेम को ही वरेण्य प्रमाणित किया है तो 'ममता' में घटनाओं

१, भीगी पलकें — दो शब्द : पृष्ठ : ग

को प्रधानता देकर केवल चमत्कार एवं मनोरंजन को उत्पन्न करना ही लेखिका का लक्ष्य रहा है।

शिवानी के 'मायापुरी' उपन्यास में वर्तमान भौतिकवादी युग में धन की महत्ता को स्वीकारते हुए यह बताया गया है कि मानसिक शांति धन आदि के द्वारा खरीदी नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त लेखिका ने उच्च वर्ग एवं मध्य वर्ग के बीच संघर्ष का चित्र प्रस्तुत किया है। 'कृष्णकली' उपन्यास में शिवानी ने कोढियों की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत करते हुए एक लावारिश कन्या के आगे उपस्थित होनेवाली विभिन्न समस्याओं का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। 'भैरवी' उपन्यास में पर्वतीय प्रांत के अंधविश्वासों तथा रूढ़िगत एवं नैतिक मूल्यों के फलस्वरूप व्यक्तियों के जीवन में होनेवाले अनर्थों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने भाग्य की मारी एक स्त्री के द्वारा अपने पति के उज्जवल भविष्य की कामना करती हुई अपने प्रेम तथा पत्नी होने के अधिकार को उत्सर्ग करने को भी चित्रित किया है।

इस प्रकार लेखिकाओं द्वारा सूचित स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास-वस्तुपक्ष की दृष्टि से अधिक सामाजिक एवं प्रौढ माने जा सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है इतनी अल्पावधि में लेखिकाओं के विचार-जगत में जो परिवर्तन एवं विकास हुआ है वह भी हिंदी उपन्यास-साहित्य के लिए कम देन नहीं है। चरित्र चित्रण के क्षेत्र में भी इन्हे आशातीत सफलता उपलब्ध हुई। आलोच्य उपन्यासों में नारी पात्रों का ही नहीं, पुरुष पात्रों का भी विशद एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से भी आलोच्य उपन्यासकर्त्रियों की देन महत्वपूर्ण है।

स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु उपन्यासों में वस्तु पक्ष

स्वातंत्र्योत्तर अवधि की तेलुगु लेखिकाओं में प्रमुखतया श्रीदेवी, मालती चंदूर, रंगनायकम्मा, तेन्नेटि हेमलता, कोडूरि कौशल्यादेवी, द्विवेदुला विशालाक्षी, यद्यनपूडि सुलोचनाराणी, कोमलादेवी, मादिरेड्डी सुलोचनाराणी, सी. आनंदारामम, डी. कामेश्वरी, वासिरेड्डी सीतादेवी, पवनि निर्मला प्रभावती, बीनादेवी, मल्लादि वसुंधरा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शोध प्रबंध की सीमा को दृष्टि में रखकर इन लेखिकाओं के सभी उपन्यासों को न लेकर, प्रतिनिधि उपन्यासों का वस्तुगत अध्ययन यहाँ पर क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीदेवी :

स्वर्गीय श्रीदेवी का एकमात्र सामाजिक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है 'कालातीतव्यक्तुलु' (काल से अतीत व्यक्ति) इस उपन्यास में इंदिरा स्वच्छंद विचार तथा विशिष्ट स्वभाववाली युवती है जो अपनी आय से पिता का भी पालन-पोषण करती है। उसके घर में प्रकाशम नामक वैद्य विद्यार्थी रहता है जो अपना ध्यान अपनी पढाई तक ही सीमित रखता है। लेकिन इंदिरा उससे परिचय बढाती है। प्रकाशम का एक दोस्त है कृष्णमूर्ति धनी एवं विलासी है और बी-एस. सी. का छात्र है। इसी कारण इंदिरा और कृष्णमूर्ति दोनों जल्द ही दोस्त बन जाते हैं। इसी बीच इंदिरा, अपनी सहेली कल्याणी को भी अपने घर में आश्रय देती है जो विश्वविद्यालय की छात्रा है। कल्याणी के पिता एक छोटे गाँव में रहते हैं। उसके विनम्र स्वभाव से प्रकाशम उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। जिससे इंदिरा ईर्ष्याग्नि में जलती है। इसी समय कल्याणी पिता के रोगग्रस्त होने का समाचार पाकर गाँव चली जाती है। इसी अवसर का

फायदा उठाकर इंदिरा अपने रूप जाल में प्रकाशम को फँसा लेती है। चंचल बुद्धिवाला प्रकाशम इंदिरा के वश में हो जाता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् भी प्रकाशम से उत्तर न पाकर कल्याणी प्रकाशम के स्वभाव को जान लेती है। कल्याणी के गाँव का मुखिया रामि नायुडू उसकी सहायता करने को तैयार होता है लेकिन स्वाभिमानिनी कल्याणी इसे स्वीकार नहीं करती। वह शहर जाकर नौकरी की तलाश करना चाहती है। संयोगवश रेलगाडी में कल्याणी की मुलाकात सहपाठिनी एवं धनी वसुंधरा से हो जाती है जो विशाखपट्टनम में अपनी विधवा चाची के साथ रहकर पढती है। कल्याणी दयनीय स्थिति को सुनकर उसे अपने घर में आश्रय देती हैं। कल्याणी के प्रति किये गये अन्याय से कृष्णमूर्ति इंदिरा और प्रकाशम से चिढ जाता है। और कल्याणी की सहायता करने जाता। उसी समय कल्याणी को देखने गाँव का मुखिया रामि-नायुडू भी आता है। दुर्भाग्यवश वहीं वह हृद्रोग का शिकार बन मर जाता है। उसकी चिकित्सा करने डा. चक्रवर्ती. कृष्णमूर्ति का दोस्त आता है। तभी कृष्णमूर्ति, डा. चक्रवर्ती, कल्याणी तथा वसुंधरा दोस्त बनते हैं। वसुंधरा की चाची इन दोस्तों से क्रुद्ध होकर, वसुंधरा को डाँटती हुई कल्याणी को भी खरी-खोटी सुनाती है। इस घटना के बाद कल्याणी दूसरे घर में रहने लगती है वसुंधरा, चाची से लडकर कृष्णमूर्ति से दोस्ती बढाती है। एक दिन कृष्ण-मूर्ति को इंदिरा द्वारा पता चलता है कि प्रकाशम गाँव जाकर अपने मामा का विरोध करने में असमर्थ होकर अपने कुल की लडकी से विवाह करना चाहता है। प्रकाशम, इंदिरा को चाहने के कारण, एक दिन मामा से कहे बिना इंदिरा के पास भाग आता है। लेकिन इंदिरा निर्धन प्रकाशम को भगा देती है। यों प्रकाशम, इंदिरा के मोह से छुटकारा पाकर वापिस चला जाता है। उसी समय इंदिरा के पिता जुआ खेलते समय पकड गया और जेल जाता है। वह कृष्णमूर्ति से कहती कि पिता के विलासपूर्ण जीवन के कारण ही वह विशृंखल बनी है और अपने जीवन से दुःखी भी नहीं है। कृष्णमूर्ति, इंदिरा के जीवन को संवारने के उद्देश्य से उसके आगे विवाह का प्रस्ताव रखता है। इंदिरा अपने स्वच्छंद जीवन में बाधा न डालने का वादा लेकर ही विवाह के लिए तैयार हो जाती है। वसुन्धरा से कहे बिना, कृष्णमूर्ति विवाह के लिए तैयार हो जाता है। वसुन्धरा इस समाचार को सुनकर कुछ समय तक संभल नहीं पाती है।

इधर कल्याणी और डा. चक्रवर्ती का परिचय बढ़ता है। डा. चक्रवर्ती बचपन से सौतेली माँ की देखरेख में पलकर कई यातनाओं को सहता है।

वह डाक्टरी पढ़ने के लिए मां की इच्छा के अनुसार एक धनी लड़की से विवाह करता है लेकिन चंद दिनों में ही वह मर जाती है। विधुर चक्रवर्ती, कल्याणी की जीवन गाथा सुनकर उससे विवाह करने को तैयार हो जाता है। अंत में डा. चक्रवर्ती तथा कल्याणी, इंदिरा तथा कृष्णमूर्ति का विवाह हो जाते हैं।

उपन्यास की घटनायें अत्यंत व्यवस्थित एवं स्वाभाविक बन पड़ी हैं। सभी घटनाओं को लेखिका ने अपनी कलात्मक प्रतिभा के द्वारा और भी आकर्षक बनाया है।

उपन्यास की विषयवस्तु सामाजिक होने पर भी मुख्यतः कुछ यौवन के उन्मादी प्रेमी-प्रेमिकाओं की रोचक कथा है। लेखिका ने अधिकतर पात्रों को यथार्थ के धरातल पर चित्रित कर उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास से प्रमुख पात्र इंदिरा, कल्याणी, प्रकाशम, कृष्णमूर्ति और डा. चक्रवर्ती के व्यवहार उनके पूर्व संस्कारों से अवश्य प्रभावित हुए से लगते हैं।

इंदिरा सहानुभूतिपूर्वक जिस कल्याणी से स्नेह बढाकर उसे अपने यहाँ लाती है उसी को स्त्री सहज ईर्ष्या द्वेष के कारण भगा देती है। अपने को जो अप्राप्य रहा है वह दूसरों के लिए प्राप्य न रहे यही उसके द्वेष का कारण है। प्रकाशम से अपने जीवन के बारे में कहती है—'स्त्री मन को तुम नहीं जानते प्रकाशम्। जीवन में मुझे चाहिए कुछ लेकिन मिलता है और कुछ इसीलिए मैं प्रतिकार के रूप में इस समाज को धिक्कारती हूँ। मुझे भी एक घर, परिवार तथा अपने कहलानेवाले पति तथा बच्चों की आवश्यता नहीं है, ऐसे मत समझो।'[1] सुखमय जीवन के ही लक्ष्य माननेवाली इंदिरा, कृष्णमूर्ति से कहती है—'इस संसार में हर बात में होड़ चलती है। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल डालती है। यदि मैं तुम्हें निगल डालने का प्रयत्न न करूँ तो तुम्हीं मुझे निगल डालोगे। इस संधि-युग में सभी कंबलों में छिपकर खाना खा रहे हैं। आदर्शों के लिए मर मिटने की लालसा मुझमें कतई नहीं है। यदि इस बात को लें तो हम सब एक ही बात के लिए आतुर रहते हैं—वह है सुखमय जीवन बिताना।'[2] इस आनंद की प्राप्ति के लिए इंदिरा सब कुछ करने को तैयार है। इंदिरा में राग-द्वेष बराबर दिखाई देते हैं। उसमें स्वानुराग ही दिखाई देता है न कि स्वसहानुभूति। उसमें स्वानुराग ने

१. कालातीत व्यक्तुलु – पृष्ठ : २०९
२. कालातीत व्यक्तुलु – पृष्ठ : २६९

ही पर-द्वेष का रूप धारण कर लिया है। वह प्रेम की तलाश में रही है लेकिन उसे 'काम' ही मिला। यही इंदिरा की करुण-गाथा है। डा. अरिपिराल विश्वम् इंदिरा के चरित्र के संबंध में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं–'इंदिरा की जीवन-यात्रा श्रृंगार भाव-शैथिल्य से आरंभ होकर क्रमशः उसमें नारी-शैथिल्य के रूप में परिणत हुई। यह इंदिरा की ऐसी विषाद-गाथा है जो दूसरों को विशद रूप से सुना भी नहीं सकती और स्वयं को भी उसमें विश्वास नहीं जमता। अभिशप्त लोग संसार को प्रतिकार के रूप में शाप देते हैं. इसी प्रकार इंदिरा भी। इंदिरा एक असाधारण काल की अतीत व्यक्ति है'[1] प्रकाशम् की दृष्टि में 'इंदिरा प्यास बुझानेवाली शीतल पानी के समान नहीं है। पेट में अग्नि उत्पन्न करनेवाली दास के समान है।'[2] कृष्णमूर्ति इंदिरा के जीवन के प्रति सोचता है कि 'यह कैसी लडकी भी क्यों न हो मगर है धैर्यवान्। व्यक्तित्ववाली युवती है। इसमें घृणा करने लायक क्या है। जीवन एक भूत के समान पीछे पडकर सताने लगा तो उल्टा उसका सामना कर रही है। उस भूत को स्वयं मारकर काट रही है।'[3]

कल्याणी, निर्धन होने पर भी स्वाभिमानिनी है और वह भाग्य के थपेडों को सहती हुई अंत में विधुर डाक्टर चक्रवर्ती की पत्नी बनती है।

प्रकाशम असंपूर्ण व्यक्तित्ववाला नहीं है। स्वयं अपने संबंध में प्रकाशम सोचता है 'बिना दरवाजे का घर, पहिये रहित गाड़ी, धनाभाव के कारण आधा बनाया गया घर के समान है।'[4] पहले कल्याणी से प्यार करने लगता है लेकिन इंदिरा के रूप जाल के मोह मे कल्याणी को भूल जाता है। उसमें इच्छायें तो हैं, लेकिन उनकी पूर्ति करने का साहस उसमें नहीं है। निर्णय लेना तो उसे आता नहीं है।[5] निर्धन होने पर जब वह इंदिरा द्वारा ठुकराया जाता है तभी वह जीवन में पछताता है। डा. अरिपिराल विश्वम् के शब्दों में 'प्रकाशम् दुहरा व्यक्तित्व 'स्लिप्ट-पेर्सनालिटी वाला है।'[6]

कृष्णमूर्ति धनिक एवं विलासी पुरुष है लेकिन सहृदय है। इसी कारण, जानते हुए भी कि वसुन्धरा उसे प्यार करती है, फिर भी इंदिरा से विवाह

---

१. तेलुगु नवला नूरु संवत्सरालु – तेलुगु नवला मनोविश्लेषण–पृष्ठ : ८४
२. कालातीत व्यक्तुलु – पृष्ठ : १४३ ३. कालातीत व्यक्तुलु–पृष्ठ : २७५
४. वही पृष्ठ : ४१ ५. वही पृष्ठ : १४६
६. तेलुगु नवला–नूरु संवत्सरालु–तेलुगु नवला मनोविश्लेषण–पृष्ठ : ८५

करना चाहता है। इसी बात को वह डा. चक्रवर्ती से कहता है–"मुझ में कई दुर्गुण हैं। लेकिन मैं नीच नहीं हूँ।– – – वसुन्धरा के घर तक जाने के योग्य भी नहीं हूँ। सब कुछ खतम हो गया। जीवन में कुछ चाहता हूँ, मिलता कुछ और है। इसी कारण इंदिरा को पाना ही अब मेरा कर्तव्य है।"[1] इंदिरा के व्यवहार से परिचित होकर भी उसे अपनाने का साहस करता है। कल्याणी की दयनीय अवस्था पर तरस खाकर अपनी सहृदयता का परिचय देता है।

डा. चक्रवर्ती विधुर है और सहृदयी भी है। वह कल्याणी के मृदु स्वभाव से प्रभावित होकर उससे विवाह करता है।

आनंदराव इंदिरा का पिता है। वह जीवन में मानिनी तथा मदिरा को ही सर्वस्व मानता रहा। बुढापे में असमर्थ होकर पुत्री पर निर्भर रहते हुए भी निश्चित जीवन बिताता है।

आलोच्य उपन्यास में इंदिरा तथा कल्याणी को शिक्षित-नारियों के रूप में चित्रित किया गया है। नौकरी करनेवाली शिक्षित नारियों के समक्ष उपस्थित होनेवाली समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। पुत्री की आय पर जीनेवाले उत्तरदायित्वहीन पिता के रूप में आनंदराव का चित्रण किया गया है।

उपन्यास में चित्रित पात्रों के मनोभावों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ लेखिका ने नारी-पुरुष संबंधी, प्रेम-विवाह संबंधी मान्यताएं किस प्रकार परिस्थितियों के प्रभाव से बदलती रहती हैं, इस पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है। इस प्रकार जीवन की वैविध्यपूर्ण समस्याओं का चित्रण करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति में इन्हें पूर्ण सफलता मिली हैं।

मालती चँदूर :

'रेणुकादेवी आत्मकथा' श्रीमती मालती चँदूर का एक सामाजिक उपन्यास है। इनकी प्रधान पात्री सिनेमा की अभिनेत्री रेणुकादेवी है जो धनी होने पर भी मानसिक अशांति का शिकार बनती है।

भीमली में हृद्रोग के अस्पताल में रामाराव एक डाक्टर है। एक दिन वह अपने दोस्तों से अभिनेत्री रेणुका की जीवन-गाथा को सुनाते हुए यह प्रकट

---

१. कालातीत व्यक्तुलु – पृष्ठ २९१

करता है कि रेणुका अपनी सारी संपत्ति सेवासदन के लिए दान में दे चुकी है, उस की गाथा यों सुनाता है।

हृद्रोग से पीडित रेणुका अपना अंतिम समय डा. रामाराव के नर्सिग होम में विताने के लिए मद्रास से आती है। रेणुका जानती है कि वह इस दुनियाँ के लिये चंद दिनों की मेहमान है। वहीं अपनी करुण गाथा डा. रामाराव को सुनाती है।

रेणुका निम्नवर्गीय परिवार की लड़की है। उसके पिता मारवाडी दुकान में गुमाश्ता है। आर्थिक परिस्थितियों की विषमताओं से उसके पिता चल बसते हैं। रूप-सौंदर्य के कारण रेणुका अभिनेत्री बनकर धन कमाने लगती है। जब से रेणुका धन कमाने लगती है, घर में गौरव तो मिलता है लेकिन व्यक्तिगत रूप से प्यार नहीं मिलता। उसका भाई पैसे मुफ्त में मिलने के कारण आलसी बन जाता है। रेणुका के ऊपर कडी निगाह रखी जाती है। इसी बीच रेणुका का परिचय कवि अनिल से हो जाता है। उसके प्रेम में पड कर रेणुका घर से भाग कर उससे विवाह कर लेती है। अनिल की एक विधवा वहिन तथा भतीजी श्यामला होती हैं। कुछ समय तक इनका वैवाहिक जीवन सुखमय बनता है। इस अवधि में रेणुका एक प्रतिष्ठित अभिनेत्री बनती है। अधिक संपत्ति के कारण पति विलासी बन जाता है। कुछ दिन पश्चात् वह अपनी बहन को तथा श्यामला को अपने ही घर लिवा लाता है। श्यामला के आने के पश्चात् उन दोनों में मनमुटाव पैदा हो जाता है। कुछ दिनों के अनंतर अनिल रेणुका की मां तथा उसके भाई को भी घर लाकर उनके साथ कपटपूर्वक प्रेम व्यवहार रचकर सभी के लिए रेणुका को शत्रु बनाने में समर्थ हो जाता है। रेणुका पति के व्यवहार से खीझकर अपने नाम पैसे जमा कराती है। एक बार वह अपनी बहन तथा जीजाजी को घर बुलाती है तो अनिल फिर उन्हें घर वापिस न भेजकर वहीं रोक लेता है और वह रेणुका की बहन तथा श्यामला के साथ अवैध संबंध भी स्थापित कर लेता है। श्यामला का विवाह एक बुद्दू युवक से करालर उसे भी घर में रखता है। रेणुका इन परिस्थितियों के कारण हृद्रोग का शिकार बन जाती। वह भीमूली जाकर चिकित्सा पाना चाहती है। भीमूली जाने से पहले अपनी जायदाद को सेवासदन के नाम लिखकर रजिस्ट्री करवा देती है। नर्सिग होम में अपनी जीवन-कहानी डा. रामाराव को सुनाकर यह अनुरोध करती है कि उसकी तबियत का समाचार किसी को न दिया जाय। रेणुका के इच्छानुसार

डा. रामाराव अपने मृदु व्यवहार से उसके अंतिम दिनों में शांति पहुँचाने की कोशिश करता है ।

इस उपन्यास की मुख्य पात्रा रेणुकादेवी है । वह साधारण परिवार की कन्या है । परंतु रूप-लावण्य के बल पर अभिनेत्री बनकर धन कमाती है । कवि को पति के रूप में पाती है फिर भी उसका दांपत्य-जीवन सुख एवं शांति से वंचित रह जाता है । एक अभागी अभिनेत्री के रूप में रेणुका का चित्रण हुआ है ।

अनिल कुटिल मनस्तत्ववाला है । रेणुकादेवी की मां तथा भाई रेणुका से अधिक उसके पैसों को ही महत्व देते हैं ।

लेखिका ने इसमें अभिनेत्री के गृहस्थ जीवन का वर्णन किया है । रेणुकादेवी धन के कारण, जीवन में छली जाती है । लोगों में वह विश्वास खो बैठती है और अपनी संपत्ति सेवासदस को सौंप देती है ।

धन के कारण सगे-संबंधी भी किस प्रकार नीचतापूर्ण व्यवहार करते हैं उसका जीता जागता वर्णन इसमें उपलब्ध हुआ है । श्यामला तथा रेणुकादेवी की बड़ी बहन स्वार्थी एवं चंचल स्वभाव वाली नारियाँ हैं, जो रेणुकादेवी के पैसों पर आधारित रह कर भी उसके पति से अवैध संबंध जोडने में लज्जित नहीं होती । उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है । इस दृष्टि से आलोच्य उपन्यास सफल कृति मानी जा सकती है ।

लेखिका ही 'मेघार मेलिमुसुगु' (बादलों का घूँघट) एक सामाजिक उपन्यास है । इसमें उच्च तथा निम्न वर्ग की समस्याओं का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

अनंतय्या तथा राजम्मा मध्यम वर्गीय परिवार की दंपत्ति हैं । काँतम, विशाला तथा अमृतं पुत्रियाँ हैं तथा राजशेखर पुत्र है । अनंतय्या लकवे का शिकार होता है तो राजम्मा घर का भार वहन कर लेती है । कांतम का विवाह एक क्लर्क रामाराव से तथा अमृतं का बालकृष्ण से होता है । विशाला की शादी अनजान में ही एक पागल युवक से कर देते हैं । इस कारण विशाला ससुराल जाने से इनकार कर देती है ।

रामाराव कामलोलुप व्यक्ति है और रोगग्रस्त पत्नी कांतम को सदा ससुराल भेजता है । लेकिन राजम्मा, रामाराव से कुछ पैसे देने का वादा कर,

कांतम को वापिस भेज देती है। उन रुपयों को जुटाने के प्रयत्न में ही वह दुर्भाग्यवश धनी व्यक्ति अरुणगिरी के कार के नीचे गिर कर मर जाती है। अरुणगिरी जमींदार उमापति की दूसरी पत्नी सावित्रम्मा का पुत्र है। उमा-पति को पहली पत्नी से सात लडकियाँ होने के कारण पुत्र की कामना से सावित्रम्मा से दूसरा विवाह करता है। लेकिन पुत्र के जन्म होने से पहले ही उमापति चल बसता है। तब से सावित्रम्मा पुत्र अरुणगिरि के लिए संपूर्ण संपत्ति को सावधानी से संभालने में लगी रहती है।

राजम्मा के परिवार की करुणकथा को सुनकर दयालु सावित्रम्मा उस परिवार को कुछ धन देने के लिए पुत्र से कहती है। राजम्मा के घर के सभी सदस्य केवल विशाला को छोडकर, उसके धन के लिए तडपते हैं। रामाराव, पैसे के लालच में पडकर ससुर तथा विशाला को अपने घर बुलाता है। परंतु उसके कुसंस्कारों से अवगत विशाला इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। तब अरुणगिरि द्वारा प्रोत्साहन पाकर मैट्रिक करती है। उसी की सहायता से वह अपने पागल पति से तलाक ले लेती है। धीरे-धीरे उन दोनों के बीच प्रेम बढता है। कुटिल रामाराव, अरुणगिरी और विशाला के बीच अनुचित संबंध को जोडकर अरुणगिरी की मां से कहता है। लेकिन सावित्रम्मा सत्य को जाने बिना पुत्र की निंदा करना नहीं चाहती। अरुणगिरी, विशाला को कॉलेज में भर्ती करवाता है। विशाला उससे अत्यंत प्यार करती हुई भी, उसके द्वारा विवाह का प्रस्ताव करने पर ठुकरा देती है। वह यह नहीं चाहती कि उसे विवाह कर अरुणगिरी अपने स्तर के लोगों में हास्यास्पद बने। सावित्रम्मा, विशाला के वियोग में अपने पुत्र को विकल देखकर एक दिन स्वयं विशाला को अपनी बहू बना कर घर ले आती है।

आलोच्य उपन्यास के मुख्य पात्र अरुणगिरी और विशाला हैं। अरुण-गिरी धनी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। विशाला से मैत्री होने के पहले वह लड़कियों को केवल भोग की वस्तु ही मानता रहा। उसका यह ख्याल था कि सभी लडकियाँ केवल धन के पीछे ही पागल होती हैं। लेकिन मध्य-वर्गीय युवती विशाला इस धारणा को झूठी सिद्ध कर उसके जीवन-मार्ग को ही बदल देती हैं।

विशाला एक मध्यवर्गीय स्वाभिमानी लडकी के रूप में चित्रित हैं। अपनी माँ की मृत्यु पर सच्चा शोक प्रकट करती है तथा उसके बदले में पैसों

को स्वीकार करने से इंकार करती है। अपने उच्च विचार एवं आदर्श प्रेम के कारण ही सावित्रम्मा के आदर के योग्य बनती हैं।

रामाराव, कामलोलुप एवं स्वार्थी हैं। सावित्रम्मा एक मध्यवर्गीय परिवार की लडकी होने पर भी जमींदार की पत्नी होने में गर्व का अनुभव करती हैं। इसीलिए चालीस बर्ष के अधेड उमापति से अपने सोलहवें साल में विवाह करने में संकोच का अनुभव न कर, अपना सौभाग्य ही मानती है।

इसके अतिरिक्त, अनंतय्याकांतम, अमृतम्, राजशेखर, राजम्मा आदि इस उपन्यास के गौण पात्र माने जा सकते हैं, जो उपन्यास की मूल-कथा के विकास में यथेष्ट योग देते हैं।

आलोच्य उपन्यास में एक ओर जहाँ मध्यवर्गीय परिवार की राज-म्मा अपने परिवार का भरण पोषण करने के लिए कई यातनाओं का सामना करती हुई चित्रित की गयी है तो दूसरी ओर संपन्न परिवार की सावित्रम्मा के द्वारा अपने एक मात्र पुत्र का अत्यंत सावधानी से पालन-पोषण करने का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। दोनों के मातृ-हृदय सामाजिक, आर्थिक प्रभावों से मुक्त प्रतीत ह ते हैं। लेकिन भाग्य के कठोर प्रहार ने राजम्मा को अरुण-गिरी की कार के नीचे लाकर कथा को एक नया मोड़ प्रदान किया। इस घटना के अभाव में उपन्यास की कथा का विकास ही रुक जाता। राजम्मा के परिवार के सभी सदस्यों पर घटना द्वारा दुख रूपी मेघों का बढिया घूँघट छा जाता है। अरुणगिरी इस घूंघट को हटाकर उनके जीवन को सुख शांति प्रदान करता है। इस प्रकार उच्च वर्ग तथा मध्यवर्ग के बीच के संघर्ष को चित्रित करना लेखिका का उद्देश्य रहा है। इस उपन्यास में परिस्थितियों के तथा समय के थपेडों की कसौटी पर खरी उतरनेवाली उच्च तथा मध्य वर्गीय प्रेमी-प्रेमिकाओं की कथा का चित्रण प्रस्तुत है।

मुप्पाल रंगनायकम्मा :

'कृष्णवेणी' लेखिका का एक विशिष्ट उपन्यास है। स्त्री-पुरुष अथवा पति-पत्नी के परस्पर संबंध तथा मान्यतायें इस उपन्यास के मुख्य आधार हैं। इसमें यह भी सिद्ध किया गया है कि विवाह और प्रेम जीवन के दो भिन्न एवं मुख्य पहलु हैं। उन दोनों के द्वारा ही दांपत्य जीवन सुखपूर्ण एवं सार्थक बन सकता है।

कृष्णवेणी उपन्यास की नायिका है। कालेज में पढते समय माधव एक इंजिनियर से परिचय होता है। धीरे-धीरे दोनों का परिचय प्रेम में परिणत हो जाता है। दोनों शिक्षित हैं। अतः माधव वर्णांतर विवाह, पत्नी के रहते हुए भी अन्य स्त्री से विवाह आदि बातों के संबंध में कृष्णवेणी के विचारों से अवगत होता है। माधव एक पात्र द्वारा अपनी जीवन-गाथा प्रस्तुत करता है कि वह विवाहित है और उसकी पत्नी अरुणा शिक्षित एवं घमंडी है। लेकिन उस से पत्नी का नाता नहीं है। यह पढकर कृष्णवेणी पहले अत्यंत क्रोधित एवं खिन्न होती है। लेकिन बाद में अपना निश्चय बदल कर, पढाई समाप्त होते ही माधव के पास जाने का निश्चय कर लेती है। तो कृष्णवेणी की सहेलियाँ रेणु और शांता, कृष्णवेणी को समझाती हैं कि विवाहित पुरुष से, उसकी पत्नी के रहते हुए फिर से विवाह करना अनुचित है। तब कृष्णवेणी संकट में पड जाती है। अंत में पत्र के द्वारा अपना निर्णय सूचित करती है। माधव, कृष्णवेणी के पास आकर प्रेम की याचना करता है। परंतु कृष्णवेणी का विवाह श्यामसुन्दर से हो जाता है। दोनों सुखी जीवन बिताने लगते हैं। उधर अरुणा भी अपने दोष पर पछताकर पति माधव के पास आ जाती है। दोनों का वैवाहिक जीवन सुखमय बन जाता हैं।

एक दिन कृष्णवेणी का पति श्यामसुन्दर माधव द्वारा पत्नी के नाम पत्र पढकर उसे शंकित करता है तो कृष्णवेणी अपने तथा माधव के बीच की संपूर्ण पूर्वकथा को सुनाकर अंतिम निर्णय श्यामसुन्दर के ऊपर छोड देती है।

लेखिका ने इस उपन्यास में दो प्रकार के अंत प्रस्तुत किये हैं। सुखांत रूप में श्यामसुन्दर कृष्णवेणी को क्षमा कर देता है। दुखांत रूप में कृष्णवेणी को श्यामसुन्दर क्षमा नहीं कर पाता। लेखिका ने अंतिम निर्णय पाठकों पर छोड दिया हैं।

'कृष्णवेणी' वस्तुपक्ष की दृष्टि से साधारण कृति होती हुई भी शैली-पक्ष की दृष्टि से तेलुगु में विशिष्ट उपन्यास प्रमाणित हुआहै, क्यों कि पत्रात्मक-शैली में लिखा गया यह एक मात्र उपन्यास है। इसी कारण चरित्र-चित्रण का तथा कथा का विस्तार वर्णन लेखिका नहीं कर पायीं।

कृष्णवेणी, उपन्यास का प्रमुख पात्र है। अल्पावधि के लिए ही वह जीवन में संघर्ष का अनुभव करती है। बाद में श्यामसुन्दर से विवाह करती और कुछ दिन सुखी भी रहती है। लेकिन माधव का पत्र, श्यामसुन्दर को

मिलने के कारण उसका जीवन अनिश्चित हो जाता है । इस प्रकार का उतार चढाव आरंभ में माधव के जीवन में दृष्टिगोचर होता है लेकिन उसकी पत्नी अरुणा, उसके जीवन में लौट आती है तो वह कृष्णवेणी को भूल जाता है । वास्तव में कृष्णवेणी की अपेक्षा अरुणा के द्वारा ही महान् संदेश प्रस्तुत किया जा सकता है । परंतु लेखिका ने अरुणा के चरित्र-चित्रण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है ।

उद्देश्य की दृष्टि से इसका अपना महत्व है । इसमें नारी और पुरुष के प्रेम–संबंधी प्राचीन एवं अर्वाचीन मान्यताओं का चित्रण है । आजकल की शिक्षित नारी किसी पुरुष से स्वतंत्र रूप से प्रेम करती हुई भी परंपरागत श्रृंखलाओं में जकडे रहने के कारण उसके मन में उत्पन्न आंतरिक संघर्ष का शिकार बन जाती हैं । बहु-पत्नी-प्रथा, व्यभिचार खंडन विजातीय विवाह का समर्थन आदि इस उपन्यास के प्रमुख समस्यायें हैं ।

'पेकमेडलु' (ताश के महल) लेखिका का बहुचर्चित सामाजिक उपन्यास है । एक कन्या के भावी जीवन से संबंधित मधुर स्वप्नों की तुलना ताश के महलों से की गई है ।

भानुमती अपने चचेरे भाई केशव के साथ हाईस्कूल में पढती है । केशव को भानुमती के प्रति अपनी सगी बहिन शारदा से भी अधिक प्यार होता है । भानुमती धनाभाव के कारण कालेज–शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती । वह अपने वैवाहिक जीवन के संबंध में सुंदर महल बनाकर उसमें खो जाती है । उसका विवाह राजशेखर से हो जाता है। वह शिक्षित होने पर भी कुसंस्कारवान है । एक साल पश्चात् उनका एक पुत्र होता है । केशव भी उसी शहर में उच्च शिक्षा प्राप्त करने केलिए आ जाता है । केशव इसी विश्वास में रहता है कि भानुमती का वैवाहिक जीवन सुखी है । लेकिन जब उसे पता चलता है कि राजशेखर जुआरी है तथा कुसंग में पडकर पत्नी और पुत्र की उपेक्षा करता है, तब वह उनकी इस स्थिति को सुधारने का असफल प्रयत्न करता है। उल्टे झूठी निंदाओं का शिकार होना पडता है ।

इसी अवधि में भानुमती की नानी मर जाती है और उसके द्वारा दो हजार रुपये भानुमती को मिलते हैं । नीच बुद्धिवाला राजशेखर उन पैसों को हडपने केलिए पत्नी से मधुर व्यवहार का ढोंग रचता है । लेकिन भानुमती उसकी कुटिल नीति से अवगत होकर पहले ही संभल जाती है । इस कारण

भानुमती को पति द्वारा कई यातनायें सहनी पडती हैं। अंत में भानुमती इस जीवन से विरक्त होकर आत्महत्या करने का निश्चय कर लेती है। आत्महत्या करने से पूर्व केशव के नाम एक पत्र लिखकर वह अपनी अंतिम इच्छा प्रकट करती है कि अपने पुत्र को वह गोद ले। लेकिन माँ के अभाव में बच्चा भी इस संसार से मुक्ति पा लेता है। इतना होने के पश्चात् राजशेखर अपनी होश में आता है। तब अपनी पत्नी तथा पुत्र के प्रति अपनी उपेक्षा एवं निर्मल व्यवहार केलिए पछताने लगता है।

इस प्रकार एक नीच एवं संस्कारहीन पति के कारण, एक स्त्री का अमूल्य जीवन–महल, मिट्टी में ढह जाता है।

इस उपन्यास की कथा मुख्यतः तीन पात्रों से संबंधित है–राजशेखर, भानुमती तथा केशव।

राजशेखर शिक्षित होने पर भी संकुचित एवं व्यसनी है। वह स्त्री स्वतंत्रता का विरोधी है। उसकी दृष्टि में विवाहित स्त्री का कोई व्यक्तित्व ही नहीं होता। एक बार अपनी पत्नी से कहता है–"हाँ। व्यक्तित्व ! अपने पेट की रोटी केलिए किसी और पर निर्भर रहनेवाली केलिए व्यक्तित्व ? ओह बढिया कह रही हो। भूख लगने पर रोटी भी न कमा सकनेवाली स्त्री केलिए व्यक्तित्व, स्वतंत्रता, इच्छायें, आदर्श ।"[1] उक्त कथन द्वारा राजशेखर का संकुचित एवं अहंभावी हृदय का पता चलता है। ऐसा प्रतीत होता है उसके मन में प्यार केलिए कोई स्थान ही नहीं है इसी कारण वह अपने पुत्र के प्रति कहता है कि "इस बुद्दू के पैर टूट जायें और यह लंगडा हो जाए तो अच्छा होता।"[2] पितृ–हृदय में जो ममता, प्यार आदि गुण होने चाहिये वे राजशेखर में नहीं हैं।

भानुमती, राजशेखर की धर्मपत्नी है। भारतीय समाज में अत्याचारी एवं व्यसनी पतियों के कारण जिन गृहिणियों के मधुर स्वप्न ताश के महल बन जाते हैं – उनके प्रतिनिधि के रूप में भानुमती का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। उसे पति का प्यार अप्राप्य है। भानुमती सोचती है कि स्त्री को अपना व्यक्तित्व बनाये रखने केलिए आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र रहना चाहिए। लेकिन एक स्थान पर भानुमती स्वयं कहती है कि फिर भी भारतीय समाज इतना

१. पेकमेडलु – पृष्ठ : ११४
२. पेकमेडलु – पृष्ठ : ६१, ८२

उदार नहीं हैं कि किसी स्त्री को स्वतंत्र–जीवन यापन करने पर उसे सहृदय-पूर्वक अपना सके ।[1]

इसी कारण भानुमती एक मूक बलिपशु ही बन जाती है। उसका जीवन एवं आकांक्षायें ताश के महल के समान मिट्टी में मिल जाते हैं ।

इस प्रकार लेखिका ने नारी जीवन का एक पहलू यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है । लेकिन भानुमती को किसी उच्च एवं अनुकरणीय पात्र के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया । केवल लेखिका ने पुरुष वर्ग के प्रति अपना आक्रोश भर व्यक्त किया है । उक्त विचार को स्पष्ट करनेवाला इस उपन्यास का यह कथन द्रष्टव्य है –"जो व्यक्ति स्त्री के वेश तथा भाषा में सभ्यता एवं शिष्टता की अपेक्षा रखता है वह उसे मानसिक रूप से विकसित होने का अवसर क्यों नहीं देता ?" इस प्रकार लेखिका ने भानुमती के माध्यम से भारतीय स्त्रियों का आक्रोश तो प्रकट किया लेकिन उसका सही समाधान प्रस्तुत नहीं कर पायीं ।

इस उपन्यास का एक और मुख्य पात्र है केशव, इस समाज में राजशेखर जैसे युवक ही नहीं हैं बल्कि केशव जैसे उच्च आदर्शवाले युवक भी है । केशव भानुमती का चचेरा भाई है। एक भाई के नाते वह अपना असीम प्यार भानु-मती को देता है । भानुमती के कष्टों को दूर करने केलिए वह भरसक प्रयत्न करता है । लेकिन असफल रह जाता है । वह भानुमती की मृत्यु का समाचार सुनकर रो पडता है ।

केशव सदियों से चले आनेवाले स्त्री पर पुरुष का आधिपत्य का कट्टर विरोधी है । इस उपन्यास में वह स्त्री-जागरण का समर्थन करते हुए उक्त विचार की पुष्टि करता है ।[2]

---

२. "हमारा समाज किसी स्त्री के अकेले स्वतंत्र–निर्वाह को सहन नहीं कर सकता । हमने उतनी प्रगति नहीं की ।" पेकमेडलु – पृ. १५९

१. 'भानू ! सैकड़ों वर्षों से बहनेवाला यह सनातन खून का प्रभाव कब सूख सकेगा ? उसके लिए कुछ पीढियों की आवश्यकता है । प्रगति–पथ में अग्रसर होनेवाली स्त्री तेजी से आगे बढती जा रही है किंतु उतनी ही तेजी से पुरुष अपने अधिकारों को त्यागने में असमर्थ है । इस मानसिक संक्षेप का यही कारण है ।' पृष्ठ : १३४

केशव की चारित्रिक–विशिष्टता पर प्रकाश डालती हुई भानुमती एक स्थान कहती है – "तुम में एक विशिष्टता है। तुम पर विश्वास करनेवालों को तुम कभी धोखा नहीं देते हो, तुम से प्यार करनेवालों को तुम कभी द्वेष नहीं कर सकते। तुम्हें चाहनेवालों को तुम कभी भी ठुकरा नहीं सकते।"[1]

इस प्रकार केशव एक सहृदय, सच्चरित्र, सरल एवं उदार स्वभाववाला व्यक्ति है।

लेखिका इस उपन्यास में युग युग से सनातन विचार-धारा का अंधाधुंध अनुकरण करने के विरोध में, स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्ष में, तथा स्त्री की स्वतंत्र व्यक्ति की स्थापना पर बल देती है। यह भी वे स्पष्ट करती हैं कि आज की स्त्री में परिवर्तन आ रहा है। यह परिवर्तन व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामाजिक भी है। लेकिन उसके अनुरूप पुरुष में वांछित परिवर्तन नहीं आ रहा है। इसी कारण पारिवारिक जीवन में सुख–शांति मिटने लगी है।

लेखिका आजकल की विवाह–व्यवस्था पर अपने निजी विचार भी व्यक्त करती है।[2] समाज के सामने लेखिका यह प्रश्न उठाती है कि भानु की दुखभरी जीवन–गाथा का कारण केवल उसका भारतीय स्त्री के रूप में जन्म लेना ही है?"[3] लेकिन लेखिका ही इस प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती हैं कि "फिर से कुछ पीढियों के पश्चात्, जब पुरुष, स्त्री को गौरव–दृष्टि से देखे, पति अपनी पत्नी से प्यार करने लगे, इन शरीरों में अधिकार की प्यास का अंत हो, प्रत्येक सनातन रक्त की बूंद हवा में मिलकर उड जाय, तेरा–मेरा, ज्यादा–कम आदि भेदभाव मिट जायें फिर भी परिवार शांति-आलय बने रहें, हर एक स्त्री के हृदय में आनंद घर कर लेने पर, व्यक्ति व्यक्ति के रूप में जीने लगे तब मैं स्त्री बनकर जन्म लेना चाहती हूँ।"[4]

---

१. पेकमेडलु–पृष्ठ ५८

२. 'न्याय को स्वीकारने में पुरुष क्यों इतना मूर्ख बनता है? 'विवाह' कहलाने वाले कार्य का वास्तविक अर्थ क्या है? इस सृष्टि की आगामी पीढियों को बढावा देने तथा अपनी जगह पर कुछ जीवों को पृथ्वी पर छोडकर स्वयं मिट जाने के पवित्र निर्वाह को ही क्या विवाह कहा जाता है? इस प्राकृतिक–कर्तव्य के निर्वाह में स्त्री–पुरुषों के बीच भेदभाव को क्या दूर नहीं किया जा सकता? क्या विवाह के साथ ही स्त्री, पुरुष के लिए, बिक जाती है?" – पेकमेडलु, पृ. १३४–१३५

३., ४. पेकमेडलु – पृ. १८०–१८१, १७८

उपन्यास के अंत में भानुमति के प्रति पाठकों के मन सहानुभूति तथा राजशेखर के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है। निष्कर्षतः उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास प्रभावात्मक ही सिद्ध हुआ है।

श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा का 'बलिपीठमु' (बलि-पीठ) उपन्यास दुखांत उपन्यास है जो सन् १९६५ ई. 'आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी' द्वारा पुरष्कृत हुआ। इसका कथ्य समाज-सुधार से संबंधित है।

इसमें समाज को एक बलि-वेदी के रुप में चित्रित किया गया है। उपन्यास का सार यों है – अरुण एक ब्राह्मण परिवार की शिक्षित युवती है। वह बाल-विधवा भी इस का ज्ञान होने पर मानसिक वेदना के कारण हृद्रोग का शिकार हो जाती है। उसकी यह उत्कंठ इच्छा होती है कि वह सुहागिन के रुप में प्राण छोडें। तभी अपने ही रिश्तेदारों के द्वारा उसका परिचय भास्कर से होता है जो एक हरिजन है।

वह करुण-समाज का सदस्य तथा समाज-सुधारक भी है। एक हरिजन युवती तारा से प्रेम करते हुए भी, हृद्रोग से पीडित बाल-विधवा की अंतिम इच्छा को पूर्ण करने के संकल्प से अरुणा से विवाह कर, वर्णांतर का आदर्श भी प्रस्तुत करता है। माता-पिता के देहांत के कारण अरुणा बचपन से अपने मामा-मामी के पास रहती है। वे अरुणा का विवाह भास्कर से करवाना नहीं चाहते, क्योंकि अरुणा की नौकरी से उन्हें वंचित होना पडेगा। लेकिन अरुणा की चिकित्सा करवाकर भास्कर, उस से शादी कर लेता है। अरुणा यथावत् नौकरी कर लेती है। ज्योति के जन्म तक उन दोनों का वैवाहिक जीवन सुखमय रहता है। दो साल पश्चात प्रशिक्षणार्थ बंबई जाता है। और वह अपने भतींजे गोपी को पढने के लिए अरुणा के पास छोड जाता है।

पति के बंबई जाने के पश्चात् अरुणा, गोपी के साथ मामी के घर पहुंचती है। वहाँ पर वे लोग अरुणा के कान भरते हैं कि हरिजन लोग अछूत होते हैं, कुछ दिन पश्चात् ज्योति भी समाज से बहिष्कृत हो जायेगी। तब से अरुणा में 'अहं' पैदा होता है और वेतन से कर्ज चुकाने के बदले अनावश्यक खर्च करने लगती है। गोपी को अछूत के रूप में ही मानने लगती है। भास्कर बंबई से लौट कर अरुणा के व्यवहार से हताश हो जाता है। फिर भी उसके स्वास्थ्य को दृष्टि में रख कर उसे समझाने की कोशिश करता है।

अरुणा, भास्कर द्वारा मना करने पर भी उसकी डायरी पढकर तारा के प्रेम व्यवहार को जान लेती है। इस से शादी के बाद के भास्कर तथा तारा के पवित्र संबंध को भी शंकित दृष्टि से देखने लगती है। भास्कर अपनी बहिन सीतम्मा की पुत्री लक्ष्मी के आने पर तथा उन दोनों के अनुराग पूर्ण व्यवहार को भी, अरुणा शंकित करती है। इन्हीं शंकाकुल अरुणा के व्यवहार से भास्कर क्रोधित होकर उसें थप्पड मारता है। भास्कर अपमानित होकर भी, लिखित आश्वासन देकर अरुणा को तथा बच्चों को घर वापिस ले आता है। थोड़े दिनों के बाद ही अरुणा, भास्कर के ऊपर युवतियों के साथ घूमने का झूठा आरोप करके फिर से मामा के घर चली जाती है। अपने मामा-मामी के बहकावे में आकर पति को तलाक देने के लिए तैयार हो जाती है। भास्कर और करुण-समाज के महर्षि द्वारा समझाने पर भी नहीं समझता। अदालत का फैसला तो भास्कर के अनुकूल ही रहता है। फिर भी अरुणा, पति के साथ जाने से इनकार कर देती है जिससे वह, बच्चों को अरुणा के पास छोड़कर स्वयं करुण-समाज-सेवी बनकर पीडित लोगों की सेवा में तत्पर हो जाता है। तारा भी, अपने पति के आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् करुण-समाज में सेविका बन जाती है।

इधर अरुणा को फिर से हृद्रोग का दौरा पड जाता है। रोग के कारण नौकरी भी छूट जाती है। धन के अभाव में उसके मामा-मामी भी उसके प्रति उदासीन होते हैं। तब वह पश्चात्ताप की अग्नि में दहकने लगती है। भास्कर परोक्ष रूप से पत्नी के स्वास्थ्य को जानकर प्रकृति आश्रम में उसकी चिकित्सा करवाता है। मानसिक ग्लानि के कारण अरुणा स्वस्थ नहीं हो पाती। अंत में भास्कर से क्षमा याचनाकर बच्चों को उसे सौंप देती, पति उसे क्षम्य कर देता, उसी आनंद में वह मृत्यु को पा जाती है। इस प्रकार भास्कर जो आदर्शों के नाम पर सैकडों प्राणियों को बलिवेदी से विमुक्त कर सका वही भास्कर उन्हीं आदर्शों के बोझ से भयंकर बलिवेदी का शिकार बन जाता है।

इस प्रमुख कथा के साथ एक उपकथा भी चलती है। प्रमुख कथा में विजातीय विवाह में असफल परिणाम को दर्शाया गया है, लेकिन उपकथा में अमला जो, अरुणा की चचेरी बहिन है, उसका विवाह जार्ज के साथ करवा कर, उनका सफल वैवाहिक जीवन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार लेखिका यह स्पष्ट करना चाहती है कि विजातीय विवाहों की सफलता, उनके समझौतेपूर्ण व्यवहार-कुशलता पर निर्भर रहती है।

इस उपन्यास की घटनाओं के विकास क्रम को परखने से यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास के कथानक के विकास में परिस्थितियों ने यथेष्ट मात्रा में योग दिया है। साधारण परिस्थितियों में अरुण के समान स्वभाववाली ब्राह्मण विधवा एक हरिजन से विवाह करना कदापि नहीं चाहेगी। लेकिन उसके हृद्रोग की पीडा, सुहागिन के रूप में मरने की उत्कट इच्छा तथा हरिजनों में भी असाधारण व्यक्तित्ववाले भास्कर से परिचित होना आदि के कारण ही उसका विवाह संभव हो सका है। अरुणा से विवाह करने के लिए भास्कर तारा के प्रति अपने प्रेम को त्याग देता है। इस त्याग की पुष्टि भी यथार्थ के धरातल पर कराई गई है।

इस उपन्यास से प्रमुख पात्र हैं: भास्कर तथा अरुणा भास्कर उच्च आदर्शों से प्रेरित निम्नकुल का होने पर भी विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है। सहृदयता, सहनशीलता, दयार्द्र एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व आदि से युक्त होकर मानवता की कसौटी पर खरा उतनेवाला यह पात्र, लेखिका की निराली सृष्टि है। स्वयं अरुणा ने सुहाग की रात भास्कर की डायरी में उसके संबंध में अपने विचारों को यों दर्ज भी किया है कि' — —एक पूर्ण मनुष्य को तथा सच्चे मानव को मैं अपने पति के रूप में पा सकी हूँ। — — भारतीय नारी के रूप में जन्म लेकर बचपन में ही अपने सुहाग के मिट जाने से, सुहागिन बनने के लिए तडपनेवाली मुझ जैसी अभागिन को सुहाग-रूपी भिक्षा प्रदान करने वाला त्यागमूर्ति है। यह खोखली प्रशंसा नहीं है।"[1] परंतु देखा जाता है कि प्रत्यक्ष जीवन में अरुणा भास्कर के साथ वैस व्यवहार नहीं कर पाती जैसे उसने लिखा है, क्योंकि बंगई से लौटने के पश्चात् भास्कर को अरुणा में निहीत छुआछूत एवं जाति-पांति की भेद-भावना का पता चलता है। तो उसे समझाने की लेष्टा करता है। परन्तु अरुणा से तलाक का प्रस्ताव सुन अवाक् रह जाता है। न्यायालय में अपने अनुकूल अंतिम निर्णय सुनाये जाने पर भी अरुणा की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ रहना भास्कर पसंद नहीं करता है। लेकिन अरुणा के अंतिम दिनों में परोक्षरूप से पत्नी की सहायता करके अपने विशिष्ट एवं आदर्शमयी व्यक्तित्व का परिचय प्रस्तुत करता है। तथा उसके द्वारा क्षमा मांगे जाने पर कहता है—'मैं तुम्हें पूर्ण मन से क्षमा कर रहा हूँ। हमारे बच्चों की कसम। तुम धैर्य धारण करो।'[2] इस कथन के द्वारा उसकी क्षमा-

१. बलिपीठमु—पृष्ठ : १२४
२. बलिपीठमु — पृष्ठ : ३९७

शीलता का परिचय भी मिलता है। इस प्रकार अंत तक भास्कर स्वाभिमान मानवतावाद एवं आदर्शों की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रकट होता है।

अरुण का चरित्र-चित्रण तो यथार्थवादी बन पड़ा है। आरंभ में यद्यपि हरिजन भास्कर से विवाह करने का साहस प्रदर्शित करती है तो भी उसके पश्चात पति से घृणा करने लगती है। इसमें उसके मामा-मामी का भी हाथ रहता है। अरुणा की इस दुर्बलता पर पाठक में कभी क्रोध उत्पन्न होता है तो कभी सहानुभूति। अतः अरुणा का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक एवं सजीव ही माना जा सकता है। अरुणा की इस मानवीय दुर्बलता से अवगत होने के कारण ही भास्कर उसे क्षमा कर देता है। अंतिम क्षणों में अरुणा का हृदय अपने किये पर पछताकर विशुद्ध हो जाता है। अतः भास्कर से क्षमा-याचना करती हुई अपने दोषों को स्वीकार भी कर लेती है।[1]

उपन्यास की अंतर कथा के मुख्य पात्र हैं जेम्स तथा अमला। जो विजातीय विवाह करते हैं, लेकिन पति-पत्नी में समझौता रहने के कारण अपने जीवन को सुखमय बना लेते हैं। इस प्रकार जेम्स तथा अमला के पात्रों के द्वारा लेखिका ने प्रधान पात्रों के गुण दोषों का तुलनात्मक परिचय प्रस्तुत किया है। अरुणा के मामा-मामी समाज के स्वाभाविक विकास में विघ्न-बाधाओं को उपस्थित करनेवाले व्यक्तियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। अतः उनका चरित्र-चित्रण भी वास्तविक तथा स्वाभाविक ही सिद्ध हुआ है।

उपन्यास के उद्देश्य के संबंध में लेखिका का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है – "आजकल की सामाजिक परिस्थितियों को तथा गुण-दोषों को यथार्थ रूप में चित्रित कर समाज के आगे प्रस्तुत करना ही मेरा उद्देश्य है।"[2] विजातीय विवाहों की सफलता तथा असफलता के कारणों को प्रतिबिंबित करनेवाला यह उपन्यास अत्यंत सफल सिद्ध हुआ है। लेखिका ने यही सिद्ध किया कि दृढ़ चरित्र एवं उच्च आदर्शवाले व्यक्ति जैसे भास्कर ही समाज की कुरीतियों का डटकर सामना कर सकते हैं। लेकिन अरुणा जैसी व्यक्तित्व वाली पात्रा सामाजिक कुरीतियों के प्रवाह में बह जाती हैं। भास्कर पात्र के माध्यम से लेखिका ने ग्रामदेवता के त्योहार में होनेवाली जीव-हिंसा, बहु-देवताराधना तथा रूढ़िग्रस्त आचार-विचारों का खंडन भी किया है।

---

१. बलिपीठमु – पृष्ठ : ३९१ २. बलिपीठमु – भूमिका से उद्धृत

इस उपन्यास में हरिजन भास्कर का विवाह ब्राह्मण कन्या अरुणा से करवाना, 'करुण–समाज' के सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि लेखिका पर गाँधीवाद के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

वस्तुपक्ष की दृष्टि से आलोच्य उपन्यास सशक्त उपन्यास है। वर्तमान समाज के ज्वलंत प्रश्नों को उठाकर कुछ समाधान भी अपनी ओर से लेखिका ने प्रस्तुत किये हैं। अंत में आलोच्य उपन्यास की उपादेयता के संबंध में तेलुगु कथासाहित्य के मूर्धन्य कलाकार एवं आलोचक श्री कोडवटिगंटि कुटुंबराव जी का कथन उल्लेखनीय है – "बलिपीठमु के पात्रों की समस्याओं का अत्यंत निकट संबंध समाज के वर्तमान तथा भविष्य से अवश्य रहता है। वर्तमान में समाज के भूत और भविष्य के बीच संघर्ष चलता रहता है। जब भी भूत की विजय होती है, समाज की प्रगति एक पग पीछे हट जाती है। जब भविष्य की विजय होती है तब वह एक पग आगे बढ जाता है।"[१]

'स्त्री' रंगनायकम्मा का एक विशिष्ट सामाजिक उपन्यास है। इस में लेखिका ने बदलते हुए समाज में पाये जाने वाले स्त्री के विभिन्न रूपों का चित्रण प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास की कथा तीन परिवारों के मध्य चलती है। उनमें ईश्वरसोमयाजी नामक तहसीलदार का परिवार है। जिस में उनकी पत्नी कामेश्वरम्मा तथा उनका बेटा चलपतिराव और बेटियाँ पद्मजा, सुजाता हैं। दूसरा चलपतिराव का परिवार है जो समाज के धनी वर्ग का प्रतिनिधि है, रघुबाबु उनका इकलौता बेटा है। तीसरा परिवार एक साधारण स्कूल मास्टर रामनायक का है, सूर्यम, पार्वती, और रुक्मणी उनके पुत्र, पुत्रियाँ हैं।

पद्मजा, पार्वती तथा रघुबाबु बचपन के सहपाठी हैं। पद्मजा स्वतंत्र विचार वाली निर्भीक लडकी है। पार्वती होशियार होने पर भी संकोच स्वभाववाली है। रघुबाबु कायर व्यक्ति है। रघुबाबु पार्वती से प्यार करता है इस तथ्य को रघुबाबू के माता पिता भी जानते हैं और पार्वती को बहू के रूप में देखने की अभिलाषा भी प्रकट किया करते हैं। पद्मजा स्कूल-फाइनल की परीक्षा में अधिक अंको से उत्तीर्ण होकर डाक्टरी पढने का संकल्प रखती है। वह सनातन ब्राह्मण परिवार की है। तो भी उसके पिता कालेज शिक्षा के लिए अनुमति देते हैं।

---

१. बलिपीठमु तृतीय संस्कारण–भूमिका से उद्धृत

आकस्मिक रूप से पार्वती की माँ का देहांत हो जाता है तथा उसी समय ही उनके पिता नौकरी से अवकाश ग्रहण करते हैं। इस प्रकार परिस्थितियों के बदलने के कारण चलपतिराव अपने बेटे रघुबाबू का विवाह अन्यत्र करने को सोचता है। रामनायक अपनी जायदाद बेचकर किसी प्रकार रघुबाबू से पार्वती का विवाह करना चाहते हैं। लेकिन शिक्षित एवं विवेकी होने के कारण पार्वती इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। रघुबाबू, पार्वती से अत्यधिक प्यार रखते हुए माँ बाप के विरूद्ध कुछ करने में असफल होकर अंत अमीर लडकी सुशीला से विवाह कर लेता है।

इधर पद्मजा के पिता की सहायता से पार्वती क्लर्क बन कर अपने परिवार को संभालने लग जाती है। पार्वती के दुखमय जीवन में एक मात्र सहेली पद्मजा रह जाती है। पार्वती के पिता का देहांत भी हो जाता है। वह कठिनता से भाई को ग्रेज्युयेट करवाकर नौकरी दिलवाती है और बहिन की शादी अपने भुआ के लडके रामम से करवाती है।

पद्मजा मद्रास में डाक्टरी की डिग्री प्राप्त कर वहीं पर हाउस सर्जन करने लगती है और वहीं उसका परिचय जार्ज विलियम्स नामक अंग्रेजी युवक से होता है। धीरे धीरे उनका परिचय प्रेम में परिणित हो जाता है. पद्मजा जो प्रारंभ से ही अपने विचारों को आचरण में रखनेवाली है, इस विषय को भी अपने पिता के सामने निसंकोच प्रकट करती है। ईश्वर-सोमयाजी, पुत्री को अत्याधिक प्यार करनेवाले होने पर भी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर पाते, दूसरी ओर अपनी पुत्री को दुखी नहीं देख सकते, इसी संघर्ष के बीच अपनी बेटी को आशीर्वाद देकर सदा के लिए विदा कर देते हैं। एक हफ्ते पश्चात् ही पद्मजा तथा जार्ज के विवाह का समाचार अखबार में पढकर उस के घर के अन्य सदस्य शोक में डूब जाते हैं। अंतराष्ट्रीय विवाह का समर्थन वह सनातन ब्राह्मण-परिवार नहीं कर पाता। इसका परिणाम यह होता है कि उसके पिता मानसिक विकलता के कारण इहलीला समाप्त करते हैं, सुजाता की पढाई रुक जाती है और घर में अशांति का वातावरण फैल जाता है। सुजाता अपनी बहिन पद्मजा के बारे में पार्वती को खत लिखती है और पार्वती मन से पद्मजा के किये पर सहमत होती हुई भी कामेश्वरम्मा तथा सुजाता को सांत्वना देकर लौट आती है।

रुक्मिणी बहिन के त्याग के प्रति कृतज्ञ होने के बजाय सदा उस से चिढती है। एक बार पार्वती, रघुबाबू की पत्नी सुशीला से मिलकर जान पाती है कि उसका वैवाहिक जीवन सुखप्रद नहीं हैं।

पार्वती का भाई सूर्यम एक धनवान वकील की लडकी राणी से प्यार कर अपनी बहिन की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर लेता है। थोडे महीनों के पश्चात् पार्वती को अकेली छोडकर सदा के लिए ससुराल चला जाता है। रुक्मिणी भी गर्व के कारण अपने जीवन को दुखमय बनाती है। इस प्रकार पार्वती जिन केलिए अपना सर्वस्व त्याग दिया वे ही लोग उसे एकाकी छोड जाते हैं।

सुजाता का परिचय चंद्रशेखर से होता है। लेकिन विजातीय होने के कारण विवाह की बात सुजाता नहीं प्रकट करती है लेकिन चंद्रशेखर के प्यार को भी भूल नहीं पाती। इसी संघर्ष में वह आत्महत्या करने का निश्चय कर लेती है। तभी उसकी माँ उसकी रक्षा कर, चंद्रशेखर से विवाह करने की सम्मति दे देती है। इस प्रकार कामेश्वरम्मा जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों से समझौता कर लेती है।

यहाँ रघुबाबू की पत्नी सुशीला मानसिक अशांति के कारण मर जाती है। यह खबर सुनकर पार्वती रघुबाबू से द्वेष करने लगती है। एक बार रघुबाबू पार्वती के यहाँ आकर क्षमा याचना करता है। लेकिन पार्वती उसे क्षमा नहीं कर पाती तो वह पागल की तरह चला जाता है। अपने अंधकारमय जीवन में पार्वती सदा के लिए अकेली रह जाती है।

इस उपन्यास में पात्रों की बहुलता है। फिर भी प्रत्येक पात्र अपना अलग व्यक्तित्व रखता है और भिन्न भिन्न स्वभावों के प्रतीक के रूप में उपस्थित होता है। प्रमुख पात्रों के रूप में पार्वती, पद्मजा और रघुबाबू को लिया जा सकता है। गौण पात्रों के अंतर्गत ईश्वर सोमयाजी, रामनाथम, चलपतिराव, सावित्री, सुशीला तथा रुक्मिणी के नाम गिने जा सकते हैं।

पार्वती को आद्यंत लेखिका ने त्याग, बलिदान, संयम की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। अंत तक उसके चरित्र में इन्हीं गुणों का विकास पाया जाता है। इस उपन्यास की भूमिका में पार्वती के चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए श्री बंदा कनकलिंगेश्वरराव जी लिखते हैं–"वह अत्यंत अनुरागमयी, परिपूर्ण त्यागमयी, विज्ञान की भंडार, इंगित ज्ञान रखनेवाली, स्वार्थरहित परोपकार परायणा है। अपने अंदर निहित आशाओं पर पानी फिर जाने पर आहें भरथी हैं लेकिन विलपती नहीं, सामनेवालों को दोषी नहीं ठहराती। इस प्रकार की निष्काम योगिनी है पार्वती।"[1]

---

१. स्त्री – उपन्यास की भूमिका से उद्धृत – पृ. ११

पार्वती अपने परिवार के लिए अविवाहित रह जाती है। माता-पिता की आर्थिक स्थिति से पूर्णतः अवगत पार्वती स्वयं अपनी पढाई बंद कर देती है और पद्मजा को उच्च शिक्षा पाने के लिए प्रोत्साहन करती है।

रघु, अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए, पार्वती से कुछ रुपये दहेज देने के लिए कहता है तो पार्वती कहती है–'रघु ! यदि तुम एक रुपया भी दहेज के रूप में लेकर उदारता को प्रकट करना चाहते हो तो मैं उसे भी नहीं दूंगी।'[1] पार्वती निस्वार्थ युवती है, इसी कारण वह भाई-बहन के लिए स्वसुखों को त्याग देती है। वह पद्मजा तथा जार्ज विलियम्स के अंतराष्ट्रीय विवाह का समर्थन करती है और सोचती है कि पद्मजा जैसी स्त्रियों के द्वारा ही समाज में सुधार लाया जा सकता है।

इस प्रकार पार्वती सरल, त्यागमयी स्त्री के रूप में चित्रित की गई है।

पद्मजा स्वच्छंद विचारवाली तथा अपना जीवन स्वयं चलाने में समर्थ युवती है। उसका विचार है कि सामाजिक नियम परिवर्तनशील होते हैं। अतः उनमें सुधार लाने में किसी को अपत्ति नहीं उठानी चाहिए। अतः वह राजाराम मोहनराय, वीरेशलिंगम प्रभृतियों की श्रद्धालु है।'[2]

स्त्री–शिक्षा के संबंध में उसका कथन है–"··· पहले रोगों के शिकार होकर बाद में उनकी दवा–दारु करने की अपेक्षा रोगों से अपने को बचा लेना अच्छा होगा न ? हर एक का अपने अच्छे बुरे के संबंध में सोचने केलिए शिक्षा की आवश्यकता होती है।[3]

स्त्री–पुरुष के परस्पर संबंध के बारे में वह अपने निजी विचार इस प्रकार प्रकट करती है–" ··· स्त्री को अलग इकाई के रूप में न मानकर एक ही सृष्टि के रूप में देखना चाहिए।"[4]

पद्मजा जाति-पाँति के भेद-भाव को नहीं मानती। इसी कारण जार्ज विलियम्स से विवाह कर अपने वैवाहिक जीवन को सुखप्रद बनाने में समर्थ होती है।

रघुबाबू स्वयं भीरु होकर भी पद्मजा के स्वच्छंद विचारों की प्रशंसा करता है–"पद्मजा स्त्री होती हुई भी अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर लेने

---

१. स्त्री – पृष्ठ : १०४
२. स्त्री – पृष्ठ : ६५
३. वही पृष्ठ : ६६
४. वही पृष्ठ : ६९

में समर्थ रही। जीवन-भर साथ रहनेवाले जीवन-साथी केलिए माँ बाप को तथा समाज को धिक्कारना, पद्मजा जैसे लोगों केलिए कोई विशेष बात नहीं है।"[1]

इस प्रकार पद्मजा, ऊँचे विचारवाली, अंधविश्वासों का खंडन करनेवाली नारी के रूप में चित्रित की गई है।

सुजाता, पद्मजा की सगी बहन होने पर भी उसकी तरह निर्भीक नहीं है। वह स्वतंत्र विचार रखती हुई भी वंश-मर्यादा तथा माँ-बाप के डर से अपने विचारों को अपने तक ही सीमित रखनेवाली संघर्षग्रस्त युवती है।

जन्म तथा संस्कारों से कामेश्वरम्मा सनातन ब्राह्मण परिवार की महिला है। अतः पुत्रियों को प्रसन्न रखने केलिए अपने विचारों को बदल लेती है। आत्महत्या करनेवाली सुजाता को समझाती हुई वह कहती है – "तुम्हारे सुख-दुखों को जानने का कर्तव्य मेरा है ''''' जिससे विवाह करने की तुम ने इच्छा प्रकट की है उस का तिरस्कार भी नहीं करूँगी।"[2] आगे अपने परिवर्तित विचारों को व्यक्त करती हुई कहती है "जीवन ही मनुष्य को बदल देता है। – – एक ही प्रकार के विचार एक ही प्रकार के मत सदा नहीं रह जाते।"[3] इस प्रकार प्राचीन एवं अर्वाचीन परिस्थितियों की संधि-रेखा के रूप में कामेश्वरम्मा दृष्टिगोचर होती हैं।

सूर्यम, और रुक्मिणी पार्वती के सगे भाई-बहन होने पर भी उसकी तुलना में अत्यंत निर्लज्ज एवं स्वार्थी हैं।

रघुबाबू कायर एवं परावलंबी के रूप में प्रत्यक्ष होता है। कायर होने के कारण पार्वती को पा नहीं पाता और सुशीला को भी खो बैठता है। वह पद्मजा के अंतराष्ट्रीय विवाह का समाचार सुनकर उसकी प्रशंसा करने लगता है – "जीवन को अनुशासन में रखने की जो स्वावलंबन की प्रवृत्ति है वह मेरे लिए मरीचिका सी है। जीवन-मूल्य को ग्रहण करने में असमर्थ मुझ जैसा व्यक्ति, जीवन को अनुभव योग्य बनाने का अधिकार कहाँ रखता है।"[4]

जार्ज विलियम्स अंग्रेजी युवक होने पर भी भारतीय संस्कृति का प्रेमी बनकर, पद्मजा के पवित्र प्यार में अपना वैवाहिक जीवन आनंदमय बना लेता

---

१. स्त्री-पृष्ठ : ६९
२. स्त्री-पृष्ठ : ३५९
३. स्त्री-पृष्ठ : ३६०
४. स्त्री - पृष्ठ : ९

है। इस चरित्र से हमें यह स्पष्ट होता है कि पवित्र प्रेम और सुखमय दांपत्य जीवन के लिए धर्म एवं संस्कृति के बाधक नहीं हो सकते।

ईश्वर सोमयाजी बदलते हुए सामाजिक परिस्थितियों से हारे हुए व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आलोच्य उपन्यास में भारतीय स्त्रियों के विभिन्न व्यक्तित्वों का चित्रण पाया जाता है। कर्तव्यों को कभी न भूलनेवाली पार्वती–जीवन के छोटे से छोटे कर्तव्यों का भी पालन न करनेवाली रुक्मिणी – – अंधविश्वासों को आसानी से साहस के साथ सामना करनेवाली पद्मजा – – वंश–गौरव को धिक्कारने में असमर्थ सुजाता —– अनुभवों के द्वारा जीवन के मूल्यों को ग्रहण कर व्यक्ति जीवन को ही महत्व प्रदान करनेवाली कामेश्वरम्मा – – सभी श्रेणियों की स्त्रियाँ इस उपन्यास में हैं।

इसके अतिरिक्त स्त्री–शिक्षा की आवश्यकता, अंधविश्वासों का खंडन, दहेज-समस्या, परिवार-पोषण की समस्यायें, अविवाहित कन्याओं की समस्या, विजातीय एवं अंतराष्ट्रीय विवाहों का समर्थन आदि कई समस्याओं का चित्रण तथा उनके निदान भी आलोच्य उपन्यास में वर्णित हैं।

अंत में उपन्यास के संबंध में श्री बंदा कनकलिंगेश्वरराव जी का कथन द्रष्टव्य है – "लेखिका ने अपने विभिन्न भावों को विभिन्न रूप दिये हैं। प्रत्येक पृष्ठ में एक एक समस्या और दूसरे पृष्ठ पर उनके समाधान को प्रस्तुत कर लेखिका ने मानव–वृद्धि के लिए आहार डाला है। छोटी उम्र में ही ऊँचे विचार रखकर तथा बडी बडी समस्याओं को सही अर्थ में समझकर लेखिका ने उपन्यास की रचना की है।"[1]

लेखिका का एक अन्य उपन्यास है 'रचयित्री'। इसमें पत्नी को लेखिका बनने पर पति के मन में उठनेवाले संघर्ष का सुंदर चित्रण प्रस्तुत है। लेखिका यह तथ्य प्रकाश में लाती है कि पुरुष साधारणतः अपने से कम व्यक्तित्व तथा कम शिक्षित स्त्री को ही पत्नी के रूप में ग्रहण करना पसंद करता है।

विजया उपन्यास की नायिका एवं लेखिका भी है। वह 'अनुराधा' नाम से रचनायें करती हैं। उसका विवाह मोहन से हो जाता है। अनुराधा

---

१. श्री बंदा कनकलिंगेश्वरराव – स्त्री भूमिका – पृष्ठ : (१११)

की कहानियों को मोहन बहुत चाहता है, विवाह के पश्चात् ही उसे पता चलता है कि अनुराधा ही उसकी पत्नी है। तब से विजया से अपनी तुलना कर अपने को उससे कम मानने लगता है। घर के अन्य सभी सदस्य विजया को एक महान लेखिका के रूप सम्मान करते रहते हैं। मोहन के मित्र भी उसके भाग्य की प्रशंसा करने लगते हैं। मोहन हीन-भाव-ग्रस्त होकर पत्नी को अपमानित एवं दुखी करता रहता है। पत्नी के रचना-कार्य में प्रोत्साहन देने की बात तो दूर, उल्टे उसके कार्य में विघ्न उपस्थित करता रहता है। अंत में उन दोनों के बीच के संबंध इतने बिगड़ जाते हैं कि वे अलग अलग रहना ही पसंद करते है। मोहन अपनी संकुचित विचारधारा के कारण पत्नी से समझौता नहीं कर पाता। मोहन की भाभी ही बिछुड़े हुए मोहन तथा विजया को फिर से मिलाने का प्रयास करती है और उसमें वह सफल भी हो जाती है।

विजया इस उपन्यास की नायिका है, वह पहले एक यथार्थवादी लेखिका, बाद में मोहन की पत्नी के रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष होती है। वह हर बात को तार्किक दृष्टि से देखने समझने की कोशिश करती है, एवं सहृदयी भी है। विजया अपने विचारों एवं विश्वासों पर दृढ आस्था रखती है जैसे पति के द्वारा कहानी को प्रकाशित करने से मना किये जाने पर वह उसे प्रकाशित करके ही रहती है। इनके संबंध में पूछने पर पति को उत्तर देती है –'आप कृपया मेरी लेखनी पर किसी भी प्रकार से बंधन मत डालिए।'[1] वह सदा यही आशा करती है कि उसे मोहन ठीक समझे। विजया अपनी रचना के संबंध में स्पष्ट विचार भी रखती है। उसका कथन है–'यह ठीक ही है कि मैं महिलाओं का समर्थन करती हुई रचना करती हूँ। हमारी सामाजिक व्यवस्था में सदियों से स्त्री, दास्य-शृंखलाओं में जकड़ी हुई है। इतना ही नहीं दहेज, वर्णभेद, अधिकारों का दुरुपयोग, रिश्वतखोरी आदि सभी प्रकार के दुराचार है।'[2] उक्त सभी समस्यायों का निदान प्रस्तुत करना ही विजया का लक्ष्य हैं। इस प्रकार स्वयं लेखिका के विचार विजया के मुख से प्रकट हुए से दीखते हैं। विजातीय विवाहों का समर्थन करती हुई विजया कहती हैं, समाज में प्रगति केवल 'वादों' से नहीं लायी जा सकती। उसे आचरण में रखना आवश्यक है। विजया रामायण, महाभारत तथा भागवत आदि पुराणों में कुछ भी विश्वास नहीं रखती। उसका कथन हैं–इन्हीं पुराणों के कारण अखंड मानव-जाति में शूद्र, ब्राह्मण आदि वर्गों के भेदभाव की सृष्टि

---

१. रचयित्री–पृष्ठ : १६४ २. रचयित्री–पृष्ठ : ८५-८६

हुई है । मनुष्य को ये पुराण राक्षस बनाते हैं ।'[1] ईश्वर के संबंध में विजया अपने निजी विश्वास प्रकट करती है । वह ढोंगी पूजा-पाठ में विश्वास नहीं रखती ।'[2]

जब मोहन, विजया को उसके भाई कृष्णराव के सामने नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है तो वह बाद में मोहन से कहती है—'मेरे बारे में आप को यह जानने की आवश्यकता है कि आत्माभिमान ही मेरा प्राण है । सांस न लेती हुई भी जी सकती हूँ लेकिन मेरे आत्माभिमान के भंग होने से मैं जी नहीं सकती । मेरे प्रति होनेवाले अत्याचारों को सहकर मैं चुप नहीं रह सकती ।'[3]

इस प्रकार विजया को सुसंस्कार, सुशिक्षित, निर्भीक, स्वच्छंद विचार-वाली एवं प्रख्यात लेखिका के रूप में चित्रित किया गया है ।

मोहन अकांक्षी तथा अहं से ग्रस्त युवक के रूप में प्रत्यक्ष हुआ है । शिक्षित स्त्री से विवाह करने में पहले तो संघर्ष में पडता है । लेकिन विवाह के पश्चात् समाज में पत्नी के बढते हुए गौरव से स्वयं को अपमानित मानकर वह उसका पग पग पर विरोध करने लगती है । मोहन, विजया से जितना प्यार करता है उतना द्वेष भी । यह भी लक्षण उस में पाया जाता है कि उसकी अंतरात्मा जागृत होने पर अपने दोष को स्वीकार करता है और पश्चाताप भी । इसी अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण अंत में वह विजया को निर्मल हृदय से स्वीकारता ।

मोहन तथा विजया के बीच समझौता करानेवाली मोहन की भाभी रुक्मिणी, उसका भाई रामाराव तथा माँ नारायणम्मा इस कृति के गौण पात्र हैं । कृति के उद्देश्य को लेखिका ने विजया पात्र के माध्यम से प्रकट करवाया है । उनकी मान्यता है कि स्त्री का अपना व्यक्तित्व का होना आवश्यक है । पुरुष के द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर भी स्त्री को उसकी चरणदासी नहीं बननी चाहिए । लेखिका का विचार है कि पति जब पत्नी के व्यक्तित्व का आदर करता है तभी वैवाहिक जीवन सुखमय बन सकता है ।

---

१. रचयित्री—पृष्ठ : ९१ २. रचयित्री—पृष्ठ : १००

३. रचयित्री—पृष्ठ : १४६

इस उपन्यास में रंगनायकम्मा जी ने एक लेखिका के नाते अपने संघर्षों तथा विचारों का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। साधारणतः भारत में स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व तथा प्रवीणता को प्रकट करने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता। जब एक स्त्री रचना-कार्य में लगती है तब उसके आगे कई समस्यायें उपस्थित हो जाती हैं। जैसे अमरीकी आलोचक एंड्री का कथन है कि–"इस उपन्यास में सनातन विचारधारा तथा आधुनिकता की खोज के बीच समझौता कराने के लिए आवश्यक त्यागमयी भावना पर लेखिका ने जोर दिया है।"[1]

उपन्यास के संबंध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए एक पत्र में तेलुगु के मूर्धन्य साहित्यकार एवं दैनिक आंध्रज्योति के संपादक नार्ल वेंकटेश्वरराव जी लिखते हैं–"लेखिका की कई समस्यायें होती है? लेखिका को भी इस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है–यह बात इस उपन्यास को पढ़ने के पहले कभी मेरी सोच में नहीं आयी।"[2]

'कालएंदुकु' (कला किसलिए) लेखिका का एक और विशिष्ट उपन्यास है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि पाश्चात्य साहित्य के संपर्क के बाद ही हमारे भारतीय साहित्य में भी कला के क्षेत्र में यह प्रश्न प्रमुख रुप से उठता गया है कि 'कला कला के लिए है' या 'जीवन के लिए।' रंगनायकम्मा जी ने इसी प्रश्न को आलोच्य उपन्यास के लिए स्वीकार किया है। और अपनी ओर से यही सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है कि कला कला के लिए नहीं बल्कि जीवन के लिए है। बलरामय्या कलाप्रेमी व्यक्ति है। इसलिए वह अपनी इकलौती पुत्री का नाम भी 'कलाबाला' रख कर उसे गान-सरस्वती बनाता है। कलाबाला के विवाह के उपरांत ससुराल में उसकी कला को अपमानित किया जाता है। ससुराल में अंधविश्वास एवं सनातनी सांप्रदायों के कारण उसका जीवन नरकतुल्य बन जाता है और वह जुड़वाँ बच्चों को जन्म देकर चल बसती हैं। बलरामय्या कुछ दिन तक इस धक्के को सह नहीं पाता। फिर भी अपनी पोतियाँ पद्मिनी तथा मोहिनी में कलाबाला को देखते हुए जीवनयापन करने लगता है। उन दोनों पोतियों को बलरामय्या नृत्य तथा संगीत में पारंगत कराने की दृष्टि से बचपन से ही तत्संबंधी शिक्षा दिलाने

1. The author stresses the need for a compromise between tradition and the search for modernity and observes that such requeires a spirit of sacrifice."–Individual V S Tradition : The Telugu Novels of Muppala. By Andree. F.
२. रचयित्री – उपन्यास के अंत में प्रकाशित पत्र – पृष्ठ : (iii)

को प्रवेश करता है । वे दोनों नाट्यकला में सिद्धहस्त होती हैं। मोहिनी संगीत कला में भी पारंगत होती है । इसी बीच गोपाल नामक चित्र-कार से उनका परिचय होता है जो इनकी नाट्य कला की आलोचना करता है। धीरे धीरे गोपाल पद्मिनी के प्रति अधिक आकृष्ट होता है । पद्मिनी भी गोपाल के प्रति अनुरक्त होकर, कला की उपेक्षा करने लगती है।

पद्मिनी गोपाल के साथ विवाह करने का अपना निर्णय मोहिनी को सुनाती है । लेकिन मोहिनी विवाह को कलाराधना के लिए बाधक मानकर उसका विरोध करती है । पद्मिनी को गर्भवती होने की बात से अवगत होने के पूर्व ही गोपाल नौकरी छोड़कर गांव चला जाता है वहाँ उसे चेचक की बीमारी होती है ' जिससे पद्मिनी से नहीं मिल पाता । पद्मिनी गोपाल को कपटी मान कर आत्महत्या कर लेती है ।

मोहिनी और बलरामय्या पद्मिनी की मृत्यु से पागल हो जाते हैं । मोहिनी इस व्यथा को भूलने के लिए अपना सारा समय नृत्य तथा संगीत-साधना में व्यतीत करने लगती है । इसी बीच मोहिनी को भारत सरकार से वियन्ना देश में नाट्य प्रदर्शन देने का निमंत्रण मिलता है। तब गुरु की इच्छा के विरुद्ध वहां जाती है और वहां कवि सुधाकर से परिचित होती है । जो एक जमींदार है ।

इधर गोपाल कुछ दिनों के पश्चात् पद्मिनी से मिलने आता है लेकिन पद्मिनी की आत्महत्या सुनकर पागल सा होकर, पद्मिनी का चित्र लेकर वहाँ से चला जाता है । मोहिनी उसकी विवशताओं को जानकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है ।

वियन्ना से भारत लौटकर सुधाकर मोहिनी से मिलता है धीरे-धीरे दोनों के बीच अनुराग उत्पन्न होता है । कलाराधना में किसी प्रकार की आशंका न कर मोहिनी सुधाकर से विवाह कर लेती है । शादी के पश्चात् दिल्ली में नृत्य-प्रदर्शन देने जाना चाहती है । संपन्न एवं जमींदारी परिवार में पलने के कारण सुधाकर इसका विरोध करता है । मोहिनी कला-साधना के लिए पति को बाधक मानकर दादा बलरामय्या के पास लौट आती है । वहां कलाराधना में तन्मय हो जाती है । लेकिन अपने जीवन में कुछ कमी का अनुभव महसूस करने लगती है । एक बार एक गाँव में प्रदर्शन देते समय

जोजा गोपाल से उसकी भेंट होती है। मोहिनी की अंतर्व्यथा को जानकर वह मोहिनी एवं सुधाकर के वैवाहिक जीवन को सुखमय बनाने का सफल प्रयास करता है। इस प्रकार लेखिका मोहिनी और सुधाकर के वैवाहिक जीवन द्वारा 'कला कला के लिए' इन दोनों धारणाओं के बीच समन्वय का रुप प्रतिष्ठित करती है।

प्रस्तुत उपन्यास में नृत्य, संगीत, चित्र तथा कविता इन चारों कलाओं के लिए मोहिनी, पद्ममिनी, गोपाल तथा सुधाकर पात्र क्रमशः प्रतिनिधित्व के रूप में चित्रित किये गये हैं।

पद्ममिनी तथा मोहिनी जुडवी बहिने हैं। वे नाट्य तथा संगीत कला में रुचि रखती हैं। दोनों नाट्य कला में प्रवीण होती हैं। पद्ममिनी आडंबर-पूर्ण जीवन व्यतीत करती है तो मोहिनी सादगी जीवन।

गोपाल सुन्दर युवक न होने पर भी उसकी चित्रकला के प्रति पद्म-मिनीं आकर्षित होती है। नृत्य संबंधी उसकी तटस्थ आलोचन ग्रहणकर मुग्ध होती है। गोपाल से परिचय प्राप्त करने से पूर्व पद्ममिनी विवाह को कला की आराधना में बाधक समझती है। लेकिन बाद में अपनी धारणा को बदल लेती है। लेकिन उसके अकस्मिक रूप से चले जाने के कारण गर्भवती पद्ममिनी आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार पद्ममिनी कला तथा जीवन में समन्वय करने में असमर्थ होकर जीवन से हार जाती है।

मोहिनी अपनी मां के जीवन की गतिविधियों से भली-भाँति अवगत होने के कारण वैवाहिक जीवन को कला एवं आत्मिक विकास के लिए बाधक मानती है। यत्र तत्र अपने विचारों से अपनी बहिन को भी प्रभावित करना चाहती है।[1] मोहिनी अपनी लक्ष्यप्राप्ति के हेतु कठोर साधना करती है। समय समय पर अपने विचारों की पुष्टि के लिए तर्क भी प्रस्तुत करती है। कला संबंधी गोपाल के विचारों से सहमत न होकर उसका विरोध भी करती है।[2]

---

१. मोहिनी के विचार, —'मां की तरह न होकर हमें एक विशिष्ट स्थान पाना चाहिए। कला की आराधना के अतिरिक्त हमारे जीवन में किसी और के लिए यदि हम स्थान न दें तो अवश्य महान बन सकती है।'
—कलएंदुकु, पृष्ठ : १५५-५६

२. कळ एंदुकु — पृष्ठ : १६७

मोहिनी कला एवं समाज के संबंध में अपनी कुछ मान्यतायें भी रखती हैं। गोपाल के चित्रों में केवल सौंदर्यतत्व को ही देखकर वह उन चित्रों की आलोचना करती हुई कहती है–"आप के चित्रों में सामाजिक तत्व कहाँ दिखाई देते हैं ? समाज की गति-विधियों को आप अपनी चित्रकला में प्रतिबिंबित कर सकते हैं न ? – – आजकल समाज में भैरव नृत्य करनेवाली दहेज-प्रथा, रिश्वत-खोरी, अविनीति आदि से आप भली भाँति अवगत हैं उनके आधार पर आप एक एक घटना को लेकर चित्र बना सकते हैं न ?[1] गोपाल के चित्रों में समाज-बोध का जो अभाव है उसकी ओर मोहिनी संकेत करती है। इसी प्रकार सुधाकर से भी समाज एवं साहित्य से पारस्परिक संबंध में भी तर्क प्रस्तुत करती हैं।[2] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता हैं कि वह केवल भावुक कलाकारणी ही न रह कर जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण भी रखती है। इसके साथ साथ हर मूल्य पर अपने व्यक्तित्व एवं कलासाधना की रक्षा करने के लिए मोहिनी तैयार होती हैं। जब वह जान लेती है कि सुधाकर पति के नाम पर उसके एवं कला-साधना को नियंत्रण में रखना चाहता हैं तो तुरंत वह विद्रोह कर उठती है।[3] मोहिनी को कला-निष्ठा, प्रखर व्यक्तित्व के सामने सुधाकर ही झुक जाता है और वही समझौता कर लेता है। यही कारण है कि जहाँ पद्मिनी जीवन की विसंगतियों के सामने हार जाती हैं वहां मोहिनी समन्वय स्थापित करने में सफल होती है।

गोपाल इस उपन्यास में चित्रकार हैं। वह निर्धन, सहृदय तथा कला-मर्मज्ञ है। मोहिनी तथा पद्मिनी के नृत्य में अभिनय के साथ अनुभूति के अभाव की आलोचना करता है। वह अपनी विवशता के कारण ही पद्मिनी को खो बैठता है। मोहिनी के समान उस में प्रेम और सहृदयता का अभाव नहीं है। इसी कारण पद्मिनी की कला-प्रियता पर मुग्ध होकर, उससे प्रेम करता है और अंत में पद्मिनी की आत्महत्या का समाचार सुनकर विक्षिप्त हो जाता है। पश्चात् अपने चित्रकला के विकास में गांव जाकर वहां के बच्चों को उसे सिखाता हैं मोहिनी एवं सुधाकर के बीच समझौता लाकर अपनी सहृदयता का परिचय देता है। इतना ही नहीं मोहिनी और सुधाकर के सामने अपनी कला संबंधी विचारों एवं मान्यताओं को प्रस्तुत कर उन्हें प्रभावित भी करता है। इस प्रकार उपन्यास में गोपाल एक विशिष्ट कलाकार एवं सच्चे मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

१., २., ३. कळ एंदुकु – पृष्ठ : १६४, २७४, २९७

सुधाकर जमींदार का पुत्र और भावुक कवि भी है। जहाँ गोपाल अपनी कला को दूसरों को प्रदर्शित करने की चेष्टा करता है वहीं सुधाकर सभी कलाओं को अपने तक ही सीमित रखने का चेष्ट करता है। इस प्रकार कला के क्षेत्र में वह संकुचित भाव प्रकट करने के कारण ही मोहिनी उससे प्यार करती हुई भी अलग चली जाती है। गोपाल के उपदेशों के कारण ही वह संकुचित विचार-धारा को तज कर मोहिनी की कलाराधना को समझने का प्रयास करता है। इस प्रकार गोपाल की तुलना में सुधारक दुर्बल एवं संकुचित व्यक्तित्ववाले के रूप में चित्रित है।

बलरामय्या एक वृद्ध कला पिपासु हैं। वह अपने समय की लोक-निंदा तथा सनातन विचारधारा के विरुद्ध अपनी लड़की कलाबाला को संगीतकला में प्रवीण बनाता है। लेकिन कलाबाला ससुराल के लोगों की संकुचित विचार-धारा का शिकार बनती है। बलरामय्या दुखी होने पर भी पुत्री के स्मृत्याव-शेष के रूप में पोतियों को ग्रहण कर उन्हें भी नृत्य तथा संगीत कला में प्रवीण बनाता है।

आलोच्य उपन्यास में लेखिका ने यही सिद्ध करना चाहा कि कला कला के लिए नहीं बल्कि जीवन के लिए ही है। इस उपन्यास में मोहिनी का पात्र समग्र एवं सुंदर जीवन के रूप में चित्रित है। जब कि पद्मिनी समन्वय साधने में हार जानेवाली असफल पात्र के रूप में। सुधाकर कला कला के लिए माननेवाला है तो गोपाल कला को जीवन के लिए माननेवाला है।

लेखिका ने इस बात पर भी जोर दिया है कि जीवन वैविध्यपूर्ण होता है। और कलायें उस जीवन को एक समग्रता, समन्वयता तथा उदात्तता प्रदान करती हैं। लेखिका मोहिनी पात्र के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत करती हुई कहती हैं कि कलाकारों को चाहिये कि वे अपनी कलाओं में समसामयिक समाज को प्रतिबिंबित करें और अपनी कला को केवल कुछ ही व्यक्तियों केलिए सीमित न कर साधारण जनों के बीच भी पहुँचायें।

तेन्नेटि हेमलता :

'वनकिन्नेरा' श्रीमती लता की एक विशिष्ट कृति है। इसमें एक जंगली कन्या की कथा है जो बचपन से जंगलों में जानवरों की संगति में रहकर बड़ी होती है और वहां के राजा की सहायता से सभ्य समाज के निकट आती है।

लेकिन सभ्य-समाज की रीति-रिवाजों से विमुख होकर फिर उसी जंगल में सत्य तथा न्याय की खोज में लीन हो जाती है।

कोटगिरी स्टेट के युवराजा रामभद्र अप्पाराव जब आखेट केलिए जाते हैं तो वहाँ उन्हें जंगली नग्न सुंदरी दिखाई पडती है। युवराज उस स्त्री को अपने महल लाकर, उसे सभ्य बनाने का भार दीवान शंकरनारायण पर छोड देता है। दीवानजी उस जंगली कन्या को सभ्य समाज की रूपसी 'वनकिन्नेरा' के रूप में बदलने में सफल होता है। धीरे धीरे दीवानजी का मन वनकिन्नेरा के प्रति अनुरक्त होने लगता है। लेकिन वनकिन्नेरा श्रीकृष्ण की अनन्य उपासिका बनती है। अंत में वह सभ्य समाज को अर्थहीन आचार-विचारों से विरक्त होकर फिर से जंगल में भाग जाती है।

इस कथा के साथ युवराज रामभद्र अप्पाराव की कथा निहित है जो एक वेश्या की पुत्री श्यामली से प्रेम कर महाराणी रागमंजरी की उपेक्षा करता है। इधर श्यामली का पति उधर रानी भी इस विषय से दुखित होते हैं।

वनकिन्नेरा इस उपन्यास की मुख्य पात्रा है। लेखिका ने अपने सारे विचारों एवं विवशताओं को इस पात्र के माध्यम से व्यक्त करवाया है। सभ्य तथा असभ्य के मध्य के संघर्ष का वर्णन इस पात्र के द्वारा हुआ है। वनकिन्नेरा की दासी मरीची का पति एक गुंडा है, रोज पत्नी को पीटता है तो एक दिन वनकिन्नेरा उसे खूब पीटकर मरीची को बचाती है। दीवानजी के कहने पर कि भारतीय समाज में पत्नी को मारने का हक पति को है तो वह उत्तर देती हैं- "पुरुष, स्त्री को क्यों मारता है, क्योंकि उस में बल हैं। इसी प्रकार अगर स्त्री में भी बल हो तो स्त्री, पुरुष को क्यों नहीं मारेगी ? जंगल में कई बार इसी प्रकार हुआ करता है।"[1]

वनकिन्नेरा सभ्य समाज के लोगों के प्रति व्यंग्य करती है-"मानव रीतिरिवाजों के अनुसार पलता है, अपनी इच्छा के अनुसार नहीं।"[2]

विधवा विशाला जब गर्भवती बनती है तो समाज उसे बहिष्कृत करता है। इस घटना को वनकिन्नेरा समझ नहीं पाती है इसी कारण दीवान

१, २, वनकिन्नेरा – पृष्ठ : ७९, ५९,

जी से तर्क करती है कि जंगल में सभी जानवर अपने बच्चों की रक्षा प्राण देकर करते हैं लेकिन यहां मारने को दौडते हैं ।[1] अंत में विधवा विशाला का विवाह विवाहित काशीराम से करवा देती है ।[2]

वनकिन्नेरा उस प्रांत के लिए देवतातुल्य बन जाती है। जहां भी अन्याय या अविनीति हो वहां वनकिन्नेरा पहुंचकर अन्याय के विरुद्ध लडती है। जांति पाति तथा वर्ग-भेद के ऊपर व्यंग्य कसती है। एक बार हरिजन बस्ती जाकर वहां से आती हुई संयोग-वश रानी से टक्कर खाती है। जब उसे पता चलता है रानी उसके छूने के अपराध से स्नान कर चुकी है तो वह दीवानजी से कहती है– "आप के आचार विचारों पर मुझे हँसी आती है, हरिजन युवती से विवाह कराने के दोष से पहाड़ी कोंडय्या को अपने समाज से बहिष्कृत किया गया, मुझे छूने के दोष से रानी ने स्नान किया है ।"[3]

वनकिन्नेरा प्राचीन तथा अर्वाचीन सामाजिक समस्याओं की तुलना करती हुई कहती है–"प्राचीन भारतीय व्यवस्था में धर्म, सत्य आदि के लिए विशेष प्रधानता दी जाती थी। मानव के दैनिक जीवन में आवश्यक आहार निद्रा तथा जाति-पाति के प्रति कोई विशेष नीति-नियम नहीं थे। इन सब से बढकर रहा है सत्य का स्थान। वही भगवत्स्वरूप है। उन लोगों ने अपनी दृष्टि को उसी पर केंद्रीकृत किया था। लेकिन आजकल हम ऐसा न कर उन्हीं बातों की अधिक प्रधानता देकर ईर्ष्या-द्वेष के कारण दुखी हो रहे हैं। इसीलिए सामाजिक जीवन आज उतना सुदृढ़ नहीं है जितना पहले था। पहले भूखे को किसी न किसी घर से आतिथ्य मिल ही जाता था। पुराणों तथा इतिहास का अवलोकन करने से जाति-पाति के प्रति कितनी स्वतंत्रता रही है इसका पता चलता है। लेकिन आज हम वैज्ञानिक प्रगति के कारण जहाज, हवाई-जहाज तथा कई फैक्टरियों का आविष्कार कर भौतिक सुख तो प्राप्त कर रहे हैं किंतु मानसिक शांति कहीं दिखाई नहीं देती ।"[4]

अंत में वनकिन्नेरा सभ्य समाज के खोखलेपन से विरक्त होकर युवराज के नाम चिट्ठी छोड जाती है जिस में वह आधुनिक सभ्यता पर कुछ

१., २., ३. वनकिन्नेरा – पृष्ठ : ९२, ९६-९८ १३५
४, वही – पृष्ठ : १३६

महत्वपूर्ण प्रश्नचिह्न लगाती है – आजकल की सभ्यता की आड़ में गांवों को नाशकर शहरी सभ्यता के मोह में पडकर बहुत दूर तक चलने से क्या होता है? ये हमें कहां ले जायेंगे? ––––आपके धार्मिक मंत्र, विचार और सामाजिक व्यवस्था आदि इस बढते हुए यांत्रिक एवं औद्योगिक युग में क्या हो जायेंगे? तब समाज का स्वरूप क्या होगा? स्त्री-पुरुष का पारस्परिक रूप मे एक दूसरे पर रहना तथा उन दिनों में जागृत होनेवाली इच्छाओं को किस प्रकार सामाजिक नियमों के अनुरूप बदलना है? आदि समस्याओं का हल नहीं पा सकने के कारण ही मैं चली जा रही हूँ।"[1]

इस प्रकार लेखिका की अनुपम एवं अनोखी सृष्टि वनकिन्नेरा है अपने सभी विचारों एवं समस्याओं को वनकिन्नेरा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

श्यामली, वेश्या की पुत्री है फिर भी सुसंस्कारवान युवती है। उसका पति रोगी है, अपने परिवार के पालन-पोषण का भार वह ग्रहण करती है। युवराज को एक साधारण युवक मानकर प्रेम करती हैं। असलियत को जान कर भी उस मोह से हट नहीं पाती। राणी जयप्रदादेवी के दुख को देखकर भी वह युवराज को छोड़ नहीं पाती। लेकिन जब वनकिन्नेरा, इस प्यार का समर्थन करती है तो पछताने लगती है तब वह युवराज से कहती है – "पता नहीं, आजकल क्यों मुझे गलत कार्य करने का आभास हो रहा है। मैंने केवल अपना सुख देखा है। तुम्हारी पत्नी, मेरा पति दोनों का दुख मुझे नरकतुल्य लग रहा है।"[2] इस प्रकार अपने किये पर पछताती है। आगे वह सोचती हैं कि "परंपरा तथा धर्म के अनुसार चलने में सुख मिले या न मिले, मगर शांति जरूर मिलती है।"[3] इस प्रकार श्यामली समाज के विरुद्ध चलकर अंत में अशांति का शिकार बनती।

युवराज, धनाधिक्य के कारण सभी व्यसनों का दास बनता है। दीवान शंकर नारायण एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति है। वह वनकिन्नेरा को सभ्य समाज की युवती बनाता है। उसे आंतरिक रूप से प्रेम करते हुए भी उसे व्यक्त नहीं करता। अंत तक उसी की स्मृति में अपना समय काटता है।

---

१. वनकिन्नेरा – पृष्ठ : १४४–१४५

२., ३. वही – पृष्ठ : १३७–१३८

लेखिका ने आलोच्य उपन्यास में वनकिन्नेरा पात्र द्वारा आजकल की विवाह व्यवस्था, स्त्री-पुरुष संबंधों तथा स्त्री-स्वातंत्र्य की आवश्यकता आदि पर विशद प्रकाश डाला है। इस पात्र के माध्यम से लेखिका ने यही व्यक्त किया है कि–"जंगल में अज्ञान जरूर पाया जाता है लेकिन असत्य नहीं। सभ्यतायुक्त ज्ञान के लिए असत्य से प्रयोजन नहीं है। सत्यविद् जीवन की अपेक्षा अज्ञानावृत्त जीवन में ही निश्चल सौंदर्य है। भगवान तक पहुंचने के लिए यही एक मार्ग है।"[1]

'मोहनवंशी' तेन्नेटि हेमलता की एक अनुपम सृष्टि है। लता के अन्य उपन्यासों से भिन्न इतिवृत्त तथा शैली को इस उपन्यास में देखा जा सकता है। इसमें तेलुगु साहित्य तथा समाज में आरंभ से प्रचलित श्रीकृष्ण की जीवन–लीलाओं तथा पृष्ठभूमि की व्याख्या नये सिरे से प्रस्तुत की गई है। लेखिका ने इस कृति की प्रेरणा पर प्रकाश डालते हुए भूमिका में लिखा है–"श्रीकृष्ण की जीवनगाथा पहले से ही मुझे विचित्र लगती थी। किसी भी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों का उसने पालन नहीं किया। फिर भी वह दार्शनिक एवं भगवान माना गया है। इस प्रकार माने जाने के पीछे उसके लिए उन दिनों का वातावरण एवं परिस्थितियां प्रेरक हुई होंगी। शायद इन विचारों के प्रभाव के कारण ही नील गगन–घनश्याम के मोहक रूप ने मुझ पर काबू कर लिया है। उसकी आराधना मैंने प्रारंभ की। उसी आराधना में से जन्म लिया है उपन्यास 'मोहनवंशी।'[2]

इसमें श्रीकृष्ण के बाल्य काल में गोप गोपिकाओं से खेलने के समय से लेकर युद्धक्षेत्र में अर्जुन को अपने कर्तव्य का बोध कराने के समय तक की श्रीकृष्ण की जीवन लीलाओं का सरस चित्रण हुआ है। लेखिका कृष्ण की जीवन संबंधी महत्ता का प्रतिपादन कराने के साथ साथ राधा–कृष्ण के स्वच्छ–प्रेम भावना का समर्थन भी करती है। उपन्यास का नायक भगवान् श्रीकृष्ण है? अब तक कृष्ण की जीवनी से संबंधित कई ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। लगभग सभी लेखकों ने भगवान को मानवीय धरातल पर अंकित किया है। मानव ही अगर भगवान बने तो कैसा होगा। इसी जिज्ञासा से लेखिका ने उपन्यास की रचना

---

१. वनकिन्नेरा – पृष्ठ १४६

२. मोहनवंशी – भूमिका से उद्धृत – पृष्ठ : ५

की । स्वयं लेखिका ने ही इस बात को स्वीकारा है । साथ ही साथ इसमें लेखिका के निजी विचारों तथा विश्वासों को भी प्रश्रय मिला है । लेखिका के इस कथन से इसकी पुष्टि होती है – "यह मोहनवंशी मेरा प्राण है ।' जन्म जन्मांतरों के पुण्य-फल के रूप में मैंने इस जन्म में प्राप्त राग रंजित हृदय से इसकी रचना की है । इसका प्रत्येक अक्षर मैं ही हूँ, प्रत्येक भावना मेरी ही है । प्रत्येक पात्र मैं ही हूँ । इस में कुछ भी ऐसा नहीं है जो मेरा नहीं ।"[1]

श्रीकृष्ण की लीलाओं के चित्रण में राधा के संग कृष्ण के व्यवहार के प्रति ही लेखिका ने विशेष प्रकाश डाला है । लता ने अपने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति श्रीकृष्ण तथा राधा पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है । श्रीकृष्ण आत्मा को शाश्वत न मानकर परिवर्तनशील मानता है । राधा को श्रीकृष्ण समझते हैं कि जिसका उद्भव होता है उसका विकास भी होता है । जिसका विकास होता है, उसका नाश होना भी अनिवार्य ।[2] इसी प्रकार मृत्यु के संबंध में श्रीकृष्ण के विचार भी द्रष्टव्य हैं । वह मानता है कि जीवन के लिए मृत्यु अनिवार्य है । किंतु जीवन के अंतिम क्षण तक जीव को स्वस्थ एवं बलिष्ठ रहने की आवश्यकता पर जोर देते हैं । उसने जीवन से ऊबकर विरक्त होने की मानसिक स्थिति को ही मृत्यु माना है ।

राधा 'प्रेम की महत्ता' को सूचित करती हुई कहती है "प्रेम ही प्रेम का मूल है । मेरे उद्देश्य में संपूर्ण विश्व प्रेम–बंधन के कारण ही चैतन्यवान हो रहा है । प्रेम के द्वारा ही इस जीवन से मुक्ति पा सकते हैं ।"[3] श्रीकृष्ण ईश्वर के लक्षणों को सूचित करते हुए राधा द्वारा सूचित प्रेम मूल्य पर प्रकाश डालते हुए कहता है – "सत्य, सौंदर्य तथा सार्थकता के अतिरिक्त इस प्रेम–भावना को इन सब से महत्वपूर्ण लक्षण बताया है ।"[4]

कर्मसिद्धांत में विश्वास रखनेवाला श्रीकृष्ण द्रौपदी से कहता है कि बिना कर्म के फल प्राप्त करना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है । युद्ध की अनिवार्यता को सूचित करते हुए कहता है – "हाँ युद्ध होना बहुत ही आवश्यक है । सब लोग जीवित होकर दुख भोगने से अच्छा है कुछ लोग ही जीवित रहकर सुखी बनें ।"[5]

---

१. मोहनवंशी भूमिका से उद्धृत : पृ. ५ २. मोहनवंशी – पृ. ५१–५२

३, ४. वही पृ. १७०, १७८ ५. मोहनवंशी – पृ. २०१

मोहनवंशी के संबंध में डा. अरिपिराल विश्वम् का कथन द्रष्टव्य है– "किसी व्यक्ति में भगवान के दर्शन करना, उस भगवान पर जो प्रेम है उसे उस व्यक्ति में आरोपित करना, ऐसी नाडीजन्य परितृप्त-भावना के लिये यह उपन्यास एक उदाहरण है ।"[1]

देव-भूमि की कल्पना कर वहाँ जिस प्रकार स्त्री-पुरुष स्वच्छंद रूप से अपना जीवन यापन करते हैं, भूलोक में भी उसी प्रकार के समाज का निर्माण कराने की बात नंद पात्र के द्वारा लेखिका कहलवाती है – "रेपल्ले में स्त्रियों के स्वच्छंद विहार का प्रेरक मैं हूँ? जो देव भूमि के दर्शन कर आया हूँ उसी समाज का निर्माण यहाँ पर भी करवाने का मैंने प्रयास किया है। देव-भूमि की प्रत्येक स्त्री एक तितली के समान है। किसी भी पुरुष से कोई भी स्त्री प्रेम-बंधन में बंध सकती है। लेकिन देवताओं से सामाजिक नियमों के अनुसार उस स्वतंत्रता की भी एक सीमा है। वहाँ मातृत्व के प्रति विशेष प्राधान्य दिया जाता है। ––––स्त्री पुरुषों में दैहिक इच्छाये मानवों की तुलना में बहुत ही कम हैं।[2]

कृष्ण कहते है– "जीवन की इस छोटी सी सीमा में, अहंकार जितना कम हो, मानव के लिए उतना ही अच्छा है। 'मेरे तेरे' की भावना के कारण ही अहंकार का उदय भी होता है। दैनंदिक जीवन में किसी भी वस्तु को मेरी कहने की भावना को तिलांजलि देने पर ही मानव भूमि भी देव-भूमि बन सकती है और मानव भी देव बन सकते है।"

इस प्रकार लताजी ने पुराण पुरुष की लीलाओं, प्रेमतत्व आदि की ऐतिहासिक व्याख्या एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ लेखिका ने वर्तमान समाज में बदलते हुए मूल्यों एवं परिस्थितियों को भी दृष्टि में रखकर उक्त विश्लेषण को अधिक सोद्देश्य एवं सजीव बनाने का प्रयत्न भी किया है। 'मोहनवंशी' उपन्यास को पौराणिक गाथा पर आधारित ऐतिहासिक व्याख्या तथा उसका आधुनिक विश्लेषण कहा जा सकता है। अतः यह उपन्यास कृष्ण के भक्त, समाज-शास्त्री, साहित्य के समालोचक, सहृद पाठक सभी में एक समान लोकप्रिय हुआ है।

'रक्तपंकम्' (रक्तपंक) उपन्यास में लता जी ने व्यभिचार की समस्या पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। जैसे उपन्यास के आरंभिक पृष्ठों में कहा गया है कि यह उपन्यास एक विवाहित उच्च कुल की महिला की यथार्थ जीवन-

१. तेलुगु नवला नुरु संवत्सरालु– तेलुगु नवला मनोविश्लेषण–पृष्ठ ८६
२. मोहनवंशी – पृष्ठ ४०–४१

गाथा है जो अपनी विवशता तथा पुरुष की कामलोलुपता के कारण वैश्या बनती है। राजी एक गाँव की ब्राह्मण कन्या है। उसका विवाह सुंदरम् से उसके बाल्यकाल में ही हो जाता है। उन दिनों ब्राह्मण परिवारों में नवविवाहित दंपति को बडों के सामने बात करना भी नियम विरुद्ध माना जाता है। इसी कारण राजी और सुंदरम एक दूसरे से प्रेम करते हुए भी घर में बात तक नहीं कर पाते थे। इसलिए गाँव के बाहर जाया करते थे। एक दिन सुंदरम् की माँ इन को देखकर क्रुद्ध हो जाती है। दुर्भाग्यवश सुन्दरम की अचानक मृत्यु हो जाती है। इसके लिए राजी को ही दोषी ठहराया जाता है। फलतः उसे कई यातनाओं का शिकार बनना पडता है। युवा विधवा राजी पर उसका जेठ एक बार बलत्कार करने का प्रयत्न करता है तो वह अपमानित होकर तालाब में कूद जाती है। उस समय तालाब के तट पर टहरते आये हुए कामलोलुप धनी एवं विवाहित राजशेखर बेहोश राजी को घर ले जाता। होश आने पर राजी अपने को राजशेखर के कमरे में पाकर अत्यंत विकल होती है। क्योंकि राजशेखरम् ने भी इस से पहले उसे अपनी कामवासना का शिकार बनाना चाहा। वह राजशेखर के चुंगल से बचने का असफल प्रयास करती हैं। जब राजशेखरम् जान लेता है कि वह माँ बनने वाली है तो तुरंत उसे एक अनाथ शरणालय में छोड आता है। वहां पर राजी एक बच्ची को जन्म देती है। जिसे एक दूसरे बच्चों के अनाथाश्रम में डाल दिया जाता है। धीरे धीरे अनाथाश्रम के नाम पर होनेवाले आश्रम के संरक्षकों के अत्याचारों से अवगत होकर राजी वहां से भाग जाती है। अरकू के पास एक आश्रम में रहने लगती है। वहां पर भी उस आश्रम के स्वामी के अत्याचारों का शिकार बनती है। उसी आश्रम में रहनेवाली एक सहेली सुगुणा के साथ उस आश्रम से भाग कर हैदराबाद पहुंचती है। उधर उन्हे कोई काम करने को नहीं मिलता। तब रोटी कमाने के लिए दोनों को वेश्यावृत्ति अपनानी पडती है। राजी को शील का मूल्य भूख की तुलना में नगण्य दिखाई पडता है। इसीलिए वह विवश होकर वेश्यावृत्ति को अपने पेशे के रूप में ग्रहण कर लेती है। वेश्या-जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् उसे वेश्यावृत्ति में प्रवेश करनेवाली स्त्रियों की विवशता, पुरुषों की कामलोलुपता के पीछे निहित भावनाओ से भली भांति अवगत होती है।

राजी के वेश्या जीवन में उसे चार विशिष्ट प्रकार के लोगों से परिचय होता है। उन में पहला एक अधेड वयस्क शोधार्थी जो अपनी पारिवारिक समस्याओं से ऊबकर, स्वच्छंद रूप से पुरुष से मिलनेवाली स्त्री के लिए

राजी के पास आता है। दूसरा है एक चित्रकार जो अपनी पत्नी के अंग-सौष्ठव को उजाले में देखने का अवसर न मिलने के कारण और उन्हें अपनी तूलीका चित्र पर अंकित करने के लिए राजी के पास आता हैं। तीसरा है एक लेखक जो राजी के पास आकर उसके जीवन से अवगत होकर, उसे वेश्या बनने के लिए विवश करनेवाली मजबूरियों को जानकर अपनी लेखनी द्वारा उन्हें सभी लोगों के समक्ष रखना चाहता है। ताकि इन्हें जानकर व्यभिचार को प्रोत्साहन न मिलें। वह राजी से बातचीत करते हुए व्यभिचार-निर्मूलन के लिए सत्रह नियमों का पालन करना आवश्यक मानता है। उन में प्रमुख हैं—आंतरिक एवं बहिरंग वेश्या-गृहों का सरकार के द्वारा निषेध करना, वेश्या वृत्ति छोड देनेवालों को आजीविका कमाने का मार्ग दिखाना, हिंदू विवाह पद्धति से बहु-विवाह प्रथा को हटा देना, संतान-हीन बिधवाओं को पुनर्विवाह कराने सहायता, जाति-पांति के भेद-भाव को, दहेज-प्रथा को उखाड फेकना, अठारह साल से पूर्व स्त्री को तथा बीस साल से पूर्व पुरुष को सेक्स-जीवन के बारे में नहीं सोचना, अनाथ एवं स्त्री शरणालयों को हटा देना आदि। चौथे प्रकार का व्यक्ति है अठारह साल का युवक है जो सिनेमा में प्रदर्शित नायक नायिकाओं के स्वच्छंद प्रेम-व्यवहार से प्रेरित होकर राजी के पास आता है। इनके अतिक्ति उसके पास और भी कई लोग आते हैं जिनमें केवल अपने काम से ही मतलब होता हैं। इस प्रकार के जीवन बिताते बिताते राजी तथा सुगुणा अपने चालीसवें साल को भी पार कर जाती हैं। सुगुणा अचानक चेचक का शिकार होती है। फलत: उस के हाथ पैर बैठ जाते हैं। वेश्या-गृह की तुलना 'रक्त-पंक' से करती हुई राजी, मरने के पहले अपनी जीवन-गाथा को एक सहेली के द्वारा लिखवाकर, इस उपन्यास की लेखिका लता जी के पास भिजवाने की प्रार्थना करती है और उसे एक उपन्यास का रूप देने की भी प्रार्थना करती है। लेखिका ने उस अभागिनी की अंतिम इच्छा को साकार रूप प्रदान किया है जिस के फलस्वरूप आलोच्य उपन्यास की सृष्टि संपन्न हुई।

आलोच्य उपन्यास में राजी के चरित्र के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। राजी अपने पति के साथ केवल तीन महीनों के वैवाहिक सुख का ही अनुभव कर सकी। वैधव्य के कारण उसके शारिरीक सौंदर्य में कोई आंच नहीं आती। इसीलिए वह पुरुषों की कामवासना का शिकार होने से बचे न सकी। उस अवस्था में शील की अपेक्षा पेट की भूख ही अधिक वास्तविक लगने लगी। सुगुणा जो राजी की सहेली है, राजी को जीवन के

यथार्थ से अवगत कराती हुई उस की प्राण-सखी के रूप में जीवन के अंत तक उसका साथ देती है। सुगुणा का चरित्र चित्रण भी राजी के चरित्र के विकास में सहायक रहा है। वेश्या-जीवन से विरक्त राजी सुगुणा समझती है कि-"भूख का दाम जब तक शील के दाम से बढकर रहेगा तब तक इसी स्थिति में हमें रहना पडेगा। न्याय-निर्णायक, समाज के निर्माता, ज्ञानी आदि लोग जब तक इस व्यभिचार रूपी नरक में आना छोड नहीं पायेंगे और जब तक इसका स्वरूप विच्छिन्न न होगा तब तक हमें इस से मुक्ति नहीं मिलेगी।"[1]

व्यभिचार करने के पीछे स्त्री की विवशता, उसका आर्थिक परावलं- पुरुष की कामलोलुप्ता का चित्रण करना ही लेखिका का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इसके साथ साथ लेखिका ने वेश्यागामी पुरुषों की विभिन्न दुर्बल-ताओं पर भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला है। सिनेमा के द्वारा सोलह अठारह साल के लडकों को सेक्स-जीवन के संबंध में सोचने के लिए वाध्य कराये जाने की बात का भी लेखिका ने खंडन किया है। लेखिका स्त्रि को वेश्या बनने के लिए उसका आर्थिक रूप से स्वतंत्र न रहना ही प्रमुख कारण मानती है। इस प्रकार उपन्यास में लेखिका ने व्यभिचार संबंधी विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। अतः इसे वेश्या-समाज का संदर्भ-ग्रंथ भी कहा जा सकता है।

कोडूरि कौशल्यादेवी :

श्रीमती कोडूरि कौशल्यादेवी का सर्वप्रथम उपन्यास है 'चक्रभ्रमणमु'। इस उपन्यास की कथा इस प्रकार है। केवल चार पात्रों के बीच उपन्यास की कथा 'चक्र-भ्रमण' करती रहती है। रवींद्र की पत्नी माधवी उपन्यास की प्रधान पात्री है जो सुंदर, सुशिक्षित, सुसंस्कृत गृहिणी है, साथ साथ साहित्य तथा संगीत कलाओं में पारंगत है। रवींद्र चाहता है कि उसकी पत्नी कुछ आधुनिक तथा मिलनसार बने। पति के अनुरोध पर माधवी डा. चक्रवर्ती तथा उसकी पत्नी निर्मला से परिचित होती है। माधवी के मृदु स्वभाव पर डा. चक्रवर्ती मुग्ध होकर उसका आदर करता है। निर्मला को यह बात खटकती है। इसी बीच माधवी के भाई श्रीधर के आगमन से पता चलता है कि चक्रवर्ती रिश्ते से उसका भाई भी है। माधवी गर्भवती बनने पर, चक्रवती अपनी बहिन के प्रति अधिक जागरुक रहता है। इसी अवधि में रवींद्र दफ्तर के किसी काम-वश अन्यत्र जाता है और पत्नी को डा. चक्रवर्ती की देखरेख में छोड जाता है।

---

१. रक्तपंकम् – पृष्ठ १४२

रोज डा. चक्रवर्ती, माधवी की पूछताछ करने आता है। ईर्ष्यालु निर्मला, चक्रवर्ती तथा माधवी के बीच अनुचित संबंध का आरोप करती हुई रवींद्र को एक गुमनाम पत्र लिखती है : उसे सच मानकर रवींद्र, माधवी से घृणा करने लगता है। पति के इस प्रकार के निर्मम व्यवहार से माधवी जीने की इच्छा खो बैठती है। माधवी को श्रीधर के संग, रवींद्र मायके भेज देता है। यहाँ चक्रवर्ती भी जब रवींद्र की निंदायें सुनता है तो माधवी के भविष्य के बारे में विचलित हो जाता है। रवींद्र के पत्र को देखकर जान लेता है कि वह निर्मला द्वारा ही लिखित है, तब रवींद्र से उसकी शंका को दूर करने केलिए अपनी सभी बातें व्यक्त करता है कि उसकी एक बहिन बिलकुल माधवी जैसी थी। लेकिन दुर्भाग्यवश उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है जिससे वह माधवी में अपनी बहिन सुधा को देखकर आनंद प्राप्त करने लगा है। अंत में रवींद्र भी निर्मला द्वारा उस झूठे पत्र के रहस्य को जानकर पश्चात्ताप करता है। तुरंत वह माधवी से क्षमा माँगने दौडता है। पति रवींद्र के आगमन से प्रसन्न माधवी, डा. चक्रवर्ती तथा डा. श्रीदेवी की चिकित्सा से स्वस्थ हो जाती है और एक पुत्र की माँ भी बनती। तथा माधवी, पुत्र का नाम चक्रवर्ती रखकर अपने स्नेह और श्रद्धा का प्रदर्शन करते हैं।

डा. चक्रवर्ती एक धनी परिवार का इकलौता पुत्र है। चक्रवर्ती के जन्मते ही उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है। वह पिता के प्यार से भी वंचित रहता है। इसी कारण नौकरों की देखरेख में पलता है, फिर भी साहित्य, संगीत के प्रति विशेष ध्यान देने लगता है। इसी बीच पिता की दूसरी पत्नी की लडकी होती है सुधा। चक्रवर्ती सुधा को भी अधिक प्यार करता है और उसे ललित कलाओं में पारंगत बनाता है। डाक्टरी पढते समय चक्रवर्ती का परिचय उसकी सहपाठी डा. श्रीदेवी से होती है। दोनों विवाह करना चाहते हैं। दुर्भाग्यवश चक्रवर्ती को अपने पिता तथा सौतेली माँ के अनुरोध पर धनवान की पुत्री निर्मला से विवाह करना पडता है। एक ओर श्रीदेवी से बिछुडकर तथा दूसरी ओर निर्मला की गर्वीली प्रवृत्ति के कारण चक्रवर्ती का वैवाहिक जीवन दुखमय बनता है। डा. श्रीदेवी, चक्रवर्ती को समझाती है कि उन दोनों का विवाह न होने पर भी दोनों मिलकर दीन जनों की सेवा करते हुए आदर्श जीवन व्यतीत कर सकते हैं। श्रीदेवी की सांत्वना से वह पुनः दीन जनों की सेवा में तल्लीन हो जाता है। इसी बीच सुधा, अपने पति की उपेक्षा से क्षय का शिकार बनकर मर जाती है। इस घटना में चक्रवर्ती पागल बन जाता है। इसी स्थिति में उसका परिचय माधवी से होता है। माधवी में सुधा

को देखकर प्रसन्न हो जाता है। इस बात को निर्मला तथा रवींद्र समझ नहीं पाते। अंत में सभी शंकाओं से मुक्त होते हैं। इस प्रकार चक्रवर्ती बचपन से ही कई मानसिक व्यथाओं को सहकर भी अपनी ओर से दूसरों को सुखी करने में ही सतत प्रयत्नशील रहता है।

रवींद्र अपनी पत्नी से अत्यंत प्यार करते हुए भी साधारण मानवीय दुर्बलताओं के वश होकर पत्नी पर शंका करता है। इसी कारण माधवी को मायके भेजकर, नौकरानी की लडकी चंचला से सुखी रहने का प्रयत्न करता है। लेकिन चंचला, धन तथा गहने लेकर भाग जाती है तब अपने किये पर पछताता है। फिर भी माधवी के निष्कलंक प्यार को वह नहीं समझ पाता। अंत में अपनी भूल पहचानकर पत्नी से क्षमा याचना करता है।

श्रीधर पुलिस सुपरिंटेंडेंट है। बहन माधवी जैसी उत्तम व्यक्तित्ववाली के गृहकलहों के कारण श्रीधर अत्यंत दुखी होता है। जब रवींद्र की रखैली चंचला, गहनों तथा धन के साथ पकडी जाती है तब माधवी को बुलाकर उन गहनों को पहचानने के लिए कहता है। तब माधवी चंचला के प्रति अत्यंत सहानुभूति व्यक्त कर, उसके चरित्र एवं जीवन में परिवर्तन लाने की आकांक्षा को प्रकट कर गहने तथा आभूषण चंचला को दे देती है। माधवी के उच्च विचारों से प्रभावित होकर, श्रीधर भी नौकरी त्याग कर दीन-जनों की सेवा में रत होने का प्रयास करता है।

माधवी उपन्यास की केन्द्र बिंदु है। वह सौन्दर्यवती, सुशील तथा सुशिक्षित है। वह पाश्चात्य सभ्यता की कट्टर विरोधी है। जब अपने पति द्वारा ही शंकित की जाती है तो वह जीवन से ही विरक्त हो जाती है। वह चाहती है मरने से पहले अपनी निर्दोषिता को पति समझ सके।

उसने सभी लोगों से प्यार करना ही सीखा। इसी कारण चंचला को भी यही सलाह देती है कि वह अच्छी राह पर चले। माधवी के उपदेश के कारण ही चंचला नेक युवती बनती है। जब माधवी की कहानी 'आराधना' को प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिलता है तो वह पति से प्रार्थना करती है कि उन पैसों को किसी प्रसूति अस्पताल के लिए दान दे दें। इससे उसकी दानशीलता एवं दयार्द्र हृदय का परिचय मिलता है।

माधवी चाहती है कि स्त्रियाँ शिक्षा के साथ ललित कलाओं में अपनी रुचि बढावें लेकिन उस रुचि को भी वहीं तक सीमित रखें जिससे उनके गृहस्थ

जीवन में बाधा न पडे । एक बार निर्मला उसे समय बिताने के लिए नौकरी करने की सलाह देती है तो वह उत्तर देती है कि 'पढाई के समय में भी खेल-कूद में जीवनयापन करती थी । भाषण देने में भी आसक्ति प्रकट करती थी। लेकिन उसी तरह अब भी समय बिताना मैं नहीं चाहती । अब मेरे कंधों पर कर्तव्य का बोझ है । अब मैं थके मांदे पति की सुश्रूषा करनेवाली गृहिणी हूँ । स्त्री की तरफ अपना कार्य-निर्वाह न कर दूसरी नौकरी के लिए या विनोद के लिए जाना मेरी दृष्टि में अविवेक है ।'[1] इस प्रकार लेखिका ने माधवी पात्र के द्वारा उत्तम सुशिक्षित गृहिणी के लक्षणों को प्रकट किया है।

निर्मला एक साधारण विचारों वाली स्त्री है । धनवान की पुत्री होने के कारण विलासमय जीवन की आदि बन जाती है । उसकी नजरों में घर को संभालना, पति की देख–रेख करना गँवारु लक्षण है । लेखिका ने इस पात्र के माध्यम से अत्याधुनिक सभ्य महिलाओं के प्रति करारा व्यंग्य किया है। ईर्ष्यालू बनकर माधवी के वैवाहिक जीवन को नरकतुल्य बनाती है। अंत में अपने पति को भी खोने का समय आ जाता है तभी अपनी गलती को जान पाती है ।

डा. श्रीदेवी त्यागमयी नारी है। वह चक्रवर्ती से प्यार कर विवाह करने में असफल होने पर भी दुखी न होकर दीनजनों की सेवा में तल्लीन होती है। आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ठानकर चक्रवर्ती के प्रति सच्चे प्यार का प्रदर्शन करती है ।

लेखिका ने माधवी, चक्रवर्ती और श्रीदेवी के पात्रों को आदर्श की प्रतिमूर्तियों के रूप में ही चित्रित किया है ।

लेखिका का उद्देश्य यही है कि सभी मानव सहृदयशील बने। पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, न करें । लेखिका ने रवींद्र पात्र के माध्यम से यही सिद्ध करना चाहा कि भारतीय पुरुष, पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण तो करते हैं फिर भी उन में शंकालू हृदय एवं अहं की भावना निहित रहती है । इसी अर्थ को लेखिका ने श्रीधर के शब्दों में व्यक्त करती हैं कि "कितने भी सभ्य समाज के क्यों न हो, कितने सुशिक्षित हो, आंतरिक संस्कार आदिकाल से ही स्थिर हैं । भारत देश में पुरुष केलिये अहं तथा शंकालू हृदय जन्म से ही प्राप्त होते हैं । वह कितना भी विलासप्रिय क्यों न हो, फिर भी स्त्री को नैतिक दृष्टि से उन्नत रखने का ही प्रयत्न करता है ।"[2]

---

१. चक्रभ्रमण – पृष्ठ : ८२ २. चक्रभमणं – पृष्ठ : १४८

पति–पत्नी में समझौतापूर्ण व्यवहार द्वारा ही वैवाहिक जीवन स्वर्ग बन सकता है, इसकी पुष्टि लेखिका ने रवींद्र एवं माधवी के पात्र से कराया है। लेखिका ने भारतीय गार्हस्थ्य जीवन के अत्यंत सूक्ष्म भावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

'धर्मचक्रम' में लेखिका ने द्वितीय महासंग्राम की एक घटना से कथा का आरंभ किया है। सुयोधन और गौतम दो सैनिक अफसर हैं। स्वर्ण–गंगा बांध की रक्षा करते समय सुयोधन, शत्रुपक्ष से हाथ मिलाकर, आवश्यक कागजों को लेकर भाग जाता है। गौतम तथा नारायणस्वामी उसे पकड लेते हैं। किंतु सुयोधन उन कागजों को पानी में फेंक शोर मचाता है कि गौतम तथा नारायणस्वामी देशद्रोही हैं। सभी सैनिक वहाँ आ पहुँचते है। इतने में नारायणस्वामी भाग जाता है। सुयोधन देशभक्त के रूप में गौरव पाता है तो गौतम देशद्रोही के रूप में जेल जाता है। गौतम की पत्नी दयामयी, नारायणस्वामी एक अनाथ-आश्रम खोलते हैं। धर्माराव गौतम का पुत्र तब अवस्था में छोटे होने के कारण वहीं अनाथ बालक के रूप में बडा होता है। धर्माराव बडा होकर उसी जेल में जेलर के रूप में जाता है जहाँ गौतम है। जेलर बनकर कैदियों केलिए सभी प्रकार की सुविधायें दिलाता है। देश की संकट–स्थिति में सुयोधन को उसके द्वारा फेंके गये कागज फिर मिल जाते हैं, यह समाचार गौतम को मिलता है। कैदी के रूप में जेल में प्रवेश किये हुए जासूसी बलराम की सहायता से, गौतम भाग जाता है। सुयोधन जान लेता है कि धर्माराव, गौतम और दयामयी का पुत्र है। और धर्माराव पर पिता होने के नाते गौतम को जेल से भिजवा देने के आरोप में गिरफ्तार करवाता है। सुयोधन की पुत्री और धर्माराव की प्रेयसी सत्यवती एक पब्लिक प्रासिक्यूटर है। धर्माराव को प्यार करती हुई भी अपने कर्तव्य का पालन कर उसे कडी सजा देने को कहती है। इसी बीच गौतम के भाग जाने पर दयामयी तथा नारायणस्वामी द्वारा धर्माराव सारा वृत्तांत सुनता है।

उधर गौतम तथा दयामयी भेष बदकर सुयोधन के यहां नौकरी करते हैं। एक रात सुयोधन, गौतम को पहचान कर उस का अंत करने का विफल प्रयत्न करता है। इसी समय दयामयी सत्यवती के पास से टेपरिकार्ड लाकर उन दोनों के वार्तालाप को रेकार्ड करती है। दयामयी, धर्माराव के पक्ष में अदालत में लडनेवाले अर्जुन के पास टेपरिकार्डर भेजती है। अंत में धर्माराव

गौतम और नारायणस्वामी निर्दोष साबित होते हैं । और सुयोधन मरते समय धर्माराव से क्षमा याचनाकर सत्यवती को उसे सौंपता है ।

इस कथा के साथ जेल वार्डन राधाई तथा वहाँ के ठेकेदार भुजंगम के अत्याचारों का विशद वर्णन है ।

उपन्यास में एक ओर सुयोधन, राधाई तथा भुजंगम जैसे कर्तव्यच्युत एवं देश-द्रोही पात्र मिलते हैं जिन्हें लोग सच्चे देशभक्त एवं कर्तव्य निष्ठ व्यक्ति मानते हैं । दूसरी ओर गौतम, नारायणस्वामी तथा धर्माराव जैसे पात्र हैं जिन्हें सच्चे कर्तव्य-निष्ठ एवं देश-भक्त होने पर भी अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं । लेखिका यही सिद्ध करना चाहती है कि धर्म को अंत में विजय प्राप्त होगा ।

दयामयी को एक वीर नारी के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने पति तथा पुत्र की निर्दोषिता को सिद्ध करने के लिए कई कष्ट सहती है । इसी कर्तव्य-निष्ठा से धर्माराव को अपनी माँ होने का भी खबर नहीं देती । सत्यवती, धर्माराव से प्रेम करती हुई भी अपने कर्तव्य के आगे प्रेम को गौण मानकर धर्माराव के विरूद्ध लडती हुई कर्तव्य परायणा स्त्री के रूप में चित्रित की गई है ।

लेखिका ने यह सिद्ध करने की चेष्टा भी कि है कि इस संसार में अन्याय तथा अधर्म अधिक समय तक चल नहीं पाते अंत में न्याय तथा धर्म की स्थापना होगी ही ।

'कल्याण मंदिर' एक सामाजिक उपन्यास है, इसमें लेखिका ने उच्च मध्यवर्गीय परिवारों की समस्याओं का चित्रीकरण किया है ।

कल्याणी, मध्यवर्गीय परिवार की एक सुंदर कन्या है, उसकी सहेली मैत्रेयी धनी परिवार की इकलौती पुत्री है । कल्याणी सदा, मैत्रेयी के धन तथा आडंबरों से जलती रहती है और मैत्रेयी सरल एवं सौम्य स्वभाववाली है । एक दिन मैत्रेयी की बुआ का लडका प्रकाशम, जो मैत्रेयी का भावी पति भी माना जाता है, आता है और तभी कल्याणी से उसका परिचय होता है । कल्याणी के रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर धीरे-धीरे उससे परिचय बढाता है । विवाह करने का वादा भी देता है । कल्याणी के बुआ का लड़का शेषु, कल्याणी

को सचेत करने का विफल प्रयत्न करता है। धन के नशे में चूर कल्याणी, प्रकाशम के साथ मद्रास भाग जाती है। मैत्रेयी सब जानती हुई भी चुप रहती है। प्रकाशम् कल्याणी से विवाह न कर अपनी रखैल के रूप में रखता है। इधर मैत्रेयी माँ-बाप को प्रसन्न करने प्रकाशम से विवाह करती है। लेकिन कल्याणी को धोखा देना उसका उद्देश्य नहीं है। इसी अवधि में कल्याणी गर्भवती होती है, और वह भी जान लेती है कि प्रकाशम मैत्रेयी का पति भी है तो वह वहाँ से भागकर एक अनाथाश्रम में शरण लेती जहाँ उसकी एक लड़की होती है। एक दिन वहाँ प्रकाशम और मैत्रेयी को मुख्य अतिथि के रूप में देख कर कल्याणी मैत्रेयी के नाम एक पत्र लिख वहाँ से चली जाती। पत्र पढकर मैत्रेयी सहर्ष उस लड़की को अपने घर ले जाती। उसके पश्चात् कई कष्टों का शिकार होकर क्षयग्रस्त होती जाती है। अपनी पुत्री को देखने की इच्छा से प्रकाशम के घर जाती है तो मैत्रेयी देख अत्यंत प्रसन्न होती तथा पति से अनुरोध करती कि उसे भी घर में स्थान दिया जाय। लेकिन तब तक वह मर जाती है।

कल्याणी के लिये काम से उसके परिवार को दुखी होते देख, कल्याणी की बहिन चंद्रा से शेषु विवाह करता है। अंत तक उसके मन में कल्याणी के प्रति प्रेम-भाव बना रहता है।

उपन्यास के मुख्य पात्र कल्याणी, मैत्रेय, प्रकाश तथा शेषु हैं। कल्याणी निर्धन होने के कारण धन से प्राप्त सुख जीवन की भ्रांत कल्पना से प्रेरित होकर कामुक प्रकाशम के साथ भाग जाती है। लेकिन वही भ्रांति उसे विषैला साँप बन कर डस लेती है। वह प्रकाशम की भोग्य-वस्तु ही रह जाती है। अंत में क्षय से पीडित होकर मर जाती है।

मैत्रेयी अतुल धन संपत्ति में पलकर भी स्वतंत्र विचारवाली होती है। प्रकाशम तथा कल्याणी के प्रेम-व्यवहार को जानकर भी बचपन से प्रकाशम की पत्नी के रूप में व्यवहृत होने के कारण अपने माँ बाप को सुखी रखने के उद्देश्य से ही प्रकाशम से विवाह कर लेती है। लेकिन कभी भी कल्याणी के प्रति ईर्ष्या नहीं करतीं। कल्याणी की पुत्री को अपनी पुत्री की तरह पालती है। यहाँ तक कि पति प्रकाशम से, कल्याणी को भी अपनी ही तरह प्यार करने के लिए अनुरोध करती है।[1] इस प्रकार मैत्रेयी सहृदय पत्नी, मातृ-हृदया एवं सच्ची सहेली के रूप में चित्रित है।

---

१. कल्याण मंदिर — पृष्ठ : २७२

प्रकाश चंचल स्वभाव वाला व्यक्ति है। बचपन से मैत्रेयी को विवाह करने को सोंचता है। बाद में कल्याणी से प्यार करता है उस से विवाह न कर समाज में धनी व्यक्ति कहलाने के मोह में मैत्रेयी से फिर विवाह करता है।

शेषु, निर्धन होने पर भी कल्याणी से प्यार करता है। और उसकी धन-लालसा को देख उसे सही मार्ग पर लाने का असफल प्रयत्न करता है। कल्याणी की बहिन चंद्रा से विवाह कर उस परिवार के कष्टों को कम करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उसका उदात्त रूप प्रकट होता है।

उद्देश्य की दृष्टि से यह एक सफल कृति है। यौवन के उन्माद तथा प्रेम के मोह में पडकर आधुनिक युवा पीढी किस प्रकार अपना ही नहीं, माँ-बाप के जीवन को भी नरकतुल्य बना डालते हैं। इसका यथार्थ चित्रण किया गया है। कल्याणी पात्र के माध्यम से निर्धन लडकी धन के मोह में किस प्रकार अपना जीवन नाश करती है, इसको दिखाने की चेष्टा की गयी है।

"एक बार घर की दहलीज से कन्या, कदम बाहर रखे तो फिर उसका गौरव नष्ट हो जाता है।'—इस कठोर सत्य को लेखिका ने कल्याणी पात्र के द्वारा व्यक्त किया हैं।

आजकल के अनाथ आश्रमों के ऊपर लेखिका ने व्यंग्य किया है कि अधिकांश अनाथ आश्रम वेश्या-गृह के प्रतिरूप हैं।[1]

इस जीवन में सभी लोगों के लिए समस्यायें होती हैं। गरीब लोग सोचते हैं कि धन से सभी सुख प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन धनी लोगों के लिए भी अपने स्तर की समस्याएं होती हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस समाज में संपूर्ण रूप से सुखी नहीं रहता हैं। इस प्रकार लेखिका साधारण कथावस्तु के द्वारा उक्त महान् लक्ष्य को व्यक्त करने में सफल हुई हैं।

द्विवेदुला विशालाक्षी जी का सामाजिक उपन्यास हैं 'मारिन विलुवलु' (बदले मूल्य)। इसमें मध्यवर्गीय परिवार को इतिवृत्त के रूप में ग्रहण किया गया है। रमणय्या तथा जानकम्मा मध्यवर्गीय परिवार के दंपति हैं। सूर्याराव जानकी, सांबशिवं, प्रकाशम तथा शांता उनकी संतान हैं। सूर्याराव एक क्लर्क

---

१. कल्याज मंदिर – पृष्ठ : १७१-१७४

है उसका विवाह कनके से होता है। जानकी का विवाह दहेज देकर राजाराव से होता है। लेकिन राजाराव के कुसंस्कार व्यक्तित्व के कारण जानकी मायके में ही रह जाती है। इस घटना से रमणय्या दुखी होकर चल बसते हैं। उसके पश्चात् जानकी बालविहार की अध्यापिका बनकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनती है जो उसके भाई तथा माँ को पसंद नहीं है। सूर्याराव चाहता है कि सांबशिवं की शादी खूब दहेज लेकर करें और उस धन से बहिन शांता की शादी करें। लेकिन सांबशिवं घर की आर्थिक परिस्थितियों के कारण चिंता-ग्रस्त हो जाता है फलतः बी. एस-सी. में फैल हो जाता है। कोमल स्वाभावी सांबशिवं इस कारण आत्महत्या कर लेता है। इस घटना से सूर्याराव निराश हो जाता है। दूसरा भाई प्रकाशम बचपन से ही पढाई के प्रति रुचि नहीं रखता फिर भी स्वावलंबी बनने की आकांक्षा से अखबार बेचकर तथा स्वयं पुस्तकों की दुकान चलाता है। शांता कालेज में एक लडके के प्रेम जाल में फंस कर घर से भाग जाती है। एक सप्ताह के अंदर ही कलंकित चरित्र को लेकर घर लौट आती है। तब सूर्याराव उस कलंक से बचने केलिए उसका विवाह पचास साल के वृद्ध से करना चाहता है। लेकिन जानकी तथा प्रकाश इसका विरोध करते हैं। जानकी, शांता को लेकर बाल-विहार में ही रहने लगती है। जानकी का पूर्व परिचय बाल-विहार की मालकिन अनसूया के दूर के रिश्ते के भाई गोविंदबाबू से होता है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं। लेकिन शांता के आगमन से गोविंदबाबू शांता की ओर आकर्षित होकर उससे विवाह कर लेता है। इससे जानकी निराश हो जाती है। तभी राजाराव की दूसरी पत्नी के देहांत के कारण जानकी के पास आकर उसके तीन बच्चों की माँ बनने के लिए अनुरोध करता है। लेकिन जानकी इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है।

आलोच्य उपपन्यास चरित्र प्रधान तथा मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है जिसमें सभी पात्रों का अपना अपना व्यक्तित्व है।

जानकी उपन्यास की प्रमुख पात्री है। वह स्वतंत्र विचार रखनेवाली स्त्री है। विवाह होने पर भी धन-पिपासी पति के द्वारा ठुकराये जाने पर दुखित तो होती है लेकिन निराश नहीं होती। स्वाभिमानिनी होने के कारण ससुराल के घर जाने से इनकार कर देती है। माँ तथा भाई जो उसे किसी न किसी प्रकार ससुराल भेजने का प्रयत्न करते हैं उन्हें वह उत्तर देती है कि–'युवती केवल रोटी के लिए विवाह नहीं करती है। अत्याचार एवं निन्दाये पाकर भी कुछ स्त्रियाँ वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही हैं तो इसका मतलब यह नहीं

कि उनके पास मुट्ठी भर भी खाने को नहीं, इस विषय से पुरुष अवगत होकर अपने अहंकार की मात्रा को कम कर स्त्री के व्यक्तित्व को गौरव प्रदान करना जितनी जल्दी सीखें उतना ही अच्छा है ।[1]

इतना ही नहीं वह स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता पर विश्वास रखती है इसी कारण घर में मां तथा भाई के विचारों के विरुद्ध नौकरी करती है । वह नारी-हृदय भी रखती है अपनी बहिन शांता का विवाह जब अधेड़ व्यक्ति से होने लगता है तो उसका डटकर विरोध करती है स्वयं उस कलंकित बहिन को पढानें का निश्चय कर लेती है । आरंभ से अंत तक वह जीवन में हर एक परिस्थिति से समझौता करती आयी है । इसी कारण अंत में जब उसका प्रेमी गोविंदराव, शांता से विवाह कर चला जाता है तो बाल-विहार में ही रहकर उन बच्चो की देखभाल में ही अपना जीवन व्यतीत करने को सोच लेती है । इसी कारण विधुर राजाराव अपने बच्चों की देखभाल के लिए उसे बुलाता है तो शांत स्वर में जवाब देती है—"राजारावजी आपके तीन बच्चे हैं । बच्चों को देखने के लिए आप मेरी सहायता की अपेक्षा कर रहे हैं । बाल विवाह के सभी बच्चे मेरे हैं । इन सब बच्चों को किस पर छोडकर जाऊँ ।'[2]

शांता परिस्थितियों की कठपुतली के रूप में ही प्रत्यक्ष हुई । प्रकाशम और सांबशिवं सगे भाई है लेकिन दोनों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं । एक स्थान पर दोनों के स्वभावों की तुलना करती हुई लेखिका कहती है कि – "सत्य एवं निश्चलता को औजार के रूप में ग्रहणकर आत्मविश्वास के साथ अंध विश्वासों का खण्डन करने से ही घर की अंधियारी मिटकर प्रकाश का प्रवेश हो सकता हैं, इस प्रकार का विचार रखने वाला प्रकाशम तथा अपनी ही परछाई से डरते हुए, अपने इर्दगिर्द की आँखें शायद उसका परिहास तो नहीं कर रही है ऐसा डरते हुए लोगों के कष्टों एवं उत्तरदायित्वों को ढोना ही अपना भाग्य मानकर अपने ही सांस–प्रश्वासों में अपने धैर्य को खो देनेवाले शांबशिवम के बीच समानता खोजना जानकी के वश की बात नहीं थी ।"[3]

प्रकाशम न्याय तथा आत्मविश्वास के साथ आगे बढनेवाला उत्साही युवक है । लेखिका के शब्दों में "कामचलाऊ ज्ञान रखनेवाला उद्दंड युवक है ।"[4] जीवन तथा जगत के प्रति प्रकाशम के अपने विचार हैं – "मेरा अभि-

---

१. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : २३४
२., ३. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : २ ३ ४, ७१
४. मारिन विलुवलु – भूमिका से उद्धृत

प्राय है जीने केलिए चोरी और याचना के अलावा और कोई भी काम पाप नहीं है। अगर हम यह जान सकें कि श्रम करना कोई लज्जाजनक कार्य नहीं है तो यह बेकारी समस्या बहुत हद तक दूर हो सकती है।"[1]

शिक्षा के प्रति उसका दृष्टिकोण है – शिक्षा से अगर कोई उपयोग हो तो वह स्त्री और पुरुष में भेद न करके सभी केलिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होती है।[2] वह अपने लक्ष्य के प्रति दृड आस्था भी रखता है।

सूर्याराव मध्यवर्गीय परिवार का प्रतिनिधि है। वह पुराने आचार-विचारों को मान्यता देकर, नये सामाजिक मूल्यों को अपनाने में असमर्थ होकर जीवन से हार जाता है। शिक्षित होते हुए भी संस्कार की कमी के कारण, माँ बाप की इच्छा के अनुसार अधिक दहेज पाने केलिए लालायित वह है राजाराव।

सुंदरम्मा मध्यवर्गीय परिवार की परंपरावादिनी स्त्री है। जब जानकी स्वाभिमानिनी बनकर ससुराल जाने से इनकार कर देती है तो सुंदरम्मा उपदेश देती है – "विवाहित स्त्री को ससुराल जाने में गौरव और अगौरव का प्रश्न कहाँ उठता है ? पति के आश्रय में रहने के अलावा पत्नी को और क्या चाहिए ?"[3]

आलोच्य उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार का जीता जागता चित्रण प्रस्तुत है। लेखिका का आशय है कि जब तक सामाजिक मूल्य, रूढिगत आचार–विचार और सामाजिक व्यवस्था संपूर्ण रूप से न बदले तब तक प्रगति नहीं होगी। इसी तथ्य का प्रतिपादन लेखिका ने जानकी तथा प्रकाशम पात्रों के माध्यम से प्रतिपादित किया है। धन की आवश्यकता पर जोर देते हुए लेखिका कहती हैं – "मानव को जीने के लिए धन की आवश्यकता हैं। यह सच है परंतु एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को मारने का कारण भी धन ही है। मानवों के बीच अनुराग को स्थिर रखने केलिए धन सहायक है। फिर वही धन उन अनुरागों का निर्मूलन भी करता है।"[4]

सारांश रूप से इस उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का यथातथ्य चित्रण के साथ साथ जीवन में प्रगति पाने के लिये लेखिका ने अपनी ओर से कुछ तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं।

१, २. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : ४०, ४५

३. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : ३०   ४. मारिन विलुवलु – पृ. १५०

आपका ही 'ग्रहणं विडिचिदि' (ग्रहण छूट गया) सामाजिक उपन्यास में धन तथा अधिकार प्राप्त व्यक्ति को समाज में किस प्रकार आदर सत्कार मिलता है, इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

भारती तथा सारथी अपने माँ-बाप की मृत्यु के पश्चात् मामा-मामी की देखरेख में पालते हैं। सारथी अपनी पत्नी लक्ष्मी के संग दूसरे शहर में नौकरी के लिए चला जाता है। भारती का वैवाहिक जीवन माधव के साथ तीन साल आनन्दपूर्वक बीतता हैं। लेकिन एक दुर्घटना में माधव की मृत्यु हो जाती है। भारती को ढाढस बाँधने उसके भाई-भाभी, मामा-मामी प्रयत्न शील रहते हैं। इसी बीच सरकार की ओर से भारती को विपुल धन प्राप्त होता है। इसी धन के कारण घर में अचानक उसका गौरव बढ जाता है। भारती डरने लगती है कि सभी उसके पैसों के लिए उसके प्रति आदर जता रहे हैं। तभी भारती का परिचय माधव तथा सारथी के मित्र जगदीश से होता है। जो कुछ समय पश्चात भारती के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। पहले भारती माधव को भूल न सकने के कारण और फिर समाज के डर से इस प्रस्ताव को ठुकरा देती है। लेकिन अंत में मान जाती है। विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है। अचानक भारती, जगदीश के प्रति भी शंकित होकर ऋषीकेश भाग जाती है। वहाँ ऋषीकेश बाबा के वचनों से धीरज धरकर अपना पता घरवालों को दे देती है। कुछ महीनों के लिए वहीं रहकर मानसिक शांति को पाने की चेष्टा करती है। एक दिन बाबाजी, एक सज्जन व्यक्ति से उसका परिचय करवाते हैं और कहते है कि वह व्यक्ति लक्ष्मण झूले के पास रहनेवाले कोढियों के लिए धन इकट्ठा कर रहा है। बाबाजी आगे सलाह देते हैं कि तुम अपना धन इस पुण्य कार्य में लगाकर शांति पाओ। इस घटना से भारती, बाबाजी को भी धन-लोलुप मानकर उसी रात को आश्रम से भाग जाती है। लेकिन बाबाजी इस बात को जानकर एक पत्र द्वारा उसे उपदेश देते हैं कि जो वस्तु उसके पास है उसे खुशी से दूसरों को देकर, दूसरों के पास से कुछ लेकर संतोष पाने में ही आनंद है। विशाल हृदय दूसरों को समझने में ही जीवन का आनंद निहित हैं। फिर स्वच्छंद मन से अपने लोगों के पास चली जाती हैं।

भारती इस उपन्यास की केंद्रबिंदु है। वह सुन्दर, सुशिक्षित युवती हैं। विधवा भारती को पति की मृत्यु के कारण प्राप्त धन के कारण ही उसे अपने रिश्तेदारों से दूर करता है। भारती पति को प्यार करते हुए उसकी मृत्यु के पश्चात् जगदीश के प्रति आकृष्ट होती है। पति माधव को भूलने में

असमर्थ और जगदीश के प्यार को दूर करने में असफल भारती मानसिक संघर्ष का शिकार होती है। अंत में जगदीश से विवाह करने का निश्चय कर अपने भाई से अपने विचारों को प्रस्तुत करती है– "इन चार सालों के अनुभव के आधार पर मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं पुरुष आकर्षण से विरत नहीं हूँ। मन के विरुद्ध इसी तरह जीवन यापन कर किसी बुरे क्षण किसी अवांछनीय परिस्थिति में, दमित वासनाओं के भडक उठने पर मेरा पतन हो जाना अनिवार्य प्रतीत होता है। उस प्रकार की विपत्ति से बचने के लिए और सुरक्षित रूप से जीवन यापन करने के लिए पुनर्विवाह की आवश्यकता महसूस हुई। इन दिनों इस प्रकार का कार्य करना अवांछनीय भी नहीं है।"[1]

भारती चाहती है कि वह विवाह करे तो ऐसे व्यक्ति से जो सहृदयी हो। इसी कारण वह जगदीश के प्रति शंकित होती है। इस से यही पता चलता है कि भारती को दूसरों से ज्यादा अपने पैसों से मोह है। तभी वह उस से प्यार करनेवाले सभी लोगों के प्रति अपनी शंका के कारण अपने प्यार को कलुषित बनाती है। जब इन्हीं बातों को वह ऋषिकेश के बाबा द्वारा सुनती है तो वह अपनी भूल को समझ पाती है और जगदीश के पास लौट आती है।

जगदीश एक सहृदय, प्रगतिशील विचारक तथा माधव का अनन्य मित्र है। जगदीश मित्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी भारती की जिंदगी में नया मोड लाने केलिए ही उसके जीवन में प्रवेश करता है। विधवा होने पर भी भारती से विवाह करने की बात सोचकर कहता है– "भारती ! आजकल इस प्रकार के विवाह कोई समस्या प्रधान नहीं है। समस्या तो केवल एक दूसरे को चाहनेवाले व्यक्तियों के मिलन की हो है। मैं तुम्हारे प्रति, मात्र सहानुभूति को व्यक्त करने केलिए यह बात नहीं कह रहा हूँ। और न किसी प्रलोभन में पडकर तुम्हारे आगे इस प्रकार की याचना कर रहा हूँ।"[2] इस कथन से जगदीश का निस्वार्थ प्रेम तथा उसके प्रगतिशील विचारों का परिचय मिलता है।

उपन्यास के अन्य गौण पात्र विशेषतः भारती के चरित्र के विकास में ही सहयोग देते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के उद्देश्य के संबंध में भूमिका में स्वयं लेखिका ने स्वीकारा है–"विधवाओं को विधिवत् पुनर्विवाह कराना आवश्यक है। यह

१, २. ग्रहण विहीचिदि–पृष्ठ : १२१-१२२, १०७

कहना मेरा उद्देश्य नहीं हैं। लेकिन यदि वे अपने व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए पुनर्विवाह करना आवश्यक मानती है तो ऐसे करने में कोई गलती नहीं है। इस प्रकार के पुनर्विवाह से स्वर्गवासी पति के प्रति अन्याय करना कदापि नहीं है। यदि सच्चे रूप में अपने जीवन काल में उसके पति उस से प्यार किया हो तो उसकी आत्मा किसी लोक में विचरण करती रहे, अपने स्त्री के आनंदमय जीवन की प्रशंसा ही करेगी। कोई भी हो, आत्मीय जन की सुख-शांति की ही अपेक्षा करते हैं।

इसके अतिरिक्त लेखिका ने धन के पीछे पागल कई लोगों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया हैं। ऋषिकेश बाबा धन और प्रेम के बीच के संबंध में कहता है–"धन के अभाव में भी सच्चे रूप से प्रेम करनेवाले मनकी कमी नहीं होगी। –––– अपनी पत्नी तथा संतान की भूख को शांति करने में असमर्थ गृहस्थ-पुरुष के हृदय में प्यार भरा रहने पर भी व्यक्त करने का माध्यम न पाकर कठिन शिला के समान बन जाता है। दरिद्रता के कारण प्रेम के मूल्य के सामने अपनी स्वच्छता को खो बैठता है। आदमी के अंदर निहित अच्छे गुणों को उभरने न देकर उन्हें दबा देनेवाली शक्ति गरीबी में है।"[1]

इस प्रकार यह धन और प्रेम के संबंध में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाला उद्देश्यपूर्ण उपन्यास हैं। जो एक प्रकार से जीवन-दर्शन के अभिव्यक्ति का माध्यम बन पडा है।

यद्दनपूडि सुलोचनाराणी :–

इसकी कथा इनका बहुचर्चित सामजिक उपन्यास है सेक्रेटरी'। जयंती तथा राजशेखर के इर्द गिर्द चलती है। जयंती सुंदर, भोली तथा स्वाभिमानिनी युवती है। वह हृद्रोग से पीडित दादी की चिकित्सा करवाने तथा अपनी आजीविका चलाने वनिता-विहार में कार्यदर्शी का काम करने लगती है। परंतु वनिताविहार में होनेवाले अत्याचारों तथा अन्यायों को सहन न कर सकने के कारण कुछ ही दिनों में इस्तीफा दे देती है। तो वनिता–विहार के संचालक में परोक्ष रूप से सहायक एवं धनी व्यक्ति राजशेखर जयंती को सेक्रेटरी के रूप में स्वीकार करता है। जयंती, 'एपेंडिसाइटस' से पीडित होने पर राजशेखर उसके घर जाता हैं और जयंती की दादी को अपनी नानी के रूप में पहचानता है। लेकिन इस बात को गुप्त रखने केलिए नानी से भी कहता हैं और नारी

१. ग्रहणं विडिचिंदि – पृष्ठ : १६१

तथा जयंती को अपने घर ले आता है। जयंती के स्वस्थ होने के बाद भी वहीं रहने लगते हैं। अचानक जयंती की दादी स्वर्गस्थ हो जाती है। तो उन दोनों का वास्तविक रिश्ता गुप्त ही रह जाता है।

राजशेखर विद्यार्थी दशा में रेखाराणी से प्यार करता है किंतु रेखाराणी का मन राजशेखर के धन पर रमा रहता है। राजशेखर जब क्षय का शिकार हो जाता है तो, रेखाराणी एक बूढे धनी व्यक्ति से विवाह कर लेती है। इसी समय राजशेखर की फेमली डाक्टर की पुत्री गीता, राजशेखर के जीवन में प्रवेश कर उसकी सेवा सुश्रूषा करती है। रेखाराणी से विरक्त राजशेखर गीता की ओर आकृष्ट होता है। लेकिन गीता की अचानक मृत्यु से राजशेखर, जयंती में उसके रूप को देखने लगता है। जयंती पर अनुरक्त राजशेखर उसके आगे विवाह का प्रस्ताव भी रखता है। राजशेखर को पाने में असमर्थ रेखा-राणी, जयंती तथा राजशेखर में फूट डालने को सोचकर जयंती से कहती है कि राजशेखर, जयंती के प्रति सहानुभूतिवश ही उससे शादी करना चाहता है न कि सच्चे दिल से चाहकर। रेखाराणी यह भी कहती है कि जयंती को राज-शेखर के प्रति कृतज्ञता का भाव अपनाकर वहाँ से कहीं चले जाना उचित होगा। क्योंकि राजशेखर वनिता-विहार की एक सदस्या की पुत्री प्रमीला से विवाह करना चाहता है। वास्तव में प्रमीला राजशेखर के प्रति इस प्रकार का भाव नहीं रखती। फिर भी जयंती, इन सभी बातों को सच मानकर घर छोड जाती है। रास्ते में जयंती की मुलाकात, राजशेखर के पुराने सेक्रेटरी शिवराम से होती है। जयंती, शिवराम से विवाह करना चाहती है। शिवराम के द्वारा तिरस्कृत होने पर स्वाभि-मानिनी जयंती शिवराम के एक अन्य मित्र प्रकाश की सहायता से नौकरी पाने के उद्देश्य से उसके साथ बंगलौर चली जाती है वहां पर प्रकाश के मित्र प्रसाद के घर में ठहरते हैं। दुर्भाग्यवश दो दिन के अंदर हैजा के कारण प्रकाश की मृत्यु हो जाती है। जयंती अपने किये पर पछताकर राज-शेखर को चिट्ठी लिखती है कि वह उसे आकर ले जावे। किंतु दुर्घटनाग्रस्त राजशेखर को अस्पताल में रहने के कारण चिट्ठी उसे नहीं मिलती। एक माह तक राजशेखर की प्रतीक्षा कर जयंती प्रसाद से प्रार्थना करती है कि उसके लिए कहीं नौकरी दिलवा दे। प्रसाद, जयंती को उसे अपनी बहन डाक्टर विजयलक्ष्मी के यहां उसके घर एवं बच्चों की देखभाल के लिए भेज देता है। विजयलक्ष्मी एक दिन जयंती के आगे प्रसाद से विवाह करने का प्रस्ताव

रखती है। जयंती के मौन को स्वीकार के रूप में ग्रहणकर प्रसाद से जयंती की शादी के लिए साडियां खरीदने विजयालक्ष्मी तथा जयंती बाजार जाती है। तो वहां पर जयंती की मुलाकात एक महिला से होती है जो पहले कभी राजशेखरम के यहां चंदा मांगने के लिए आकर राजशेखर की सेक्रेटरी जयंती को उसकीपत्नी समझ बैठी थी। इसी गलतफहमी से वह जयंती से राजशेखर के संबंध में पूछताछ करने लगती है। विजयालक्ष्मी जयंती से इन बातों की सत्यता के संबंध में पूछती है। जयंती के द्वारा सारा वृत्तांत सुन स्वयं राज-शेखर के स्वभाव से परिचित होने के कारण जयंती से कहती है कि तुम राज-शेखरम से ही विवाह करो। विजयालक्ष्मी के अनुरोध पर जयंती राजशेखर के पास जाती है। राजशेखर घर लौटी जयंती को सहर्ष स्वीकारता है।

उपन्यास के कथानक की घटनाओं के क्रम एवं विकास में सहजता है। इस उपन्यास में पात्रो की बहुलता है। राजशेखर तथा जयंती ही प्रमुख पात्र माने जा सकते हैं। राजशेखर उच्च वर्ग का व्यक्ति है जिस में सहृदयता, सहनशीलता, परोपकारी भावना, आदि उच्च आदर्श गुण पाये जाते हैं। मानवता की कसौटी पर खरा उतरनेवाला राजशेखर जैसे पात्र लेखिका की अनोखी सृष्टि है। यत्र तत्र राजशेखर का ऐसा भी अनुपम व्यक्तित्व प्रस्तुत किया गया है जिससे यथार्थ जीवन में ऐसे पात्र उपस्थिति पर ही शंका होने लगती है। राजशेखर पात्र में जीवन की समस्याओं का आरोप अधिक दिखाई पडता है। वह धनवान होने पर भी निर्धन लडकी से सच्चा प्यार करता है। वह यही चाहता है कि जयंती अपनी बुआ की लडकी होने पर भी रिश्तेदारी के नाते उस से विवाह न कर सच्चे दिल से प्यार करने पर ही विवाह करे।[1] इसीलिए वह अंत तक जयंती की प्रतीक्षा करते रहता है।

जयंती में सौंदर्य तथा सौजन्य का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। इस पात्र के माध्यम से नौकरी करनेवाली स्त्रियों के समक्ष प्रस्तुत होनेवाली सम-स्याओं का चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। जयंती भोली तथा स्वभिमा-निनी नारी है। तभी वह अपने को चाहने वाले राजशेखर की उपेक्षा कर शिवराम से विवाह करना चाहती है, तदुपरांत प्रकाश के साथ। नौकरी की तलाश में बंगलौर चली जाती है। जयंती के आत्माभिमान का परिचय तभी मिलता है जब वह वनिताविहार की एक सदस्या सुमित्रादेवी के रिश्तेदार से विवाह करने से तिरस्कार कर देती है और सुमित्रा की धमकियों की उपेक्षाकर नौकरी के लिए ही त्यागपत्र दे देती है। लेखिका ने जयंती के द्वारा नारी-सुलभ दुर्बलताओं का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है।

१. सेक्रटरी – पृष्ठ : ३५३ २, सेक्रटरी – पृष्ठ : ४३

इनके अतिरिक्त सुनंदा, विजयलक्ष्मी, रेखाराणी, सुमित्रादेवी, जैसी स्त्री पात्रों का तथा शिवराम, प्रकाश, प्रसादवर्मा जैसे पुरुष पात्रों का चित्रण भी गौण रूप से हुआ है।

नौकरी करनेवाली स्त्रियों की समस्याओं का जयंती के माध्यम से तथा समाज-सेवा तथा देशसेवा के नाम पर महिला-समाजों के नाम पर होने वाले अत्याचारों एवं अन्यायों पर वनिता-विहार के माध्यम से यथेष्ठ मात्रा में इस कृति में प्रकाश डाला गया है। वनित-विहार की धनी सदस्याओं के माध्यम से पूँजीवादी तथा जयंती के माध्यम से मध्यमवर्ग के जीवनस्वरूप का चित्रणकर दोनों के बीच के अंतः संघर्ष को भी प्रस्तुत किया गया है। वर्मा के द्वारा उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों के कुकर्मों एवं उनकी काम लोलुपता पर भी लेखिका ने प्रकाश डाला है।

स्वयं लेखिका ने आकाशवाणी के वनिता-वाणी कार्यक्रम में इसमें इस उपन्यास के उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किय है– "समाज के कुछ लोगों में स्वार्थपरता है जो कुछ लोगों में दंभ की प्रवृत्ति है। वर्मा जैसे लोग बाहर से भले मानस दिखते हैं तथा भीतर से स्वार्थी एवं कामलोलुप होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना ही मेरा उद्देश्य रहा है।" इसके अतिरिक्त राजशेखर पात्र के द्वारा धनी समाज में आदर्शवान व्यक्तियों का चित्रण करना भी लेखिका का उद्देश्य रहा है।

आपका सामाजिक उपन्यास है 'आराधना'। अनंत मध्यवर्गीय परिवार का युवक है। वह पढाई के दिनों में एक धनी परिवार की लडकी राधा से प्यारकर शादी कर लेता है। अनंत की माँ राजेश्वरम्मा, इस विवाह से सहमत न होकर भी अपने इकलौते पुत्र की सुख–सुविधा केलिए मान जाती है। राधा ससुराल में आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होती है, और दो बच्चों की माँ बनने के बाद, मर जाती है। उसकी माँ अनंत की जिंदगी को सुधारने के उद्देश्य से उसे समझा बुझाकर एक सुंदर एवं स्वस्थ लेकिन गूँगी लडकी अन्नपूर्णा से उसका विवाह करवाती है। अनंत अन्नपूर्णा को एक दासी के रूप में ही देखता है। अनंत की लडकी लक्ष्मी भी अहंकार के कारण, उस घर में अन्नापूर्णा की अवहेलना करती रहती है। अन्नपूर्णा के माता-पिता बचपन में ही मर जाते हैं। इस कारण वह चाचा का प्यार पाकर और चाची की अवहेलना पाकर बडी होती है। वह अपने ससुराल में अपनी सहनशीलता के कारण ही धीरे धीरे पति के प्रेम को जीत पाती है। थोडे दिनों में वह गर्भवती बनती है। सास और पति को यह बात खटकती है। उससे कहे बिना एक दिन

अनंत उसका गर्भ–पात करवाने ले जाता हैं। लेकिन अन्नपूर्णा डाक्टर से अपनी असहमती कागज पर लिखकर व्यक्त करती है। इसके कारण अन्नपूर्णा का जीवन उस घर में नरकतुल्य बन जाता है। इसी बीच धीरे धीरे अनंत की आर्थिक स्थिति सुधरती हैं। लेकिन अन्नपूर्णा की उपेक्षा होने लगती है। अनंत अप्सरा होटल बनवाने का कांट्रेक्ट लेकर काम पूरा होने पर घर के सभी लोगों को होटल दिखाने ले जाता है। वहाँ भी उसकी उपेक्षा की जाने पर मानसिक संघर्ष का सामना करती हुई वह सीढियों पर से गिर जाती है और गर्भस्थ शिशु मर जाता है। इस घटना के द्वारा अन्नपूर्णा जीवन के प्रति एक निर्लिप्त भाव को अपनाती है। लेकिन अनंत अपनी गलती को पहचानकर उसके प्रति-प्रेम व्यक्त करता है। अनंत की माँ अपने लडके की आर्थिक स्थिति के सुधारने पर अन्नपूर्णा को बहू योग्य नहीं मानती। इस कारण अपने बेटे का पुनर्विवाह सरोज से कराने का षड्यंत्र रचने लगती है, जिससे अनंत भी अनभिज्ञ रहता है। स्वार्थी राजेश्वरम्मा अन्नपूर्णा से अनंत के विवाह की बात कहकर उसको तलाक केलिए राजी करवाती है। उसी बीच अन्नपूर्णा की चाची की मृत्यु होने क कारण उसके बच्चों की देखभाल में वह लग जाती है। तभी राजेश्वरम्मा तलाक संबंधी कागजातों पर अन्नपूर्णा के हस्ताक्षर लेकर चली जाती है। कुछ दिनों के बाद अनंत, बच्चों की बीमारी का पता देते हुए तुरंत आने के लिये तार भेजता है। अन्नपूर्णा बच्चों को देखने की इच्छा से उसके घर जाती है। घर जाने पर पता चलता है कि दोनों बच्चे बीमार हैं और राजेश्वरम्मा तीर्थ-यात्रा केलिए चली गयी है। उसकी सेवा सुश्रूषा में दोनों बच्चे स्वस्थ हो जाते हैं। अनंत के द्वारा पता चलता है कि सरोजा से उसका विवाह करने की बात, केवल उसकी माँ का षड्यंत्र है। जब अनंत ने अपनी अनिच्छा प्रकट की तो, क्रोधित होकर राजेश्वरम्मा तीर्थ–यात्रा केलिए चली गयी है। अंत में अनंत, अन्नपूर्णा से क्षमा मांगते हुए अन्नपूर्णा को पत्नी के रूप में स्वीकारता है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्रा हैं अनंत, अन्नपूर्णा और राजेश्वरम्मा।

अनंत एक सहृदय युवक है जो राधा से प्रेम कर अपनी माता की इच्छा के विरुद्ध कर लेता है। राधा की मृत्यु पर उसे इतना खेद होता है कि अन्नपूर्णा को पत्नी के रूप में स्वीकारने में संघर्ष का सामना करता है। वह गूंगी अन्न-पूर्णा के बारे में सोचता है कि "अन्नपूर्णा को मुझ से अनुराग भले ही प्राप्त न हो लेकिन अन्नपूर्णा भी अनुराग की विशेष अपेक्षा भी नहीं करती होगी। उसे

कम से कम साधारण आदर एवं गौरव की कमी न रहे। स्वयं अपने मन में राधा की प्रतिमूर्ति प्रतिष्ठित हो चुकी है। लेकिन मंगलसूत्र बाँधने के बाद कुछ कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। उस से शादी कर पूर्णा यह न समझे कि अपने गूंगेपन से भी बडी सजा उसे मिली है।"[1] अन्नपूर्णा के सुगुणों से उसकी ओर आकृष्ट होकर उसमें राधा को देखना चाहता है। लेकिन राधा की याद उसे पग पग पर सालती रहती है। इसी संघर्ष में पडकर अपनी कमजोरी को क्रोध के रूप में पूर्णा पर उतार देता है। इस बात को उपन्यास के अंत में स्वयं अनंत स्वीकारता है। पूर्णा से सच्चा प्यार करने के कारण, सरोजा से विवाह करने केलिए कहे जाने पर भी वह साफ इनकार कर देता है। और कहता है कि पूर्णा ही उसकी सच्ची पत्नी है।"[2] इस प्रकार अनंत एक सच्चे प्रेमी सहृदय व्यक्ति एवं सुनिश्चित आदर्श को लिए हुए हमारे सामने प्रस्तुत होता है। लेखिका ने इस पात्र के विचारों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया।

राधा, लाड प्यार में पलने के कारण दरिद्रता के भय से आत्माघात कर लेती है। वह अनंत के प्रेम को प्राप्त करने में सफल तो होती है। किंतु अनंत की कल्पनाओं के अनुरूप गृहिणी नहीं बन पाती।

अन्नपूर्णा एक अनाथ, असहाय और गूँगी युवती के रूप में चित्रित की गयी है। वह गूँगी होने पर भी अपनी आँखों से अपने विचारों को व्यक्त करने में समर्थ है। स्वयं लेखिका एक स्थान पर लिखती है–"अन्नपूर्णा अवसर आने पर बाघिनी की तरह देख सकती है। आँखों से अंगारे बरसाकर दूसरों के विचारों को जलाकर भस्मीभूत भी कर सकती है।"[3] राधा के स्थान पर अनंत के जीवन में प्रवेश कर दासी-तुल्य देखी जानेवाली पूर्णा, अपने सौम्य गुणों तथा सहनशक्ति के द्वारा पति का प्रेम पाने योग्य बन जाती है। एक आदर्श गृहिणी एवं भारतीय नारी के रूप में वह अपने पति की दासी बनकर उसकी आराधना करने में विश्वास रखती है।[4]

राजेश्वरी, पति के आदर्शों के अनुरूप अपने पुत्र को पाल-पोसकर बडी करती है। लेकिन स्वार्थलिप्सा के कारण वह गूंगी पूर्णा के प्रति अन्याय करने

---

१. आराधना – पृष्ठ : १०५   २. आराधना – पृष्ठ : १९१
३. आराधना – पृष्ठ : १०४   ४. आराधना – पृष्ठ : ९६

में भी पीछे नहीं हटती। स्त्री सुलभ मानवीय गुणों से युक्त स्त्री के रूप में चित्रित की गई है।

इस उपन्यास के द्वारा सुखी तथा सफल दांपत्य जीवन के लिए पति-पत्नी के बीच आवश्यक प्रेम-भावना पर लेखिका ने बल दिया है। आदर्श पत्नी एवं सच्ची गृहिणी के रूप में एवं पति की आराधना करनेवाली उत्तम नारी के रूप में अन्नपूर्णा के चरित्र का विकास कराना लेखिका का उद्देश्य रहा है। पूर्णा को गूंगी के रूप में चित्रित कर लेखिका ने यह भी सिद्ध किया है कि सुखमय दांपत्य जीवन के लिए गूंगापन कोई बाधक नहीं है।

'आहुति' उपन्यास में लेखिका ने प्रेम कथा को कथावस्तु के रूप में ग्रहण किया है जो दो लडकियाँ और एक लडके के बीच चलती है।

श्रीधर निर्धन युवक है। माता पिता की मृत्यु के पश्चात् बुआ सुभद्रम्मा के घर रहता है। बुआ की लडकी उमा श्रीधर को बहुत चाहती है। सुभद्रम्मा निर्धन होने पर भी पढाती है। उमा के प्रोत्साहन द्वारा श्रीधर एम. ए. में उत्तीर्ण होता है। श्रीधर को पता चलता है कि आर्थिक अभाव के कारण उमा क्षय की रोगिणी बनी है। नौकरी की तलाश में श्रीधर एक दिन घर छोडकर चला जाता है। संयोगवश श्रीधर की मुलाकात उसके पिता के दोस्त परशुरामय्या से होती है। कुटिल मनस्तत्व वाला परशुरामय्या एक धनी व्यक्ति गुरुनाथ के यहाँ नौकरी दिलवाता है। परशुरामय्या, गुरुनाथ की इकलौती पौती का विवाह श्रीधर से करा कर जायदाद को हस्तगत करना चाहता हैं। श्रीधर इन बातों से अनभिज्ञ रहता है। और उमा को सेनिटोरियम में भर्ती कराता है।

गुरुनाथम की पुत्री प्रेम-विवाह कर पिता से अलग हो जाती है लेकिन जब उसकी पोती पद्मिनी माता-पिता विहीन बनती है तो उसके प्रति गुरुनाथम अत्यंत प्यार जताता है। लेकिन पद्मिनी दादा के प्रति गौरव-भाव नहीं रख पाती, क्योंकि वह हर समय उसके माता-पिता की अवहेलना करता रहता है। गुरुनाथम अपने पोता विद्यापति से पद्मिनी का विवाह करवाना चाहता हैं लेकिन विद्यापति की अकाल मृत्यु हो जाती है।

परशुरामय्या, पद्मिनी और श्रीधर के बीच परिचय बढाने में समर्थ रहता है। धीरे-धीरे उनका परिचय प्रेम में परिणत हो जाता है। परशुरामय्या इसी अवसर की ताक में रहकर, बिना श्रीधर से पूछे गुरुनाथम से विवाह की

तिथि निश्चित कर देता है। लेकिन श्रीधर सोच में पड़ जाता है क्योंकि वह उमा को और पद्मिनी को भी चाहता है। इसी संघर्ष मे वह कहीं भाग जाता है और सारा वृत्तांत पद्मिनी को पत्र द्वारा सूचित करता है। यहाँ परशु-रामय्या, उमा को श्रीधर की प्रेम-कहानी सुनाता है। श्रीधर की बात सुनकर, उमा अस्पताल से घर चली आती है। वहाँ पद्मिनी को उपस्थिति होते देख क्रोधित होती है। पद्मिनी खिन्न होकर संपूर्ण कथा दादा से कहती है। गुरु-नाथम क्रुद्ध होकर और किसी युवक से उसका विवाह करवाने का प्रयत्न करता है। इस पर पद्मिनी नींद की गोलियाँ खाकर अपने अंतिम क्षण श्रीधर के पास बिताती है पद्मिनी की मृत्यु के पश्चात् श्रीधर पागल बन जाता है। श्रीधर की मानसिक स्थिति को जानकर उमा उसे फिर से मानव बनाने के प्रयत्न में रहती है।

इसी बीच परशुरामय्या एक दुर्घटना में दोनों टांगें खोकर अपने किये पापों पर पश्चाताप करता हैं।

इस मुख्य कथा के साथ साथ रेणु तथा विद्यापति की एक प्रासंगिक कथा भी चलती है। रेणु बाल-विधवा तथा पद्ममिनी की सहेली भी है। रेणु अपने भाई-भाभी के पास रहती। एक दिन विद्यापति, पद्मिनी के यहां रेणु को देखता है और उस से प्यार कर, हैंदराबाद जाकर पति-पत्नी के रूप में जीने लगते हैं। इसी बीच गुरुनाथम, विद्यापति के व्यवहार को जानकर रेणु को उस घर की मालकिन बंबई ले जाकर वेश्या-गृह में बेच देती है। और रेणु विवश हो वेश्या बनती है। कई सालों पश्चात् एक बार रेणु हैदराबाद में पद्मिनी को देखकर अपनी करुण गाथा, पत्र द्वारा पद्मिनी को सुनाकर आत्महत्या कर लेती है।

श्रीधर जन्मतः धनी होने पर भी भाग्य का मारा बनकर बुआ की शरण में आता है। वह कर्तव्यनिष्ठ है इसी कारण उमा के रोग की इलाज कराने तथा बुआ को सुखी रखना, अपना कर्तव्य मानता है। किंतु परि-स्थितियों के कारण पद्मिनी से प्यार करता है। प्रेम और कर्तव्य के बीच प्रेम का उत्सर्ग कर कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होता है। इस प्रकार वह जहां पद्मिनी से प्यार कर सच्चे प्रेमी के रूप में प्रस्तुत होता है वहाँ उमा के प्रति अपने कर्तव्य को जान कर एक सहृदय एवं मानवतावादी के रूप में भी प्रस्तुत होता है।

परशुरामय्या स्वार्थी एवं कुटिल है । वह अंत में पद्मिनी, उमा तथा श्रीधर के मन को दुखित कर, अंत में पापों का फल भोगता है ।

विद्यापति धनी होने के कारण विलासी बनता है। वह एक बार वनजा को प्रेम-पत्र लिखता है तो वनजा का भाई उन प्रेम-पत्रों को प्राप्त कर उसे 'ब्लैक-मेइल' करता है । जब रेणु के साथ वह अपने दादा की इच्छा के विरूद्ध जीवन व्यतीत करता है तो उसे वनजा का भाई गुंडों की सहायता से पिटवाता हैं । इस प्रकार अंत में वह अपनी कामुकता का शिकार बनता है ।

लेखिका इस उपन्यास में स्त्री पात्रों के प्रति अधिक सजग रहीं है । पद्मिनी धनी परिवार में पली जाने पर भी एक सहृदयी एवं ममतामयी नारी के रूप में प्रस्तुत होती है । श्रीधर से प्रेम करने पर भी उसकी जीवन गाथा को जानकर श्रीधर को कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित कर स्वयं को आदर्श-प्रेम की वेदी पर उत्सर्ग कर देती है । वह सोचती है "क्षण क्षण मर कर जीना मेरे लिए असंभव की बात है । इससे तो अच्छा एक बार मर कर अमर होना है ।[1]

उमा, सच्ची-प्रेमिका के रूप में सामने आती हैं । वह श्रीधर के प्रति अत्यंत प्यार जताती है । श्रीधर को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए स्वयं भूखी रहकर क्षय की शिकारी बनती है । उमा के इस कथन से श्रीधर के प्रति उसके असीम प्यार का पता चलता है– "तुम्हारा जीवन तुम्हारे अकेले के लिये नहीं हैं, मुझ से जुडा हुआ हैं । तुम मेरे बाग में उगे हुए एक सुन्दर पौधे के समान हो । मैं तुम से कृतज्ञता नहीं चाहती हूँ । जीवन-मरण के संघर्ष में मृत्यु को हराकर मैं केवल तुम्हारे लिए जीवित रहूँगी । तुम्हारे बिना मेरे जीवित रहने में कोई अर्थ नहीं है ।"[2] उमा प्रेम के लिए अपना सब कुछ उत्सर्ग करने तैयार रहती हैं ।

रेणु सनातन परिवार की बाल–विधवा है । मानवीय दुर्बलतावश विद्यापति के साथ भाग जाती हैं, परंतु क्रूर विधि के हाथों मसल दी जाकर वेश्या बनती है और अंत में आत्महत्या कर लेती है ।

इस उपन्यास में विभिन्न स्वभाववाले पात्रों तथा उनके प्रेम, ममता, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोभावों का चित्रण करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है ।

---

१. आहुति – पृष्ठ : ३३६ २. आहुति–पृष्ठ : १०१

श्रीधर पात्र के द्वारा बेकारी की समस्या का विकट रूप भी प्रस्तुत किया गया है। रेणु पात्र के माध्यम से बाल-विधवा तथा वेश्याओं की समस्याओं का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत है। पद्मिनी तथा उमा पात्रों के द्वारा आदर्श प्रेम का चित्रण लेखिका ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

'जीवन तरंगालु' (जीवन की तरंगें) श्रीमती यद्धनपूडि सुलोचनारानी का आठ सौ पृष्ठोंवाला सुदीर्घ सामाजिक उपन्यास है।

इस उपन्यास की कथा अनेक अंतर्कथाओं से संबद्ध है। उपन्यास में पात्रों की बहुलता के कारण कथानक उलझा हुआ प्रतीत होता है। प्रधानतः वेणुगोपालराव और उसकी पुत्री रोजा के बीच उपन्यास की कथा चलती है।

वेणुगोपालराव रईस वृद्ध है जिसके दो पत्नियाँ हैं। संयोगवश विद्यार्थी अवस्था में वेणुगोपालराव का परिचय ललिता से होता है, जो अपने मित्र आनंद की भूल के कारण गर्भवती बनती है। उसका उद्धार करने वेणुगोपाल-राव, ललिता से दूसरा विवाह करता है। और उसकी पुत्री लावण्या को पिता सा प्यार देता है। तब पत्नी सावित्री, पति से संबंध-विच्छेद कर लेती हैं। फलतः उसके बच्चे रोजा तथा चंदू पिता से दूर हो जाते हैं। चंदू धनाभाव के कारण चोर बनता है। उसी शहर में रहने पर भी वेणुगोपालराव के कई प्रयत्नों के बावजूद भी पहली पत्नी को ढूँढ नहीं पाता। उसके बाद वेणुगोपाल राव की पुत्री होती है जो गूंगी है। उसी शहर में वकील विजय तथा उसका भाई अनंत भी रहते हैं। रोजा का अनंत से परिचय होता हैं। अनंत रोजा से विवाह करने का निश्चय करता है। लेकिन विजय एक गरीब लडकी से अपने भाई का विवाह नहीं कराना चाहता। रोजा, अनंत को एक दोस्त ही मानना चाहती है, पति के रूप में नहीं। फिर भी अनंत की सहृदयता के कारण और उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उद्देश्य से उससे विवाह करने के सहमत हो जाती है। विजय इस विषय से अवगत होकर, भाई की रक्षा करने केलिए स्वयं अनंत से कहे बिना रोजा के गले में मंगलसूत्र बाँधता है। रोजा इस बात को जानकर अवाक् रह जाती है। वह अनंत से कुछ कहना नहीं चाहती और फिर अनंत की ही सहायता से वेणुगोपालराव के घर में नौकरी करने लगती है। इसके बाद अनंत दो साल केलिए शांतिनिकेतन पढने जाता हैं। वह सोचता है कि रोजा के विनम्र स्वभाव से विजय भी मुग्ध हो जायेगा जिससे उनका विवाह संपन्न हो सकता है।

अपने सद्व्यवहार के बल वेणुगोपालराव तथा घर के सभी लोगों पर रोजा विजय पाती है। वेणुगोपालराव रोजा को पुत्रीवत् प्यार करता है जो लावण्या से सहा नहीं जाता। युवावस्था में ही लावण्या विधवा बनती है। लेकिन वह विशृंखला जीवन व्यतीत करती है। एक बार अखबार में चंदू का फोटो देखती है जो जेम्स नाम से मशहूर है और उससे परिचय बढाती है। चंदू को कुछ ही दिनों में वेणुगोपालराव के घर के धन तथा गहनों को चुराने का आदेश मिलता है, उस घर को देखने की इच्छा से ही वह लावण्या से परिचय बढाता है।

वेणुगोपालराव को सावित्रम्मा की मृत्यु के क्षणों में पता चलता है कि रोजा उसकी पुत्री है। वेणुगोपालराव रोजा को आश्वासन देता है कि विजय, चंदू को सही रास्ते पर ला सकेगा। भाई को सन्मार्ग पर लाने की बात सुन कर विजया के प्रति क्रोध एवं ईर्ष्या को रोजा छोड देती है। वेणुगोपालराव लावण्या से कहे बिना वसीयतनामा लिख देते है। एक दिन लावण्या उस वसीयतनामा को ढूँढने के लिए पिता की अनुपस्थिति में जेम्स को घर बुलाकर तिजोरी खोलने को कहती है। इसी बीच पिता के आगमन से चंदू के आज्ञानुसार उसकी आँखों में पीछे पट्टी बांध देती है। डर के कारण वह पट्टी उसके गले में पड जाती है जिससे वेणुगोपालराव बेहोश हो जाता है। चंदू उसे मरा समझ भाग जाता है और लावण्या को भी भागने के लिए कहता। ठीक इसी समय रोजा आती तो लावण्या उस पर हत्या का आरोप मढकर पुलिस के हवाले करती है। हैंदराबाद गया हुआ विजय तुरंत आकर विजया को छुडवाता हैं। चंदू को जब पता चलता कि रोजा इस में फँस गयी है तो स्वयं विजय को सारा वृत्तांत सुनाता ही है और वेणुगोपालराव का हाल भी सुधरने के कारण केस रद्द की जाती है। वेणुगोपालराव, चंदू को प्रथम बार देखकर खुश हो जाते हैं। चंदू स्वयं पुलिस के हवाले हो जाता है और उसे आठ साल की सजा दी जाती है, लेकिन कोर्ट से बाहर आते ही उसी के दल के कुछ लोग उसकी हत्या कर देते हैं। चंदू, 'मेरी' नामक एक क्रिस्टियन युवती से प्यार करता है। मेरी, चंदू की मृत्यु सुनकर बच्चे को जन्म देकर वह भी मर जाती है। तो विजय और रोजा उस बच्चे को पालने का निश्चय करते हैं। लावण्या सभी लोगों से विरक्त होकर चली जाती है। अनंत को जब पता चलता है कि रोजा और विजय का विवाह हो चुका है तो वहाँ से मौन चला जाता है।

विजय इस उपन्यास का नायक है। वह भाई अनंत से इतना प्यार करता है कि उसे सुखी रखने के लिए स्वयं दुख मोल लेता है। रोजा को

बाजारू औरत समझकर, अनंत को उससे बचाने के लिए स्वयं रोजा के गले जबरदस्ती मंगलसूत्र बांध देता है। रईस होकर भी अहंभावी न बनकर, विवेकवान् एवं साहसी व्यक्ति के रूप में व्यवहार करता है। नारी के प्रति गौरव तथा ममता भाव को ही अपनाता है। चंद्र, रोजा और अनंत जैसे पात्रों के जीवन को सुधारने के लिए वह अपने जीवन में विपरीत परिस्थितियों का सामना करने को तैयार हो जाता है। आलोचक गेल्लि राममोहनराव जी के शब्दों में 'विजय किसी विषय के संबंध में निश्चय लेने के पूर्व उसके संबंध में गंभीरता से सोच विचारता है। जब वह किसी निश्चय पर पहुँचकर किसी काम को करने की बात सोचता है तो उसे पूरा करके ही छोडता है। लक्ष्य प्राप्ति को वह केवल श्रम के द्वारा ही साध्य मानता है।'[1]

विजय और अनंत भाई होने पर भी उन दोनों के स्वभाव तथा विचारों में अंतर है। विजय जहाँ श्रम के द्वारा नियमित रूप से जीवन-यापन करने की बात सोचता है तो अनंत विश्वास करता कि जीवन आनंद से बिताने केलिए ही है। अनंत सोचता है इस संसार में कोई दुखी न हों सभी आनंद को समान रूप से लूटें। अनंत के स्वभाव के बारे में लेखिका लिखती है-- 'उसके फूल से कोमल हृदय को इस संसार के अन्याय तथा अत्याचार, कांटों की तरह चुभने लगे हैं। उसकी दृष्टि में ससार के सभी मानव समान हैं। उसका विचार है कि सभी में समानता आने से ही संसार का उद्धार हो सकेगा। वह सोचता है कि यह संसार अत्याचारों, घूसखोरी तथा अनैतिकता आदि छूत के रोगों से सड चुका है इसी कारण घने जंगल में रहना वह श्रेयकर मानता है।'[2]

वेणगोपालराव सहृदय पिता के रूप में चित्रित हैं। वह दूसरे लोगों की अच्छाई करने के निमित्त स्वयं कई मुश्किलों का सामना करते हैं। इसी कारण ललिता का उद्धार करने उससे विवाह कर लावण्या को पुत्रीवत् प्यार करता है। और स्वयं अपनी पत्नी तथा बच्चों को खो बैठता है। वह रोजा को पुत्री के रूप में जानकर उसकी निर्धनता पर दुखी होता है और उसे सांत्वना देता है, 'भगवान बहुत ही विचित्र व्यक्ति है। जीवन में गलती न करनेवालों को सजा देता है, दोषी को उल्टे सभी सुखों को प्रदान करना शायद उनके

---

१. गेल्लि राममोहनराव–तेलुगु विद्यार्थी–यद्धनपूडि सुलोचनाराणी, पृ. १९

२. जीवन तरंगालु–भाग–१, पृष्ठ : ४७

लिए कोई खेल हो ।"[1] इस प्रकार स्वयं पछताता है, पहला पत्नी को खोकर भी बच्चों कें प्रति अपने कर्तव्य पूरा करता है ।

चंदू इस उपन्यास एख और प्रमुख पात्र है। कई अभागे, विवेकवान युवकों का प्रतिनिधित्व करनेवाला युवक है चंदू विवेकवान होकर भी धन के अभाव में पढाई को जारी न कर सकने के कारण वह चोरों के संग में आता है। पहले तो अपना लक्ष्य केवल धन कमाना मानता है। लेकिन जब वह जान लेता क़ी उसका जीवन कितना बुदबुदप्राय है तो निर्लिप्त भाव से देखने लगता है। इसी तथ्य को एक बार बहिन रोजा से कहता है ।[2] वह अपने जीवन के संबंध में एक स्थान पर कहता है–"मेरे मन और शरीर दोनों भिन्न तथा प्रत्यर्थी के रूप में हो गये। जो काम मेरा शरीर करता है उस से मेरा मन घृणा करता। मेरा तर्क, मेरी अंतरात्मा के सामने नहीं टिक पाया। अच्छाई और बुराई, सत्य और असत्य के बीच मेरे हृदय में घोर संघर्ष होने लगा।"[3] इस जीवन से तंग आकर ही पिता और विजय की सहायता से सन्मार्ग पर चलने का निश्चय कर के भी हार जाता है। जब डाकुओं द्वारा मारा जाता है तो चीख उठता है कि "विजय – – – – मुझे जीने की इच्छा है। अच्छे आदमी की तरह – – – – साधारण व्यक्ति की तरह – – – थोडे दिन के लिए मुझे बचाइये। प्राण दान करिये।"[4] चंदू के उपर्युक्त कथन में कई चंदू जैसे अभागे युवकों का आर्तनाद प्रतिध्वनित होता है।

रोजा, निर्धन होती हुई भी स्वाभिमानिनी है। वह अनंत को एक सहृदय मित्र के रूप में प्यार करती है न कि पति के रूप में। वह वैवाहिक जीवन के संबंध में अपनी कुछ कल्पनायें रखती जो एक बार अनंत के सामने प्रस्तुत करती है– "देखो अनंत! जब से मैंने होश संभाला है तब से आज तक अडोस-पडोस से, बुआ से, परिस्थितियों से और बदनसीबी से लडती आयी हूँ। अब मुझ में यह शक्ति नहीं है। कम से कम विवाह के पश्चात् निश्चित रूप से निर्मल एवं प्रशांत रहकर पति की छत्र-छाया में जीवन बिताना चाहती हूँ। मुझे ऐशो-आराम, ऊँचे पद या ऊँचे रहन-सहन की जरूरत नहीं है। अनुरागपूर्ण हृदय तथा आश्रय की जरूरत है। जी खोलकर ममता

---

१. जीवनतरंगालु–भाग २ पृ. ५५५-५५६
२. जीवनतरंगालु–भाग २, पृ. ५२१
३. जीवनतरंगालु–भाग २. पृ. ७१२
४. जीवनतरंगालु–भाग २. पृ. ७४३

को बाँटनेवाला व्यक्ति चाहिये।"[1] विजय के आवेश के कारण उसका जीवन बदलने पर भी अंत में विजय के सुदृढ व्यक्तित्व का ज्ञान करती है। जीवन की विपरीत परिस्थितियों का सामना करनेवाली रोजा की व्याख्या करती हुई लेखिका उस के चरित्र का टीका टिप्पणी करती है—"जीवन का बहाव कितना ही उसे पीछे ढकेलता जाय फिर भी बहाव के विपरित उसे तैराना ही है। सुन्दर भविष्य रूपी जुआ खेलना ही है। अकेली एवं निस्साहय रोजा पर जीवन की प्रत्येक घटना एक तरंग बन कर उसे डूबो देना चाहती है। चोट खाने और पराजित होने पर रोजा और भी जिद्दी बनती जा रही है। वह असीम धैर्य और अनंत बल पाने लगी है।"[2] उक्त कथन से रोजा के साहसी जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। जीवन में माँ तथा भाई के जीवन को सुखी बनाना ही अपना चरम लक्ष्य मानती है।

लावण्या अत्याधुनिक युवती के रूप में प्रस्तुत होती है। वह विधवा बन कर भी धन के कारण विश्रृंखल जीवन व्यतीत करती। उसमें सहृदयता, कोमलता, ममता आदि नारी सुलभ गुणों का अभाव है। वह, चंद्रू जैसे चोर के साहस की प्रशंसक ही नहीं बनती बल्कीं उस से प्यार भी करने लगती है। अंत में चंद्रू को भाई के रूप में देखने से इंकार कर कहती है– "इस संसार में इतने लोग हैं फिर भी तुम्हीं को मेरा भाई बनना था। यदि मेरे भाई ही होते तो तुम और मैं बचपन से क्यों नहीं मिले? अचानक तुम्हें भाई के रूप में जानकर क्या मैं 'हाय भैय्या' कहूँ? यह मुझ से नहीं हो सकेगा। अपने मन को लाख समझाने पर भी वह मानता नहीं।"[1]

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने समाज के विभिन्न प्रवृत्तियों-वाले व्यक्तियों का चित्रण प्रस्तुत किया हैं।

भाग्य के कठोर हाथों से मसल दिये गये वेणुगोपालराव के परिवार के विभिन्न सदस्यों की जीवनगाथा का चित्र प्रस्तुत करना ही लेखिका का उद्देश्य है। चंद्रू पात्र के माध्यम से लेखिका ने धनाभाव के कारण तथा अमीरी तथा गरीबी के बीच की खाई बढ जाने के कारण विवश होकर चोर तथा डाकू बननेवाले युवकों की जीवन-गाथा की और संकेत किया है। दूसरी ओर उसी गरीबी में पली हुई रोजा को एक ईमानदार तथा सुशील युवती के

---

१. जीवन तरंगालु – भाग १, पृष्ठ. ४७

२. जीवन तरंगालु – भाग २, पृष्ठ. ४४०

३. जीवन तरंगालु – भाग २, पृष्ठ : ७२२

रूप से चित्रित किया है । विधवा लावण्या संपन्न परिवार में पली जाने पर भी विश्रृंखल मनस्ततववाली बनती हैं । जहाँ विजय को निस्वार्थ, सहृदय व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है वहाँ अनंत भावुक हृदय के रूप में । इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में पले गये एक ही परिवार के भिन्न मनस्तत्व-वाले सदस्यों का चित्रण करना ही लेखिका का प्रधान लक्ष्य रहा है और इस में लेखिका को पर्याप्त मात्रा में सफलता भी मिली है ।

मलाकोदेवी :

'आराधना' उपन्यास में लेखिका ने डाक्टरी से तत् संबंधित समस्याओं एवं प्रयोजनों का वर्णन अत्यंत प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया हैं ।

डा. जयकुमार ईसाई परिवार का युवक है और डा. मंजुला हिंदू परिवार की युवती । दोनों विजातीय विवाह करते हैं । इस कारण मंजुला अपने सनातन ब्राह्मण परिवार से बिलकुल अलग हो जाती है । डा. कुमार के सगे संबंधी नहीं है, परंतु दोस्तों का अभाव नहीं । उसके प्रमुख मित्र हैं डा. वजीरखान, तथा डा. मूर्ति । डा. वजीर खान का विवाह रफीखाँ से तथा मूर्ति का विवाह लक्ष्मी से होता है । डा. मूर्ति का भाई भास्कर, मंजुला की बहिन कल्याणी से विवाह करता हैं । डा. मूर्ति के माता-पिता कुमार तथा मंजुला को बहुत चाहते हैं । कुमार अपने बच्चों को ईसाई धर्मावलंबी बनाता है क्योंकि उन्हें हिन्दू लोग स्वीकार नहीं करते ।

एक बार मंजुला के पिता दुर्घटना के शिकार होते हैं तो कुमार स्वयं अपना खून देकर उसे बचा लेता है । जब मंजुला के पिता को इस का पता चलता हैं तो वह संघर्ष में रह जाता है कि कुमार को डाक्टर के रथ में स्वीकार करें या दामाद के रुप में । एक दिन पुत्री तथा दामाद को घर आमंत्रित करता है फिर भी कुमार को दामाद के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता । अंत में कुमार को विदेश जाने का अवसर मिलता है तब भी मंजुला के पिता, पुत्री को औपचारिक रुप से पत्र लिखता है कि बच्चों को उनके घर छोड जाय । लेकिन कुमार रिश्तेदारी की अपेक्षा मित्रता पर ही अधिक विश्वास रखते हुए मंजू तथा बच्चों को मित्रों की देखरेख में सौंपकर विदेश चला जाता है ।

कुमार तथा मंजुला के विजातीय विवाह करने से पूर्व दोनों के मन के संघर्ष को और विवाह के पश्चात् अपने बचपन से पाले-पोसे गये ब्राह्मण

संस्कृति तथा रिश्तेदारों के दूर होने के कारण मंजुला की विकलता को लेखिका ने अत्यंत सहज तथा मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। माता-पिता के साथ बच्चों के पुनर्मिलन के समय उनके मन में होनेवाले संघर्ष का भी लेखिका ने सफल चित्र प्रस्तुत किया है।[1]

उपन्यास की संपूर्ण कथा कुमार तथा मंजुला के चारों ओर घूमती है। इस मूल कथा के विकास में सहायक होनेवाली उपकथायें हैं खान तथा रफीका की, मूर्ती और लक्ष्मी की, भास्कर और कल्याणी की। उपन्यास में घटनाओं की बहुलता है। इसकी अधिकांश घटनायें अस्पताल से, वैद्यों तथा रोगियों से संबंधित हैं।

डा. कुमार तथा डा. मंजुला वैद्य-व्यवसाय से संबंधित होने के कारण आदर्श वैद्य-जीवन का प्रतिनिधित्व करने के साथ साथ विजातीय विवाह कर समाज-सुधार की भावना तथा प्रगतिशील विचारधारा का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। जब वृद्ध महिला अपनी कुंवारी लडकी का गर्भपात करवाने आती है तो मंजुला उस से कहती है "ऐसा करना वैद्य नहीं है। – – हमें प्राणी की रक्षा करने का आदेश मिला है – – लेकिन किसी के प्राण निकालकर उसका नाश करना हमें सिखाया नहीं गया है। हमारा कर्तव्य यही है कि उन्नत आशयों को लेकर उसके अनुरुप अपने वैद्य-व्यवसाय को मानव कल्याण के उपयोग में लावें।[2] डा. कुमार भी इसी प्रकार के आदर्श वैद्य-जीवन को व्यतीत करनेवाला उत्साही एवं प्रगतिशील विचारधारा से संपन्न युवक है। खान तथा मूर्ति भी वैद्य-व्यवसाय से संबंधित होने के कारण वैद्य-संबंधी बातों में कुमार की प्रतिभा को उभारने में वे सहायक होते हैं। मंजुला के माता-पिता सनातन ब्राह्मण परिवार के हैं और परंपरागत मान्यताओं को छोड़ न सकने के कारण मंजुला और कुमार को पुत्री तथा दामाद के रुप में स्वीकार करने में असमर्थ होते हैं।

स्वयं डाक्टर न होने पर भी चिकित्सासंबंधी कई बातों की जानकारी प्राप्तकर कथानक में सजीवता लाने का यथासंभव प्रयत्न लेखिका ने किया है।[3]

---

१. पुराणं सुब्रह्मण्यम् शर्मा तथा टि. रामचंद्रराव – आराधना – आशीर्वाद, पृष्ठ : ७

२ आराधना – पृष्ठ : ४७–४८

३. आराधना–भूमिका से उद्धृत

मुख्यत: वैद्य–व्यवसाय से संबंधित वस्तु प्रधान उपन्यास की रचनाकर तेलुगु उपन्यास साहित्य को आगे बढाने में लेखिका ने स्तुत्य प्रयत्न किया है। यत्र तत्र मंजुला तथा कुमार के विवाह के द्वारा विजातीय विवाह का समर्थन भी प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त कई रोगियों के व्याख्यानों द्वारा उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को प्रस्तुत करने के बहाने समाज की कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है। जैसे कामलोलुप व्यक्तियों द्वारा कुंवारी तथा भोली लडकियों का जीवन का नाश होना और परिवार की आन बचाने केलिए उनके माता-पिता उस लडकी का गर्भपात करवाने के प्रयत्न करना[1], अंध–विश्वास के कारण प्रसव-कार्य को क्लिष्टतर करलेना[2], कोढी रोगियों की दयनीय जीवन-वर्णन[3], दहेज न देक सकने के कारण अनमेल विवाहों का वर्णन[4] ग्रामीण नारियों तथा गाँववालों के प्रति गाँव के मुखिया लोगों के अत्याचार[5] आदि।

लेखिका यह भी सिद्ध करती है कि पुरुष की प्रगति के लिये तथा जीवन को पूर्णत्व प्रदान करने के लिये साथिनी आवश्यक है। जीवन–साथी-चयन के संबंध में लेखिका कहती है – "ऐसी बातों में यदि स्त्री का प्रभाव पुरुषों पर न हो तो क्या वे पुरुष गृहस्थी कर सकते हैं? क्या उनका व्यवहार नीति–बद्ध रहेगा? इस प्रकार स्त्री की यह शक्ति, जो भगवान की देन है, पुरुषों की प्रगति के लिए ही मानो दी गयी है।"[6] लेखिका ने धनलोलुप डाक्टरों पर भी करार व्यंग्य किया है, जो, रोगी पीडा को नहीं उनके धन को दृष्टि में रखकर रोगियों की चिकित्सा करते हैं।

उपन्यास में अपने उद्देश्य को इस प्रकार लेखिका ने स्पष्ट किया है "डाक्टरों के जीवन में उपस्थित होनेवाले कुछ रोगियों के मनस्तत्वों के बारे में तथा चिकित्सा–विधानों के बारे में लिखना ही मेरा उद्देश्य है।"[7]

'दांपत्यालु' आपका ही एक और सामाजिक उपन्यास है। इसकी कथा दो दंपतियों से संबंधित है। इसमें प्रेम तथा परंपरावादी दो प्रकारों के विवाहों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

१., २. आराधना–पृ. ४७, ७८ ३., ४. आराधना–पृ. ८८–८९, ९८
५. आराधना, पृष्ठ: १०८–१११ ६. आराधना–पृ. १६१
७. आराधना – आमुख, पृष्ठ : ४

महीधर और वेंकटेश्वरराव मित्र एवं सहपाठी है। महीधर रईस परिवार का है और वेंकटेश्वरराव गाँव के किसान का पुत्र है। वेंकटेश्वरराव माँ-बाप की इच्छा के अनुसार मामा की लड़की अनपढ नागरत्नम् से विवाह कर लेता है। एम. ए. का अध्ययन करते समय महीधर का परिचय प्रतिमा से होता है। वेंकटेश्वरराव उन दोनों को विवाह-सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास करता है। प्रतिमा विजातीय परिवार की कन्या होने के कारण महीधर के माता-पिता इस विवाह के प्रति सुमुख नहीं होते। तो भी प्रतिमा के घर उन दोनों का विवाह हो जाता है। प्रतिमा शिक्षित एवं स्वतंत्र-विचारवाली आधुनिक नारी है।

वेंकटेश्वरराव कभी कभी यह अनुभव करने लगता है कि उसकी पत्नी भी प्रतिमा के समान पढी लिखी होती तो अच्छा होता और महीधर भी अपने विचारों की आलोचना करनेवाली शिक्षित पत्नी के बारे में सोचता है कि यदि उसकी पत्नी अनपढ होती तो उसके विचारों को अधिक प्रश्रय देती। लेकिन एक बार जब दोनों मित्र मिलकर एक ही रंग तथा मूल्य की दो साडियाँ लाते है तो नागरत्नम उस साडी को पसंद न करती हुई भी पति की भेंट को सहर्ष स्वीकार कर लेती है लेकिन प्रतिमा अपनी अनिच्छा को स्पष्ट व्यक्त कर देती है कि "मैंने कहा है मुझे पसंद नहीं है। जब दो सौ रुपये खर्च करना था तब मुझे भी साथ ले जाते तो अच्छा होता।"[1] लेकिन जब प्रतिमा को यह पता लगता है कि नागरत्नम् ने केवल पति को संतुष्ट करने की इच्छा से ही साडी को पसंद किया था तो वह अपने पति से तर्क करती कि क्या मैं भी नागरत्नम् के ही समान अपने विचारों का दमन करूँ ? तो महीधर उत्तर देता है कि पत्नी भी अपने स्वच्छंद विचार प्रगट करें, यही मुझे पसंद है। वेंकटेश्वरराव की मनः प्रवृत्ति यही रहती है कि उसकी पत्नी उसके विचारों की आलोचना न करे। इस प्रकार दोनों अपने अपने दांपत्य जीवन से सुखी ही रहते हैं।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं महीधर, वेंकटेश्वरराव, नागरत्नम तथा प्रतिमा। महीधर तथा वेंकटेश्वरराव की मनोप्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। वेंकटेश्वरराव अपने माता-पिता का आज्ञाकारी पुत्र है। महीधर जीवन-माधुर्य का संपूर्ण आस्वादन करने केलिए सभी प्रकार के अवरोधों का सामना करने केलिए

---

१. दांपत्यालु-पृष्ठ : ११८

उद्यत होनेवाला स्वच्छंद व्यक्ति है। वेंकटेश्वरराव जहाँ अपने माता-पिता के इच्छानुसार गँवारु लडकी से विवाह करता है, वहाँ महीधर अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध स्वच्छंद प्रिय बनकर अपनी कल्पना सुंदरी को प्राप्त करने में समर्थ होता है। एक दूसरे की पत्नी को देखकर दोनों आरंभ में यही समझते हैं कि पत्नियों को चुनने में उन्होंने गल्ती की फिर भी उन्हीं से समझौता कर जीवन को सुखमय बना लेते हैं।

नागरत्नम की बुद्धि तथा उसकी अभिरुचियाँ अपनी सीमाओं में ही रहती हैं जिन्हें पार करने का वह कभी प्रयत्न नहीं करती। सदाचार संपन्न पति-परायणा, आदर्श पत्नी बनकर वह अपने पति को संतुष्ट करने केलिए अपनी इच्छा को भी दमन कर देती है जिसमें उसके पति का सुख भी निहित है।

दूसरी ओर प्रतिमा स्वच्छंद जीवन प्रेमी आधुनिक नारी है। पति के विचारों की कटु आलोचना करते हुए अपने स्वच्छंद चिंतन की प्रशंसा उससे कराने में समर्थ होती है। प्रतिमा तथा नागरत्नम की तुलना लेखिका के शब्दों में द्रष्टव्य है – "एक तो सान चढाये हुए वज्र के समान प्रकाशमान होकर उन स्फुरत चंद्रिकाओं में दूसरों को आत्म-संतुष्टि प्रसादित करने वाली व्यक्तित्व से शोभायमान है। दूसरी, सान-रहित वज्र के समान रहकर अपने उस रूप में ही आनंद-प्राप्ति की कल्पनाकर, दूसरों को भी उसी प्रकार का आभास दिलाती है और अल्प संतोषी बनकर अपना जीवन-यापन करती रहती है।"[1]

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने यह सिद्ध किया है कि सुखमय पारिवारिक जीवन बिताने के मूल में आकर्षण का उतना महत्व नहीं है जितना एक दूसरे को समझने तथा उनके विचारों के अनुकूल अपने को बदल लेने में है। नागरत्नम अपने पति के सुख केलिए अपने स्वतंत्र विचारों का दमनकर उसके विचारों से अपने विचारों का समझौताकर लेती है। उसी प्रकार महीधर अपनी पत्नी के स्वच्छंद-विचारों की अभिव्यक्ति का खंडन न कर उसके अनुकूल अपनी विचार-धारा को परिवर्तित कर अपने दांपत्य जीवन को सुखमय बनाने में सफल हुआ है।

मादिरेड्डी सुलोचनाराणी :

'तरम् मारिंदि' (पीढी बदल गयी) लेखिका द्वारा रचित एक आंचलिक उपन्यास है। शिष्टेतर. लोककथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में

---

१. दांपत्यालु – पृष्ठ : १०३

आंचलिक तत्व केवल भाषा तक सीमित न रहकर उपन्यास के अन्य तत्वों में भी व्याप्त हैं ।

इस उपन्यास की कथा ग्रामीण वातावरण में विकसित हुई । रामरेड्डी तथा यादम्मा के संतान येंकटरेड्डी, किष्टारेड्डी तथा रामुलु हैं । बारह साल की पुत्री रामुलू का विवाह धनवान परंतु पचास साल के विधुर कोटिरेड्डी से किया जाता है । इसका विरोध तो अनपढ येंकटरेड्डी करता है । किष्टारेड्डी जो शहर में पढता है, इसके बारे में मौन ही रह जाता है । येंकटरेड्डी अपने ही गाँव के सरपंच सुब्बारेड्डी की पुत्री पार्वती से आदर्शमय जीवन व्यतीत करने की दृष्टि से दोस्तों के प्रोत्साहन द्वारा रिजिस्ट्री विवाह कर लेता है । माँ–बाप तो पुत्र को मरा ही समझते है । ससुर तो तटस्थ रहता । लेकिन पार्वती की माँ रुकम्मा तो कभी कभी पुत्री की पूछताछ करती रहती है ।

इधर रामुलु का वैवाहिक जीवन दुखमय बनने के कारण दूध बेचनेवाले चेन्नय्या से प्रेम-व्यवहार करती है । और दुर्वलता के वश होकर माँ भी बनती है, फलस्वरूप पति के घर से बहिष्कृत की जाती । तो येंकटरेड्डी तथा पार्वती आकर उसकी रक्षाकर चेन्नय्या से उसका पुनर्विवाह भी कर देते हैं ।

येंकटरेड्डी, अपने मामा के विपक्ष में सरपंच बनकर, गाँव की प्रगति में सहायक होता है । फिर भी उस के बाप उस से विमुख ही रहता है । जब एक बार पुत्र को देखने यादम्मा जाती है तो रामिरेड्डी फिर उसे घर नहीं आने देता । तब से वह पुत्र के पास ही रहती है । घमंडी रामिरेड्डी, किष्टारेड्डी का विवाह, धनवान लडकी से कर देता है । उस विवाह में न यादम्मा को बुलाया जाता है न येंकटरेड्डी को । विवाह के पश्चात् किष्टारेड्डी ससुराल में ही रहकर पिता की उपेक्षा करता है । तभी रामिरेड्डी पछताता है । सहृदय येंकटरेड्डी तथा पार्वती ही उसे शरण देते हैं ।

रामिरेड्डी घमंडी व्यक्ति है । पैसों के लिए वह नीच से नीच कार्य करने को भी तैयार हो जाता है । बारह साल की पुत्री का विवाह रईस बूढे से करने में पीछे भी नहीं हटता । पैसों के लिए ही वह किष्टारेड्डी का विवाह अमीर घराने में कर किष्टारेड्डी को घर जमाई बना देता है । इसी कारण अंत में सभी लोगों से घृणित किया जाता है । उसके स्वभाव के बारे में लेखिका का कथन द्रष्टव्य है– "रामिरेड्डी धन मिले तो इज्जत लुटाने में पीछे नहीं हटता ।"[1]

---

१. तरम् मारिंदि – पृष्ठ : ९३

सुब्बारेड्डी स्वाभिमानी व्यक्ति हैं। वह गौरव के लिए धन को भी तृणप्राय देख सकता है। जब पुत्री पार्वती बिना उसे बतायें विवाह कर लेती तो पहले वह क्रुद्ध तो होता, पर बाद में येंकटरेड्डी के सहृदय व्यक्तित्व से अवगत होकर उसका आदर करता हैं।

येंकटरेड्डी इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह अत्याचारों का खंडन करता है। इसी कारण बहिन रामुलु के विवाह का विरोधकर घर से बैर मोल लेता हैं। पार्वती से प्यारकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करता है। उसी गाँव का सरपंच बनकर गाँव की प्रगति के लिए तन मन लगाकर सभी का प्रियपात्र बनता हैं। बहिन रामुलू को बूढे पति के घर से बाहर लाकर रामुलू से ही प्रेम करनेवाले चेन्नय्या से विवाह करवाकर आदर्श की स्थापना करता है। ढोंगी पुजारियों तथा कई रूढ़िगत अंधविश्वासों का करारा व्यंग्य इस पात्र के द्वारा लेखिका ने प्रस्तुत किया है।[1]

किष्टारेड्डी, व्यक्तित्वहीन युवक है। शिक्षित होकर भी बहिन के अनमेल विवाह का समर्थन ही करता है। धन के पीछे पागल होकर धनवान के घर, घर जमाई बनकर माता-पिता की अवहेलना करनेवाला कुसंस्कारवान् व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ हैं।

पार्वती इस उपन्यास की प्रमुख पात्री है। वह अत्याचारों का घोर विरोध करती हैं। रामुलू के अनमेल विवाह का विरोध कर अपने उच्च आदर्शों की स्थापना करती है। वह स्त्री की स्वतंत्रता चिंतन-प्रवृत्ति के संबंध में सोचती है–"क्या लडकियाँ मनुष्य नहीं होती? उनका भी मन नहीं होता?"[2] वह येंकटरेड्डी से अपने इच्छानुसार विवाह कर स्वयं अपने जीवन को सुखमय बनाती है। पार्वती सहृदयी है। इसी कारण त्यौहारों के दिन पूजा पाठ की अपेक्षा गरीब लोगों के अन्नदान को ही श्रेष्ठ मानती है।[3] वह स्वाभिमानी तथा पतिव्रता नारी है, इसी कारण जब तक पिता, पति का आदर सत्कार नहीं करते तब तक मायके में कदम भी नहीं रखती। ननद रामुलू का पुनर्विवाह कराकर उसके जीवन को सुखमय बनाने के लिए पति को प्रोत्साहित करती।

---

१. तरम् मारिंदि – पृष्ठ : ४८ २. तरम् मारिंदि – पृष्ठ : २१
३. वही पृष्ठ : १२९

रामुलु भोली भाली लडकी है। धन के मोह में वह आरंभ में वृद्ध से विवाह कर लेती है। बाद में पछताती है। इसी कारण समवयस्क चेन्नय्या से प्रेमकर, भाई के सहयोग द्वारा चेन्नय्या से विवाह कर लेती है।

इस उपन्यास में ग्रामीण एवं पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रण-प्रस्तुत है। येंकटरेड्डी तथा पार्वती पात्रों के माध्यम से लेखिका ने यहाँ सिद्ध किया है कि जिंदगी में सच्चाई तथा धैर्य के साथ जो आगे बढते हैं उन्हीं का जीवन सुखमय एवं सफल बन सकता है। रामुलू के पुनर्विवाह के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि जीवन को सुखमयपूर्वक व्यतीत करने के लिए अनमेल विवाह का खंडन करना आवश्यक है। धन के मोह में पडने के दुष्परिणामों का वर्णन रामिरेड्डी पात्र के द्वारा दिखाया गया है। जिस गांव में एक समय येंकटरेड्डी की बेइज्जती हुई[1] उसी गाँव में जब वह सरपंच बनता है तो वे ही लोग उसे गौरव प्रदान करते हैं।[2] ग्रामीण लोगों के यथार्थ मनस्तत्व का चित्रण करना भी लेखिका का उद्देश्य रहा है। आंचलिकता को दृष्टि में रखते हुए इस में गाँव से तत् संबंधित त्यौहारों का सरस तथा सजीव वर्णन भी प्रस्तुत है।[3] पुजारियों के कपट पूर्व व्यवहारों के वर्णन को भी लेखिका ने व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्णित किया है।[4] अतः उपन्यास में सर्वत्र वातावरण, वार्तालाप आदि में स्थानीय विशेषताओं के साथ साथ आंचलिकता भी संपन्न हुई है।

'अधिकारुलु आश्रित जनुलु' (अधिकारी और आश्रित जन) लेखिका का व्यंग्य-प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें लेखिका ने आजकल के नेताओं के व्यक्तित्व तथा नेताओं के आश्रय में जीनेवाले लोगों के प्रति व्यंग्य किया है।

उपन्यास की कथा का केंद्र नागराजु है। इस उपन्यास में नागराजु पात्र के द्वारा समाज के कुटिल बुद्धि जीवियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत है। आज की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में स्वार्थ से प्रेरित व्यक्तियों का भी व्यंग्यपूर्ण चित्रण इसमें मिलता है।

---

१. तरम् मारिंदी – पृ. ११५, १७४-१७६
२. तरम् मारिंदी – पृष्ठ : २०१-२०२
३. तरम् मारिंदी – पृ. १२८, १५७, १६२
४. तरम् मारिंदी – पृष्ठ : ४८

नागराजु अपने गाँव का एक अधेड व्यक्ति है जो स्वयं धनार्जन में असमर्थ रह कर अपनी कुटिल योजनाओं द्वारा गुजारा चलाता रहता है। उसके परिवार के सदस्यों में उसकी पत्नी सावित्रम्मा, लडका राजु, दो लडकियाँ शोभना और हेमा हैं। उस प्रांत के एम. एल. ए. यादगिरि तक उसकी पहुँच रहती है, जिसका दुरुपयोग कर यादगिरि को पतन के मार्ग पर ले जाता है। एक दिन नागराजु यादगिरि को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करता है, वह गांव वालों को बहका कर धन लेता है कि वह एम.एल.ए. का दोस्त है और उनका कार्य करवा सकता है। यादगिरि की पत्नी चद्रकला की झूठी प्रशंसा कर उसके धनवान रिश्तेदार से अपनी पुत्री शोभना का व्याह कराने में सफल होता है। लेकिन जब यादगिरि तथा चंद्रकला को नागराजु की झूठी शान का पता चलता है तो वे लोग उससे नफरत करने लगते हैं। नागराजू अपने प्रति उन लोगों की उपेक्षा भावना का बदला लेने की दृष्टि से चंद्रकला तथा यादगिरि के भाई पाणी के बीच अवैध संबंध का आरोप लगाता है। शंकालु यादगिरि अपनी पत्नी को शंका की नजर से देखने लगता है। अपने भाई पाणी का किसी दूर गांव में स्थानांतरण करवाता है। अंत में नागराजु के कारण फैली हुई बदनामी और रिश्वतखोरी के आरोप को जानकर स्वयं एम. एल. ए. के पद को त्याग देता है। और अपने किये पर पछताता है। किसी दूर गांव में पत्नी और पुत्र को ले जाकर रहने लगता है।

नागराजु अपने चमत्कारपूर्ण वचनों द्वारा तथा कुशल व्यवहार के द्वारा कलेक्टर माधवराव तथा उनकी पत्नी राधा तक पहुंच जाता है। लेकिन वे लोग भी इसकी कुटिल बुद्धि को जानकर नागराजु से संबंध तोड लेते हैं। अपनी शान को जताकर ही नागराजु अपने लडके का विवाह एक धनी परिवार की कन्या से कर देता है। यह सोचकर कि अपनी लडके की सारी संपत्ति का मालिक वही बनेगा, लेकिन नागराजु से भी होशियार, राजु का ससुर सारी संपत्ति लडकी के नामकर देता है और राजु को भी घर जमाई बना लेता है। इतने में जब विधान-सभा के लिए चुनाव होने लगते हैं तो नागराजु, पुन: यादगिरि से चुनाव में खडे होने के लिए परोक्ष रूप से कहता है। लेकिन यादगिरि नहीं मानता। गाँव के एक धनी व्यक्ति रेड्डी को उस चुनाव में लडने के लिए कहता है। रेड्डी तथा उसकी पत्नी कंजूस होने पर भी नागराजु के बहकावे में आकर मंत्री बनने की लालसा से प्रेरित होकर स्वयं सारा धन खो बैठता है। चुनाव में मुकुंदराव की जीत

होने पर नागराजु तुरंत उसके पास पहुंचकर उनकी चापलूसी करने लगता है। मुकुंदराव, नागराजु के कुटिल स्वभाव से अवगत होने के कारण उस से डाँट फटकार कर भेज देता है। इस प्रकार अंत में लोगों को तथा अधिकारियों को नागराजु पर विश्वास नहीं रह जाता।

नागराजू ही उपन्यास का नायक है और लेखिका की अनुपम सृष्टि भी है। लेखिका स्वयं नागराजु के बारे में कहती हैं – "नागराजू जैसे लोगों को अरब के रेगिस्तान में छोडने पर भी सानंद जीवन यापन करने में समर्थ होते हैं।"[1]

नागराजू के अतिरिक्त अन्य सभी-पात्र जैसे यादगिरि, मुकुंदराव, रेड्डी, माधवराव, राजु चंद्रकला, शोभना, राधा आदि गौण हैं। यादगिरि, आजकल के राजनीतिक नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है। जो अपनी झूठी प्रशंसा पर प्रसन्न होता है। नागराजु की मीठी बातों तथा चमत्कारपूर्ण बातों में आ जाता है और अपनी बदनामी स्वयं भोग लेता है। नागराजू की बातों में आकर रेड्डी, मुकुंदराव के विरुद्ध चुनाव में खडा हो जाता है। रेड्डी की पत्नी लक्ष्मीनरसम्मा जो बहुत ही कंजूस होती है, अपने पति के मंत्री बनने से स्वयं मंत्री की पत्नी कहलवाने के लिए खूब खर्च करती है। अंत में इस का फल दोनों भोग लेते हैं।

नागराजू की पत्नी सावित्रम्मा पति की कुटिल बुद्धि के अनुसार चलने की इच्छा न रखती हुई भी विवश होकर उसकी बातों का पालनकर सभी लोगों की दृष्टि में दोषी बनती है।

इस प्रकार इस उपन्यास में नागराजू जैसे कुटिल-बुद्धि, व्यवहार कुशल, तथा आजकल के राजनीतिक नेताओं और लोगों के बीच के दलाल व्यक्तियों के प्रतिनिधि के रुप में चित्रित करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है। यत्र तत्र लेखिका ने राजनीतिक नेताओं की जीवनी तथा पदच्युत होने पर उनकी दयनीय दशा, एवं उनके प्रति लोगों की उपेक्षा दृष्टि पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। यादगिरि पात्र इसी का उज्वल उदाहरण है। पद के लालच में लोग अपने धन किस प्रकार लुटा देते हैं इस का चित्रण रेड्डी पात्र के द्वारा हुआ है। घूसखोरी[2] तथा काला बाजार[3] संबंधी कई बातों पर भी लेखिका ने

---

१. अधिकारुलु – आश्रितजनुलु – पृष्ठ : २९९

२., ३. अधिकारुलु आश्रित जनुलु – पृष्ठ : १८४, १७५–१८०

प्रकाश डाला है। इस प्रकार समाज तथा राजनीति के बीच के संबंध का चित्रण यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करना ही लेखिका का उद्देश्य प्रतीत होता है।

'देवुडिचिन्न वरालु' (भगवान के दिये वर) आपका ही एक अन्य प्रसिद्ध मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। मां-बाप अपने सगे संतान के प्रति भेदभाव दिखाकर उनके कोमल हृदय पर किस प्रकार चोट पहुँचाते हैं इस तथ्य को अत्यंत मार्मिक ढंग से इसमें प्रस्तुत किया गया है।

कोटय्या गांव का एक सुसंपन्न व्यक्ति है। उनकें बच्चों में केवल वेणु ही वर्ण में काला है। बडी लडकी लता तथा छोटा पुत्र मधु के प्रति पिता का प्यार अधिक रहता है तो बडा पुत्र सूरी तथा छोटी पुत्री प्रेमा मां के दुलारे हैं। केवल वेणु ही दोनों के प्यार से वंचित रहता है। वेणु पढाई में सब से अव्वल रहता है लेकिन मां-बाप कभी भी उसकी प्रशंसा नहीं करते। सूरी पी. यू. सी. में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर भी उसके मां-बाप गहने वगैरह बेचकर डाक्टरी पढाते हैं। छुटपन से ही मानसिक अशांति के कारण अपने मनोभावों को वेणु कहानी के रूपों में व्यक्त करता रहता हैं। वेणु मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है। माँ–बाप को अपनी पढाई के प्रति उदासीन देखकर वेणु अपने प्रिय गुरु राधाकृष्ण के आशीर्वाद से कालेज में भर्ती हो जाता है। लेकिन आर्थिक रूप से उसे कई कठिनाइयों का सामना करता हैं। पी. यू. सी. में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर इंजनीरिंग भी पढने लगता है। धनाभाव एवं अन्य समस्याओं के कारण दुर्भाग्यवश उस साल वह अनुत्तीर्ण हो जाता है। तब विवश होकर हाइस्कूल की नौकरी में लग जाता है। इसी बीच वेणु का परिचय समवयस्क लडकी राधा से होता है, जो उसी स्कूल में मैट्रिक पढती रहती है। वह भी एक अभागिन नारी है जिसका विवाह उसके गरीब माँ–बाप एक वृद्ध से कर देते हैं। वह अपने वैवाहिक जीवन से विरक्त होकर पढने लगती है। वह वेणु के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती हुई उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट करती है। इसी बीच वेणु के बचपन का दोस्त सत्यम उसके पास रहने आता है। कुछ दिनों के पश्चात् राधा का पति मर जाता है, मरते समय अपनी सारी जायदाद राधा के नाम कर उसे पुनर्विवाह करने की अनुमति भी देता है। इसी खुशी में वह वेणु से मिलने आती है। वेणु की अनुपस्थिति में राधा का परिचय सत्यम से हो जाता है और राधा उसके

बहकावे में आकर वेणु के प्रति अन्याय कर उसको स्कूल से निकालने में भी सफल हो जाती है। तब वेणु, दोस्त जगन की सहायता से बी. एस-सी. पढता है। कालेज के केमिस्ट्री डिमान्स्ट्रेटर की सहायता से एक पंजाबी आदमी चौधरी के बच्चों को तेलुगु सिखाते हुए उनके घर रहते हुए पढाई चालू करता है।

वेणु का भाई मूरि पढाई खतम कर अपनी सहपाठी सुजाता से विवाह कर माँ–बाप की उपेक्षा करने लगता है। मधु मेट्रीक के बाद खेतीबाडी का काम देखने लगता है। मधु का विवाह अहंकारी नारी सावित्री से हो जाता है। अब वेणु से ही उसके माँ–बाप अपना दुखड़ा सुनाते है। प्रेमा की भी शादी हो जाती है। धीरे धीरे वेणु लेखक के रूप में प्रसिद्ध होता है। चौधरी के यहाँ उसके दोस्त की पुत्री मंजू रहती है। जो अपने माँ–बाप की मृत्यु के पश्चात् संपूर्ण जायदाद के साथ चौधरी के घर रहने लगती है। मंजु के विवाह में चौधरी तथा उसकी पत्नी में मतभेद होते हैं और संयोगवश चौधरी, रहस्य-पूर्वक मंजू का विवाह वेणु से करवाकर, किसी से कहे बिना मंजु को लेकर दिल्ली चले जाते है। वेणु से भी चौधरी इस विषय को गुप्त रखने का वादा लेते है। वेणु बी. एड. की ट्रेनिंग की पूर्ति कर अध्यापक बन जाता है। वेणु जीवन में स्थिरता पाने के उद्देश्य से विवाह करने निमित्त एक मध्यवर्गीय परिवार की लडकी राजेश्वरी को देखने जाता है। लेकिन एक साल तक मुहूर्त नहीं होने के कारण उतने दिन रुकने का वादा कर चल पडता है। उसी शहर में राधा रहती है। राधा वेणु को पहचान कर घर बुलाती है। राधा, वेणु से माफी माँगती हुई कहती है कि उसने सत्यम से विवाह कर धोखा खाया है। उसनें उसके धन केलिए ही उससे विवाह किया है। अब वह चार लडकियों की माँ है, अब सत्यम दूसरी ओर एक धनवान स्त्री से विवाह कर चुका है। वह वेणु के विवाह के संबंध में सुनकर अत्यंत खुश हो जाती है। इसी बीच संयोगवश उसे इथोपिया देश में अध्यापक की नौकरी मिलती है वहाँ जाने से पहले विवाह करने की इच्छा से राजेश्वरी के पिता के यहाँ जाता है। वहाँ राजेश्वरी का पिता, उसके तथा राधा के बीच अवैध संबंध का आरोप लगाकर, विवाह करने से इनकार कर देता है। वेणु जान पाता है कि सत्यम ने ही यह करतूत की है फलतः क्रोधित होकर सत्यम् को खूब खरी-खोटी सुनाता है।

इथोपिया जाने से पहले सभी लोग जो उसकी उपेक्षा करते थे उसका आदर करने लगते हैं। विवाह किये बिना ही वह इथोपिया देश चला जाता

है । एक दिन उसे मंजू से पत्र मिलता है कि चौधरी ने उन दोनों के विवाह के बारे में बताया है और वह उसकी प्रतीक्षा में है । तुरंत वेणु वहाँ त्यागपत्र देकर स्वदेश लौटकर सभी लोगों का आदर सत्कार पाता है ।

उपन्यास का प्रमुख केंद्र वेणु है । वेणु, काला होने के कारण माता-पिता के प्यार से वंचित हो जाता है । छुटपन से ही पढाई के प्रति रुचि रखते हुए भी घर में प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसकी पढाई ठीक से चल नहीं पाती । इसी कारण स्वयं पैसे कमाकर शिक्षा ग्रहण करता है । वेणु सोचता है कि "माँ-बाप के प्यार को पाने में असमर्थ होने पर भी भगवान के द्वारा दिये गये वरदान संकल्प, आसक्ति, शक्ति और बुद्धि हैं । उन्ही का उपयोग उसे करना है ।

पढाई के प्रति दृढ संकल्प रखकर निर्धन स्थिति में कालेज जाता है । लेकिन वहाँ धनी लडके उसकी अवहेलना करने लगते हैं और शारीरिक कष्ट भी देते हैं । तो उन धनी एवं अहंकार स्वभावी लडकों को संबोधित कर कहता है – "मुझे उन्होंने नहीं बल्कि उनके अहंकारपूर्ण व्यवहार ने मारा है ।"[1] उक्त कथन से उनकी गहनशक्ति एवं विशाल हृदय का पता चलता है । सभी शारीरिक एवं मानसिक कष्टों को सहने पर भी कभी कभी भगवान से यही प्रश्न करने लगता है – "भगवान् । यह सारा संसार तुम्हारी ही सृष्टि है । फिर सभी के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ क्यों नहीं प्रदान करते ?"[2] अंत में वही निष्ठा एवं सहनशीलता से अपना व्यक्तित्व बनाकर धनवान बनता है । जो माँ-बाप बचपन में उसकी अवहेलना करते हैं, उनके बुढापे में केवल वेणु ही उनका सहारा बनकर अपना सुसंस्कार एवं विशाल हृदय का परिचय देता हैं ।

अन्य पात्र कोटय्या, चिट्टेम्मा, सूरि, मधु ललिता आदि सभी पात्र गौण हैं जिनके चारित्रिक विकास के प्रति लेखिका ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया है ।

आलोच्य उपन्यास का मुख्य उद्देश्य यही रहा कि किस प्रकार माता पिता द्वारा बच्चों के प्रति पक्षपात दिखाने पर उनके कोमल हृदय मुरझा जाते हैं । इस में वेणु पात्र इस प्रकार का है । इसके अतिरिक्त वेणु और मधु

---

१. देवुडिच्चिन वरालु – पृष्ठ : ८९

२. वही – पृष्ठ : १४०

का विजातीय सफल विवाहों का चित्रण लेखिका प्रस्तुत कर अपने प्रगतिशील विचारों को भी दर्शाता है। सत्यम् धन के लिए एक धनी विधवा राधा से विवाह कर उसका जीवन नरकतुल्य बनाता है। सत्यम जैसे काम लोलुप एवं नीच व्यक्तियों का चित्रण कर लेखिका ने वेणु और सत्यम, का तुलनात्मक चित्र भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार समाज में विभिन्न प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों के विभिन्न मनस्तत्वों को प्रस्तुत करती हुई लेखिका ने कई पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का भी वर्णन किया है।

सी. आनंदरामम :

श्रीमती सी. आनंदारामम का सामाजिक उपन्यास हैं 'आत्मबलि'। इस उपन्यास में शोभादेवी, सरोजिनी, मालिनी, मूर्ति, भास्करराव तथा केशव आदि मिलकर आंध्र-युवजन-सांस्कृतिक समाज की स्थापना करते हैं। इनमें शोभादेवी क्लर्क एवं गायिका है। शोभा के छः भाई-बहन हैं। उसका बडा भाई प्रभाकर भी एक क्लर्क है। पिता के देहांत के पश्चात् शोभा स्वयं नौकरी करती हुई पढती है। उसकी छोटी बहन उमा ही उस घर में शोभा के प्रति सहानुभूति रखती है। शोभा का परिचय डा. मधुसूदराव से एक बार सांस्कृतिक समाज की सभा में होता है। मधुसूदनराव विधुर एवं विजातीय हैं। राव की चार वर्षीय बालिका आशा के प्रति शोभा ममता जागृत कर लेती है। धीरे धीरे शोभा एवं राव का परिचय प्रेम में परिणित होता है। लेकिन मूर्ति के ईर्ष्यालु स्वभाव के कारण राव के मन में शोभा के प्रति शंका तथा द्वेष उत्पन्न हो जाता है। लेकिन मासूम, आशा शोभा को देखने के लिए तरसती हुई मर जाती है। इसी समय राव, केशव के द्वारा मूर्ति के ईर्ष्यालू हृदय को जानकर पश्चाताप करता है तभी संयोगवश शोभा से मिलकर क्षमा याचना करता हैं।

उमा, शोभा की छोटी बहन है, वह शोभा की तरह स्वतंत्र विचार वाली न होकर परिस्थियों के साथ सामंजस्य करने में ही शांति पाती है। इसी कारण अपने भाई-बहनों से समझौता करती हुई पढाई चालू करती है। रोज कालेज से आती जाती उमा को केशव देखकर उसके प्रति अनुराग बढा लेता है। लेकिन उमा, इस प्रेम को बढने नहीं देती। जब शोभा अपनी इच्छा से विवाह करने का निश्चय कर लेती है, तब उसका भाई प्रभाकर

क्रुद्ध होकर उमा का विवाह दहेज देकर करने का निश्चय कर बची हुई जायदाद को भी बेच देता हैं। लेकिन विवाह मंडप में दूल्हा एक पत्र छोडते हुए भाग जाता है जिस में लिखा होता है कि अपनी बहिन की शादी के लिए ही उसने दहेज माँगा है। स्वयं किसी लडकी से प्यार करने के कारण वह दहेज लेकर जा रहा है। पत्र में उसने यह आश्वासन दिया कि जल्द से जल्द वह उस धन को वापिस कर देगा। इस दुखभरी घटना से प्रभाकर खिन्न हो जाता है। उसी समय चलपति नामक एक मूर्ख तथा विवेकशून्य युवक से उमा का विवाह करवाने के लिए कुछ लोग प्रस्तावित करते हैं। शोभा के मना करने पर भी उमा चलपति से विवाह कर लेती है। लेकिन विवाह होते ही चलपति के अविकसित मन का पता चलता है। फिर भी उमा निश्चयकर लेती है कि वह चलपति को विवेकवान् बनायेगी। उमा के अधिक प्रयत्नों के फलस्वरूप चलपति मैट्रिक उत्तीर्ण हो जाता है। चलपति कालेज में पढने की इच्छा प्रकट करने पर उसके पिता द्वारा अपमानित होता है। उमा स्वयं नौकरी कर, पति को पढाने का संकल्प कर लेती है। इसी बीच उमा का भाई प्रभाकर मानसिक वेदना के कारण क्षय का शिकार होकर मर जाता है और घर का भार शोभा पर पडता है। उमा, पति को पढाने के लिए भाभी से उधार लेकर हैदराबाद जाकर, नौकरी ढूँढ लेती है और पति को कालेज में भर्ती करवाती है। लेकिन चलपति का कालेज जीवन कई अवहेलनाओं के मध्य कटता है। इसी बीच केशव संयोगवश चलपति द्वारा उमा से मिलता है। उमा को, चलपति की पत्नी जानकर दुखित होता हैं। उमा को सुख पहुंचाने के उद्देश्य से चलपति को अपने फर्म मेंमैनेजर की नौकरी दिलाता है। चलपति, शव को देवतुल्य मानता है। उमा, केशव से परिचय बढाना नहीं चाहती थी, लेकिन चलपति इन विषयों से अनभिज्ञ रहता हैं। एक दिन स्वयं चलपति केशव से उसके जीवन की संपूर्ण घटनायें सुनाता है। आगे कहता है कि उमा तथा वह केवल समाज की नजरों में ही पति पत्नी हैं। इस विषय को सुनते ही केशव के मन में फिर से आशा जागृत होती है कि उमा, अगर चलपति को तलाक दें तो उसकी पत्नी बन सकती है। इससे पहले वह उमा के उद्देश्य को समझने के लिए एक पत्र लिखता है। लेकिन वह पत्र चलपति की बहिन काली पढती है। वह पत्र चलपति को देती है। चलपति जान लेता है कि उमा तथा केशव पूर्व-परिचित हैं और निश्चय कर लेता है कि अगर उमा चाहे तो उन दोनों का विवाह भी कर देगा। उमा इस विषय को सुनते ही दुखित हो जाती है और पति को समझाने की कोशिश करती

है कि उसने चलपति को ही सर्वस्व माना है। फिर भी उमा के सुंदर भविष्य को दृष्टि में रखकर तलाक लेने में सफल हो जाता है। लेकिन तलाक पत्र पाते ही उमा मानसिक अशांति के कारण बीमार पड जाती है और अंत तक चलपति का नाम लेते ही मृत्यु को पा जाती है। उसे खोकर केशव तथा चलपति पागल हो जाते हैं। इस मुख्य कथा के साथ एक उपकथा भी है। सरोजिनी धनवान् की इकलौती पुत्री है। उसमें बाह्य सौन्दर्य न होने पर भी आंतरिक सौंदर्य है। कामलोलुप भास्कर, धन के लालच के कारण, सरोजिनी से विवाह करता है। विवाह के उपरांत सरोजिनी भास्कर के विचारों को जानकर भी तटस्थ रह जाती है धन होने पर भी स्त्री के प्रति अगर अन्याय होते हैं तो भी उसे सहना ही उचित है समझकर सरोजिनी चुप हो जाती है।

इसके मुख्य पात्र हैं : शोभा, उमा, सरोजिनी, चलपति, केशव तथा मधु–सूदनराव। उपन्यास के सभी पात्र विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करती हैं। शोभा और उमा सगी बहनें हैं फिर भी शोभा विकट परिस्थितियों का सामना करती है इसी कारण विजातीय और विधुर डाक्टर मधुसूदनराव से विवाह कर जीवन को सुखमय बनाती है। उमा, परिस्थितियों से समझौता करनेवाली है। वह विक्षिप्त एवं विवेक–शून्य चलपति से विवाह कर उसे सच्चा मानव बनाती है। अंत में पति के द्वारा ही तलाक का प्रस्ताव दिये जाने पर जीवन से हारकर मर जाती है। सारांश यह है कि लेखिका परोक्ष रूप से ही यही संकेत देती है कि परिस्थितियों से लडने की प्रवृत्ति तथा साहस ही वरेण्य गुण हैं।

सरोजिनी धनवान की पुत्री एवं सहृदय नारी है। निर्धन भास्कर से प्रेम-विवाह करती है। पति के व्यसनों को जानकर भी चुप रहती है। उसका विश्वास है कि भारतीय स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व है। इसी आदर्श के कारण वह मौन रह जाती है।

भास्कर तथा मूर्ति कामलोलुप एवं लालची व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं। केशव धनवान एवं सुसंस्कृत युवक है। डा. मधुसूदनराव विधुर एवं सुशिक्षित व्यक्ति है इसी कारण मूर्ति के प्रभाव में आने पर भी अंत में अपने दोष के लिए पछताता है, और शोभा से क्षमा माँगता है।

प्रभाकर, मध्यवर्गीय परिवार का युवक है। आधुनिक समाज में आर्थिक परिस्थितियों के दबाव के कारण, प्राचीन एवं अर्वाचीन मान्यताओं

के बीच समन्वय न कर सकने के कारण वह मानसिक संघर्ष का शिकार होता है। वह शोभा के विचारों से सहमत नहीं हो सकता। और न ही उमा के जीवन को संवार पाता है। अंत में एक असमर्थ व्यक्ति के समान जीवन से हार जाता है।

स्त्री–पुरुषों की समस्याओं के बीच आधुनिक समाज में जो संघर्ष पाये जाते है उसे प्रस्तुत करना ही लेखिका का उद्देश्य रहा है। मध्यवर्गीय परिवार की समस्याओं का मार्मिक चित्रण भी लेखिका ने प्रस्तुत किया है। लेखिका ने शोभा पात्र द्वारा यही सिद्ध करना चाहती है कि नारी तभी आगे बढ सकती है जब वह धैर्य से विपरीत परिस्थितियों से लड सके। उमा की तरह सभी परिस्थितियों के सामने सिर झुकाये तो अंत में हार ही मिलेगी, यही सिद्ध करना लेखिका का उद्देश्य रहा है।

लेखिका का 'सागर–संगमम्' और एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव की परख उसकी जाति-पाँति की अपेक्षा उसके स्वभाव एवं गुणों के आधार पर की जानी चाहिए। उपन्यास की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। निरंजनी तथा सुधाकर भाई बहन हैं और हरिजन है। मानसा सनातन ब्राह्मम परिवार की कन्या है तथा निरंजनी की अत्यंत प्रिय सहेली है। धर्माराव मानसा के फूफा का पुत्र तथा सुधाकर का दोस्त है। मानसा तथा सुधाकर का परिचय कालेज के एक समारोह में होता है। तभी सुधाकर मानसा पर मोहित होता है। लेकिन निरंजनी सुधाकर को सचेत करती हैं कि मानसा अच्छी सहेली होने पर भी उसमें उच्च कुल में जन्म लेने का दंभ अधिक है। मानसा निरंजनी को भी ब्राह्मण परिवार की ही मानकर उससे दोस्ती बढाती है और निरंजनी भी इसका कभी खंडन नहीं करती। धर्माराव, मानसा के प्रति ममता जागृतकर उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। लेकिन मानसा की माँ इसका निर्मम रूप से खंडन करती है। कुछ दिनों तक धर्माराव पागल सा हो जाता है, और नौकरी के बहाने मद्रास चला जाता है। संयोगवश वहाँ पर धर्माराव का परिचय निरंजनी से होता है और वह परिचय प्रेम का रूप धारण कर लेती है। निरंजनी हरिजन होने पर भी धर्माराव उससे विवाह करने को तैयार होकर मानसा को लिखता है। मानसा उसके कुल की बात सुनकर क्रोधित हो जाती है। इसी बीच सुधाकर और मानसा का परिचय बढ जाता है। सुधाकर को उच्च कुल

सुधाकर मानसा के स्वभाव से परिचित होने के कारण विवाह का प्रस्ताव नहीं रख पाता। लेकिन जब जब धर्माराव, सुधाकर के प्रेम के बारे में जान लेता है, तब उसे तुरंत आज्ञा देता है कि अपने कुल के बारे में मानसा को बता दे ताकि मानसा को उच्च कुल में पैदा होने का दंभ मिट जाय। सुधाकर, एक दिन मानसा की माँ अन्नपूर्णा से अपना सारा वृत्तांत सुना देता है। अन्नपूर्णा अपनी बेटी के भावी जीवन के संबंध में चिंतित होकर भी अपना दिल कडाकर इस समाचार को सुनाती है। मानसा इसको सुनते ही बेहोश हो जाती है। धर्माराव भी मद्रास से आता। उसी समय दोनों के आगे अन्नपूर्णा अपने जीवन के एक रहस्य का उद्घाटन करती है। वह कहती है कि उसके रसिक पति ने किसी दिन नवजात शिशु मानसा को लाकर उसकी देखभाल करने की प्रार्थना की थी जो एक वेश्या की संतान है। अन्नपूर्णा ने यह भी कहा कि उसके भाई ने धर्माराव की देखरेख का भार भी उसी पर सौंपते हुए कहा था कि धर्माराव की शादी मानसा से न कीजिए। मानसा और सुधाकर की शादी केलिए अपनी सहमति दे देती है। मानसा अपने को वेश्या की पुत्री जानकर दुखी होती है और यह समझती है कि सुधाकर उससे शादी नहीं करेगा। किंतु सुधाकर उसे आश्वासन देता है कि जाति-पाति की परवाह न कर उससे शादी करेगा। अंत में धर्माराव तथा निरंजनी की भी शादी हो जाती है।

सुधाकर, धर्माराव, मानसा तथा निरंजनी इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं। सुधाकर तथा निरंजनी पंचम कुल के होने पर भी सुसंस्कृत एवं सभ्य व्यक्तियों के रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष होते। वे निम्नकुल में जन्म लेने पर भी उच्च विचारों को लिए हुए वर्णांतर विवाह कर उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करते हैं। सुधाकर अपने को वेश्या की पुत्री जानकर क्षुब्ध होनेवाली मानसा को समझाती है कि मानव को जाति-पाति के आधार पर नहीं बल्कि उसके गुणों एवं आचरण के आधार पर परखना चाहिए।

उद्देश्य की दृष्टि से लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से यही उपदेश देना चाहा कि किसी भी व्यक्ति को कुल या जाति से नहीं, बल्कि उसके गुणों तथा स्वभाव के आधार पर परखना चाहिए। साथ साथ लेखिका ने एक वेश्या पुत्री मानसा का ब्याह हरिजन कुल के सुधाकर के साथ कर तथा धर्माराव का ब्याह निरंजनी से कराकर अपनी प्रगतिशील विचारधारा का परिचय दिया है।

आपही का एक अन्य उपन्यास है 'चीकटि कड्पुन कांति (अंधेरे के गर्भ में प्रकाश पुंज) । इसमें दो भिन्न परिवारों की कथा है । धनी परिवार का मालिक व्यसनी होने के कारण अत्यंत निकृष्ट जीवन व्यतीत करते रहता हैं । दूसरी ओर निर्धन परिवार का मालिक अपनी मेहनत की कमाई से सुख-मय जीवन बिताते रहता हैं ।

आलोच्य उपन्यास में वकील सत्यनारायणा अत्यंत धनवान है । उनकी पत्नी पार्वतम्मा भी धन के कारण गर्वीली स्त्री बनती है । उनके पाँच लड-कियाँ तथा दो लडके हैं । बच्चों के कारण घर में शांति का अभाव होता है । सत्यनारायणा व्यसनों का शिकार हो जाता है । आधे से अधिक जायदाद खर्च-कर तीन लडकियों की शादी करा देता है और बचा हुआ धन व्यसनों में उडा देता है । इसी बीच छोटा पुत्र मर जाता है । पार्वतम्मा पुत्रशोक में बीमार पड जाती है । घर का सारा भार सत्यनारायण की चौथी पुत्री वारिजा पर पडता हैं । वारिजा अत्यंत सुंदर तथा विनम्र स्वभाव की है । आसपास के घरों में छोटे छोटे काम कर घर को चलाती रहती हैं । एक बार अपनी सहेली माधवी की सहायता से एक फिल्म प्रोड्यूसर से परिचय पाकर सिनेमा में काम करने चली जाती है । वारिजा धन कमा लेती हैं, लेकिन अपना शील बेचकर । एक दिन रास्ते में उसका बडा भाई रवि दिखाई देता हैं । उसी के द्वारा घर की दुर्दशा को जान लेती हैं । अब घर का भार उसकी छोटी बहन लता पर पडता है जो परिस्थितियों के कारण लडाकू बनती है । परिवार को देखने आती तो परिवार के लोग वारिजा की वैभवसंपत्ति के प्रति मोहित होते हैं । यहाँ भी वारिजा को निश्चल प्रेम प्राप्त न होने के कारण विरक्त होकर मानसिक शांति की खोज में एक गांव में जाकर रहने का निश्चय कर लेती है । वहीं पर उसका परिचय रामचंद्र से होता है ।

रामचंद्र, शंकर तथा कल्याणी का पुत्र है । शंकर पहले, सत्यनारायणा के यहाँ क्लर्क के रूप में रहता था । उसके बाद शंकर को अच्छी नौकरी मिलने पर दूसरी जगह चला जाता हैं । शंकर तथा कल्याणी अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देकर पुत्री का विवाह कर देते हैं । रामचंद्र बी. एस. सी. अग्रि-कल्चर करके स्वतंत्र जीवन बिताता हैं । रामचंद्र पहली नजर में ही वारिजा पर मोहित हो जाता हैं । वारिजा भी जीवन में पहली बार उस युवक से प्यार करने लगती है । अपने जीवन की सारी घटनाओं को सुनाती भी हैं । रामचंद्र, वारिजा से सच्चा प्यार करते हुए भी उसके पूर्व जीवन की गाथा

सुनकर संघर्ष में पड जाता है और अंत में दोनों बिछुड जाते हैं। इसी बीच एक बार कल्याणी पार्वतम्मा को देखने जाती है। उनके दुखमय जीवन को देखकर दयार्द्र हृदयी कल्याणी अपने लडके की शादी लता से करवाने के लिए सोचती है। रामचंद्र लता को देखता है और उससे विवाह कर लेता है, वारिजा तथा लता के रिश्ते को वह नहीं जानता। वह पति से प्रसन्न नहीं रहती।

लता रूपवती होने पर भी उसमें आंतरिक सौंदर्य का अभाव है। इसी कारण प्यार का प्यासा रामचंद्र पुनः वारिजा के पास आता है, जो सिनेमा में अभिनय करना छोडकर उसी गांव में प्राध्यापिका बनी रहती है। रामचंद्र के द्वारा वारिजा को पता चलता है कि लता उसी की अपनी बहन है। वारिजा रामचंद्र को लता के प्रति आकृष्ट करवाने में प्रयत्नशील रहती है। एक दिन स्वयं लता के घर जाकर उसे चेतावनी देती है कि वह पति से मधुर व्यवहार करें। परंतु उन बातों का गलत अर्थ लगाकर लता पति के आने पर वारिजा तथा पति के बीच अवैध संबंध जोडती है। इस पर रामचंद्र क्रुध होकर उसे घर से भेज देता है। तभी रामचंद्र को पता चलता है कि वारिजा लता की ही बहन है। एक बार वारिजा रामचंद्र के घर जाकर उसे समझाने का असफल प्रयास करती है। उसी समय पार्वतम्मा भी वहाँ पहुँचती है। पार्वतम्मा भ्रम में पड जाती है कि वारिजा ने ही रामचंद्र को वश में कर लता को घर से भगा दिया और इस आघात को सहन न कर दम तोड देती है।

लता, भाई रवि के यहाँ रहने लगती है। परंतु धनाभाव के कारण रवि बहन को अधिक दिनों तक अपने पास नहीं रखता। लता उपेक्षित होने पर पति की सहृदयता को समझने लगती है और पति के पास चली जाती है। लता के हृदय परिवर्तन से प्रसन्न होकर रामचंद्र उसका हार्दिक स्वागत करता है। अंत में वारिजा लता तथा रामचंद्र के सुखी दांपत्य जीवन की कामना करती हुई स्वयं आत्महत्या कर लेती है।

उपन्यास की सभी घटनायें क्रमबद्ध एवं स्वाभाविक रूप से विकसित होती हुई, तथा यथार्थ के धरातल पर स्थित हैं।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र वारिजा, रामचंद्र तथा लता हैं। वारिजा बडी घर की बेटी है, फिर भी परिस्थितियों और माँ-बाप की उपेक्षा के कारण अभिनेत्री बन जाती है। संयोगवश उसका परिचय रामचंद्र से होता है लेकिन अभिनेत्री होने के कारण वह रासचंद्र के द्वारा तिरस्कृत की जाती है।

बाद में वह अध्यापिका बनकर शांतियुक्त जीवन बिताती है। किंतु समाज में पत्नी का स्थान प्राप्त नहीं कर पाती। जब वह जान जाती है कि उसी की बहन रामचंद्र की पत्नी है तब से वह रामचंद्र के प्रति अपने मन में एक पूज्य स्थान देने लगती है। लेकिन लता तथा रामचंद्र का वैवाहिक जीवन उसी के कारण दुखमय बन जाता है। तो उनके सुंदर भविष्य के लिए निस्वार्थी होकर इस दुनिया से चल बसती है। उनके प्रति पाठकों के मन में सहानुभूति जग जाती है। क्योंकि स्वयं में दोष न होने पर भी वह विकट परिस्थितियों का शिकार बन जाती है। रामचंद्र स्वतंत्र विचारवाला युवक है। शिक्षित होने पर भी स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की दृष्टि से खेतीबारी का काम स्वीकारता है। वह वारिजा से प्यार करता है, लेकिन निजी जीवन में उसे पत्नी के रुप में स्वीकार न कर सकने के कारण वह लता से विवाह करता है। लेकिन लता के अहंभावी स्वभाव के कारण उसका जीवन नरकतुल्य बन जाता है तो फिर से वारिजा के पास चला आता है लेंकिन वारिजा के दृढ संकल्प के कारण वह लता की गल्तियों को माफ-करके उसका हृदयपूर्वक स्वागत करता है। अत: रामचंद्र के विचार यद्यपि कुछ दुर्बल एवं संकुचित है पर उपन्यास के अंत में आदर्श पति के रुप में प्रत्यक्ष होता है।

लता, वारिजा बहनें हैं, पर लता में सौंदर्य का अभाव है। सौम्य युवक रामचंद्र की पत्नी होने पर भी कल्पनालोक में विचरण करने के कारण अपने जीवन को नरकतुल्य बना लेती है। जब मैके में भाई के कटु व्यवहार से अपने पति के प्रेम को समझकर पति से क्षमा याचना कर लेती है। लता के माध्यम से लेखिका ने समाज में अधिकांश लडकियों के मनस्तत्व को दिखाया है जो कल्पना-जगत में रहकर अपने जीवन को नरकमय बना लेते हैं।

इस उपन्यास में वकील सत्यनारायणा के परिवार द्वारा लेखिका ने यही संकेत दिया है कि व्यसनों तथा बडे परिवार के कारण कितने कष्टों का सामना करना पडता है। दूसरी ओर शंकर एक क्लर्क है, फिर भी अपनी सुशील तथा सुविचारवाली पत्नी कल्याणी तथा सीमित परिवार के साथ सुखी जीवन-यापन करता है।

लेखिका ने तत्कालीन मध्यवर्गीय परिवार की नारी की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। दहेज के कारण एक विधुर तथा वृद्ध व्यक्ति से माँ-बाप अपनी पुत्री का विवाह करने को तैयार हो जाते हैं। उस वृद्ध के बच्चों को

देखने के लिए कन्या की आवश्यकता है, न कि पत्नी की।[1] निर्धन स्त्री के लिए समाजमें जो दयनीय स्थान प्राप्त है, लेखिका ने उक्त कथन के द्वारा सूचित किया है।

जो सुख-शाँति एवं धन की खोज करने अपने घर के देहलीज को पार करती है, वह मध्यवर्गीय परिवार में मृत के समान है। पुत्री को प्यार करते हुए भी, समाज के डर से माँ-बाप उसे मृत ही समझते हैं।[2] इस कथन के द्वारा लेखिका ने मध्यवर्गीय परिवार के दुर्बल, संकुचित तथा रूढिवादी विचारों पर परोक्ष रूप से तीखा व्यंग्य किया है।

डी. कामेश्वरी :

'कोत्तनीरु' (नया पानी) डी. कामेश्वरी द्वारा रचित एक सामाजिक उपन्यास है। देशकाल परिस्थियों के अनुरूप समाज में आनेवाले परिवर्तनों का वर्णन लेखिका ने इस उपन्यास मे प्रस्तुत किया है। इस लक्ष्य के लिये एक सनातन ब्राह्मण परिवार की कथा को कथ्य रूप में चुना है।

जगन्नाथम अपनी संतान को शिक्षित तथा महान् बनाने की आकांक्षा रखता है। लेकिन पत्नी सनातन परिवार की होने के कारण पार्वतम्मा पति का विरोध करती है। ज्येष्ठ पुत्र रामाराव इंजिनियर बनता है। वह मद्रास में काम करते समय तमिल लडकी मीनाक्षी से विवाह कर लेता है। उसके दो बच्चे होते हैं श्रीनिवास तथा उषा। दूसरा पुत्र कृष्णाराव एम. एस. सी. कर इंग्लैंड में रिसर्च करते हुए चालीस साल की उम्र में सहपाठिका महाराष्ट्र की युवती से शादी कर लेता है। वहाँ से लौट कर बंबई के युनिवर्सिटी में प्रोफेसर का काम करता है। उनका एक लडका है।

तीसरा पुत्र शंकर वायु सेना में भर्ती होकर दिल्ली में विंग-कमेंडर बनता है। लेकिन दुर्भाग्यवश चंद दिनों में पाकिस्तान युद्ध में उसकी मृत्यु हो जाती है।

बडी पुत्री शकुंलता को स्नातक स्तर तक पढाना चाहता हैं लेकिन उस समय, समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचलन कम था। कालेज में भर्ती होकर भी लडकों के उद्दंडपूर्ण व्यवहार के कारण शकुंतला को पढाई बीच में छोडनी पडी। यहाँ तक कि कालेज-शिक्षा उसके विवाह में भी बाधक हुई। इसी

१., २. चोकटि कडुपुन काँति – पृ. ४५–४६, ८०

बाद में वह अध्यापिका बनकर शांतियुक्त जीवन बिताती है। किंतु समाज में पत्नी का स्थान प्राप्त नहीं कर पाती। जब वह जान जाती है कि उसी की बहन रामचंद्र की पत्नी है तब से वह रामचंद्र के प्रति अपने मन में एक पूज्य स्थान देने लगती है। लेकिन लता तथा रामचंद्र का वैवाहिक जीवन उसी के कारण दुखमय बन जाता है। तो उनके सुंदर भविष्य के लिए निस्वार्थी होकर इस दुनिया से चल बसती हैं। उनके प्रति पाठकों के मन में सहानुभूति जग जाती है। क्योंकि स्वयं में दोष न होने पर भी वह विकट परिस्थितियों का शिकार बन जाती है। रामचंद्र स्वतंत्र विचारवाला युवक है। शिक्षित होने पर भी स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की दृष्टि से खेतीबारी का काम स्वीकारता है। वह वारिजा से प्यार करता है, लेकिन निजी जीवन में उसे पत्नी के रुप में स्वीकार न कर सकने के कारण वह लता से विवाह करता है। लेकिन लता के अहंभावी स्वभाव के कारण उसका जीवन नरकतुल्य बन जाता है तो फिर से वारिजा के पास चला आता है लेकिन वारिजा के दृढ संकल्प के कारण वह लता की गल्तियों को माफ-करके उसका हृदयपूर्वक स्वागत करता है। अतः रामचंद्र के विचार यद्यपि कुछ दुर्बल एवं संकुचित है पर उपन्यास के अंत में आदर्श पति के रुप में प्रत्यक्ष होता है।

लता, वारिजा बहनें हैं, पर लता में सौंदर्य का अभाव है। सौम्य युवक रामचंद्र की पत्नी होने पर भी कल्पनालोक में विचरण करने के कारण अपने जीवन को नरकतुल्य बना लेती है। जब मैके में भाई के कटु व्यवहार से अपने पति के प्रेम को समझकर पति से क्षमा याचना कर लेती है। लता के माध्यम से लेखिका ने समाज में अधिकांश लडकियों के मनस्तत्व को दिखाया है जो कल्पना-जगत में रहकर अपने जीवन को नरकमय बना लेते हैं।

इस उपन्यास में वकील सत्यनारायणा के परिवार द्वारा लेखिका ने यही संकेत दिया है कि व्यसनों तथा बडे परिवार के कारण कितने कष्टों का सामना करना पडता है। दूसरी ओर शंकर एक क्लर्क है, फिर भी अपनी सुशील तथा सुविचारवाली पत्नी कल्याणी तथा सोमित परिवार के साथ सुखी जीवन-यापन करता है।

लेखिका ने तत्कालीन मध्यवर्गीय परिवार की नारी की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। दहेज के कारण एक विधुर तथा वृद्ध व्यक्ति से माँ-बाप अपनी पुत्री का विवाह करने को तैयार हो जाते हैं। उस वृद्ध के बच्चों को

देखने के लिए कन्या की आवश्यकता है, न कि पत्नी की।[1] निर्धन स्त्री के लिए समाजमें जो दयनीय स्थान प्राप्त है, लेखिका ने उक्त कथन के द्वारा सूचित किया है।

जो सुख-शाँति एवं धन की खोज करने अपने घर के देहलीज को पार करती है, वह मध्यवर्गीय परिवार में मृत के समान है। पुत्री को प्यार करते हुए भी, समाज के डर से माँ-बाप उसे मृत ही समझते हैं।[2] इस कथन के द्वारा लेखिका ने मध्यवर्गीय परिवार के दुर्बल, संकुचित तथा रूढिवादी विचारों पर परोक्ष रूप से तीखा व्यंग्य किया है।

डी. कामेश्वरी :

'कोत्तनीरू' (नया पानी) डी. कामेश्वरी द्वारा रचित एक सामाजिक उपन्यास है। देशकाल परिस्थियों के अनुरूप समाज में आनेवाले परिवर्तनों का वर्णन लेखिका ने इस उपन्यास मे प्रस्तुत किया है। इस लक्ष्य के लिये एक सनातन ब्राह्मण परिवार की कथा को कथ्य रूप में चुना है।

जगन्नाथम अपनी संतान को शिक्षित तथा महान् बनाने की आकांक्षा रखता है। लेकिन पत्नी सनातन परिवार की होने के कारण पार्वतम्मा पति का विरोध करती है। ज्येष्ठ पुत्र रामाराव इंजिनियर बनता है। वह मद्रास में काम करते समय तमिल लडकी मीनाक्षी से विवाह कर लेता है। उसके दो बच्चे होते हैं श्रीनिवास तथा उषा। दूसरा पुत्र कृष्णाराव एम. एस. सी. कर इंग्लैंड में रिसर्च करते हुए चालीस साल की उम्र में सहपाठिका महाराष्ट्र की युवती से शादी कर लेता है। वहाँ से लौट कर बंबई के युनिवर्सिटी में प्रोफेसर का काम करता है। उनका एक लडका है।

तीसरा पुत्र शंकर वायु सेना में भर्ती होकर दिल्ली में विंग-कमेंडर बनता है। लेकिन दुर्भाग्यवश चंद दिनों में पाकिस्तान युद्ध में उसकी मृत्यु हो जाती है।

बडी पुत्री शकुंलता को स्नातक स्तर तक पढाना चाहता हैं लेकिन उस समय, समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचलन कम था। कालेज में भर्ती होकर भी लडकों के उद्दंडपूर्ण व्यवहार के कारण शकुंतला को पढाई बीच में छोडनी पडी। यहाँ तक कि कालेज-शिक्षा उसके विवाह में भी बाधक हुई। इसी

१., २. चोकटि कडुपुन काँति – पृ. ४५–४६, ८०

कारण बहुत ही प्रयत्नों के पश्चात् शकुंतला का विवाह बी. ए. में उत्तीर्ण सूर्यनारायण से हुआ। उनके छः बच्चे होते हैं। संतान की अधिकता के कारण घर नरकतुल्य रहता है। इसकी बडी लडकी अन्नपूर्णा के मन में विवाह के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है।

जगन्नाथम की दूसरी पुत्री अन्नपूर्णा कालेज में पढते समय कालेज के लेक्चरर सुन्दरराव से प्रेम विवाह कर लेती है। सुन्दरराव कालेज का प्रिंसि-पल बनता है और पत्नी को भी एम. एस. सी. पढ़वाकर कालेज की प्राध्या-पिका बनाता है। वे अपनी इकलौती पुत्री सुजाता को अत्यंत लाड-प्यार से पालन करते हैं।

जगन्नाथ की आखिरी पुत्री विजया, उच्च शिक्षा हेतु विदेश जाने की आकांक्षा प्रकट करती हैं। विदेश जाकर वहीं अपना शोध-कार्य पूराकर, उसी देश में राबर्ट्स नामक एक अंग्रेजी युवक से विवाह कर लेती है। लेकिन उसका वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं बनता। अतः विजया तलाक देना ही चाहती हैं। इतने में एक दुर्घटना में राबर्ट्स की मृत्यु हो जाती है। तो विजया स्वदेश लौट आती है वहीं एक पंजाबी युवक से विवाह कर जीवन में स्थिरता लाने का प्रयत्न करती है।

उषा के विवाह के संबंध में रामाराव तथा मीनाक्षी में वादविवाद होता है। उसका विवाह तेलुगु वाले से करना चाहता है तो मीनाक्षी तमिल वाले से। तब जगन्नाथम् स्वयं उषा को अपने यहाँ बुलाकर तेलुगु प्रांत के सुधाकर से विवाह करवाते हैं।

शकुंतला का वैवाहिक जीवन मधुर बनता। अतः उसकी पुत्री अन्न-पूर्णा विवाह करना नहीं चाहती। इसी बात पर वह अपने माँ-बाप से झगड-कर राजमंड्री जाकर लडकियों की कालेज में पढाने लगती है। वहाँ उसका परिचय मालती से होता है। धीरे धीरे उसका परिचय मालती के भाई से होता है जो कालेज का लेक्चरर है, और उनका विवाह हो जाता है।

सुन्दरराव अपनी पुत्री सुजाता को डाक्टरी पढाना चाहते हैं। लेकिन सुजाता, अपने घर के सामने रहनेवाले क्लर्क शेषगिरि के साथ विवाह करने के लिए घर से भाग जाती है।

इस उपन्यास में पात्रों की बहुलता के कारण कथानक में शिथिलता आ गई है। लेखिका ने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त ही पात्रों का सृजन तथा कथानक का विकास किया है।

उपन्यास का प्रमुख पात्र जगन्नाथम् है। वह जीवन में उच्च आदर्शों को रखता है। उनके पूर्ण न होने पर, दुखी जरूर होता है परंतु उन विकट परिस्थियों के साथ समझौता करने का सामर्थ्य भी रखता है। जीवन में सभी घटनायें उसके विरूद्ध होते जानकर भी कभी जीवन से नहीं हारता। उसकी पत्नी पार्वतम्मा पति को ही सर्वस्व माननेवाली भारतीय नारी है। लेकिन जब उसके बच्चे विजातीय विवाहकर लेते हैं तो वह अपना आक्रोश इस प्रकार प्रकट करती है–"तमिल बहू, महाराष्ट्र बहू, अमेरिका दामाद हो गये हैं–अब पंजाबी दामाद है। सभी प्रकार के तमाशे हमारे घर में ही प्रारंभ होते हैं। सभी प्रकार के सुधार तथा समाज सुधारक हमारे घर में ही प्रारंभ होते हैं –क्या बच्चे हैं भगवान्।"[1] इस उक्ति के द्वारा परंपरागत आचारों में पली रानी का आक्रोश प्रकट होता है। तब जगन्नाथम् अपनी पत्नी को इस प्रकार समझता है–"पगली!—सभी घरों में यही दशा है। समय बदल गया है। मनुष्य बदलते जा रहे हैं। बदलते हुए समय के अनुकूल हमें भी बदलने के बजाय दुखित होने से कोई प्रयोजन नहीं है। इस काल प्रवाह में इस जीवन सागर में हम घास के तिनके के समान हैं। नया पानी आकर, पुराने पानी को बहा देता है। उस पानी के बहाव में हमें भी बहना पडेगा। एक ही जगह स्थिर रहने का विचार रखना केवल अज्ञान है पार्वती! हम केवल निमित्त मात्र हैं। विधाता जिस प्रकार चलाते हैं उसी प्रकार चलने के लिए हम बाध्य हैं। हमारी पीढी बदल गयी है।[2] उपर्युक्त युक्ति से विदित होता है कि जगन्नाथम अपने को परिस्थितियों से समन्वित करने के लिए दर्शन का सहारा लेता है। इस प्रकार इस उपन्यास में सभी पात्रों का सृजन उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही हुआ है।

तेलुगु में एक कहावत है कि नया पानी आकर पुराने को बहा देता है। इस तथ्य की पूर्ति में लेखिका ने इस उपन्यास की रहना की है। लेखिका का कथन यही है कि बदलते हुए समय के साथ साथ हर एक व्यक्ति को भी बदलना जरूरी है और परंपरा के स्थान नये सामाजिक मूल्यों को प्रश्रय देना

१., २. कोत्त नीरु–पृष्ठ : १४९, २२०

आवश्यक है। उक्त उद्देश्य के स्पष्टीकरण के लिए लेखिका ने भगवत्गीता के श्लोक का उदाहरण भी उद्धृत किया है :–

'ज्ञेय: स नित्य सन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति
निद्र्धन्द्धो हिम हवाहा सुखं बँद्यात प्रमुच्यते ।'

'विविध वंचितलु' भाग्य के मारे इनका दूसरा सामाजिक उपन्यास है। इसमें दो ऐसी स्त्रियों की जीवन-गाथा है जो समाजिक प्रतिबँधनों को तोडना चाहती है, लेकिन अंत में हार जाती हैं।

उपन्यास का कथासार इस प्रकार है। प्रकाशं छ: बहनों का एक मात्र भाई होने के कारण छुटपन से उसे अधिक लाड प्यार मिलता है। बी. ए. पढने के उपरांत उसका विवह पार्वती से होता है जो सुशिक्षित एवं स्वाभि-मानिनी नारी हैं। प्रकाशं उसे पत्नी के रूप में न देखकर दासी मात्र मानता है। पार्वती निर्धन परिवार की कन्या होने के कारण उसे मायके जाने का मौका भी नहीं मिलता। एक लड़के का पिता बनने पर भी प्रकाशं में कोई परिवर्तन नहीं आता। सुशिक्षित पडोसिन सुजाता की प्रेरणा तथा उपदेश से पार्वती उस नरकतुल्य घर को छोडकर पुत्र के साथ सुजाता के संग चली जाती है। सुजाता, पार्वती को बीं. ए. तक पढाकर उसी शहर में नोकरी भी दिलाती हैं। पार्वती के पुत्र रघु को, सुजाता अपने पुत्र समान प्यार करने लगती है। पार्वती नौकरी करती हुई जीवन के बाह्य आडंबरों के वश होकर अपने पुत्र के प्रति कर्तव्यों को भी विस्मृत कर जाती है। अपनी सहेली कोमली के भाई मोहन के मोह में पडकर सुजाता की अवहेलना करने पर तुल जाती है कि वह प्यार की महत्ता को जानने में असमर्थ है। इस बात से सुजाता दुखित होकर अनायास ही अपने जीवन के विगत पृष्ठों को याद करने लगती है। वह धनी परिवार की इकलौती कन्या है। उसे बचपन से ही विवाह से नफरत थी। लेकिन उसके भाई का मित्र शेखर उसकी विचारधारा को बदलने में सफल हो जाता हैं। वे दोनों विवाह-सूत्र में बंधना ही चाहते हैं इतने में दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना में शेखर चल बसता है। इस प्रकार सुजाता अविवा-हिता होती हुई भी विधवा बनकर जीवन व्यतीत करने लगती हैं। आज पार्वती मोहावेश में आकर उसकी अवहेलना करती हैं तो वह सोचने लगती है कि पार्वती को नई जिंदगी प्रदान कर कहीं उसने गलती तो नहीं की? फिर भी वह पार्वती को समझाती है कि वह मोहन से विवाह करने की सम्मति यदि प्राप्त कर सकेगी तो वह उसकी शादी भी करवा देगी। लेकिन मोहन,

पार्वती के मोह के परदे को उठाते हुए कहता है कि वह विवाहित स्त्री जो एक बच्चे की माँ भी है, उससे कदापि विवाह नहीं कर सकता। इस घटना को पार्वती सहन न कर सकने के कारण तुरंत आत्महत्या कर लेती है। रघु को सुजाता पाल-पोसकर डाक्टरी पढाती है।

इधर प्रकाशं भी, पार्वती के चले जाने पर उसके प्रति प्रतिकार की भावना से प्रेरित होकर ही अशिक्षित एवं झगडालू स्त्री सीता से अपनी आधी जायदाद देकर विवाह कर लेता हैं। साथ साथ उसके भाई आंजनेयुलु का भार भी वहन करता है। आंजनेयुलु एक गुंडा है। उसका पीछा छुडाने के लिए अपनी बची हुई जायदाद को भी उसके नाम लिख देता है। प्रकाशं अपनी सारी जायदाद को खोकर पत्नी तथा छोटे छोटे बच्चों के संग कई कष्ट झेलता है। तभी उसके मन में पार्वती के प्रति किये गये अत्याचारों के प्रति पश्चात्ताप जाग उठता है।

यहाँ सुजाता, रघु को सुसंस्कारवान व्यक्तित्ववाला बनाती है। एक दिन संयोगवश उसके ही अस्पताल में प्रकाशं लकवे का शिकार होकर आता है। सुजाता, प्रकाशं को पहचान कर रघु तथा प्रकशं को सारी कथा सुनाती है। रघु को अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत भी करती है कि उसे अपने छोटे भाई-बहनों का भार ग्रहण करना है। इस निर्णय को सुनकर प्रकाशं सुख की अंतिम सांस लेता है।

यह उपन्यास. आधुनिक सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखा गया एक नवीनतम उपन्यास है। प्रकाशं तथा पार्वती के पात्रों के माध्यम से लेखिका ने यह प्रतिपादित किया है कि गृहस्थ्य जीवन में समझौता या प्यार न हो तो दोनों का जीवन अंधकारमय बन जाता है।

इसके मुख्य पात्र प्रकाशम, पार्वती, सुजाता तथा सीता हैं। प्रस्तुत उपन्यास में पार्वती तथा सुजाता दोनों भाग्य से वंचित की गई हैं। सुजाता, पार्वती को नरकतुल्य जीवन से दूर ले जाकर सुन्दर एवं स्वेच्छापूर्ण जीवन की आस दिलाती है। पार्वती शिक्षा ग्रहणकर सुसंस्कृत बनने के बजाय, झूठे मोहावेश में पडकर, आत्महत्या कर लेती हैं = सुजाता, शेखर को बहुत चाहती है लेकिन विधि ने सुजाता को धोखा ही दिया। पार्वती की जिंदगी को संवारने के उद्देश्य से उसे लाती हैं लेकिन हार जाती है फलतः उसके पुत्र को अपने पुत्र के समान पालकर सुशिक्षित बनाती है।

प्रकाश बी. ए. पढकर भी संस्कारहीन युवक है। छुटपन से ही माता-पिता के लाड प्यार के कारण तथा बहनों के प्रति निर्लक्ष्य-भाव के कारण, कुसंस्कारवान बनता है। इस पात्र के द्वारा लेखिका ने यही बताया है कि, छुटपन से ही माँ-बाप अगर बच्चों को सही रास्ता न दिखलायें तो वे किस प्रकार संस्कारविहीन बनते हैं। लेखिका ने सभी पात्रों का सहज एवं स्वाभाविक रूप से चारित्रिक विकास किया हैं।

इसमें लेखिका ने आधुनिक सभ्य समाज की उन नारियों पर करारा व्यंग्य किया है जो मोह को प्यार की संज्ञा देकर, स्वयं अपने जीवन को नष्ट कर डालती है। लेखिका ने यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि शिक्षा प्राप्त करना पुरुष या स्त्री दोनों के लिए आवश्यक है, परन्तु संस्कारविहीन शिक्षा अनावश्यक ही नहीं, प्रत्युत हानिकारक भी है। इसमें पार्वती तथा प्रकाश दोनों इस प्रकार के ही पात्र हैं।

बासौरेड्डी सीतादेवी :

'समता' और 'वैतरिणी' आपके मुख्य सामाजिक उपन्यास हैं।

'समता' उपन्यास में आधुनिक सभ्यता के मोह में पडकर सामाजिक मर्यादाओं तथा सीमाओं को भूलकर जिंदगी को नष्ट करनेवाली एक ग्रामीण युवती की जीवन गाथा अंकित है।

सीतापति एक गांव का सज्जन व्यक्ति है। उसका विवाह सुन्दर अरुंदती से होता जो गर्वीली है तथा शहरी जीवन तथा सभ्यता पर मोहित है। अतः अरुंधती गाँव में रहना पसंद नहीं करती है। इतना ही नहीं, वह सीतापति के मित्र राजाराव पर अनुरक्त भी होती है। क्योंकि अरुंधती अपने सपनों का साकार रूप राजाराव में पाती है। राजाराव क्रांतिकारी दल का नेता है। वह पुलिस की नजर से बचकर अपना जीवनयापन करता रहता है। पति से विचारों में मतभेद होने के कारण उसकी पत्नी मायके में ही रह जाती। राजाराव भी अरुंधती के रूपलावण्य पर मुग्ध हो जाता है। पति तथा सास चेतावनी तो देते हैं पर अरुंधती पर उसका कुछ भी असर नहीं पडता। तब सीतापति, राजाराव की पत्नी के पास जाकर यह वृत्तांत सुनाता है। लेकिन उसकी पत्नीं उत्तर देती कि मैं विवश हूँ, उनके क्रांतिकारी विचारों से सहमत नहीं हूँ। अचानक उसी दिन रात को पुलीस सीतापति के घर में राजाराव को पकड ले जाती है।

सीतापती घर में अनुपस्थित रहने के कारण राजाराव तथा अरुंधती यही समझते हैं कि उसने ही ईर्ष्यावश राजाराव को पकड़वाया है। इसी शंका से अरुंधती पति से और भी विमुख रहती। इसी बीच राजाराव मुक्त होकर दूसरे दल में भर्ती हो जाता है। और विश्वासघाती बन कर क्रांतिकारी दल के सभी रहस्यों को पुलिस को बता देता है। नये दल का नेता बनने के उप-लक्ष्य में सीतापति के गाँव में ही राजाराव के सम्मान में एक सभा का आयो-जन किया जाता है। सीतापति उस सभा में भाग नहीं लेता। वह राजाराम के इस कार्य से घृणा करने लगता। वह पत्नी को भी मना करता है। फिर भी वह राजाराव के मोह में पति की आज्ञा का उल्लंघन करती है। सीतापति शासन करता है कि यदि वह एक बार घर से कदम बाहर रखे तो फिर से वह घर में कदम नहीं रख सकती।[1] राजाराव से मिलने पर वह भी यही कहता है कि इस प्रकार पति की आज्ञा का उल्लंघन करना अनुचित है। अरुंधती उसकी बातों को सुनकर सत्य को जान लेती है। तुरंत वह अपने घर जाती है। लेकिन सीतापति उसे घर में कदम नहीं रखने देता। स्वाभिमानिनी एवं रूप गर्विता अरुंधती, पुत्री माधवी को लेकर चली जाना चाहती है। लेकिन पति, पुत्री को लेने की अनुमति नहीं देता। इस पर अरुंधती सीतापति से बदला लेने के उद्देश्य से कहती है 'वह लड़की तुम्हारी नहीं है, और जो अपनी नहीं है उसे तुम अपना भी नहीं सकते।'[2] तब भी सीतापति चुप रह जाता हैं। अरुंधति, राजाराव के पास जाकर याचना करती है कि वह उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करे। लेकिन अपनी आन पर धब्बा लगने तथा आगामी चुनाव में हार जाने के डर से उसे पत्नी के रूप में नहीं बल्कि रखैल के रूप में स्वी-कार करता है। लोग अरुंधती को धन आदि भेंट कर उसके द्वारा राजाराव से सभी काम करवा लेते हैं। अरुंधती चाहती है कि वह भी राजाराव के साथ बाहर जाये। इसी बात पर दोनों के बीच संघर्ष होता है। लोग इस बात से अवगत होकर उसके पास आना छोड़ देते हैं। इसी समय सीतापति से फोन आता है कि यदि वह पुत्री माधवी को देखना चाहती है तो रात में बारह बजे आ सकती है। पुत्री को देखने की इच्छा से अरुंधती पंद्रह साल के पश्चात फिर से पति-गृह में कदम रखती है। सीतापति बूढ़ा हो जाता है। अरुंधती अपने किये पर पछताती है। पुनः सीतापति प्रश्न करता है कि माधवी किस

---

१. समता – पृष्ठ : १२६

२. समता – पृष्ठ : ३५

की पुत्री है। तब अरुंधती कहती है कि वह उसकी पुत्री है। माधवी को अपने साथ ले जाने के उद्देश्य से ही ऐसा झूठ कहा. लेकिन उसने यह नहीं सोचा कि इसका असर माधवी के जीवन पर पडेगा। माधवी को अपना पुत्री न जानकर सीतापति उसे खूब सताता है। रूपवती माधवी उस गांव के रमेश नामक युवक से अनुरक्त होती है उसके कारण वह गर्भवती होती है। इस समाचार को पाकर सीतापति की मां मर जाती है और रमेश के माँ-बाप भी, माधवी को भी माँ की तरह कुलटा मानकर विवाह करवाने से इनकार कर देते है। सीतापति माधवी को गुंटूर ले जाता है जहाँ लडकी को जन्म देकर मर जाती है। तो शिशु को वहीं छोड़कर सीतापति पुत्री का शव लेकर लौट आता है। सीतापति मृत शरीर को भी अरुंधती को छूने नहीं देता। और कहता है कि चाहे तो गुंटूर के अस्पताल से पोतिनी को ले जा सकती हो। तुरंत अरुंधती गुंटूर पहुँचती है लेकिन अस्पताल में पडताल होने के कारण वह अंदर नहीं जा पाती। इस कारण वह पुलिस इन्स्पेक्टर की भी परवाह न कर अस्पताल में जाने की चेष्टा करती है। हडताल के कारण पुलिस की गोलियों की शिकार होकर बेहोश हो जाती है और मरते समय अपनी अंतिम इच्छाएँ प्रकट करती है कि 'मेरी जायदाद सभी मजदूरों में समान रूप से बांटा जाय और पोती 'समता' की अन्य अनाथ बच्चों के साथ जीवन बितावें।'

उपन्यास का केंद्र बिंदु है अरुंधती और वह समाज के उन नारियों की प्रतिनिधि के रूप में प्रत्यक्ष होती है जो नवीनता तथा सभ्यता के मोह में पडकर जीवन एवं व्यक्तित्व को खो बैठती हैं। अरुंधती के चरित्र से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य भी प्रकाश में आ जाता है कि बाल्यावस्था में अगर जीवन, अभाव तथा कठोर अनुशासन में बीतेगा तो व्यक्ति बाद में अवश्य उच्छृंखल वन जायेगा। अरुंधती बचपन से ही सौतेली मां द्वारा कई कष्टों को सहती है। विवाह के पश्चात् ससुराल में सुखमय जीवन बिताती है। उस सुखमय जीवन में आधुनिकता तथा शहरी सभ्यता की कल्पना की उडाने भरकर विशृंखल हो जाती है। विशृंखला होने पर भी इसका हृदय प्यार तथा ममता से शून्य नहीं है। इसका उदाहरण पोती के प्रति प्रेम तथा ममता ही है।

सीतपति की मां शांतम्मा नाम के अनुरूप शांत स्वभाववाली है, वह सदा अपनी बहू अरुंधती से समझौता कर लेनें में ही परिवार का हित मानती है।

सीतापति तथा राजाराव इस उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र हैं। सीता-पति पत्नी से बहुत हद तक समझौता कर लेता है किंतु राजाराव के प्रति, पत्नी का मोहित होना उससे सहा नहीं जाता, फलतः उसे घर से निकाल देता है।

राजाराव, अवसरवादी राजनैतिक नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है। राजनीतिक चेतना के नाम पर सामाजिक चेतना को तोड कर, सरकार का एजंट बनता है।

इस उपन्यास के पात्रों के संबंध में श्री राममोहन जी का कथन द्रष्टव्य है—राजाराव की चेतना शिल्प रूप के समान है। अरुंधती एक चमडे की गुडिया है। सीतापति जीव रहित मनुष्य है। शांतम्मा सजीव मूर्ति है। डूबते हुए परिवार को बचाने के लिए सीतापति तथा शांतम्मा प्रयत्न करते हैं तो अरुंधती तथा राजाराव उनकी राह में अवरोध बनकर परिवार को टुकडे टुकडे कर देते हैं। राजाराव, सीतापति के प्रति मित्र-द्रोह करता है। तो अरुंधती उसे कभी भी समाप्त न होने वाली व्यथा देती है।[1]

उद्देश्य की दृष्टि से देखा जाय तो लेखिका ने ग्रामीण जीवन से मुडकर शहरी जीवन की ओर आकृष्ट होने वाले व्यक्तियों की चरित्रहीनता तथा सभ्यता एवं आधुनिकता की आड़ में होनेवाले अत्याचारों के साथ-साथ अरुं-धती जैसी अहंकारी तथा विशृंखल स्त्रियों की समस्याओं तथा उनसे उत्पन्न दुष्परिणामों पर भी प्रकाश डालना अपना लक्ष्य माना है।

'वैतरणी' उपन्यास में, स्त्री-संबंधी समस्याओं का ही वर्णन है। नारी का जीवन विपरीत परिस्थितियों में कितना नरक-तुल्य बन सकता है इसकी तुलना लेखिका ने 'वैतरणी' नदी से की है और इसी उद्देश्य के आधार पर उपन्यास का नामकरण भी हुआ है।

उपन्यास की अधिकांश घटनायें माधवय्या की पुत्री नागम्मा से संबंधित हैं। नागम्मा अशिक्षित स्त्री है उसका विवाह वेंकट्राव से होता है। वेंकट्राव अपने मामा तथा मौसी की देखरेख में पाला—पोसा गया है। विवाह के समय माधवय्या जो एक रईस किसान है, बारह हजार रुपये दहेज में देता है जिसे वेंकट्राव अपने मामा को देकर ऋण—मुक्त होता है। नागम्मा तथा वेंकट्राव दो

---

१. राममोहनराव – भारती (अप्रैल १९७१) पुस्तक समीक्षा : 'समता'

साल तक आनंदमय जीवन बिताते हैं। पार्वती उनकी पुत्री है। किंतु वेंकट्राव दुर्भाग्यवश अकाल मृत्यु को प्राप्त करता है। विधवा नागम्मा पुत्री सहित मायके आती हैं। उसके विवाह के पहले जहाँ मायके में माता-पिता का आधिक्य रहा वहीं अब भाई तथा भाभियों का राज है। चारों भाइयों के बीच जायदाद बंट चुकी है। छोटा पुत्र सत्यनारायणा क्रांतिकारी दल का सदस्य होकर घर से भाग जाता है। इसी कारण उसकी जायदाद भी बडा भाई सुब्बारायुडु ही हडप लेता है। नागम्मा मायके में दासी के रूप में जीवन बिताती है। इसी कारण पुत्री पार्वती को नागम्मा पढा भी नहीं पाती। इतना ही नहीं, उसका विवाह साठ साल के बूढे भद्रय्या के साथ करवाती हैं। माँ की विवशता को जानकर पार्वती भी चुप हो जाती है। भद्रय्या कामलोलुप व्यक्ति है। नागम्मा को भी वह अपनी काम-वासना का शिकार बनाना चाहता है। लेकिन नागम्मा उसके पंजे में नहीं आती तो वह उसके ऊपर व्यंग्य कसने लगता है। पुत्री की सुख-कामनाकर नागम्मा मौन ही रह जाती है। इसी बीच भद्रय्या की बहन का लडका सूर्यनारायणा भद्रय्या के घर आता हैं और पार्वती को देखकर सहानु-भूति व्यक्त करता है। वही सहानुभूति प्रेम में परिणत हो जाती है। अपनी माँ को यह विषय पत्र द्वारा सूचित भी करती है। नागम्मा पुत्री के इस निर्णय के प्रति हर्षित होकर भी लोक-लाज के भय से विवश होकर आत्म-हत्या कर लेती है।

कथानक में घटनाओं का अत्यंत सहज एवं स्वाभाविक विकास देखा जा सकता हैं। लेखिका ने सभी घटनाओं को अंतग्रथित एवं सोद्देश्यपूर्ण चित्रित किया हैं।

इसमें लेखिका ने नागम्मा पात्र के प्रति विशेष ध्यान देकर अपने उद्देश्य को इसी पात्र के माध्यम से व्यक्त किया है। नागम्मा परावलंबी तथा अशिक्षित होने के कारण कई यातनाओं का शिकार बनती है। वृद्ध से पुत्री का विवाह होने पर भी चुप रह जाती है। परंतु पार्वती द्वारा सत्यनारायणा से विवाह कर लेने का निश्चय सुनकर हर्षित हो जाती है। स्वयं सुखी जीवन न बिताने पर भी पुत्री की सुखमय जीवन की कामना करती है जो निम्नांकित कथन से विदित होता है - "पार्वती ! तुमने अच्छा काम किया है। कम से कम तुम तो सुखी रहो।"[1] अंत में नागम्मा के सामने आत्मघात का रास्ता ही बचा

---

१. वैतरणि - पृष्ठ : १५७

जाता है । लेखिका ने परोक्ष रूप से यही चित्रित किया है कि अबला नारी के लिए मृत्यु के अलावा और कोई रास्ता नहीं है ।

इस उपन्यास में पार्वती आधुनिक युवा-पीढी का प्रतिनिधित्व करती है । वह अपनी माँ से बहुत प्रेम करती है । मामा-मामी के यहाँ नरक-तुल्य जीवन यापन करनेवाली अपनी माँ की दीन स्थिति को जानकर पार्वती एक वृद्ध से विवाह करने के लिए उद्यत होती है । उसकी यही भावना इस कथन में द्रष्टव्य है – "यह संसार हमारा क्या करेगा ? इसके आगे हम क्यों डरें ? माँ तुम जानती हो मैं इस विवाह केलिए क्यों सहमत हुई ? तुम्हें इस नरक-तुल्य जीवन से बचाने केलिए ही ।"[1] लेकिन फिर भी पार्वती जब सत्यनारायण से प्रेमकर माँ को नरक में ही छोडकर चली जाती है तो यहाँ पार्वती की मानसिक दुर्बलता और स्वार्थी स्वभाव का आभास होता है ।

इसके अतिरिक्त नागम्मा के भाई तथा भाभियों के द्वारा मानव के विभिन्न मनस्तत्वों को लेखिका ने स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है । भद्रय्या कामलोलुप व्यक्ति है, सत्यनारायण प्रगतिशील पीढी का प्रतिनिधित्व करनेवाले युवक के रूप में चित्रित किया गया है ।

आर्थिक स्वतंत्रता न होने पर कितनी ही यातनायें सहनी पडती हैं और उसका जीवन कितना दूभर हो जाता है तथा उसका पर्यवसान कितना दुखदायक होता है आदि बातों पर नागम्मा पात्र के द्वारा व्यक्त करना ही लेखिका का प्रधान लक्ष्य रहा है । इस प्रकार स्त्री-शिक्षा, स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता केलिये लेखिका ने जोर दिया है । गाँव में रहनेवाले संयुक्त परिवार-व्यवस्था तथा उसके सदस्यों के विभिन्न मनस्तत्वों, संकुचित विचारधाराओं का चित्रण करना भी लेखिका का उद्देश्य रहा है ।

पवनि निर्मला प्रभावती :

इनका 'शलभालु' (पतंगे) एक सामाजिक उपन्यास है । जीवन में कई प्रकार के आकर्षण हैं लेकिन उन आकर्षणों के प्रति कुछ लोग बिना सोचे समझे आकर्षित होकर अपने जीवन को उसी प्रकार नष्ट कर डालते हैं जैसे दीपक के प्रति आकर्षित होनेवाले पतंगे ।

---

१. वैतरणी – पृष्ठ : १३७

सीतापति तथा महालक्ष्मम्मा मध्यवर्गीय परिवार के दंपति हैं। उनकी तीन संतान हैं – रामन् सरस्वती तथा राजेश्वरी। सरस्वती का विवाह निश्चय हो जाता हैं ठीक उसी समय वह अपने सहपाठी के साथ भाग जाने का प्रयत्न करती हैं। तब उसका भाई रामम् उसे पकडकर घर ले आता है। घर में सरस्वती का रोदन सुनकर पडोसी दंपति विश्वनाथम तथा पार्वती इन्हें देखने चले आते हैं। वहाँ की परिस्थिति को जानकर पार्वती, सरस्वती को अपनी सहेली श्यामला की जीवन–गाथा सुनाती है।

श्यामला, मध्यवर्गीय परिवार की कन्या है। लेकिन कालेज में पढते समय अपने सहपाठी भास्कर के साथ भाग जाती है। भास्कर उसके साथ कुछ दिन मौज कर, गर्भवती जानते ही उसे छोड भाग जाता है। उसी समय श्यामला का परिचय शिनामी नामक एक वेश्या से होता है। शिनामी अपनी जीवन-गाथा, श्यामला को सुनाती है। उसका असली नाम मीनाक्षी है और वह एक संपन्न परिवार की कन्या है। वह सौंदर्यवती तथा नाट्यकला में पारंगत है। एक बार कालेज में वार्षिकोत्सव के समय सिनेमा एक्टरों को बुलाया जाता है। उनके सुंदर जीवन से मोहित होकर और सिनेमा में अभिनय करने की आकांक्षा के कारण वह एक दिन घर से भाग जाती है। तब तक उस समय उसका विवाह श्रीनिवासराव नामक एक सज्जन युवक से पक्का हो जाता है। वह घर से भाग कर मद्रास चली जाती है वहीं उसे सिनेमा जीवन के खोखले तथा घृणापूर्ण जीवन का पता चलता है। वह वापिस घर नहीं जा पाती और जीवन–निर्वाह के लिए विवश होकर उसे वेश्यावृत्ति को स्वीकारना पडता है। एक दिन वह स्वयं अपने जीवन से ऊबकर आत्महत्या करने का प्रयत्न करती है तो एक युवक उसकी रक्षा करता है। वह वही युवक है जिस के साथ उसका विवाह निश्चित किया गया था। तभी वह जान लेती है कि वह जीवन में कितना भूल कर गई। तब से आत्महत्या का प्रयत्न छोडकर अपने पापों का फल भोगते हु जीवन यापन करने लगती है। इस कथा को सुनकर श्यामला काँप जाती है। शिनामी उसे गर्भपात करवा लेने को कहती है। लेकिन गर्भपात में श्यामला का स्वास्थ्य बिगड जाता है वह डा. मधु के अस्पताल में ले जायी जाती है। स्वास्थ्य होने के पश्चात् वह डा. मधु से नौकरी की प्रार्थना करती है। डा. मधु अपने घर में दो छोटे बच्चे राणु तथा रवि को देखने का काम दिलाता है। उसका जीवन प्रशांत रूप से कटने लगता है। एक दिन डा. मधु को अपने मित्र डा. सुदर्शन के पास से तार

आता है कि वह मृत्युशय्या पर है । डा. मधु तुरंत, राजु, रवि और श्यामला ले चलता है । रास्ते में वह अपनी जीवन गाथा श्यामला को सुनाता है । मधु, सुदर्शन तथा शर्मा मित्र एवं डाक्टर हैं । तीनों एक ही बार विदेश जाते हैं । डा. मधु की वगदत्ता सरला तथा उसके मां बाप उससे जल्दी आने के लिए अनुरोध करते हैं । विदेश जाने पर मधु तथा सुदर्शन वहाँ के वाह्य आकर्षणों के प्रति आकर्षित होते हैं । डा. मधु विदेशी महिला रोजा से विवाह कर वहीं रह जाता है । इस खबर को सुनते ही उसकी वाग्दत्ता सरला आत्महत्या कर लेती है । दो साल पश्चात् डा. सुदर्शन, डा. शर्मा स्वदेश लौटे आते हैं । छः वर्षों के पश्चात् रोजा मर जाती है और डा. मधु उसे भूल न सकने के कारण स्वदेश लौटकर रोगियों की सेवा-सुश्रूषा में शांति पाने लगता है ।

शर्मा की पत्नी सरोजा सौंदर्यहीन है, फिर भी उसका पति उसके आंतरिक सौन्दर्य से मुग्ध होता है । उन दोनों का वैवाहिक जीवन सुखमय बीतता है । एक बार संयोगवश सुदर्शन से मधु की मुलाकात होती हैं । वह अपने दोनों बच्चों को समुद्र तट पर छोड़कर समुद्र में आत्महत्या करने के प्रयत्न में रहता है ठीक उसी समय मधु देख लेता है । मधु के देखते ही वह अपने बच्चों को उसे सौंपकर अपनी जीवन-गाथा सुनाता है । सुदर्शन का विवाह प्रसिद्ध सुंदरी नर्तकी से होता है । वह पत्नी से अधिक प्यार करता है । लेकिन एक दिन अचानक अपनी पत्नी के दूसरे पुरुष से प्रेम करते देख क्रोधा-वेश में पत्नी को घर छोडने की आज्ञा देता है । वह निर्लज्जा स्त्री, बच्चों की भी परवाह न कर चली जाती है । तभी से सुदर्शन मानसिक अशांति के के कारण क्षय रोगी बनता ह । डा. मधु उसे सांत्वना देकर सेनिटोरियम में भर्ती कर, तब से बच्चों को अपने पास ही रखता है । जब तक डा. मधु बच्चों सहित सुदर्शन के पास जाने में तब तक वह मर जाता है । डा. मधु बच्चों सहित फिर लौट आता हैं ।

एक बार अचानक श्यामला अपनी छोटी बहिन सुजाता से मिलती है । एक सहेली के नाते सुजाता, श्यामला को अपना घर बुलाती है । श्यामला अपनी बहिन की जिंदगी को देखकर दुखित हो जाती हैं । क्योंकि उसके द्वारा की गई गल्ती के कारण पचास साल के बूढे से सुजाता का विवाह होता है । सुजाता परिस्थितियों से समझौता करनें के प्रयत्न में रहती है ।

तीन साल बाद डा. मधु की मृत्यु हो जाती हैं तो श्यामला फिर से अनाथ हो जाती हैं। वह शिनामी को बुला भेजती है लेकिन उसे पता चलता है कि एक कामुक पुरुष के द्वारा शिनामी की हत्या हो चुकी हैं। श्यामला दरिद्रता के थपेडे खाती हुई एक दिन रास्ते में बेहोश होकर गिर जाती है। कोई उसे अस्पताल में ले जाते हैं वहीं से वह अपनी सहेली पार्वती को आने के लिए खत लिखती है। पार्वती तथा विश्वनाथ के आने पर वह अपनी जीवन-गाथा को पत्र में लिखकर उन्हें सौंपकर मर जाती हैं।

पार्वती, श्यामला की कहानी सरस्वती को सुनाकर उसके भविष्य का निर्णय उसी पर छोड देती हैं। दूसरे दिन सरस्वती अपने प्रेमी गोपाल से कहती है कि घरवालों को मनाकर दोनों विवाह कर लेंगे। लेकिन गोपाल, विवाह की बात सुनते ही भाग जाता हैं। तभी सरस्वती अपनी भूल को जानकर पार्वती के प्रति कृतज्ञता को व्यक्त करती है। खुशी के साथ अपने मँगेतर से विवाह कर लेती है।

उद्देश्य की पूर्ति में अधिक ध्यान देने के कारण कथानक के प्रवाह में असहजता आ गई है। इसी कारण विविध पात्रों के जीवन–गाथाओं का वर्णन किया गया हैं। पात्रों की बहुलता भी अधिक पाई जाती हैं। उपन्यास में पात्रों की बहुलता है। श्यामला यौवन के उन्माद में पडकर जीवन नाश कर लेती है। मृत्यु के क्षणों में अपनी सहेली से कहती है – "मेरे जैसे लोग अगर अज्ञानवश जीवन नाश करने लगें तो उन्हें यह पत्र पढकर सुनाओ या मेरे बारे में कहो पार्वती।"[1]

शिनामी संपन्न परिवार की लाडली पुत्री है जो अपनी नाट्यकला को सिनेमा द्वारा विकसित करने के उद्देश्य से घर से भाग जाती है। सिनेमा में अभिनय करने के प्रति आकर्षित होकर, वहाँ के कुत्सित मनुष्यों के अत्याचारों का शिकार बन कर अंत में वेश्यावृत्ति को अपना लेती है।

भास्कर, कामुक युवकों का प्रतिनिधित्व करता है। डा. मधु आरंभ में विषयलोलुप रहकर भी अंत में सत्पुरुष बन जाता है।

डा. सुधाकर विदेश में सुखी जीवन बिताने पर भी स्वदेश लौटकर एक प्रमुख नर्तकी शीला से विवाह कर लेता है। लेकिन पत्नी के विश्रृंखल जीवन से सहमत न होकर रोगी हो जाता हैं।

---

१. शलभालु – पृष्ठ : २०९

डा. शर्मा आदर्श पुरुष है। वह बाह्य सौंदर्य से अधिक मानसिक सौंदर्य को देखता है। इसी कारण वह अपनी सौंदर्यहीन पत्नी सरोजा के प्रति अत्यधिक प्रेम जताता है। एक बार डा. मधु से मानसिक सौंदर्य की वरीयता सिद्ध करते हुए कहता है – "मधु ! धर्मबद्ध, देशकाल परंपराओं से युक्त बंधनों में सौंदर्य केलिए कोई स्थान नहीं होता। ....एक पुरुष और एक स्त्री शारीरिक रूप से जब मिलते हैं तो उनके अनुभव तथा अनुभूति में एक ही प्रकार का आनंद परिलक्षित होता है। उसमें कोई अंतर नहीं होता। तब धर्मबद्ध आनंद में असंतोष केलिए स्थान कहाँ ? मैं अपनी सरोजा में ही मेनका, तिलोत्तमा, ऊर्वशी को देखता हूँ वैसे ही सरोजा भी मुझ में जग को मोहित करनेवाले रूप-सौंदर्य को देखती है। इस प्रकार की मानसिक तृप्ति के अभाव में मनुष्य पशु-तुल्य बन जाता है। समाज की व्यवस्था ही बदल जाती है। मानवता ही मिट जाती है।"[1] इस प्रकार के विचारों द्वारा ही वह डा. मधु को मानव सेवा में तल्लीन करने में सहायक होता है।

सुजाता, श्यामला की छोटी बहिन है। वह परिस्थितियों के साथ समझौता कर सभी को आनंद पहुंचाने का सतत् प्रयत्न करती है। जब श्यामला, सुजाता के वैवाहिक जीवन को देखकर दुखित होकर भगवान की निंदा करने लगती तो सुजाता जवाब देती है कि "दीदी ! अपनी कमजोरियों पर विजय पाने में असमर्थ होकर भगवान को दोषी ठहराना अविवेक है। सभी प्राणिकोटि में मानव का जन्म सर्वश्रेष्ठ है। जिसे भगवान ने तुम्हें दिया है। सोचने का ज्ञान भी उसने तुम्हें सौंपा है। उसका दुरुपयोग कर, तुम भगवान को दोषी क्यों ठहराती हो ?"

सुजाता केवल समाज में गौरव पाने के लिए ही बूढे आदमी से वैवाहिक जीवन बिताने लगती है। वह अपने त्याग द्वारा परिवार की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करती है।

लेखिका स्वयं आमुख में उद्देश्य के प्रति यों संकेत करती–"जीवन में-कई तरह के आकर्षण भरे रहते हैं। लेकिन उन आकर्षणों के पीछे, आगा-पीछा न सोचकर पागलों की तरह भागनेवाले युवती-युवक सत्फल को

---

१. शलभालु–पृष्ठ : १८०

प्राप्त करेंगे इसकी आशा नहीं है। कभी कभी आग में कूदकर जल जानेवाले पतंगों के समान बन जाते हैं। यह मेरा उपन्यास 'शलभालु' (पतंगे) उक्त कथित युवती, युवकों को दृष्टि में रखकर लिखा गया है।"[1]

बीनादेवी :

इन का 'पुण्यभूमि कल्लुतेरु' (हे पुण्य भूमि आँखें खोलो) बहु चर्चित एवं नवीनतम उपन्यास है। इस में वर्तमान आंध्र-प्रांत के समसामयिक समस्याओं का जीता जागता चित्रण प्रस्तुत किया गया हैं। लेखिकाओं द्वारा विरचित उपन्यास साहित्य में इस उपन्यास के लिए विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

उपन्यास की मूलकथा राजम्मा तथा सिंहाचलम दंपति से संबंधित है। जीवन के साथ दोनों घोर संघर्ष कर अंत में हार जाते हैं। पिता द्वारा प्राप्त छ: एकड जमीन में ईख की खेती करके सिंहाचलम किसान का जीवन व्यतीत करता हैं। माँ की बीमारी के कारण उधार लाने के लिए सिंहाचलम बनिये के पास जाता है। बनिये के षड़यंत्र में फँसकर वह दुर्भाग्यवश एक ओर अपनी माँ को खो बैठता है तो दूसरी ओर अपनी जायदाद को। अंत में पत्नी तथा पुत्र सहित जीवन-निर्वाह के लिए गाँव से शहर चला जाता है। रिक्शा चलाकर सिंहाचलम तथा नौकरानी बनकर राजम्मा जीवन व्यतीत करने लगते हैं। इसी बीच चुनाव के झगडों में सिंहाचलम लंगडा हो जाता है जिससे उसका जीवन नरकतुल्य बन जाता है।

जिस घर में राजम्मा नौकरानी होती है उस घर के मालिक और मालिकिन के बोच वैमनस्य उत्पन्न होने के कारण, मालिकिन विजया आत्महत्या कर लेती है। घर का मालिक रंगराजु एक दिन नशे में चूर होकर राजम्मा को अपनी वासना का शिकार बनाता है। रंगराजु की दुर्बलता से अवगत राजम्मा उसे मना करने में असमर्थ रह जाती है। तब से वह रंगराजु के घर पर दिन-रात बिताती रहती। एक दिन राजम्मा को पता चलता है कि उसका पति तथा पुत्र बीमार है। रंगराजु से रुपये लेकर वह अपने घर जाती है। जब वह लौटती है तब तक रंगराजु अपने बच्चों सहित कहीं चला जाता हैं।

उसके पुत्र का क्षय रोग बढते जाता है। उसे बचाने के उद्देश्य से वह वेश्या वृत्ति को अपनाना चाहती है। पहली बार वह अंग्रेजी युवक जे. जे के

१. शलभालु–भूमिका से उधृत

कमरे में जाती है। कुछ मानसिक रुप से असंतुष्ट जे. जे. राजम्मा को धन तथा मूल्यवान वस्तुयें देकर घर वापिस भेज देता है। फिर वह आत्महत्या कर लेता। राजम्मा के घर जे. जे की मूल्यवान वस्तुयें पाकर हत्या का आरोप लगाते हुए पुलिस उसे कैद कर ले जाती है। राजम्मा कैद में कई यातनाओं को सहती है। उसे हमेशा पति तथा पुत्र की चिंता रहती है। एक दिन जब पता चलता है कि राजम्मा को खूनी मानकर मुहल्लेवालों ने उसके पति और पुत्र को भगा दिया है तो उस पर बिजली टूट पडती है।

जे. जे जैसे महान् व्यक्ति का खून करने वाली हत्यारिन की जीवन-गाथा को जानने, उसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने के उद्देश्य से तथा जे. जे. की हत्या के पीछे किसी नेता अथवा राजनीतिक दल का हाथ होगा, यह सोचते हुए एक पत्रकार उसके पास पहुंचता है। राजम्मा को बदले में दस हजार रुपये देने की बात तथा उन रुपयों से उसके प्राणों को बचाने की बात कहता है। तो राजम्मा उत्तर देती है – "तुम्हारे रुपये, तुम्हारा जीवन मुझे नहीं चाहिये। यदि हो सके तो फाँसी दिलवाइये बाबूजी।"[1]

इस मूल कथा के साथ साथ जे. जे. की उपकथा भी जुडी हुई है। जे. जे. अमीर युवक है। मार्गरेट नामक युवती जे. जे. के प्रति आकर्षित होती है। लेकिन जे. जे. के द्वारा तिरस्कृत मार्गरेट जे. जे. के भाई जार्ज से विवाह कर लेती है। नववर्ष के आरंभ के अवसर पर नशे से चूर मार्गरेट तथा जे. जे. शारीरिक संबंध जोड लेते हैं। होश में आने पर जे. जे. पछताकर स्वदेश छोडकर शांति की तलाश में भारत आ जाता है। आश्रम में रहकर शांत रूप से समय बिताने लगता है। वहाँ पर उसका परिचय धनी महिला रानी से होता है। पति से मनमुटाव होने के कारण वह अकेली रहने लगती है। उसका पति अमेरिका में रहता है, बच्चे बोर्डिंग स्कूल में पढते हैं। रानी जीवन में धन-दौलत पाकर भी पारिवारिक सुख से वंचित है। इसी परेशानी के कारण उसे चक्कर का दौरा आया करता है। जे. जे. और रानी का परिचय घनिष्ट होते जाता है। रानी अपने जन्म दिन के अवसर पर जे. जे. की दयनीय जीवनगाथा को जानकर उसके प्रति शारीरिक रूप से भी आकृष्ट होती है। जे. जे. को सांत्वना देने के लिए उसे शारीरिक सुख प्रदान करती है। सुबह होते ही जे. जे वहाँ से भाग जाता है। अपने मित्र रिचर्ड से मिल

---

१. पुष्प भूमि कल्लु तेरु -- पृष्ठ : ३५६

कर अपनी अशांति को व्यक्त करता है। रिचर्ड उसे सलाह देता है कि बाजारु स्त्री के संपर्क में उसे कुछ शांति मिल सकेगी। एक दिन उसे अनमना देख राजम्मा को उसके कमरे में भिजवाता है। लेकिन जे. जे. उसे कुछ धन तथा वस्तुएँ देकर वापिस भेज देता है। स्थाई रूप से शांति पाने के उद्देश्य से आत्महत्या कर लेता है।

उपन्यास के अन्त में लेखिका लिखती है कि राजम्मा क्या हो गई ? उसे फाँसी की सजा दी गयी है या नहीं ? न्यायालय में उसे न्याय मिला कि नहीं आदि प्रश्नों को इसमें प्रधानता नहीं दी गयी है। इस समाज में राजम्मा से बढकर निकृष्ट जीवन यापन करनेवाले कई लोग हैं। राजम्मा जीवन में कम से कम माँ की ममता, पति का प्यार तथा पुत्र का लाड भरा वात्सल्य का अनुभव कर चुकी हैं। अंधकारमय जीवन में इन सबके सहारे वह आगे बढ सकती है। लेकिन इस प्रकार के सुख से भी वंचित कई लोग इस समाज में हैं जो जीवन के अंधकार में जीते हैं और उसी में ही मर जाते हैं। लेखिका का दृष्टिकोण है कि जिस समाज में धन को ही महत्व दिया जा रहा है उसकी आड में कई अत्याचार, अन्याय करते हुए कुछ लोग बाहर से समाज के गौरव पूर्ण व्यक्ति के रूप में दिखाई देते हैं। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था जब बदल सकती हैं तभी राजम्मा जैसे व्यक्तियों के जीवन में न्याय के लिए स्थान रह सकेगा। तभी जीवन में शांति भी कायम हो सकती है। आगे लेखिका कहती है–'यह देश जो किसी भी नये भगवान को अपने हृदय में निस्संकोच प्रतिष्ठित कर लेता हैं, जो नया धर्म आये उसे हाथ फैलाकर स्वा-गत करता हैं। इसी कारण नये नये सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है। नये नये स्वप्न तभी वह देख सकेगा। नये मोड ले सकेगा और अपनी आंखें खोलेगा।'[1]

इस प्रकार इस उपन्यास में कथ्य, उद्देश्य की दृष्टि से भी, पात्रों के चारित्रिक विकास की दृष्टि से भी गंभीर एवं मार्मिक बन पड़ा हैं।

इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण के साथ साथ वर्तमान सामाजिक ज्वलंत समस्याओं के प्रति भी लेखिका ने यथेष्ट ध्यान दिया है।

---

१. पुण्य भूमि – पृष्ठ : ३५९

राजम्मा जीवन के आरंभ से ही भाग्य की थपेडों को सहती हुई जीवन से समझौता करती हुई अग्रसर होती है। लेकिन अंत में परिस्थितियाँ उसे इतनी विवश कर देती हैं कि वह धन की अपेक्षा मृत्यु का आह्वान करने के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन अंत में वह सचेत होकर अपने भाग्य से ही प्रश्न कर बैठती है–"मैं भी एक मां की लड़की हूँ। मैंने भी अपने पति की छाया में ही जीवन बिताने की इच्छा रखी। मैंने क्या पाप किया है।"[1] जेल में माणिक्यम् से राजम्मा अपने पति पुत्र तथा पुत्र के कुशल समाचार के संबंध में पूछताछ करती है जिनके लिए उसने अपना सारा जीवन लगा दिया है। जब उसे पता चलता है कि लोगों ने उसके पति, पुत्र को गांव से भगा दिया है तो उसे लगता है मानो उसी की आंतडियों को बाहर निकालकर कोई उसी के आगे जला रहा है। तभी वह अधमरी सी होकर पत्रकार के द्वारा दिये जानेवाले रुपयों का तिरस्कार कर अपने को बचाने की अपेक्षा अपने का जल्द से जल्द फाँसी लगवाने की प्रार्थना करती है।

सिंहाचलम् आरंभ में ईमानदार, गंवार तथा अपने श्रम पर ही निर्भर व्यक्ति के रूप में सामने आता है। अशिक्षित रहने के कारण अपनी सारी जायदाद खो बैठता है और शहर में भी कई अपमानों को सहन करता है। लंगड़ा बनकर, पत्नी की कमाई पर निर्भर रहते हुए कमजोर व्यक्तित्व के कारण व्यसनी बनता है। पत्नी को भी शंका की दृष्टि से देखने लगता है।[2] दरिद्रता के कारण विवश होकर अपनी ईमानदारी खोकर व्यसनी होनेवाले लोगों का प्रतीक है सिंहाचलम्।

लेखिका ने समाज के दुष्ट व्यक्तियों के प्रतीक के रूप में मवराजु का चित्रण किया है। वह अशिक्षित है फिर भी धोखेबाज, चोर, खूनी आदि बनकर धनवान बनता है। धन के कारण वह मुन्सिपल कंट्राक्टर बनकर लखपति बनता है। वही अशिक्षित सिंहाचलम को सहायता देने का ढोंग रचा-कर उसकी संपत्ति हड़प लेता है।

जे. जे. पात्र का भी अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्रण संपन्न हुआ है। जे. जे. जहाँ मार्गरेट को तिरस्कृत करता है वहीं उससे शारीरिक अनुभव

१., २. पुण्य भूमि कल्लुतेन्न – पृष्ठ : ३३२, २८०

प्राप्त करता है, जहाँ रानी से शारीरिक सुख प्राप्त करता है वहीं उससे दूर भाग जाता है और अंत में शांति के लिए मृत्यु की शरण में जाता है।

रिचर्ड तथा जे. जे के बीच होनेवाले वार्तालाप में भारतवासियों का विश्लेषण मिलता हैं। इस देश में जहाँ एक ओर अच्छे लोग हैं वहाँ दूसरी ओर दुष्ट लोग भी। जहाँ ऋषि, तपस्वी हैं, प्रजासेवी हैं, वहीं प्रजाद्रोही, धनमदांध है और कुछ दरिद्र भी हैं। लेकिन अंतर इतना ही है कि यहाँ अच्छे लोगों की अच्छाई स्वयं उनके लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के भी किसी काम की नहीं। लेकिन बुरे लोगों की बुराई देश भर में विषैले धूम्र के समान व्याप्त है। यहाँ के लोगों की मान्यतायें, विश्वास, चाल-चलन, आदर्श तथा आचरण, कथन तथा करनी में कोई मेल-जोल नहीं। इन लोगों को लोकतंत्रात्मक शासन में विश्वास है लेकिन जाति-पाँति के भेदभाव रूपी मुसलमानी भूत उसकी बुनियादी को छील डाल रही है।"[1]

लेखिका ने ढोंगे नेताओं पर करारा व्यंग्य किया है। नायुडू पात्र से इस कथ्य का समर्थन किया हैं। उदाहरण केलिए नायुडू को विजयी बनाने केलिए चुनाव में सिंहाचलम लंगडा होता है। वह जब अपनी आजीविका केलिए सहायता माँगने आता है तो नायुडू मन ही मन कोसता है कि "आ रहा है, एक टाँगवाला मूर्ख। गाँव के सभी गधे लोग यह सोचकर एक बार मेरे दर्शन करने चलें आते हैं ताकि मैं कभी किसी के काम आ सकूँ। चुनाव में तो अनिवार्य हो जाती है कि मैं जाकर हर गधे के पाँव पड़ूँ। मेरी जयजयकार करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि मैं उसका ऋणी हूँ। · (सिंहाचलम् से मिलकर उसे अपनी तौर से सांत्वना देने लगता है) अरे सिंहाचलम्! तुम कौन हो जानते हो? तुम केवल सिंहाचलम नहीं हो। तुम मेरी जनता में एक हो। जनता की देखभाल करना मेरा कर्तव्य है। तुम्हारे लिए कोई न कोई रास्ता दिखाना मेरा कर्तव्य है।[2] लेकिन मीठे वचनों से ही सिंहाचलम् को भेज देता है।

राणी तथा विजया के पात्रों के माध्यम से लेखिका ने रईस तथा सभ्य समाज की स्त्रियों का और उनके जीवन में उपस्थित होनेवाली समस्याओं का चित्रण किया है। राणी का एकांत जीवन-जन्य क्लेश तथा विजया की आत्महत्या के द्वारा लेखिका ने इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला है।

---

१. पुण्यभूमि कल्लुतेरु – पृष्ठ : १६३-१६४
२. वही पृष्ठ : २७२

लेखिका ने इन उपन्यास के माध्यम से भारत की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के दोषों को प्रकट किया है। इन परिस्थितियों के कारण निर्धन लोग और भी निर्धन बनते जा रहे हैं और धनिक और भी धनी। समाज की इन व्यवस्था में परिवर्तन लाना ही नहीं बल्कि समाज के लोगों के मन में गड़े हुए अंधविश्वासों तथा समाज की कुरीतियों का अंत होना भी वे आवश्यक मानती हैं।[1]

सिंहाचलम और राजम्मा जैसे अशिक्षित पात्रों की यातनाओं का चित्रण कर लेखिका ने गाँव में रहनेवाले अशिक्षित किसान एवं श्रमिकों का चित्रण किया है और परोक्ष रूप से शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया है। ऐसे अशिक्षित जन कर्मसिद्धांत में विश्वास रखने के कारण स्वयं अपने अनपढ़ होने के लिए समाज की व्यवस्था को दोषी न ठहराकर भाग्य का ही कोसने लगते हैं।[2]

राजम्मा पुत्र की विकट बीमारी के कारण, सरकारी अस्पतालों में दवाई न मिलने के कारण और काले बाजार में दवाइयों के दाम तिगुने हो जाने के कारण[3] शरीर को बेचने के लिए विवश हो जाती है।

इस प्रकार इस उपन्यास में समाज में व्याप्त अव्यवस्था, निर्धन व्यक्तियों को विवश करने वाली परिस्थितियों का सुंदर एवं मार्मिक चित्रण करना ही लेखिका का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

मल्लादि वसुंधरा :

इनका 'तंजाऊरु पतनमु' ऐतिहासिक उपन्यास है। इनकी कथा तंजाऊरु के राजाओं से संबंधित है। राजवंश के मूलपुरुष हैं चिनचेनप्पा नायकुडु (सन् १५३५–१५६१) इनके पोते रघुनाथरायुलु (सन् १६१४–१६३३) जिसका है विजयराघवरायुलु (सन् १६३३–१६७६), यही इस उपन्यास का नायक हैं।

इस उपन्यास की कथा संक्षेप में इस प्रकार है – विजयराघवरायुलु, तंजाऊरु साम्राज्य के राजा के राज्य-काल में पेड्डिदासु, नामक एक अनन्य कृष्णभक्त रहता है। विजयराघवरायुलु का राजकवि काळकवि है। राजा के

१., २. पुण्यभूमि कल्लूतेरु – पृष्ठ : २७५, ३२३, ११७ – ११८

३. पुण्यभूमि कल्लु तेरु – पृष्ठ : ३३०–३३१

द्वारा सम्मानित किये जाने के लिए कालकवि के द्वारा समाचार भेजे जाने पर पेद्दिदासु उसे तिरस्कृत कर देता है। विजयराघवरायुलु की आठ पत्नियाँ हैं, जिनमें राजगोपांबिका, जो महाराज्ञी है, वीरांबिका, ज्ञानांबिका, प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त रंगाजम्मा, असमान सौंदर्य के साथ साथ, कवि-प्रतिभा संपन्न हैं, जिनके प्रति राजा विशेष रूप से आकृष्ट हैं। रंगाजम्मा राजा को अपनी कृति 'उषा परिणयमु' समर्पित करने पर राजा उसे 'शृंगार रस तरंगित कवित्व महनीय मति स्फूर्ति' उपाधि से विभूषित करते हैं। रंगाजम्मा के सम्मान के संबंध में महाराज्ञी राजगोपालांबिका परिचारिका कपर्धिनी के द्वारा सुनती है। महाराज्ञी का शुभ चिंतक एल्लु सोमयाजुलु महाराज्ञी के द्वारा राजा के दुर्व्यवहार की बात सुनकर चिंतित होता है और प्रतिक्रिया लेना चाहता है। श्रीरंगराय राजा के सेनापति तथा मेधावी रामराजु, राजनीतिज्ञ वेंकन्ना को, चंद्ररेखा का प्रयोग कर विजयराघव राजा तथा मधुरा चेंजि राजाओं के बीच बैर उत्पन्न करने का भार सौंपता है। वेंकन्ना, विजयराघवराजा की साहित्यिक गोष्ठी में भाग लेकर, अवसर पाकर सुप्रसिद्ध एवं सुंदर नर्तकी चंद्ररेखा के संबंध में प्रस्तावित करता है। वेंकन्ना की बातों में आकर विजयराघवरायुलु मधुर-चेंजि राजाओं को धोखा देकर उन से बैर मोल लेता है। बदले में श्री रंगरायुलु के द्वारा नर्तकी चंद्ररेखा को भेंट के रूप में पाता है। चंद्ररेखा के नृत्य से प्रभावित राजा के मन में प्रेम उत्पन्न होता है। रंगाजम्मा के रूप सौंदर्य तथा कंठमाधुर्य एवं कविप्रतिभा को जानकर चंद्ररेखा विस्मित हो जाती है।

वेंकन्ना जिस समय पेद्दिदासु के पास जाता है तभी युवराज मन्नारदास भी वहाँ संयोगवश आ जाता है। वेंकन्ना, युवराज को उसके पिता विजयराघवरायुलु के विरुद्ध भडकाता है। धीरांबिका के चंगमलदास को वेंकन्ना सम्राट बनाने की लालसा दिखाता है। महाराज्ञी की मानसिन वेदना को जानकर एल्लु सोमयाजुलु चंद्ररेखा के द्वारा राजा के दर्शन कर, महारानी की दुखभरी दशा का विशद वर्णन करता है। वह रंगाजम्मा की ओर से राजा का मन, महाराज्ञी में संलग्न कराना चाहता है। चंद्ररेखा भी, महाराज्ञी की दशा पर दयार्द्र होकर, रंगाजम्मा को समझाने का असफल प्रयत्न करती है।

तंजाऊरू के मान्य शृंगारिक कवि क्षेत्रय्या के आगमन के संदर्भ में राजा, एक सभा का आयोजन करता है जिस में पेद्दिदासु भी भाग लेता है किंतु भजन गीत गाने से इंकार कर देता है। वेंकन्ना, विजयराघव को साक्षात्

श्रीकृष्ण का अवतार साबित करता है। राजा जहाँ एक ओर युवराज मन्ना-दास को कैद करवाता है वहाँ दूसरी ओर धीरमांबा के पुत्र चंगमलदास को गले से लगाता है।

वेंकन्ना कृतघ्न होकर मथुरा के राजाओं से विजयराघवरायुलु पर युद्ध करने को प्रोत्साहन देता है। लेकिन राजा विजयराघव, वेंकन्ना के इस षडयंत्र को नहीं समझ पाता। युवराज मन्नार के कैद होने का समाचार सुनकर महा-राज्ञी एल्लु सोमयाजुलु से विचार विमर्श करती है। सोमयाजुलु, रंगाजम्मा का जन्म-वृत्तांत जानने के लिए पेनुगोंडा नामक गाँव जाता है। वहाँ पर रंगाजम्मा के जन्म वृत्तांत को पाकर लौट कर महाराज्ञी को सुनाता है कि बीस वर्ष से जो रंगाजम्मा, विजयराघव के श्रृंगार-साम्राज्य की एकमात्र रानी बनी है, वह उस राजा की सहोदरी ही है। इसे सुनते ही महाराज्ञी राज-गोपालांबिका अपने सुखमय जीवन की कल्पना करने लगती है। विजयराघव-रायुलु एक दिन रंगाजम्मा का 'कनकाभिषेक' करवाता है उसी दिन महाराज्ञी के द्वारा सम्मुख लायी गयी रंगाजम्मा की माता एवं उसके भाई के द्वारा विजयराघवरायुलु को पता चलता है कि रंगाजम्मा उसकी सहोदरी ही है। राजा इस समाचार को बहिर्गत करने में सहायक पेद्दिदासु तथा एल्लु सोमया-जुलु पर क्रुद्ध होता और उनका अपमान करता है। युवराज मन्नारदास को कैदमुक्त न कर उसे चोक्कनाथ के सेनापति वेंकटकृष्णप्पा नायकुडु के खड्ग का शिकार बनाता है। विजयराघव, रंगजम्मा के जन्म वृत्तांत सुनते ही उस से मिलना बंद कर देता है। और सहोदरी संगम जैसे महापाप का प्रायश्चित आत्महत्या ही मानकर मानसिक वेदना का शिकार बनता है। उधर रंगाजम्मा भी राजा के विरह में तड़पती हुई मर जाती है। उपन्यास के अंत में पेद्दिदासु के स्वप्न के माध्यम से लेखिका ने कुछ दिन के पश्चात् विजयराघवरायुलु की मृत्यु का संकेत कराया है। मथुरा के राजा चोक्कनाथ के द्वारा तंजाऊरू के राजवंश का पतन हो जाता है।

इस उपन्यास में ऐतिहासिकता के साथ साथ लेखिक की मौलिक परि-कल्पना के लिए भी यथेष्ट मात्रा में स्थान मिला।

उपन्यास के पात्रों में विजयराघवरायुलु, वेंकन्ना, पेद्दिदासु, रंगाजम्मा राजगोपालांबिका को प्रमुख पात्र माना जा सकता है तो एल्लु सोमयाजुलु, काळकवि, मन्नारूदासु, चेंगरलदासु, क्षेत्रय्या, चंद्ररेखा, कपर्धनि आदि को गौण पात्र हैं।

उपन्यास का केंद्र है विजयराघवरायलु । यह सुंदर शृंगाररसप्रिय, कामलोलुप एवं कला के आराधक हैं साथ साथ स्वयं कवि भी हैं। कुछ सद्गुणों को रखते हुए भी अधिक शृंगारप्रिय होने के कारण तंजाऊरु साम्राज्य के पतन का कारक भी बनता है। सौंदर्य पक्षपाती होने के कारण ही वह अपनी पत्नी की उपेक्षाकर रंगाजम्मा की सौंदर्य-उपासना में बीस वर्ष बिता देता है । चंद्ररेखा को पाने विश्वासभाजन चेंजि राजाओं को भी धोखा देता है । वह स्वयं अपने को श्रीकृष्ण भगवान का अवतार मान कर आठ स्त्रियों से विवाह करने के साथ साथ अनेक उप-पत्नियों को भी बनाये रखता है । इतनी स्त्रियों में महाराज्ञी राजगोपालांबिका को बीस वर्षों तक विरह की आग में तपाकर अंत में स्वयं ही उसकी क्रोधाग्नि का शिकार हो जाता है ।

विजयराघव प्रगाढ अनुराग–द्वेषों से परिचालित होता है । रंगाजम्मा के प्रति बहुत ही अनुरक्त होने के कारण अपनी सभा में रंगाजम्मा से भी महान् कवयित्री कृष्णाजम्मा के होने पर भी विजयराघव रंगाजम्मा का ही 'कनका-भिषेक' करवाता है, क्षेत्रय्या नामक शृंगारी कवि से भी महान् भक्त पेद्दिदासु का अपमान करता है।

कलाकारों का सम्मान करना तथा हर रोज अन्नदान करवाना विजय-राघव के सद्गुणों में गिने जा सकते हैं। सहृदयी एवं कलाराधक होने पर भी कामलोलुपता के कारण राज्य को भी पतनग्रस्त करवा देता है ।

उपन्यास का खल पात्र है वेंकन्ना । जन्म से ब्राह्मण है । असंभव एवं दुष्कर कार्यों को भी संभव एवं सरलता से संपन्न करनेवाला राजनीतिज्ञ एवं कुशल व्यक्ति भी । वह राजकाज को अच्छी तरह जाननेवाला, अपनी प्रशंसा को सुनकर फूले जानेवाला है । इसकी कार्यक्षमता एवं राजनीतिज्ञता को जान-कर ही श्रीरंगरायलु इस पर विजय राघवुलु तथा चेंजिराजाओं के बीच फूट डालने का भार सौंपता है, जिसका वह सफलता पूर्वक निर्वाह भी करता है। इसके स्वभाव के संबंध में पेद्दिदासु कथन द्रष्टव्य है – "वह बहुत ही कुत्सित, झगडे और फूट डालनेवाला है । उसकी सोच हमेशा टेढ़ी ही रहती है । यदि वह चाहता है तो किसी के भी परिवार को क्षण में नष्ट कर सकता है। उसकी प्रकृति ही ऐसी है ।"[1]

---

१. तंजाऊरु पतनमु – पृष्ठ : ७५–७६

वेंकन्ना पेद्दिदासु की तुलना में पूर्णतः भिन्न व्यक्तित्ववाला है । पेद्दिदासु जितना सात्विक है, वेंकन्ना उतना तामसिक है । पेद्दिदासु जितना स्वामि-भक्त है, वेंकन्ना उतना ही स्वामि-द्रोही ।

पेद्दिदासु स्वदेश तथा मातृभाषा के प्रति अभिमान रखनेवाला एक महान भक्त है । लेखिका के शब्दों में "पुष्पों के समान महकनेवाले साँप भी उसके शरीर पर लोटते हैं तो भी उसका निश्चल मन तप से विचलित नहीं होता ।" वह सुखों की अपेक्षा मोक्ष के लिए राजगोपालस्वामी का भक्त बन जीवन चलाता । अपने राजा, राज्य तथा मातृभाषा के प्रति विशेष गौरव रखनेवाला उदात्त पात्र है पेद्दिदासु ।

उपन्यास के गौण पुरुष पात्रों में प्रमुख है, एल्लु सोमयाजुलु । यह गोपालांबिका की माता के विवाह में दास के रूप तंजाऊरु राज्य आया हैं । राजगोपालांबिका को बचपन से इसी ने पालपोसकर बडा किया है । अतः राजगोपालांबिका की दुखभरी गाथा को सुनकर रंगाजम्मा के प्रति राजा के अनुराग को विफल करने का प्रयत्न करता हैं । अंत में रंगाजम्मा का जन्म वृत्तांत ग्रहण करने में तथा उसे राजा के कानों तक पहुंचाने में सफल होता है । इसके लिए वह राजा के क्रोधाग्नि का भी शिकार बन जाता है ।

उपन्यास के स्त्री पात्रों में रंगाजम्मा तथा राजगोपालांबिका प्रमुख हैं । रंगाजम्मा कवियत्री है और अपने रूपलावण्य के कारण राजा को अपने वश में कर लेती हैं । अंत तक स्वयं इस बात से अनभिज्ञ रहती है कि रिश्ते से वह राजा की सहोदरी लगती है ।

राजगोपालांबिका महाराज्ञी होती हुई भी, रंगाजम्मा के रूप-लावण्य पर मुग्ध विजयराघव के विरह में बीस वर्षों तक तडपती रहती हैं । और अंत में रंगाजम्मा का जन्म-वृत्तांत सुनकर साधारण स्त्रियों की तरह अपने उज्वल एवं आनंदमय भविष्य की कल्पना करती है । लेकिन रंगाजम्मा के जन्मवृत्तांत को सुनने पर राजा का उसके प्रति उल्टा प्रभाव पडता है । जिसके फलस्वरूप अपने पुत्र को खो बैठने के साथ साथ पति तथा राज्य को भी खो बैठती है । इस प्रकार एक अभागी स्त्री के रूप में इसका चित्रण हुआ है जिसमें नारी सुलभ सभी दुर्बलताओं का चित्रण पाया जाता है ।

धीरांबिका विजयराघव की आठ पत्नियों में एक है जो अपने को राजा की पत्नी मानने मात्र से ही संतुष्ट रहती है ।[1] चंद्ररेखा एक नर्तकी है

१. तंजाऊरु पतनमु – पृष्ठ : ७७

जिसको पाने के लिए विजयराघव अपने मित्र चेंजि राजाओं को भी धोखा देने से नहीं डिगता। चंद्ररेखा के नाट्य-प्रतिभा की राजा के द्वारा प्रशंसा तो होती है किंतु वह राजा को रंगाजम्मा के समान अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ पाती है। राजगोपालांबिका की दीन गाथा को सुनकर वह राजा के मन को रंगाजम्मा से हटाकर महाराज्ञी के प्रति आकृष्ट करने का असफल प्रयत्न भी करती हैं।

विभिन्न मनोप्रवृत्तियों के चित्रण के साथ लेखिका ने १७ वीं शती से संबंधित सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण का चित्र भी प्रस्तुत किया है। इस में कला के प्रति राजाओं की अभिरुचि को प्रकट कर, कलाकारों को राजदरबारों में स्थान देने की बात भी सूचित की गयी है। बीसवीं शती के उत्तरार्ध में (सन् १९५२) इस विषयवस्तु को सुनकर लेखिका ने पेद्धिदासु पात्र के माध्यम से स्वदेश-प्रेम तथा स्वभाषा के प्रति गौरव को सूचित कर राष्ट्रीय भावना को अंकित करने का प्रयत्न किया है। राजा विजयराघवुलु पात्र के माध्यम से तत्कालीन समाज के स्तुत्य कामलोलुप पुरुषों का उसका चित्रण प्रस्तुत किया है। लेखिका ने इस उपन्यास के द्वारा यही उद्देश्य प्रकट करना चाहा है कि किसी भी साम्राज्य को सुस्थिर एवं सुव्यवस्थित रखने के लिए उसके राजा में नैतिकता का गुण होना नितांत आवश्यक है। वर्णा राजाओं की दुर्बलता फलस्वरुप ही राज्य ही नष्ट हो जाते हैं यही बात राजा विजयराघवुलु के संबंध में भी साबित होता है।

लेखिका का ही 'रामप्पा गुडि' (रामप्पा मंदिर) और एक ऐतिहासिक उपन्यास हैं। काकतीय राजा गणपति के सेनापति काटया और भांडया महा-शिल्पी रामप्पा के द्वारा एक शिवालय का निर्माण करवाते हैं। इस उपन्यास की मूल घटना है जो एक ऐतिहासिक तथ्य भी है। उपन्यास की संपूर्ण कथा रामप्पा के तथा उसके विचारों के केन्द्र बनाकर चलती है। रामप्पा एक ब्राह्मण शिल्पी रुद्रप्पा का पुत्र हैं। रुद्रप्पा मरते समय पुत्र को अपने मित्र अनंत शर्मा के हाथों सौंपता है। रुद्रप्पा एक शैव मंदिर बनाने की अपनी इच्छा को रामप्पा के आगे प्रकट करते हुए अंतिम सांस लेता है। रामप्पा का अनन्य मित्र है मृत्युंजयुडु जो विष्णु भक्त है। वह रामप्पा से अपने जीवन काल में एक विष्णु मंदिर बनाने का वादा लेता है। पिता तथा मित्र की इच्छाओं को सुनकर, रामप्पा संघर्ष में पड जाता है कि वह शिव मंदिर का निर्माण करे या विष्णु मंदिर का। इसी बीच संयोगवश काकतीय राज्य के सेनापति काटया

तथा भाडया आकर रामप्पा से शैव मंदिर बनाने की प्रार्थना करते हैं । पिता की इच्छापूर्ति के लिए रामप्पा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है । लेकिन इस बात को जानकर मृत्युंजयुडु रामप्पा के प्रति क्रुद्ध होकर स्वयं आत्मघात कर लेता है । मित्र की मृत्यु से रामप्पा विचलित हो जाता है । लेकिन अनंत-शर्मा के द्वारा समझाये जाने पर वह सुधर जाता है । अनंताचार्य अद्वैतवाद का बोध कराते हुए रामप्पा से कहते हैं कि ब्रह्म स्वरूप एक ही है, वही शिव है और विष्णु भी । रामप्पा को यह सलाह दी जाती है कि वह एक ऐसे मंदिर का निर्माण करे कि जिस में दोनों धर्मों का समन्वय हो सके । रामप्पा इस प्रकार के मंदिर का निर्माण करने की ओर प्रवृत्त होता है । मंदिर निर्माण के आरंभ में ही अनंताचार्य रामप्पा से कहते हैं कि मंदिर बनाने के लिए जितनी एकाग्रता की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता सौन्दर्य-बोध की तथा अपनी शिल्प-कला में उसे प्रदर्शित करने की थी । इसके लिए सर्वप्रथम नारी सौन्दर्य को परखने की आवश्यकता है लेकिन उसमें भी भौतिक वासना नहीं होनी चाहिए । गुरु के उपदेशानुसार सौन्दर्यान्वेषण के लिए रामप्पा चला जाता है । कई मास बीत जाते हैं । एक बार जंगली-कन्या के रूप-सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसे अपने हृदय में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करता है । इधर काटया तथा भाँडया मंदिर का आरंभ करने के लिए आतुर होते हैं । अंत में रामप्पा मंदिर निर्माण के लिए लौट आता है । रामप्पा के मन में शिल्प और सुंदरी केवल दो ही विषय घूमते रहते हैं । अत्यंत सुंदर शिल्पों का निर्माण करने के लिए शिल्प संबंधी कई ग्रंथों के अध्ययन में लगा रहता है । मंदिर के शिलान्यास की घटना के पूर्व रामप्पा एक स्वप्न देखता है । उसके दो मंदिर : एक शिव का, दूसरा विष्णु के है । स्वप्न में ही पिता एवं मृत्युं-जयुडु प्रत्यक्ष होते हैं । पिता रामप्पा से कहता है—'मैंने अज्ञानवश ही शिव मंदिर बनाने का अनुरोध किया है, और मृत्युंजयुडु भी रामप्पा से कहता है कि 'मैं जल्दबाजी में आत्मघात करके पछता रहा हूँ, मुझे तुम पर क्रोध नहीं है ।' इस प्रकार कहकर दोनों अदृश्य हो जाते हैं ।

एक बार स्वप्न में रामप्पा को सौन्दर्यवती नारी दिखाई पडती हैं और वे दोनों मिलकर घूमने लगते हैं लेकिन अचानक वह अदृश्य हो जाती है । इस स्वप्न से रामप्पा को भविष्य के प्रति कुछ आशंका जागृत होती है । लेकिन फिर अनंताचार्य के उपदेशों से वह अपने कार्य में संलग्न हो जाता है ।

मंदिर निर्माण प्रारंभ होते ही रामप्पा के साथ काम करने के लिए कई शिल्पी आते हैं । उनमें से भैरवभट्ट नामक एक वृद्ध तथा उसका पोता

चंडीपति, रामप्पा के प्रीतिपात्र बनते हैं । भैरवभट्ट कुशल शिल्पी हैं । चंडीपति भी अल्पवधि में ही कुशल शिल्पी बनता हैं । रामप्पा को उसके प्रति भ्रातृ प्रेम जागृत होता हैं । चंडीपति, मंदिर के एक कोने में रामप्पा की मूर्ति बनाता है । रामप्पा सर्वप्रथम नंदी बनाकर अनंतर रती देवी की मूर्ति बनाने में लगा रहता है । किंतु उस शिला में शाश्वत सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करने में असमर्थ हो जाता है वसंत पूर्णिमा के दिन उस देश की राज-कन्या रुद्रमदेवी सखियों के साथ वसंतोत्सव मनाने के लिए वन जाती हैं । वहां पर शिल्प-निर्माण में तन्मय रामप्पा को तथा उसके द्वारा बनाये गये रती देवी की मूर्ति को देखकर मुग्ध हो जाती है । रामप्पा उसे अपनी कल्पना के अनुरुप बनाने में असमर्थ पाकर चिढते हुए पीछे मुड़ता है । वहाँ रुद्रम्मा को देखकर, उसे अपनी कल्पना की प्रतिमूर्ति का साकार रूप जानकर उसी के अनुरूप मूर्ति का निर्माण करता हैं । लेकिन युवराज्ञी रुद्रम्मा, रामप्पा के विचित्र व्यवहार के प्रति क्रुद्ध होकर चली जाती है ।

वहाँ के शिल्पयों में भद्रप्पा नामक वयोवृद्ध रहता हैं । जो अपनी सेवा के लिये पोती कात्यायिनी को बुला लेता है । गरीबी के कारण कात्यायिनी का विवाह नहीं हो पाता । धीरे धीरे कात्यायिनी, चंडीपति के प्रति भ्रातृ-प्रेम जागृत कर लेती है । उसी के द्वारा रामप्पा के गुणों की प्रशंसा सुनकर उसके प्रति मोहित हो जाती है । लेकिन रामप्पा अपनी स्वप्नसुंदरी को दृष्टि में रखकर ही सभी मूर्तियों का निर्माण करता है । मंदिर का निर्माण संपूर्ण हो जाता है लेकिन शिव-मूर्ति की प्रतिष्ठा में देरी होती है । मूर्ति-प्रतिष्ठा से पूर्व गणपति राजा, रुद्रम्मा को महाराज्ञी बनाता है । जब रुद्रम्मा मंदिर की मूर्तियों तथा शिल्प-नैपुण्य को देखने लगती है तो रामप्पा अपनी कल्पना सुंदरी को पाकर उस से बात करने का असफल चेष्टा करता है । फिर भी उसके प्रति अपनी चाह को कम नहीं कर पाता है । इसी समय उसके महारानी बनने का समाचार सुनकर आनंदित हो जाता है । दिन रात मंदिर के शिल्पों में रुद्रमा के रुप सौंदर्य की खोज कर पागल सा घूमने लगता है । लेकिन एक दिन उसी के सामने एक सुंदरी की मूर्ति गिरकर टूट जाती है और उसी के नीचे वह भी दब जाता । सेवा सुश्रूषा के उपरांत स्वस्थ्य तो हो जाता है । तभी उसे ज्ञात होता जाता है कि पवित्र मंदिर में वासना से प्रेरित तुच्छ काम विचारों से मूर्तियों को बनाने के कारण ही उसका काम अधूरा रह गया है । और सच्चे ज्ञान की खोज में वह एक

रात घर छोड़कर चल पड़ता है। उसी रात्रि में भयंकर वर्षा के कारण रामप्पा का मंदिर भी सदा के लिए कालगर्भ में छिप जाता है।

यहाँ चंडीपति का दादा मरने पर वह अकेला रह जाता है। रामप्पा के चले जाने से पहले चंडीपति का भार कात्यायिनी और भद्रप्पा पर छोड़ देता है।

इस उपन्यास का केंद्र है रामप्पा। लेखिका ने चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कथानक एवं उद्देश्य के प्रति ही विशेष ध्यान दिया है। रामप्पा एक महान शिल्पी है। उस समय के राजाओं द्वारा कलाकार तथा शिल्पियों का अत्यंत आदर-सत्कार होता था। इसीलिए काटया तथा भांडया, रुद्रालय के निर्माण हेतु रामप्पा जैसे महान शिल्पी को आमंत्रित करते हैं। रामप्पा शैव तथा वैष्णव-मतों का समन्वय कर मंदिर निर्माण करना चाहता है। लेकिन अपनी कला में ऐहिक सौंदर्य के समावेश करने के कारण ही उसकी कला नष्ट हो गयी है।

उपन्यास में अनंताचार्य के द्वारा अद्वैतमत का समर्थन हुआ है।[1] रामप्पा द्वारा मंदिर में शैव तथा विष्णु मूर्तियों का प्रतिष्ठापन कर लेखिका ने अद्वैतमत का समर्थन किया। यत्र तत्र भाग्यवाद पर लेखिका ने अपनी आस्था प्रकट की है।[2]

लेखिका का ही एक अन्य ऐतिहासिक उपन्यास है 'सप्तपर्णि' काक-तीय वंश के अंतिम राजा प्रतापरुद्र की जीवन-कहानी इसका इतिवृत्त है।

ओरुगुल के काकतीय वंश का मूलपुरुष प्रोलुड्डु हैं। उनका पुत्र बेतराजु वीर तथा योद्धा राजा है। कामसानी बेतराजू की वीरपत्नी है। उनका पुत्र प्रोलुड्डु, दूसरे प्रोलराजा के नाम से प्रसिद्ध होता है। प्रोलराजा का ज्येष्ठ पुत्र रुद्रदेवुडु, रुद्र के समान पराक्रमशाली है। उनके पश्चात गणपतिराजु राजगद्दी पर बैठता है। गणपति राजा के अनंतर राणी रुद्रमदेवी महाराज्ञी बनती हैं। अंत में प्रतापरुद्र राजा का भार वहन करता है। गणपति राजा के समय एक महाशिल्पी सात पत्तों का सुवर्ण कदलीवृक्ष बनाता है जो सप्तपर्णि नाम से प्रसिद्ध होता है। प्रतापरुद्र चाहता है कि वह सप्तपर्णि अष्टपर्णि बने। इसी कारण, ऐसे शिल्पी केलिए राज्य में घोषणा करवाता है कि जो कोई उसे

१, २. रामप्पा गुडि – पृष्ठ: ५३, ६४

अष्टपर्णि बना सकेगा तो उसे आधा राज्य दिया जाएगा। लंबी अवधि के पश्चात् जक्कन्ना नामक युवा महाशिल्पी इस कार्य केलिए ओरुगल्लु राज्य आता है। उसी दिन मांचालदेवी नामक एक वेश्या द्वारा निर्मित एक चित्रशाला का उद्‌घाटन समारोह संपन्न होता है। मांचालदेवी, राजा प्रतापरुद्र की प्रिय संगिनी है। राजा के आने में देरी होने पर, मांचालदेवी स्वयं प्रारंभोत्सव करके राजा की प्रतीक्षा में रहती। उसी समय जक्कन्ना मांचालदेवी को देखता, जो स्थिर भंगिमा में एक मूर्तिवत् लगने लगती है। मांचालदेवी भी जक्कन्ना के सौंदर्य पर मंत्रमुग्ध हो जाती है। जब दोनों आत्मविस्मृत होकर खडे रहते हैं ठीक उसी क्षण राजा प्रवेश करते हैं और क्रुद्ध होकर लौट जाते हैं। फिर जक्कन्ना को एक महाशिल्पी के रूप में जानकर भी उसे दर्शन नहीं देते। मांचालदेवी के प्रति भी राजा कें मन में घृणा उत्पन्न होती है। फलस्वरूप मांचालदेवी अपमान के कारण मानसिक पीडा का शिकार बनती है।

उसी गाँव में स्वामी नामक एक युवा शिल्पी बहिन चंडी के साथ रहता है। जक्कन्ना उस शिल्पी से परिचय बढाकर उसी कें घर में रहने लगता है। एक बार नागयज्ञ मंत्री से परिचय प्राप्त कर जक्कन्ना राजा प्रतापरुद्र से मिलने की इच्छा प्रकट करता है। लेकिन अधिकार के मद में चूर रहने के कारण वह जक्कन्ना की सहायता नहीं करता। इसी बीच नागय्या रेड्डी का परिचय प्राप्त कर उसके द्वारा राजदर्शन प्राप्त करना चाहता हैं। परंतु राज में रेड्डी जाति का निरादर होने के कारण जक्कन्ना अपने प्रयत्न में असफल रह जाता है। एक साल के पश्चात् भी उसे राजा के दर्शन नहीं होते। चंडी धीरे धीरे जक्कन्ना की ओर आकृष्ट होती है। मित्र स्वामी के अनुसार राजा के दर्शन पाने केलिए मांचालदेवी की सहायता लेना चाहता है। एक दिन इस काम से जब वह मांचालदेवी के घर जाता है उसी दिन ठीक एक साल पश्चात् राजा भी मांचालदेवी से मिलने आते हैं। पुनः वहाँ जक्कन्ना को देख क्रुद्ध होकर लौट पडते हैं। एक दिन चंडी की सहायता से जान लेता है कि शाम के समय बगीचे में राजा के दर्शन हो सकते हैं। जक्कन्ना वहाँ जाकर राजा के क्रोध का शिकार बनकर बंदी बनाया जाता है। जक्कन्ना को राजा के क्रोध का कारण पता नहीं चलता। जक्कन्ना जोतिषशास्त्रज्ञ भी है। एक बार जेल में स्वामी से भविष्यवाणी कहता है कि मुसलमानों का हमला होगा, लेकिन अंतिम विजय हिंदुओं की ही होगी।

जक्कन्ना की भविष्यवाणी के अनुसार युद्ध में विजय इन्हीं की होती है। तब राजा जक्कन्ना को छुडाने का आदेश देता है। जक्कन्ना, जेल में ही

जान लेता है कि सप्तपर्णि को अष्टपर्णि बनाना असंभव है। क्योंकि कलियुग में सप्तपर्णियों का ही प्राबल्य है। काकतीय साम्राज्य में जहाँ देखो वहाँ सप्त संख्या ही दृष्टिगोचर होती है। लेकिन फिर भी इस वंश को पुनः स्थापित करने का एक ही मार्ग है। राज्य में ब्राह्मणों का अनादर हो रहा है, जिस से सप्तर्षियों में वशिष्ट, क्रोधित हो गये। उन्हीं के क्रोध का कारण है, जिस से इस वंश का नाश हो सकता है। पुनः तप करके सप्तर्षियों को वेद मंत्रों के पाठ द्वारा स्थापित कर सप्तर्षि बना सकें तब कहीं अष्टपर्णि बना सकेंगे। लेकिन राजा के क्रोध के कारण यह कार्य संभव नहीं हो पा रहा है। स्वामी और चंडी, जक्कन्ना के कथन से विचलित होते हैं। चंडी यह समाचार भैरवी को सुनाती है और भैरवी मांचालदेवी को। मांचालदेवी, राजा को इस बात से अवगत कराती है। लेकिन मांचालदेवी के द्वारा जक्कन्ना के बारे में सुन राजा फिर से उसे कैद करवाता है।

फिर भी राजा के मन में तो उसके प्रति श्रद्धा ही रहती है। राजा के सप्तपर्णियों में धीरे धीरे पत्ते गिरते जाते हैं। जिस से भविष्य में अमंगल की सूचना राजा को प्राप्त होती है। वह चाहता है कि शीघ्र ही सप्तपर्णि को कोई अष्टपर्णि बना सकें। परंतु वह जक्कन्ना की सहायता नहीं लेना चाहता। इसी समय श्रीधर नामक व्यक्ति सप्तपर्णि को अष्टपर्णि बनाने का यत्न करता, परंतु विफल हो जाता है। इसी बीच कैदी जक्कन्ना तप के बल जान लेता है कि मुसलमानों द्वारा घोर युद्ध होगा और काकतीय वंश का नाश होगा। उस समय भी तपस्या द्वारा इस विपत्ति को टालने की संभावना को जक्कन्ना अपने मित्र स्वामी से बतलाता है। लेकिन राजा इस पर ध्यान नहीं देता।

इसी अवधि में तीन बार मुसलमानों का हमला होता। जिससे राजा की बडी सेना नष्ट हो जाता है। फिर भी राजा रेड्डी जाति को छोडकर कम्मा तथा वेलमा जाति को ही आदरपूर्वक देखने के कारण लोगों के मनमें भी वैमनस्य पैदा हो जाता है। राजा को विदित होता कि मुसलमान देवगिरि राजु से मैत्री कर, बहुत भारी सेना के साथ युद्ध करना चाहते हैं। राजा प्रतापरुद्र अपनी सीमित सेना के कारण, कैदियों को मुक्त करवाकर उन्हें सैनिक शिक्षण दिलवाता है। उन में जक्कन्ना भी रहता है। उधर मांचाल-देवी अपनी दासी भैरवी के द्वारा राज्य के भविष्य के बारे में जानकर स्वयं युद्धकला में पारांगत होती है। युद्ध छिड जाने पर काकतीय सेना हार जाती है। रेड्डी लोग राजा द्वारा उपेक्षित किये जाने पर भी राज्य की रक्षा में प्राणों

की भी परवाह न कर लड पड़ते हैं । अंत में राजा को तथा उसके अंग रक्षकों को बंदी बनाकर ले जाया जाता है । तभी राजा को पता चलता है कि उसके अंग रक्षक मांचलादेवी तथा जक्कन्ना ही है । जक्कन्ना और मांचलादेवी भी तभी एक दूसरे से परिचित होते है । राजा का भ्रम दूर होने पर पछताने लगता है । तब तक घायल जक्कन्ना और मांचालादेवी स्वर्गस्थ हो जाते हैं ।

लेखिका ने काकतीयों की वीरता का चित्रण करने के साथ-साथ कथा-नक को सजीव एवं रोचक बनाने के लिए यत्र तत्र कल्पना का सहारा लिया है । लेकिन ऐतिहासिक तत्व की उपेक्षा नहीं हुई है ।

आलोच्य उपन्यास में राजा प्रतापरुद्र की जीवन-गाथा को विशद रूप से चित्रित किया गया है ।

राजा प्रतापरुद्र एक वीर योद्धा है । उसके मन में सप्तपर्णि को देखकर यह शंका जागृत हो उठती है कि काकतीय वंश उसके साथ ही नष्ट हो जायेगा । इसी कारण, सप्तपर्णि को अष्टपर्णि बनाने के लिए शिल्पियों को बुलाता है । महाशिल्पी जक्कन्ना, इसी कार्य के लिए आता है, तब राजा, जक्कन्ना और मांचालदेवी के मध्य प्रेम की शंका कर शिल्पी का निरादर करता है । आत्मीय जनों के द्वारा कहे जाने पर भी कि जक्कन्ना महाशिल्पी है, विद्वान हैं, फिर भी राजा, अनसुनी कर देता है । सप्तपर्णि को, अष्टपर्णि बनाने की मन में इच्छा रखते हुए भी और जानते हुए भी कि जक्कन्ना अष्टपर्णी का निर्माण करने में समर्थ है, उसकी उपेक्षा करता है ।[1] इस प्रकार सप्तपर्णि के साथ के साथ ही प्रतापरुद्र का राज्य नाश हो जाता है ।

जक्कन्ना, महाशिल्पी, तथा ज्योतिषी भी हैं । वह राजा प्रतापरुद्र के पास में स्थित सुवर्ण-सप्तपर्णि पेड को अष्टपर्णि बनाने के लिए आता है । परंतु मार्ग मध्य में ही उसको अपने कार्य की पूर्ति में शंका हो उठती हैं, और जब राजा उसे बिना कारण के कैद कर रखता है तभी उसे पता चल जाता है कि यह कार्य असंभव है ।[2] भविष्य को जानते हुए भी वह कुछ भी करने से असमर्थ होता है ।

मांचालदेवी, वेश्या है, लेकिन उस समय वेश्याजाति का अपना गौरव रहा है । इसी कारण, राजा, मांचालदेवी के प्रति, महाराज्ञी से भी अधिक

१, २. सप्तपर्णि – पृष्ठ : १४०, ८७

प्रेम दिखाता है। इसी कारण जब जक्कन्ना और मांचालदेवी के बीच प्रेम-संबंध सोचकर शंकित हो उठता है उस समय, मांचालदेवी को देश-बहिष्कार की आज्ञा दे सकता है लेकिन उसके प्रति प्रेम के कारण, उस कार्य को नहीं कर पाता है। राजा द्वारा उपेक्षित किये जाने का कारण न जानकर, मांचालदेवी मानसिक-वेदना का शिकार बनती है। परंतु जब मांचालदेवी, जक्कन्ना द्वारा महायुद्ध की भविष्यवाणी सुनती है तो. गुप्त रूप से सैनिक-शिक्षा पाती है और एक सच्ची प्रमिका के नाते युद्ध में महाराजा की रक्षा अंतिम क्षण तक करके राजा के समक्ष में प्राण त्याग कर अपने प्रेम और वीरता का परिचय देती है।

विवेक उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप में काकतीय वंश की गौरव-प्रतिष्ठा तथा आंध्र प्रांत के वीर राजाओं की वीरता का परिचय कराया गया है। राजा प्रतापरुद्र के समय समाज में प्रचलित जाति-पाँति का भेदभाव के कारण ही काकतीय राज्य का पतन हुआ है।

लेखिका ने इस उपन्यास में काकतीयों के ऐतिहासिक पृष्ठों को सजीव एवं रोचक बनाकर ११ वीं शती के आंध्रों के राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। इसके साथ साथ तत्कालीन राजाओं की कलाप्रियता का भी परिचय कराया गया है। अष्टपर्णि बनानेवाले शिल्पी के लिए राजा के द्वारा अपना आधा राज्य दिये जाने की घोषणा ही इस बात का प्रमाण है। इस उपन्यास में तत्कालीन वेश्यागामी राजाओं तथा उनके प्रति राजाओं के प्रेमपूर्वक व्यवहार का भी चित्रण है।

वेश्या मांचालदेवी भी सच्चे हृदय से राजा को प्यार करने के कारण ही रणक्षेत्र में प्रवेश कर अपने प्रेम का परिचय देती है। इस प्रकार के राजाओं, शिल्पियों तथा वेश्याओं से युक्त सामाजिक वातावरण का चित्रण करना ही लेखिका का उद्धेश्य रहा है। साथ में लेखिका ने रेड्डी, कम्मा, वेलमा आदि जातियों के बीच के भेदभाव, तथा उनमें ऊँच-नीच की भावना का भी चित्रण कर तत्कालीन जातिपाँति की व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है।

---

१. आंध्र प्रदेश के इतिहास में काकतीय राजाओं का समय एक महत्वपूर्ण अवधि है। काकतीय वंश के राजाओं ने ११ वीं शती में अपनी साम्राज्य की स्थापना कर धीरे धीरे समस्त आंध्र प्रांत पर विजय पाकर आंध्रदेश के एक समग्र रुपक तथा आंध्रों को विशिष्ट्य व्यक्तित्व प्रसादित किया।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन तेलुगु उपन्यासों का वस्तुपक्ष : एक मूल्यांकन

तेलुगु में भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् महिलायें प्रचुर मात्रा में उपन्यासों का प्रणयन करने लगी हैं और ये रचनाएँ अल्पावधि में ही अत्यंत लोकप्रिय भी हुई हैं। स्वातंत्र्यपूर्व काल में भी महिलाओं ने सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यकलापों में सक्रिय भाग तो लिया परंतु साहित्यिक क्षेत्र में उतनी रुचि नहीं प्रकट की, लेकिन पचासोत्तर काल में महिलायें कथा-साहित्य सृजन में अधिक रुचि लेने लगीं। गुण एवं राशि की दृष्टि से आज का तेलुगु कथा-साहित्य लेखिकाओं की रचना-प्रतिभा को प्रतिबिंबित करने में समर्थ है।

विवेच्य कालीन लेखिकायें कथ्य के रूप में अधिकतर समकालीन सामाजिक समस्याओं को ही ग्रहण करने पर भी उपन्यास रचना में मौलिकता एवं विशिष्टता अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं। इतना ही नहीं, उनकी रचनाओं में पारिवारिक जीवन का, विशेषकर नारी-समाज की समस्याओं का वास्तविक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण संपन्न हुआ है, जिसकी उपेक्षा साहित्य में कई सालों तक होती रही। आलोच्य लेखिकाओं ने केवल पारिवारिक जीवन को ही कथ्य के रूप में न लेकर नारी-शिक्षा, स्वच्छंद-प्रेम, विजातीय-विवाह, नौकरपेशी महिलाओं की निजी समस्यायें आदि को भी वस्तु के रूप में ग्रहण किया। कुछ लेखिकाओं ने प्रेम तथा विवाह की समस्याओं को प्रगतिशील रूप से परखना आरंभ किया। इन समस्याओं के प्रति लेखिकाएँ जितनी प्रतिबद्ध हैं उतने लेखक नहीं। शायद इसका कारण यही हो सकता है कि यह समस्या स्त्रियों से ही अधिक संबंधित हैं। लेखिकाओं ने आर्थिक असमानता, जाति-पाँ

भेद-भाव तथा दहेज-समस्या का चित्रण करते समय वैयक्तिक एवं मानसिक संघर्ष की अपेक्षा बाह्य संघर्षों के प्रति ही विशेष ध्यान दिया है। तेलुगु की लेखिकाओं द्वारा रचित नब्बे प्रतिशत उपन्यास प्रेम, परिणय तथा पारिवारिक जीवन से संबंधित हैं।

सामाजिक जीवन से संबंधित और दो क्षेत्र हैं--राजनीति और शहरी तथा ग्राम्य जीवन संबंधी तेलुगु की लेखिकायें राजनीति के प्रति कुछ हद तक उदासीन ही रहीं। लेकिन इनके उपन्यासों में यत्र तत्र परोक्ष रूप से तो राजनीतिक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। शहरी तथा ग्रामीण जीवन से संबंधित जीवनियों के तुलनात्मक चित्र भी इनके उपन्यासों में पाये जाते हैं। जहाँ ग्रामीण जीवन-प्रधान उपन्यासों में अधिकारियों की निरंकुशता, भूस्वामियों के अत्याचारों का वर्णन है वहाँ शहरी जीवन से संबंधित उपन्यासों में पूंजीपतियों के शोषण, बेकारी, वेश्यागमन आदि का है।

आलोच्य उपन्यासों को वस्तुपक्ष के आधार पर दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक उच्च वर्गीय पारिवारिक जीवन से संबंधित तथा दूसरा मध्य वर्गीय पारिवारिक जीवन से। प्रथम कोटि के उपन्यासों में यथार्थपरक दृष्टिकोण काल्पनिक जगत में विचरण करने का चित्रण हैं तो दूसरी कोटि के उपन्यास मध्य वर्गीय परिवारों में आर्थिक अभाव से उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

श्रीमती पी. श्रीदेवी ने अपने एकमात्र उपन्यास 'कालातीतव्यक्तुलु' (समाज से अप्रभावित व्यक्ति) में समाज के विभिन्न व्यक्तित्ववाले पात्रों के मनोप्रवृत्तियोंवालों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें ही नारी-पुरुष तथा प्रेम-विवाह संबंधी मान्यताओं का तथा बदलते हुए सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों का चित्रण भी है। इस कृति की विशिष्टता के संबंध में सुश्री कृष्णाबाई का कथन द्रष्टव्य है–"कालातीत व्यक्तुलु' में आधुनिक समाज की युवतियाँ अपने जीवन को किस प्रकार स्वयं सुधार लेती हैं और बडों के हस्तक्षेप के बिना ही अपनी गल्तियों को किस प्रकार सुधार लेती हैं इसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया हैं। विवाह के विधि-विधान का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया हैं श्रीदेवी ने।"[1]

---

१. कृष्णाबाई–विप्लव रचयितुल संघम्–प्रत्येक संचिका–३, तेलुगु नवला, कुटुंब चित्रण, पृ. २३

श्रीमती मालती चंदूर ने ऐसे स्वार्थी माता-पिताओं का वर्णन किया है जो अपनी लड़कियों की आय पर जीने की इच्छा रखते हैं। इसके साथ साथ परंपरावादी बंधनों से मुक्त होने के लिए तथा नित्य-जीवन में उपस्थित समस्याओं को सुलझाने में प्रयत्नशील, आज की स्त्री के संघर्षमय जीवन का चित्रण भी इनके उपन्यास में पाया जाता। इसके अतिरिक्त धनिक एवं मध्य वर्ग के बीच संघर्ष को दिखलाकर लेखिका ने अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा के उपन्यासों का कथ्य में साधारण रूप से सामाजिक एवं विशेष रूप से स्त्री की आर्थिक एवं वैयक्तिक समस्याओं से संबंधित लेखिका का विचार है कि आज का नारी-समाज जागृत हो गया है। लेकिन उसी अनुरूप में पुरुष का दृष्टिकोण नहीं बदल रहा है। फलतः पारिवारिक दांपत्य आदि क्षेत्रों में सदा अशांति एवं संघर्ष दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। कई संदर्भों में पुरुष नारी के सामने दुहरा व्यक्तित्व ही प्रस्तुत करता है। कभी वह अपने को प्रेमी घोषित करता तो कभी पति। इस कारण नारी को पुरुष के सामने या तो धोखा खाना पडता है औंर या तो उसे समझने में असफल होना पडता है। शिक्षित एवं विशिष्ट व्यक्तित्व रखनेवाली स्त्री, पति के द्वारा उस व्यक्तित्व की पहचान न होने पर, पति से समझौता करने में असमर्थ होने के कारण पारिवारिक जीवन में अशांति को उत्पन्न कर लेती है। इसी बात का प्रतिपादन 'रचयित्री' उपन्यास में है। 'पेकमेडलु' उपन्यास में स्त्री अकेली रह कर जी सकने का स्तर, हमारे समाज के प्रगति न होने पर लेखिका निराशा व्यक्त करती है। बलिपीठमु' उपन्यास में एक ओर अरुणा और भास्कर द्वारा असफल विजातीय विवाह का चित्रण प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर अमला तथा जेम्स द्वारा सफल विजातीय विवाह का चित्रण। विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाजों एवं धर्मों वाले व्यक्तियों के पारिवारिक जीवन में उत्पन्न होनेवाली समस्यायों का चित्रण भी इस उपन्यास में देखा जा सकता है।[1] 'स्त्री' उपन्यास में बदलते हुए समाज में स्त्री के विभिन्न रूपों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता, अंधविश्वासों का खंडन, दहेज तथा अविवाहित कन्याओं की समस्यायें, विजातीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विवाह का समर्थन आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। 'कृष्णवेणी' उपन्यास में नारी और पुरुष के प्रेम संबंधी प्राचीन एवं अर्वाचीन मान्यताओं का तुलनात्मक चित्रण है।

---

१. मोदिलि नागभूषण शर्मा – तेलुगु नवला विकासमु – पृष्ठ : १४१

तेलुगु के मूर्धन्य संपादक एवं आलोचक श्री नार्ल वेंकटेश्वरराव जी के शब्दों में "मुप्पाल रंगनायकम्मा के उपन्यासों का मूल तत्व उनकी अपनी स्वतंत्र चेतना है। पुरुष निर्मित समाज से वह अपने को अलग कर, उसका विरोध करना चाहती है। उसकी धारणा है कि स्त्री के पास और भी दृढ-व्यक्तित्व होता तो इस संसार का स्वरूप कुछ और ही होता। वह (लेखिका) नारी पर पुरुष के आधिपत्य का ही खंडन नहीं करती बल्कि वर्ण तथा जातिगत अभिजात्य भावना तथा धार्मिक अंधविश्वासों का भी कटु विरोध करती है। संक्षेप में इनमें अधिकतम प्राचीन, निष्प्राण आदर्शों को तोडने की शक्ति है और रूढिवादिता की प्रबल विरोधिनी है।[1]

स्त्री के जीवन पर सेक्स के नाम पर लगाये गये सामाजिक प्रतिबंधनों तथा रोडों का खंडन कर तेलुगु के उपन्यास–क्षेत्र में क्रांति मचानेवाली प्रथम लेखिका है श्रीमती तेनेटि हेमलता। इन पर प्रगतिशील उपन्यासकार चलम तथा शरत्‌बाबू की विचारधारा का गहरा प्रभाव पडा है। कथ्य की इसी नवीनता एवं विशिष्टता के कारण वस्तुपक्ष के क्षेत्र में इनके उपन्यास मौलिक तथा मार्मिक प्रमाणित हुए हैं। चरित्र–चित्रण की दृष्टि से इनके उपन्यासों के पात्रों के बाहरी संघर्ष का वर्णन भी सराहनीय है। इस प्रसंग में आलोचक घ. आ. शर्मा का कथन उल्लेखनीय है – "आप अपने उपन्यासों को जीवन के यथार्थ का फोटोग्राफी ही मानती हैं। उनका विश्वास है कि तूलिका से चित्र बनाने की अपेक्षा फोटोग्राफी के द्वारा किसी भी रूप को अधिक स्पष्टता से उद्‌घाटित किया जा सकता है।"[2] प्रत्येक व्यक्ति अपनी मृत्यु के पीछे अपना कुछ इतिहास

1. Sri V.R. Narala: "The strong point of Ranganayakamma is her independent spirit. She is up in arms against the man-made world. Women she feels is no way an inferior to man. If only woman has the more decisive voice, our world, she affairms would be in a better shape not only she is against the superiority which man has assumed for himself, but also against caste distutions, class privilege and religious superstitious. She is in short, an iconoclast and tries to break as many old and mistry ideals as she can"–Indian Literature–Telugu literary Scene during, 1960–70 Page: 29–30.

२. साहिती लता – स्वेच्छा समर व्याख्याता-लता – पृ. १७०

छोड जाता है, पर एक का इतिहास उन्नत है तो दूसरे का अधम। दोनों प्रकार के व्यक्तियों का चरित्र चित्रण आपके 'चरित्र–शेषुलु' उपन्यास में संपन्न हुआ है। इसमें लेखिका ने भाग्य के क्रूर हाथों मसल दिये गये तथा यातनाओं का सामना करने केलिए बाध्य किये गये व्यक्तियों की जीवन-गाथा का चित्रण किया है।) 'रक्तपंकम्' में स्त्री को व्यभिचार करने केलिए विवश करनेवाली परिस्थितियों का तथा पुरुषों की कामलोलुपता का विशद चित्रण किया गया है। 'वनकिन्नेरा' में एक ऐसी जंगली युवती की कथा है जो बचपन से जंगलों में जानवरों की संगति में रहकर बडी होती है और संयोगवश सभ्य समाज तक पहुंचती है। इसमें लेखिका ने अवसर पाकर आज के सभ्य समाज की रीति-रिवाजों की खिल्ली उडायी हैं और सत्य तथा न्याय का जो ह्रास हो रहा है उसे उठाकर दिखाया है। इस प्रकार लेखिका ने एक विशिष्ट कथावस्तु को लेकर प्रभावात्मक एवं तर्कयुक्त शैली में यह बताया है कि आधुनिक मानव, सभ्यता के नाम पर वास्तविक जीवन-रस से किस प्रकार दूर होता जा रहा है। 'पथ विहीना' में लेखिका ने रूढिगत पतिव्रत्य का खंडन कर स्त्री की आत्मिक पवित्रता पर जोर दिया है। ('एडारिपुव्वुलु' में लेखिका ने जीवन की तुलना, रेगिस्थान से तथा रेगिस्थान के सरोवर में प्राप्त दो फूलों को स्त्री और पुरुष के रूप में किया है।) देवभूमि की कल्पना कर वहाँ जिस प्रकार स्त्री-पुरुष, स्वच्छंद रूप से अपने जीवन के कार्य-कलाप में मग्न रहते हैं उसी प्रकार भूलोक में भी उस समाज का निर्माण करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर लता ने 'मोहनवंशी' का चित्रण किया है। इस प्रकार लता ने प्रेममय जगत में भगवान को पाने का मार्ग बताया है। इस प्रकार लता के द्वारा रचित उपन्यासों में वैविध्यपूर्ण सामाजिक समस्याओं तथा नारी जीवन से उपेक्षित पक्षों का चित्रण संपन्न हुआ है। लेखिका ने सामाजिक समस्याओं में से स्वच्छंद प्रेम, वैवाहिक जीवन, स्त्री-पुरुष संबंधी प्राचीन एवं अर्वाचीन आदि कई मान्यताओं को अनेक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। लेखिका द्वारा रचित कई पात्र केवल दैहिक रूप से संघर्ष-शील एवं विशृंखल लगते हुए भी मानसिक गंभीरता तथा पवित्रता को बनाये रखते हैं।

श्रीमती कोडूरि कौशल्यादेवी ने अपने उपन्यासों में धनिक एवं मध्य-वर्गीय परिवारों के बीच के संघर्ष का चित्रण किया है। आपके उपन्यासों की समीक्षा करते हुए श्री गेल्लि राममोहनराव ने लिखा कि– "आप के प्रत्येक उपन्यास के पुरुष-पात्रों ने अपने अपने आधिपत्य को जताने के प्रयत्न में

व्यर्थ वाद-विवादों में फँस कर अनावश्यक घटना-व्यापार को बढावा दिया। उनका जीवन कई यातनाओं से भर जाता है। कथानक का स्वाभाविक ढंग से विकास कराने पर भी बीच बीच में संयोगों का सहारा लेकर किसी जादू-गर की भांति जादू की सृष्टि कर उसके प्रति अपनी रुचि को प्रकट करती है।"[1] 'चक्रभ्रमणम्' में काल के चक्र के साथ-साथ परिवर्तित होने वाले व्यक्तित्वों का चित्रण हुआ है। इनके पात्र अभिमान तथा आदर के साथ जी कर आवेश में अपमानित होकर पर्दे के पीछे छिप जाना चाहते हैं। लेकिन प्रेम, ममता आदि बंधनों के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते। इस जीवन भँवर में फँसकर व्यक्ति चक्रभ्रमण के समान भ्रमित होते रहता है। 'धर्मचक्रम' तथा 'कल्याणमंदिर' में यह सिद्ध किया गया है कि सत्य, धर्म तथा भलाई के आदर्शों से जीवन को आनंदमय बना दिया जा सकता है। 'कल्याणमंदिर' में अनाथ आश्रमों के नाम से होनेवाले अत्याचारों का तथा धनवान लोगों के द्वारा विपरीत परि-स्थितियों में अपनी मान-मर्यादाओं को खानेवाली स्त्रियों का तथा उनके प्रति धनवान लोगों की उपेक्षा भावना से जीवन कैसे नरकतुल्य बनते हैं इसका जीता-जागता चित्र अंकित है। 'धर्मचक्रम' में कैदियों के जीवन तथा उनके मानसिक चिंतन का विश्लेषण करने के साथ साथ अधिकारियों के अधर्म कर्मों का भी वर्णन है।

श्रीमती द्विवेदुला विशालाक्षी ने मध्यमवर्गीय परिवार की विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। प्रधान रूप से नौक-रियाँ करने वाली लडकियों की समस्याओं, दहेज संबंधी समस्यायें, अनमेल विवाह, ग्रामीण जीवन संबंधी समस्यायें आदि का चित्रण इनके उपन्यासों का विषय है।

यदि लेखिकाओं को दो वर्गो में रखा जाय पहली प्रकार की वे हैं जो समाज का यथार्थवादी चित्रण कर उस में परिवर्तन लाने का यत्न करती हैं तथा दूसरी प्रकार की वे हैं जो आदर्शवादी समाज की कल्पना प्रस्तुत करती हैं—तो श्रीमतीं यद्धनपूडि सुलोचनाराणी दूसरी श्रेणी में समाहित होती हैं। स्वयं लेखिका इस बात को स्वीकारती हैं—"बहुत दिनों से रुके हुए 'प्रमोशन्स' के बारे में अनिवार्यतः दिये जानेवाले घूस के बारे में अपनी लडकी की शादी

---

१. श्री गेल्लि राममोहनराव—तेलुगु विद्यार्थी—श्रीमती कौशल्यादेवी—पृ. ११ मासिक पत्रिका (तेलुगु) अंक, नवंबर १९७३

करवाने में असमर्थ माता-पिताओं के आत्मघात करने की बात से, चालीस वर्षों को पार करने के पश्चात् भी अपने जीवन की आर्थिक विषमताओं से मुक्ति पाने में असमर्थ पुरुषों के संबंध में, मानसिक विकास के पूर्व ही वैवाहिक बंधन में जकडे जाने से जीवन को नरकतुल्य अनुभव करनेवाली स्त्रियों के संबंध में और राक्षस-प्रवृत्ति अपनाने के लिए मजबूर होकर पुरुषों को सतानेवाली स्त्रियों आदि को, मैं नित्य-जीवन में देखती ही रहती हूँ। उन सबके प्रति मुझ में सहानुभूति जागृति होती है। लेकिन इन सब समस्याओं को मैं कैसे सुलझा सकती हूँ ? जीवन तथा मानव के बीच के इस भयंकर युद्ध क्षेत्र में मैं कैसे अपना सिर घुसा सकती हूँ? इस युद्ध को रोकनेवाले और शांति की स्थापना करनेवाले कोई और ही हैं। मुझे केवल अपने सामर्थ्य के अनुकूल इन के श्रम को मिटाकर कुछ समय के लिए ही सही उनकी अशांति तथा समस्याओं को भुलाकर निश्चित बनाना ही मेरा कर्तव्य है।"[1] इन उपन्यासों में अन्य लेखिकाओं की अपेक्षा विचित्र एवं विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों का चित्रण हुआ है। अपने भावों को निर्भीक होकर स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने में लेखिका समर्थ है।

श्रीमती कोमलादेवी के उपन्यासों में अधिकांशतः स्त्री संबंधी समस्यायें, शिक्षित एवं नौकरी करनेवाली युवतियों की समस्यायें, वेश्या वृत्ति संबंधी समस्याओं का चित्रण पाया जाता है। 'आराधना' में कोमलादेवी ने चिकित्सा शास्त्र संबंधी कई बातों पर प्रकाश डाला है। डाक्टरों के जीवन में उपस्थित होनेवाले रोगियों के स्वभावों के बारे में तथा चिकित्सा-पद्धति पर भी इस उपन्यास में प्रकाश डाला गया है। 'दांपत्यालु' उपन्यास में प्रेम-विवाह माता-पिता द्वारा निश्चित विवाह का प्रतिनिधित्व करानेवाले दो दंपतियों की जीवनियों की तुलना प्रस्तुत की गयी है।

'अधिकारूलु-आश्रित जनुलु' में श्रीमती मादिरेड्डी सुलोचनाराणी ने वर्तमान समाज के नेताओं की व्यक्तित्व-हीनता का तथा उनकी मुखस्तुती करते परावलंबी जीवन व्यतीत करनेवालों पर करार व्यंग्य कसा है। इसके अतिरिक्त घूसखोरी तथा कालाबाजारी आदि सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है। 'देवुडिच्चिन वरालु' में माता-पिता द्वारा उपेक्षित संतान के कोमल

---

१. तरुणा (मास पत्रिका)—मी तो मी अभिमान, रचयित्री—पृ. ४४-४५, अगस्त, ७१

हृदय पर पड़ने वाले प्रभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। 'तरम् मारिदि उपन्यास तेलंगाना प्रांत की आँचलिक विषयवस्तु को लेकर लिखा गया है। इस में आद्यंत आंचलिक तत्व का निर्वाह पाया जाता है। तेलुगु लेखिकाओं द्वारा विरचित आँचलिक उपन्यासों में यही सर्वप्रथम है।

श्रीमती आनंदारामम् ने 'सागर संगमम्' उपन्यास में यह सिद्ध किया है कि मानवता की परख मानव की जाति-पाँति की अपेक्षा उस के स्वभाव तथा गुण वैशिष्ट्य के आधार पर की जानी चाहिए। 'चीकटि कड़ुपुन काँति' में दो भिन्न परिवारों की कथा है जिस में एक धनी परिवार का मालिक व्यसनी बनकर अपना जीवन नष्ट करता है तो दूसरे निर्धन परिवार का व्यक्ति अपनी मेहनत की कमाई तथा सद्व्यवहार से सुखमय जीवन व्यतीत करता है। 'आत्मबलि' उपन्यास में आधुनिक सभ्य समाज के स्त्री पुरुषों के बीच होने-वाले आंतरिक संघर्ष का चित्रण करना ही लेखिका का प्रधान लक्ष्य रहा है।

श्रीमती डी. कामेश्वरी ने 'कोत्त नीरु' उपन्यास में छुआ-छूत की भावना का विरोध कर भेद-भाव में किस प्रकार परिवर्तन आने लगा है उसका विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। 'विधि-वंचितलु' में ऐसी दो स्त्रियों की जीवन गाथा को लेखिका ने अंकित किया है जो सामाजिक प्रतिबंधनों का विरोध करते करते परास्त हो जाती हैं और उच्च संस्कार तथा उचित शिक्षा की आवश्यकता पर भी इस उपन्यास में बल दिया गया है।

सुश्री वासिरेड्डी सीतादेवी ने भी सामाजिक इतिवृत्त को ही कथावस्तु के रूप में ग्रहण किया है। इनके बहुचर्चित उपन्यास 'समता' में ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन की ओर आकृष्ट होनेवाले व्यक्तियों की चरित्र हीनता तथा आधुनिक सभ्यता की आड में होनेवाले अत्याचारों का चित्रण किया है। 'वैतरणी' में अबला के रूप में नारी की यातनाओं का मार्मिक चित्रण है। विपरीत परिस्थितियों में नारी का जीवन वैतरणी के समान नरकतुल्य बन जाता है।

श्रीमती पवनि निर्मला प्रभावती का 'शलभालु' उपन्यास उद्देश्य प्रधान है। इस में ऐसी स्त्रियों की जीवनगाथा है जो मोह को प्रेम समझकर पतंगों की तरह जलकर नष्ट हो जाती हैं।

श्रीमती वीनादेवी का 'पुण्यभूमि कल्लुतेरू' तेलुगु उपन्यास जगत में ही स्थान रखता है। इस में वर्तमान आंध्र प्रांत के समसामयिक समस्याओं का

जीता जागता चित्रण प्रस्तुत किया गया है। साथ साथ उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की समस्याओं का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। समाज में पाये जानेवाली विषमताओं का तथा निर्धन व्यक्तियों के गलत राह पर चलाने के लिए विवश करनेवाली परिस्थितियों का चित्रण करना ही लेखिका का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

तेलुगु की एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यासकर्त्री श्रीमती मल्लादि वसुन्धरा ने आंध्र प्रांत से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर तीन प्रमुख उपन्यासों की रचना की है। 'सप्तपर्णि' में लेखिका ने आंध्र के काकतीय राजा प्रताप रुद्र के जीवन काल को उपन्यास के इतिवृत्त के रूप में स्वीकारा है तो 'राम-प्पागुडि' में काकतीय राजा गणपति के इतिहास को। 'तंजाऊर पतनमु' में तंजाऊर राज्य के पतन के लिए कारक विजयराघवरायुलु की जीवन-गाथा को अंकित किया गया है। इन तीनों उपन्यासों में राजाओं के द्वारा शिल्पियों, साहित्यकारों तथा अन्य कलाकारों को दिये गये गौरवपूर्ण स्थान का चित्रण किया गया है। लेखिका ने ऐतिहासिक तथ्यों के साथ साथ अपनी कलात्मक-प्रतिभा का मिश्रण कर सुन्दर उपन्यासों की सृष्टि की है जो बहु प्रशंसित एवं पुरस्कृत भी हुए। इन उपन्यासों के द्वारा लेखिका के विस्तृत शिल्प-विज्ञान का भी परिचय मिलता है और लेखिका प्रांतीय अभिमान का भी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तेलुगु की लेखिकाओं ने विस्तृत रूप से समाज को तथा केंद्र रूप में पारिवारिक समस्याओं को विशेषकर स्त्री संबंधी समस्याओं को लेकर अपनी लेखनी चलाई है। लेखिकाओं ने एक ओर शहरी जीवन तथा उस से संबंधित लोगों की मनोवृत्तियों का विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रण किया है तो दूसरी ओर ग्रामीण जीवन तथा तत्संबंधी समस्याओं और लोगों की चित्तवृत्तियों का वर्णन। मादिरेड्डी सुलोचनाराणी ने आंचलिक उपन्यासों का तथा मल्लादि वसुन्धरा ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचनाकर इन क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में वस्तुपक्ष : एक तुलना

हिन्दी तथा तेलुगु के आलोच्य उपन्यासों के वस्तुपक्ष का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नांकित तथ्य प्रकाश में आते हैं।

दोनों भाषाओं के आलोच्य उपन्यासों का प्रधानकथ्य सामाजिक जीवन से संबंधित है। इसके अंतर्गत वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं का विवेचन हुआ है। परंतु फिर भी जहाँ हिंदी उपन्यासों में वैविध्य तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अधिक मात्रा में पाया जाता है वहाँ तेलुगु के उपन्यासों में दांपत्य जीवन तथा संयुक्त परिवार से संबंधित समस्याओं का। दोनों क्षेत्रों में लेखिकाओं का मूल स्वर समाज सुधार तथा जीवन का यथार्थ चित्रण करना ही है। इस प्रकार दोनों साहित्यों में सामाजिकता की प्रवृत्ति ही प्रधान रुप से परिलक्षित होती है।

स्वतंत्र्योत्तर काल में हिंदी तथा तेलुगु में अधिकतर सामाजिक उपन्यास ही लिखे गये। दोनों भाषाओं की अपनी क्षेत्रीय विशिष्टतायें होने पर भी समान परिस्थितियों के प्रभाव के कारण तथा-समस्याओं की समानता के कारण इनके साहित्य का प्रधान लक्ष्य एक सा जान पड़ता है। दोनों भाषाओं के उपन्यासों का स्वर यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित है, किंतु दोनों साहित्यों में यत्र तत्र आदर्शपरक दृष्टिकोण भी देखा जा सकता है।

जहाँ तक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रश्न है हिंदी में कंचनलता सब्बरवाल, सुदेश रश्मि और उमादेवी ने तीन ऐतिहासिक उपन्यासों की

रचना की है तो तेलुगु में एकमात्र मल्लादि वसुंधरा ने तीन ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर, तेलुगु की लेखिकाओं द्वारा विरचित उपन्यास-साहित्य के इस अभाव की पूर्ति की है।

ऐतिहासिक विषय-चयन के संबंध में दोनों प्रांतों की लेखिकाओं के दृष्टिकोण में पर्याप्त भिन्नता भी परिलक्षित होती है। हिंदी की लेखिकाओं ने जहाँ अपने प्रांत तथा प्रांतेतर संबंधी ऐतिहासिक घटनाओं को कथानक के रुप में ग्रहण किया है वहाँ तेलुगु की लेखिका ने केवल आंध्र-प्रांत से ही संबंधित इतिहास को ही स्वीकारा है। स्वातंत्र्य-पूर्व की तेलुगु लेखिकाओं ने आंध्रेतर इतिहास को इतिवृत्त के रुप में ग्रहण किया है। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसके विपरीत, आंध्र के इतिहास के ही गौरव पृष्ठों को ही महत्व दिया गया है। इस से यह पता चलता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में लेखिकाओं ने अपने प्रांत के प्रति अधिक ध्यान देकर उसी को प्रतिबिंबित करने की चेष्टा की।

दोनों भाषाओं की लेखिकाओं पर गाँधीवाद, साम्यवाद जैसे विविध राजनीतिक वादों तथा मार्क्स तथा फ्रायड़ के दर्शनों का प्रभाव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है। राजनीतिक वादों एवं दर्शनों को मुख्य लक्ष्य के रुप में स्वीकार कर यद्यपि किसी ने उपन्यास नहीं लिखी फिर भी आलोच्य उपन्यासों में उपर्युक्त वादों और दर्शनों की प्रतिच्छाया न्यूनाधिक मात्रा में परिलक्षित होती है।

साधारणत : व्यावहारिक जीवन में यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ, पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक एवं कल्पना प्रवण होती हैं। परंतु आलोच्य उपन्यासों के अधिकतर पात्रों को परखने से यथार्थ के धरातल पर प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। इसी कारण अधिकांश उपन्यासों के पात्र देव या दानव न होकर पृथ्वी पर विचरण करनेवाले साधारण मानव ही हैं। उन में मानव-सुलभ दोष-दुर्बलतायें एवं विशिष्ट गुण भी पाये जाते हैं।

एक दो लेखिकाओं को अपवाद मानें तो यह कहा जा सकता हैं कि वस्तु-चयन में ही नहीं चरित्र-चित्रण में भी लेखिकाओं ने यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो हिंदी की अपेक्षा तेलुगु के उपन्यासों में यथार्थ के स्थान भावुकता एवं काल्पनिकता का पुट अधिक मात्रा में पाया जाता है।

पूर्व स्वतंत्रकालीन लेखिकाओं की भाँति, स्वातंत्र्योत्तर काल की लेखि-काओं ने भी स्त्री के अशिक्षित होने से उत्पन्न समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। इस प्रकार अशिक्षित स्त्रियों की समस्याओं का चित्रण हिंदी की अपेक्षा तेलुगु में अधिक देखा जाता है। श्रीमती डी. कामेश्वरी का 'विधिवंचितलु, सी. आनंदरामम् का 'सागर संगमम्', वीना-देवी का 'पुण्यभूमि कळ्ळुतेरु', द्विवेदुला विशालाक्षी का 'मारिन विलुवलु', वासिरेड्डी सीतादेवी का 'वैतरिणी', मुप्पाल रंगनायकम्मा का 'स्त्री', आदि उपन्यासों में ग्रामीण तथा अशिक्षित नारी समाज का विशद एवं मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत हुआ है। इसके साथ साथ निरक्षरता के कारण बनी उनकी संकुचित विचार-धारा तथा विधवाओं केलिए आजीविका कमाने में उत्पन्न समस्याओं का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। हिंदी की लेखिकाओं में उषादेवी मित्रा, रजनी पनिकर ने इस समस्या पर प्रकाश डाला है।

शिक्षित स्त्री से संबंधित समस्याओं के प्रति हिंदी तथा तेलुगु की लेखि-काओं ने समान रूप से ध्यान दिया है। हिंदी में रजनी पनिकर के 'मोम के मोती', 'एक लडकी दो रूप' में सत्यवती देवी भैय्या 'उषा' के मृदुला में, चंद्र-किरण सौनरेक्सा के 'चंदन चाँदनी' में, शिवानी के 'कृष्णकली' में शिक्षित स्त्री की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। तेलुगु में श्रीदेवी का 'कालातीत-व्यक्तुलु', यद्दनपूडि सुलोचनाराणी का 'सेक्रेटरी', मुप्पाल रंगनायकम्मा के 'रचयित्री', 'स्त्री', सी. आनंदरामम् का 'आत्मबलि' आदि उपन्यासों में शिक्षित होने के कारण पारिवारिक बोझ को उठाने तथा नौकरी के कारण दफ्तर तथा समाज में उपस्थित होनेवाली समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत है। पुरुष की कर्त-व्य-विमुखता के कारण नारी को नौकरी करनी पडती है। परिवार के भरण-पोषण का भार भी उसी के कंधों पर आ पडता है। नारी उसका साहस के साथ निर्वाह करना चाहती है, वह अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करती है। 'मोम के मोती' इसका अच्छा उदाहरण है– "लगातार नौकरी करने से नारी-जीवन की आत्म-सत्ता जाती रहती है। नारी-हृदय की कोमल-वृत्तियों का विनाश हो जाता है दिन रात अफसरों की खुशामद और आफिस में सह-कर्मियों की त्रुटियाँ पकडने की धुन में रहते रहते मन की कोमल-भाव-नायें दग्ध हो जाती हैं यहाँ तक कि आफिस के क्षुद्र घेरे से दूर पहुंचानेवाली दृष्टि भी बिलकुल क्षीण पड जाती हैं।"[1] कुछ सेठ तथा अफसर अपने पास

---

१. रजनी पनिकर– 'मोम के मोती' : पृष्ठ : ९४

की कामकाजी स्त्रियों को अपनी भोग्या समझते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता करने दौडते हैं। लेकिन काफी हाऊस, या 'रेस्टारेंट' में बैठ कर उन्हीं नारियों की आलोचना करने लगते हैं। उनके चरित्र पर लांछन लगाते हैं। इस प्रकार लेखिकायें बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था में नारी की विड़ंबना का मूल-कारण पुरुष को ही मानती हैं। कामकाजी स्त्रियों को कितने सामाजिक लाँछन सहने पडते हैं इसका भी विस्तृत उल्लेख इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। वे नौकरी करके भी अपने सतीत्व को सुरक्षित रखती हैं, किन्तु दुनिया की दृष्टि में वे भ्रष्ट हैं। नारी के लिए यह एक अभिशाप सत्य है कि वह सम्मानपूर्वक जीविकोपार्जन भी नहीं कर पाती। स्त्री का नौकरी करना मध्यवर्गीय परिवार में हेय-दृष्टि से देखा जाता है। इसी भावना को लेकर तेलुगु की लेखिकाओं ने इनके उपन्यासों में कई उपन्यास लिखे। एक ओर शिक्षित स्त्री सभ्यता के नाते पुरुष के संपर्क में आकर उसके प्रति आकृष्ट होकर सच्चे प्रेम के कारण वैवाहिक बंधन में बंध जाने का चित्रण हुआ है तो दूसरी ओर पुरुष के मो :-जाल में फँस कर पुरुष की काम-लोलुप्ता का शिकार होकर विकट परिस्थितियों का सामना करने का भी।

हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने समाज के दिन ब दिन विकट रूप धारण करनेवाली दहेज समस्या पर भी समान रूप से प्रकाश डाला है। हिंदी में रजनी पनिकर ने 'एक लडकी दो रूप' में, लीला अवस्थी ने 'बिखरे काँटे' में, चंद्रकिरण सौनरेक्सा ने 'चंदन चाँदनी' में, अन्नपूर्णा तांगडी ने 'निर्धनता का अभिशाप' में सत्यवतीदेवी भैया 'उषा' ने 'मृदुला' में, शिवानी ने 'माया-पुरी' में दहेज प्रथा के कारण निर्धन कन्याओं का अविवाहित रह जाना, कन्या काली या सांवली होने के कारण अधिक दहेज मांगा जाना, दहेज न दे सकने के कारण प्रेम-विच्छेद होना तथा अनमेल विवाहों आदि का मर्मस्पर्शी-चित्रण हुआ है। इसी प्रकार तेलुगु में श्रीदेवी ने 'कालातीत व्यक्तुलु में, मालती चंदूर ने 'रेणुकादेवी आत्मकथा' तथा 'मेघालमेलि मुसुगु' में, द्विवेदुला विशा-लाक्षी ने 'मारिन विलुवलु' में, यद्धनपूडि सुलोचनाराणी ने 'आराधना' में, मुप्पाल ने 'स्त्री', 'कळ एंदुकु ?' में हिंदी की लेखिकाओं के समान दहेज समस्या के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। दहेज के कारण ऋणग्रस्त पिता की आत्महत्या, अविवाहित कन्याओं का, अधिक दहेज मांगे जाने पर न दे सकने से पत्नी को मायके में ही छोड़ दिया जाना तथा दहेज समय पर न दिये जाने के कारण विवाह मंडप में ठुकराई गयी वधु की आत्म-हत्या आदि का चित्रण इनके उपन्यास में यथेष्ट रूप में देखा जा सकता है।

हिन्दी और तेलुगु की लेखिकाओं ने स्त्रियों के विवाह-संबंधी समस्याओं को भी विशद रूप से चित्रित किया है। प्रेम-विवाह, अनमेल-विवाह, विधवा विवाह, बाल-विवाह, विजातीय विवाह, अंतर्जातीय विवाह, बहु-विवाह, वेश्या-विवाह आदि का लेखिकाओं ने आदर्शवादी दृष्टकोण से चित्रण किया है। हिंदी की लेखिकाओं ने आदर्शवादी दृष्टिकोण से चित्रण किया है। हिंदी की लेखिकाओं में विमल वेद ने 'असली हीरा नकली हीरा', उपन्यास में धनी युवती तथा निर्धन युवक की सफल प्रेम-कथा का अंकन किया है। सुषमा भाटी ने ममता' में, अन्नपूर्णा तांगडी ने 'निर्धनता का अभिशाप' में निश्चल-प्रेम कथा का चित्रण कर आर्थिक विषमताओं के बावजूद सफल प्रेम-विवाहों का चित्रण कर आदर्शवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। इसी प्रकार तेलुगु में कोमलादेवी ने 'दांपत्यालु' में यद्धनपूडि सुलोचनाराणी ने 'आराधना', तथा 'आहुति' उपन्यासों में सफल प्रेम-कथाओं का चित्रण करने के साथ-साथ प्रेम-विवाह तथा बड़ों के द्वारा निश्चित विवाहों के दांपत्य जीवन का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

अनमेल विवाहों के संबंध में हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने समान रूप से प्रकाश डाला है। अनमेल विवाहों का मुख्यकारण लेखिकाओंने ने दहेज-समस्या को ही माना है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण न चाहते हुए भी अपनी पुत्री की विवशता के कारण किसी वृद्ध या विधुर से विवाह करवाते हुए माता-पिता का चित्रण किया गया है। तेलुगु की लेखिकाओं में मुप्पाल रंगनायकम्मा ने 'कल एंदुकु ?' उपन्यास में अनमेल विवाहों के दुष्परिणामों की चर्चा की है। मालती चंदूर ने 'मेघाल-मेलिमुसुगु' में, मादिरेड्डि सुलोचना-राणी ने 'तरम् मारिंदी', पर्वति निर्मला प्रभावती ने 'शलभालु' में, वासिरेड्डि सीतादेवी ने 'वैतरिणि', में, अनमेल विवाहों के विभिन्न पहलुओं को चित्रण किया है। दूसरी ओर यद्धनपूडि सुलोचनाराणी ने धनापेक्षी-युवती को किसी वृद्ध से विवाह करते हुए भी चित्रित किया हैं। एक हिन्दी में शिवानी ने 'भैरवी' में यह चित्रित किया है कि वेश्या के पुत्र से प्रेम करने पर किस प्रकार स्त्री, समाज से बहिष्कृत की जाती है और विवाह का प्रश्न भी किस प्रकार जटिल हो जाता है।

हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने यौवन में प्राप्त वैधव्य के कारण तथा पति से समझौता न कर घर से भाग जाने के कारण उनके सामने उत्पन्न

विषम परिस्थितियों में पड कर विलासित पुरुषों की कामलोलुपता का शिकार होने वाली स्त्रियों का चित्रण समान रूप से किया है।

विधवा-जीवन से संबंधित भारतीय आदर्श के घेरे में बंधी विधवा का चित्रण करते हुए विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन जहाँ तेलुगु की लेखिकाओं ने किया है, वहाँ हिन्दी की लेखिकायें केंवल विधवा जीवन की दयनीय दशा का चित्रण प्रस्तुत कर, उन्हें आदर्श जीवन बिताने का उपदेश ही दिया है, जैसे लीला अवस्थी के 'बिखरे काँटे' तथा सत्यवतीदेवी भैया 'उषा' का 'क्षितिज के उस पार' उपन्यासों में। तेलुगु की लेखिकाओं में श्रीमती द्विवेदुला विशालाक्षी के 'ग्रहणम् विडिचिंदी' में मुप्पाल रंगनायकम्मा के 'बलिपीठम्' में, विधवाओं के पुनर्विवाह का चित्रण हुआ है।

हिंदी की लेखिकाओं तेलुगु की लेखिकाओं से इस बात में भी भिन्न प्रतीत होती हैं कि हिंदी लेखिकाओं ने जहाँ किसी विधुर का विधवा से या कन्या से पुनर्विवाह का चित्रण नहीं किया हैं, वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं में श्रीदेवी ने 'कालातीतव्यक्तुलु' यद्धनपूडि ने 'आराधना' में इसका चित्रण कर अपनी प्रगतिशील विचार–धारा का परिचय दिया है। ऐसे ही क्रांतीकारी विचार रखनेवाली मुप्पाल रंगनायकम्मा ने 'बलिपीठम् में ब्राह्मण बाल-विधवा का विवाह एक हरिजन से करवाया है।

विजातीय विवाहों का समर्थन दोनों लेखिकाओं ने समान रूप से किया है। हिंदी में लीला अवस्थी ने 'बिखरे काँटे' में, सत्यवतीदेवी भैया 'उषा' ने 'मृदुला' में, अन्नपूर्णा ताँगडी ने 'चिता की धूल' में, तथा तेलुगु में कोमलादेवी ने 'आराधना' में, डी. कामेश्वरी ने 'कोत्तनीरु' में, सी. आनंदरामम् ने सागर संगमम्' में, मादिरेड्डी सुलोचनाराणी ने 'देवुडिच्चिन वरालु' में, मुप्पाला ने 'बलिपीठम्' तथा 'स्त्री' में विजातीय विवाहों का समर्थन करने के साथ साथ परिणामस्वरूप उद्भूत समस्याओं का सफल चित्रण भी प्रस्तुत किया हैं। मुप्पाला ने सफल अंतर्जातीय विवाह का चित्रण भी 'स्त्री' उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

मालतीचंदूर ने 'मेघाल मेलि मुसुगु' में, मादिरेड्डी ने 'तरम् मारिंदि' में, विवाह विच्छेद के पश्चात् स्त्री के पुनर्विवाह का समर्थन किया है। लेकिन हिंदी की लेखिकाओं ने इस प्रकार स्त्री का पुनर्विवाह न करवाकर उसे भारतीय आदर्श रूप में ही चित्रित किया है।

वेश्या विवाह का भी हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने समर्थन किया है। हिंदी में लीला अवस्थी ने 'बदरवा बरसन आये' उपन्यास में तथा तेलुगु में सी. आनंदरामम् ने 'सागर संगमम्' में. वेश्याओं की पुत्रियों से विवाह करने-वालों का समर्थन किया है। लेकिन ऐसे विवाहों का हिंदी की लेखिकाओं ने जहाँ असफल रूप में चित्रित किया है, वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं ने सफल रूप में।

विवाह–विच्छेद की समस्या तथा उसके विभिन्न परिणामों का हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में उल्लेख किया है। तेलुगु में मालती चंदूर ने पति के पागलपन को सहन न करने के कारण तथा डी. कामे-श्वरी ने पति के अत्याचारों को सहन न कर सकने के कारण और मुप्पाला ने जाति–पाँति के भेद–भाव के कारण तलाक माँगनेवाली पत्नियों का समर्थन किया है। जबकि हिंदी की लेखिका रजनी पनिकर ने 'जाडे की धूप' में विवाह के पाँच साल पश्चात् किसी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित होने वाली स्त्री के द्वारा तलाक लेने की समस्या का चित्रण किया है। लेकिन अंत में वह स्त्री आदर्श के मोह में पति को त्यागने में असमर्थ सिद्ध हुई।

जहाँ तेलुगु की लेखिकाओं में रंगनाथकम्मा तथा कौशल्यादेवी ने दहेज न दे सकने के कारण या पारिवारिक बोझ के कारण कन्याओं के अविवाहित रहने का चित्रण प्रस्तुत किया है वहाँ हिंदी की लेखिकाओं में अन्नपूर्णा तांगडि तथा रजनी पनिकर ने अविवाहित कन्याओं की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञा-निक चित्रण प्रस्तुत करने की ओर ही अधिक ध्यान दिया है।

स्त्री के पराधीन रहने के कई कारणों पर लेखिकाओं ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि स्त्री केलिए आर्थिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता का अभाव तथा जन्म से ही उसे जो अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ दी गयीं उनके कारण नारी, पुरुष के अत्याचारों को विवश होकर सहती दिखाई देती है। जहाँ हिंदी में रजनी पनिकर, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, शिवानी, सत्यवतीदेवी भैया 'उषा', तथा तेलुगु में मालती चंदूर, रंगनायकम्मा, सी. आनंदरामम्, द्विवेदुला ने नौकरी करनेवाली स्त्रियों का चित्रण कर आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहने का समर्थन किया है। इसके साथ दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने स्त्री की आय पर जीनेवाले पति, पिता तथा परिवारों का चित्रण कर तत्जन्य समस्याओं का भी चित्रीकरण किया है।

नारी के लिए सामाजिक स्वतंत्रता के अभाव को हिंदी की लेखिकाओं में शिवानी ने 'कृष्णकली' के द्वारा सुन्दर लावारिस कन्या के सामने उपस्थित होनेवाली समस्याओं का 'भैरवी' में किसी कारणवश दहलीज पार कर भटकने वाली स्त्री पर समाज के द्वारा लगाये जानेवाले आरोपों का चित्रण किया है। इस के विपरीत वसंतप्रभा ने 'अधूरी तस्वीर' में पति के द्वारा प्रतिबंधनों के न लगाये जाने पर घर से भाग जाने वाली स्त्री की दयनीय दशा का वर्णन किया है। तेलुगु में श्रीदेवी ने 'कालातीतव्यक्तुलु' में स्त्री के स्वच्छंद व्यवहार तथा स्वतंत्र-जीवन का समर्थन किया है। लता ने 'वनकिन्नेरा' में यह प्रतिपादित किया कि स्त्री के लिए घर में तथा समाज में भी वैचारिक तथा व्यवहारिक स्वतंत्रता दी जाय। पर पुरुष के मोह में पडकर अपनी स्वतंत्रता का दुरु-पयोग कर घर से भाग जानेवाली स्त्री को समाज में जो निरादर एवं तिर-स्कार मिलता है उसका विशद चित्रण, वासीरेड्डी सीतादेवी ने 'समता' में प्रस्तुत कर चुकी हैं। श्रीमती तेन्नेटि हेमलता ने 'रक्तपकम्' में सेक्स तथा वेश्याओं के आंतरिक जीवन का वर्णन प्रस्तुत किया हैं।

नारी की चंचलता, भावुकता, अहं आदि मनोविकारों के परिणामों के चित्रण के प्रति तेलुगु उपन्यासकर्त्रियों ने विशेष ध्यान दिया है। हिंदी में श्रीमती वसंतप्रभा ने 'साँझ के साथी' में नारी के कुटिल स्वभाव के कारण उत्पन्न पारिवारिक अशांति का चित्रण किया हैं तो तेलुगु में 'मालती चंदूर' ने रेणुका-देवी आत्मकथा', कोमलादेवी ने 'पुनस्समागमम्' में स्त्री अपनी चंचल एवं अहंकार प्रवृत्ति के कारण जीवन को नरकतुल्य बनाने का चित्रण किया है। सौतेली माँ की पक्षपात बुद्धि तथा कटु व्यवहार का चित्रण दोनों भाषाओं की लेखिकाओं ने समान रूप से प्रस्तुत किया है। हिंदी में सत्यवती देवी भैया 'उषा' के 'मृदुला', तेलुगु में श्रीदेवी के 'कालातीतव्यक्तुलु', आदि उपन्यासों में उक्त प्रवृत्तियों का वर्णन पाया जाता है। संतान काली होने पर माता-पिता के पक्षपात-बुद्धि का चित्रण हिंदी में रजनी पनिकर तथा तेलुगु में मादिरेड्डी सुलोचना राणी ने प्रस्तुत किया है। बच्चों के काले-गोरे के प्रति किस तरह कटु और प्रिय होता हैं।

ग्रामीण युवतियों में शहरी जीवन के प्रति जो मोह पाया जाता है उसका वर्णन हिन्दी की अपेक्षा तेलुगु की लेखिकाओं ने अधिक किया है।

स्त्री के प्रेम, सहन-भाव एवं आदर्श का चित्रण हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने समान रूप से किया है। उदाहरण के लिए हिंदी के 'मूकतपस्वी',

'मोहिनी', 'प्यासे बादल' तथा तेलुगु के 'मेघाल मेलि मुसुगु', 'विजेता', 'जीवन तरंगालु', उपन्यासों में पवित्र तथा निश्चल प्रेम में ही आस्था रखने की बात कही गयी है। 'जाडे की धूप' उपन्यास में विवाहित स्त्री का पर-पुरुष से प्रेम का चित्रण दिखाया गया है तो तेलुगु उपन्यास 'समता' में भी यही बात चित्रित है। हिंदी में बसंतप्रभा तथा तेलुगु में यद्दनपूडि सुलोचना राणी के उपन्यासों में नारी के त्यागमयी रूप के सुंदर चित्रण मिलते हैं।

जाति-पाँति, पर्दा-प्रथा, घूसखोरी, दहेज-समस्या, बेकारी, महँगाई आदि सामाजिक कुरीतियों तथा अत्याचारों का आलोच्य लेखिकाओं ने निर्भयता से खंडन किया है। परंतु हिंदी के उपन्यासों में जहाँ आदर्शवादी दृष्टिकोण अधिक परिलक्षित होता है, वहाँ तेलुगु के उपन्यासों में यथार्थवादी। जहाँ धार्मिक मान्यताओं की बात है वहाँ दोनों की विचार-धारा समान प्रतीत होती है।

कँचनलता तथा कुंवरानी तारादेवी के उपन्यास 'भटकती आत्मा, तथा 'जीवनदान' उपन्यासों में समाजवाद तथा मार्क्सवादी विचार-धारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस के अतिरिक्त ग्राम-सुधार एवं जन-सेवा आदि आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है। जब कि तेलुगु की लेखिकाओं में मादिरेड्डी सुलोचनाराणी ने 'अधिकारुलु - आश्रितजनुलु' उपन्यास में नेताओं की झूठी शान और उनकी कुटिल - बुद्धि का चित्रण किया है। वासिरेड्डी ने 'समता' में अवसर पाकर स्वार्थपूर्ण दृष्टि से निजी सिद्धांतों का गला घोंटकर दल बदलनेवाले नेताओं का चित्रण कर राजनीतिक - क्षेत्र के अछूते पक्ष का वर्णन किया है।

मुप्पाल रंगनायकम्मा ने 'बलिपीठमु' उपन्यास में 'करुण समाज' के माध्यम से पीडित एवं रुग्ण लोगों की सेवा सुश्रूषा करने का आदर्श प्रस्तुत किया है। अवसर पाकर यत्र तत्र दोनों भाषाओं की लेखिकाओं ने ढोंगी साधुओं का, अनाथ आश्रम तथा सेवा-सदनों के नाम पर होनेवाले अत्याचारों एवं व्यभिचार का वर्णन किया है।

दोनों भाषाओं की लेखिकाओं ने कामलोलुपता, अहंकार-प्रवृत्ति और स्वार्थबुद्धि का निसंकोच खंडन किया है। हिंदी में रजनी पनिकर, सत्यवतीदेवी भैया 'उषा', शिवानी आदि के उपन्यासों में इस का खंडन किया गया है तो

तेलुगु में मुप्पाल रंगनायकम्मा, वासिरेड्डी सीतादेवी, मालती चंदूर, कोडूरि कौशल्यादेवी, लता आदि के उपन्यासों में ।

दोनों भाषाओं की विवेच्य लेखिकाओं ने पाश्चात्य सभ्यता के अंधाधुंध अनुकरण का समान रुप से खंडन किया है। हिंदी में उषादेवी मित्रा, कंचनलता सब्बरवाल, रजनी पनिकर, चंद्रकिरण सौनरेक्सा के क्रमशः 'नष्टनीड़', 'स्वतंत्रता की ओर', 'काली लडकी' तथा 'चंदन चाँदनी' उपन्यासों में तथा तेलुगु में, डी. कामेश्वरी, 'विधि वंचितलु' उपन्यासो में उक्त समस्या का वर्णन देखा जा सकता है ।

विवेच्य उपन्यासों में लेखिकाओं ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है। लेकिन दोनों में समान प्रवृत्ति यही दिखाई देती है कि उन्होंने भारतीय सभ्यता का गुणगान करने के साथ साथ आदर्श भारतीय नारी की गुण-गरिमा का वर्णन भी किया है। हिंदी में उषादेवी मित्रा, कंचनलता सब्बरवाल, तथा रजनी पनिकर के उपन्यासों में और तेलुगु में कोडूरि कौशल्यादेवी, रंगनायकम्मा, इल्लिंदल सरस्वती देवी तथा सी. आनंदरामम् के उपन्यासों में इस प्रकार का चित्रण संपन्न हुआ है ।

हिंदी तथा तेलुगु में आँचलिक उपन्यासों की रचना की ओर लेखिकायें प्रवत्त रही है। हिंदी में कृष्णा सोबती का 'डार से बिछुडी' तथा तेलुगु में मादिरेड्डी सुलोचनाराणी का 'तरम् मारिंदि' इस दिशा में सफल तथा सुंदर आँचलिक उपन्यास माने जा सकते हैं।

इस प्रकार आलोच्य उपन्यासों के वस्तुपक्ष के उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उद्देश्य एवं समस्याओं के स्वरुप में तो पर्याप्त समानतायें हैं, परंतु विषय-चयन में तो अवश्य क्षेत्रगत विशेषतायें तथा विषयगत वैविद्य द्रष्ट्व्य है। उदाहरणार्थ हिंदी में उषादेवी मित्रा ने 'सोहिनी' उपन्यास में मानव-कल्याण के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता का समर्थन किया हैं। कँचनलता ने 'स्वतंत्रता - की ओर', उपन्यास में गाँधी तथा विनोबा भावे के सिद्धांतों का प्रचार कर उनके जन-सेवा, ग्राम-सेवा तथा शिक्षा प्रचार संबंधी आदर्शों का वर्णन किया है। शिवानी ने 'कृष्णकली' मे कोढियों से संबंधित समस्याओं का चित्रण किया है। इसी प्रकार तेलुगु में चिकित्सा-शास्त्र संबंधी विषय-ज्ञान करनेवाला उपन्यास है श्रीमती कोमलादेवी का 'आराधना' इस प्रकार उपरोक्त उपन्यासों में लक्ष्य तथा विषय-चयन को लेकर जहाँ हिंदी तथा तेलुगु उपन्यासों में समानता पायी जाती

है। वहाँ विषय के प्रस्तुतीकरण और समस्याओं के निदान में लेखिकाओं के मैदान में काफी अंतर देखा जा सकता है।

जहाँ तक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रश्न है हिंदी की लेखिकाओं ने अपने ही प्रांत तथा प्रांतेतर से संबंधित इतिहास को तथा ऐतिहासिक पात्रों को विषयवस्तु के रूप में ग्रहण किया है वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं ने केवल आंध्र से संबंधित इतिहास तथा पात्रों को ही स्वीकारा है।

आर्थिक तथा वर्गगत समस्याओं के चित्रण को लेकर दोनों लेखिकाओं ने उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गीय लोगों की, वैयक्तिक समस्याओं के साथ साथ वर्गगत संघर्ष का भी चित्रण प्रस्तुत किया है। इस वर्ग-गत विसंगतियों का चित्रण विशेषकर प्रेम तथा विवाहों के प्रश्न को लेकर प्रस्तुत किया गया है। हिंदी तथा तेलुगु में समान रूप से उच्च तथा मध्यमवर्गीय परिवार के पारस्परिक संघर्ष का चित्रण मिलता है। हिंदी में कंचनलता, रजनी पनिकर, विमलवेद, शिवरानी बिश्नोई, शिवानी, अन्नपूर्णा ताँगडी आदि ने तथा तेलुगु में मालती चंदूर, कोडूरि कौशल्यादेवी, वीनादेवी, आनंदारामम्, द्विवेदुला विशालाक्षी, यद्दनपूडि सुलोचनाराणी आदि ने इस प्रकार के उच्च वर्गीय अथवा जमींदारी परिवारों का संबंध प्रेम तथा परिणय के द्वारा मध्यवर्गीय लोगों से करवा कर, उच्च वर्ग के विलासपूर्ण जीवन तथा निम्न व मध्य वर्ग के अभावग्रस्त जीवन के संघर्ष का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है।

जहाँ तक उच्च तथा निम्नवर्ग के लोगों के बीच के संघर्ष का चित्रण है, तेलुगु की लेखिकाओं की अपेक्षा हिंदी की लेखिकाओं ने इस के प्रति अधिक ध्यान दिया है। हिंदी के 'भटकती आत्मा', 'प्यासे बादल', 'एक लडकी दो रूप', 'चंदन चाँदनी', 'निर्धनता का अभिशाप' आदि उपन्यास इस के अच्छे उदाहरण हैं। तेलुगु में केवल यद्धनपूडि सुलोचनाराणी के उपन्यासों में उक्त समस्या का चित्रण पाया जाता है। हिंदी में जहाँ रजनी पनिकर ने मध्य तथा निम्नवर्ग की समस्याओं तथा संघर्षों का चित्रण प्रस्तुत किया है। वहाँ तेलुगु में वीनादेवी ने उच्च, मध्य तथा निम्न तीनों वर्गों के जीवन की समस्याओं तथा संघर्ष का चित्रण प्रस्तुत किया है।

हिंदी की लेखिकाओं ने अधिकांशतः उच्च वर्गीय जीवन संबंधी समस्याओं का चित्रण किया है तो तेलुगु की लेखिकाओं ने केवल मध्यवर्गीय समस्याओं

का चित्रण। इस दिशा में जहाँ हिंदी के शिवानी, सत्यवती देवी भैया 'उषा' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं वहाँ तेलुगु में मुप्पाल रंगनायकम्मा, मालती चंदूर, कोडूरि कौशल्यादेवी तथा आनंदारामम के नाम हैं।

वस्तुपक्ष की दृष्टि से हिंदी तथा तेलुगु के विवेच्य उपन्यासों का अध्ययन करने पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी की लेखिकायें अपने उपन्यासों में जहाँ यथार्थपरक चित्रण करती हुई आदर्शात्मक निष्कर्षों पर पहुँची है वहाँ तेलुगी की लेखिकायें अधिकतः यथार्थवादी ही रही हैं। इसके अतिरिक्त हिंदी के उपन्यासों में लेखिकाओं ने ग्रामीण वातावरण के चित्रण में जहाँ प्रत्यक्ष रूप से सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया है वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं ने ग्रामीण जीवन के यथार्थ का चित्रण तक सीमित रहकर सुधारों की ओर संकेत किया है। विस्तृत हिंदी क्षेत्र तथा सीमित आंध्र प्रांत की भौगोलिक एवं औद्योगिक पृष्ठभूमि पर ध्यान दें तो इस वैषम्य के कारणों पर प्रकाश पड जाता है। आंध्र कृषि-प्रधान तथा औद्योगिक विकास की दृष्टि से (विशेषकर स्त्रियों का जहाँ तक संबंध है) पिछडा हुआ है। ग्रामीण जीवन से तेलुगु की लेखिकाओं का सुपरिचित और उनके शहरी जीवन तथा औद्योगिक वातावरण से दूर रहना आदि के कारण वे ग्रामीण परिस्थितियों का सरस चित्रण करने तक हीं सीमित रहीं। भारत के बडे बडे नगरों में जो औद्योगिक विकास संपन्न हुआ है उसके परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण जीवन में जो क्रांति एवं सुधार लाये गये हैं उसकी ओर हिंदी की लेखिकाओं ने जितना ध्यान दिया है उतना तेलुगु की लेखिकाओं ने नहीं।

तुलनात्मक विवेचन करने पर हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं में प्राप्त विषयगत वैविध्य प्रवृत्तिगत न होकर परिस्थितिगत प्रतीत होता है। इसे हिंदी की लेखिकाओं की एक अतिरिक्त विशिष्टता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

अंत में दोनों क्षेत्रों के पाठकों की प्रतिक्रिया एवं आलोच्य उपन्यासों की लोकप्रियता के संबंध में यह कहा जा सकता है कि दोनों साहित्य क्षेत्रों में आलोच्य लेखिकायें अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं।

षष्ठम अध्याय

लेखिकाओं द्वारा विरचित स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में शिल्प-पक्ष

स्वातंत्र्यपूर्व आलोच्य उपन्यासों के शिल्प-पक्ष की समीक्षा प्रस्तुत करते समय इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि तत्कालीन उपन्यासों के वस्तु-पक्ष की तुलना में शिल्प-पक्ष उतना प्रौढ नहीं बन पाया है। परंतु स्वातंत्र्योत्तर अवधि के विवेच्य उपन्यासों के शिल्प पक्ष का अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि इस अवधि मे शिल्प पक्ष पर्याप्त प्रौढ़ एवं विकसित हुआ है। स्वतंत्र्योत्तर अवधि के उपन्यासों में भाषागत परिवर्तन एवं प्रौढता, मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग आदि विशेष रूप से उल्लेख्य है। हिंदी के स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उपन्यासों की भाषा पर जहाँ बंगला, पंजाबी आदि के प्रभाव तथा भाषा की अशुद्धियाँ स्पष्ट परिलक्षित है वहाँ स्वातंत्र्योत्तर अवधि के उपन्यासों में भाषागत प्रौढता, सहजता एवं प्रवाहमयता के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार तेलुगु की ऐतिहासिक उपन्यासकर्त्री श्रीमती मल्लादि वसुंधरा को अपवाद स्वरूप मानें तो स्वातंत्र्योत्तर अवधि की सभी लेखिकाओं ने तेलुगु की ग्रांथिक भाषा को जो स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की साहित्यिक भाषा मानी जाती थी, तिलांजलि देकर सरल–व्यावहारिक भाषा में रचना की हैं। शैली के क्षेत्र में नये नये प्रयोगों को देखा गया है। वातावरण में सजीवता लाने के साथ साथ पारिवारिक वातावरण के निर्माण में लेखिकाओं की सिद्धहस्तता का भी परिचय मिला है। राजनीतिक वातावरण के संकेत तथा विभिन्न मतवादों का प्रभाव भी इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। संवादों में सहजता, तर्कबद्धता, कलात्मकता एवं स्वाभाविकता आदि गुण देखे जा सकते हैं। इस प्रकार शिल्पगत विभिन्न तत्वोंमें लेखिकाओं की प्रगति को सूचित करने केलिए हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के प्रतिनिधि उपन्यासों का विवेचन क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में शिल्प पक्ष

श्रीमती उषादेवी मित्रा :

श्रीमती उषादेवी मित्रा का 'सोहिनी' उपन्यास वस्तु पक्ष की अपेक्षा शिल्पपक्ष की दृष्टि से अधिक प्रौढ माना जा सकता है । इस के कथोपकथन सहज, संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं । इन में यत्र तत्र हास्य तथा व्यंग्य का भी समावेश है । असित एवं सोहिनी के किशोर वय संवाद इसके लिए सुन्दर उदाहरण हैं । संवादों के माध्यम से कथानक में गति तथा चरित्र-चित्रण में विकास ही नहीं दिखाया गया है, बल्कि देश काल वातावरण पर भी प्रकाश डाला गया है । असित की उक्तियों में उपर्युक्त दोनों प्रकार की विशेषतायें प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती हैं ।[1]

आलोच्य उपन्यास में धनिक वर्ग के दोष-दुर्बलताओं को एक ओर चित्रित किया गया तो दूसरी ओर क्रांतिकारी दल की मानसिक प्रतिक्रियायें । लेखिका ने समकालीन राजनीतिक स्थिति एवं किशोर प्रवृत्ति का परिचय उपन्यास के प्रारंभ में किशोर वय असित के द्वारा प्रस्तुत करवाया ।

लेखिका प्रकृति-सौंदर्य के वर्णन में अधिक रूचि रखती है । इस वर्णन के कारण उपन्यास अधिक सरस तथा सुन्दर बन पडा है । उदाहरणार्थ "संध्या की पीत चोली में स्वप्न की छाया पड़ चुकी थी, लता गुल्मों के झुरमुटों में मुट्ठी भर अंधेरी जमा हो रही थी ।"[2]

इस में लेखिका ने अधिकांशतः वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया ।

---

१. सोहिनी – पृष्ठ : १५१   २. सोहिनी – पृष्ठ : ९

आलोच्य उपन्यास की भाषा सरस, व्यवहारिक तथा पात्रोचित है। अनेक स्थलों पर वाक्यों का प्रारंभ क्रियाओं के साथ कर शैली को काव्यमय बनाने की सफल चेष्टा की गयी है। जैसे–"निकाला उसने सब असबाब को, डाला उन्हें बेच। फिर चुकाया उसने उन्हीं रुपयों में डाक्टरों का अवशिष्ट बिल। छुट्टी देदी सब नौकरों को। बंद कर दी अपनी दवा।"[1]

भाषा को सुंदर एवं प्रभावात्मक बनाने के लिए यत्र तत्र रुपक, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है, उदाहरणार्थ "उस के नेत्र-पल्लव तब भी भारी हो रहे थे। हाथ-पैर पत्थर जैसे बोझीले।"[2]

तात्पर्य यह है कि 'सोहिनी' भाषा एवं शैली की दृष्टि से सुंदर उपन्यास है।

'नष्ट नीड़' में उषादेवी मित्रा ने देश के विभाजन से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण किया है। शिल्प-पक्ष की दृष्टि से भी यह सफल कृति है। इस में संवाद योजना का सुंदर निर्वाह हुआ है। लेखिका ने सरल संवादों के द्वारा कथानक को सरस तथा गतिपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। जैसे–"अभी चाय देती हूँ, गरम चाय पीकर ताजे हो जाइये।" सुनंदा ने कहा।

मनीष बैठकर मुस्कराया–'तो क्या अब तक मैं बासी हूँ। दोनों हंस पडे।'[3] इसके अतिरिक्त अन्य संवाद तर्क एवं विचारपूर्ण सवाद हैं जो पात्रों की विचारधारा को तथा कथा की गत्यात्मकता को व्यक्त करने में सहायक हुए हैं। इसमें सुनंदा, दीपेन, एला आदि के संवाद उल्लेखनीय हैं जिसमें सुनंदा तर्क करती है कि नारी के सतीत्व का संबंध मन से है, शरीर से नहीं और पाकिस्तान में पुरुष के अत्याचार को शिकारी स्त्रियाँ सती ही है।[4] उक्त संवादों से पात्रों के चारित्रिक विकास पर भी प्रकाश पडता है। संवादों के माध्यम से लेखिका ने देशकाल वातावरण की ओर भी संकेत किया हैं। विशेषत. सुनंदा के वार्तालाप द्वारा उच्च वर्ग की सभ्यता पर व्यंग्य कसा गया है जैसे मद्य-सेवन उच्च सभ्यता का अनिवार्य गुण बनना,[5] सदियों तक भारत पराधीन होने के कारण भारतीयों का ज्ञान, विज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्रे में पीछे पड जाना[6] अविवाहित कन्याओं की आजीविका की समस्या[7] आदि।

---

१. सोहिनी – पृष्ठ : ४५
२. सोहिनी – पृष्ठ : १०९
३. नष्ट नीड – पृष्ठ : ४
४. नष्टनीड – पृष्ठ २५-३०
५. नष्ट नीड – पृष्ठ ७
६. नष्ट नीड – पृष्ठ : ३८
७. वही १६७

लेखिका ने तत्कालीन देशकाल वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया है। उच्च वर्ग का विलासपूर्ण जीवन तथा निम्न एवं मध्यम वर्ग की समस्याओं का चित्रण कर लेखिका ने उस समय के सामाजिक विषमताओं पर प्रकाश डाला है। सुनंदा पात्र के माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करनेवाली विश्रृंखल स्त्रियों का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

समाज में भ्रष्टाचार को व्याप्त करनेवाले पूँजीपतियों का भी वर्णन इसमें है।[1]

प्रकृति वर्णन के सुंदर उदाहरण भी पाये जाते हैं उदाहरणार्थ–'संध्या, सिंधुर भरी डिबिया-सी, सांझ की नवोढा-सी झाँक रही थी।'[2] इस प्रकार के कई सुन्दर प्रकृति-सौन्दर्य के वर्णानात्मक शब्द-चित्रण के कारण उपन्यास के वातावरण में चार-चाँद लग गये हैं। शैली भी सरस बन पडी है।

उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्राचुर्य है। ध्वन्यात्मकता, आलंकारिकता, रागात्मकता आदि भाषा, शैली की उल्लेखनीय विशेषतायें हैं।

'इस क्षण-भंगुर संसार में कब किसने पथिक की बजाई हुई बांसुरी की तान को अपने मन की सत्ता में संजोकर रख पाया है? तो मेरे बांधव चलने की बेला में यह परिहास कैसा? लौट-लौट कर रुकने का यह बहाना भी कैसा?'[3]

इस प्रकार आलोच्य कृति की भाषा तथा शैली सुंदर एवं सुष्ठ है।

कँचनलता सब्बरवाल :

'मूक तपस्वी' में संवाद रोचक, तर्कपूर्ण और व्यंग्यात्मक बन पडे हैं। संवादों के माध्यम से घटना विकास तथा चारित्रिक विकास पर प्रकाश डाला हैं जैसे महेश की उक्तियों से शालिनी की विलासप्रियता का आभास होता हैं।[4]

प्राक तथा पाश्चात्य सभ्यताओं का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हुए उपन्यास में लेखिका ने प्राक सभ्यता के प्रति ही अपनी श्रद्धा प्रकट की है। इस कारण उपन्यास में भारतीय सभ्यता का वातावरण छाया हुआ प्रतीत होता है।

---

१. वही २०८ २. वही ८८
३. नष्ट नीड – पृष्ठ : ११८ ४. मूक तपस्वी – पृष्ठ : २४८–२४९

उपन्यास में प्रमुखतः वर्णनात्मक, संवादात्मक शैलियाँ है तथा गौण रूप से प्रत्यक्ष कथन शैली का भी प्रयोग हुआ है।

आलोच्य उपन्यास की भाषा सरल एवं व्यावहारिक है। सुंदर मुहावरों का प्रयोग हुआ है जिस से भाषा रोचक बन पडी है।[1] यत्र तत्र दार्शनिक विचारधारा को भी प्रकट किया गया है जैसे "मानव अपने आसपास के वातावरण को अपने अहँ से दबाकर ढक देना चाहता है, वैसा अभिमान भी किया करता है, किंतु वह स्वयं विश्व ब्रह्मांड में कितना ओछा, कितना तुच्छ और कितना नगण्य है, यह वह स्वयं सोचकर भी नहीं सोच पाता है और जानकर भी विस्मरण कर देना चाहता है, यही तो है विधि की विडंबना।"[2]

इस प्रकार इस उपन्यास का शैलीपक्ष व्यवस्थित और स्वाभाविक बन पडा है।

'त्रिवेणी', श्रीमती कंचनलता सब्बारवाल का एक अन्य सामाजिक इतिवृत्त प्रधान उपन्यास है। जिसमें शिल्प-पक्ष का भी कलात्मक व्यक्तीकरण हुआ है। लेखिका ने पात्रों के संवादों के प्रति अधिक ध्यान दिया है। संवादों में भावावेग, वैचारिकता, गंभीरता और तर्क आदि विशेषतायें पायी जाती हैं। पात्र विशेष की प्रवृत्तियों अथवा परिस्थितियों की अनुकूलता से भी संवादों में उल्लेखनीय रोचकता का समावेश हुआ है। भावावेश के प्रसंगों में पात्रों के संवाद दीर्घ बन पडे हैं। श्रीमती बसंल द्वारा छात्राओं के समक्ष मानव की रक्त-पिपासा का वर्णन दीर्घ संवादों के द्वारा कराया गया है।[3] विजयश्री और चंद्रिका के संवाद तो तर्कशील बन पडे हैं।[4]

संवादों के माध्यम से समकालीन देश काल वातावरण पर भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला गया है, जैसे श्रीमती बंसल और क्रांतिकारी सरदार के संवादों के माध्यम से शोषक और शोषितों के बीच के संघर्ष को प्रस्तुत करते हुए भारत की समकालीन राजनैतिक स्थिति से भी अवगत कराया गया है।

आलोच्य उपन्यास में सरल साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है। उपन्यास में वर्णनात्मक, संवादात्मक, चित्रात्मक और नाटकीय शैलियों का प्रयोग

---

१. मूक तपस्वी – पृष्ठ : २६८
२. मूक तपस्वी – पृष्ठ : ६
३. त्रिवेणी – पृष्ठ : २३८–२३९
४. त्रिवेणी – पृष्ठ : १५–१७, २१४–२१७

हुआ है। मानसिक चिंतन-धारा को प्रस्तुत करते समय मनोविश्लेषणात्मक शैली का भी सहारा लिया गया है। जैसे "हृदय के जिन भावों को सरलता-पूर्वक प्रकट भी नहीं किया जा सकता, उन्हीं को शायद मनुष्य सब से अधिक प्यार करता हैं। जीवन में अनेक क्षण ऐसे होते हैं जब कि हृदय का स्पंदन इतना अधिक हो उठता है कि स्वयं मानव ही अपना स्पंदन सुनकर डरने लगता है, किंतु फिर भी कितना दृढ हैं मनुष्य, सह ही जाता है उसे भी शांतिपूर्वक।"[1]

तात्पर्य यह हैं कि आलोच्य कृति का शैली पक्ष सफल तथा सुंदर हैं।

'भटकती आत्मा' उपन्यास सामाजि कथानक प्रधान है जिस में लेखिका ने अपनी कलात्मक प्रतिभा के द्वारा उपन्यास के शैल्पिक-औचित्य को भी निखारा है।

लेखिका ने पात्रों के चारित्रिक विकास को व्यक्त करने तथा घटनाओं को गत्यात्मक बनाने के लिए संवादों की सहायता ली है। उदाहरण के लिए अनिल के कथन द्वारा वारुणी के चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है–"तुम थक भी सकती हो, भाभी, यह तो मैंने किसी दिन भी न सोचा था, कल्पना ही नहीं कर सका था। मेरे जीवन में अनेकों नारियाँ आई, संध्या, दीदी, करुणा भरणी, कहाँ तक गिनाऊँ, किंतु तुम– सरीखा अदम्य उत्साह और स्थिर बुद्धि शायद ही किसी रमणी में हो।"[2]

पात्रानुकूल संवादों के प्रति लेखिका अधिक सजग रही हैं। वारुणी की उक्तियों में जहाँ उसका संयत और कर्मठ व्यक्तित्व मुखरित हुआ है वहाँ 'संध्या' के संवादों में उसका स्वाभिमान झलक उठा है।[3]

अनिल और संध्या के बीच वार्तालापों में अनिल की कथा से वारुणी के चरित्र की गुण-गारिमा पर प्रकाश पडता है जैसे – संध्या, जिस दिन तुम भाभी का मूल्य पहचानोगी शायद उसी दिन तुम्हें यथार्थ में नारी के मूल्य का पता चलेगा।"[4]

---

१. त्रिवेणी – पृष्ठ, ६०

२. भटकती आत्मा – पृष्ठ : १०१

३. भटकती आत्मा – पृष्ठ : १००–१०३ १८४–१८७

४. भटकती आत्मा – पृष्ठ : १२५

दार्शनिक और तर्कपूर्ण प्रसंगों के स्थलों पर संवाद दीर्घ बन गये हैं। संध्या और बसंती तथा अनिल और बसंती के संवाद इसी कोटि के हैं।[1]

लेखिका ने उपन्यास में देश काल संबंधी सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण का भी यथेष्ट मात्रा में चित्रण किया है। सन् १९४२ में भारत की राजनीतिक स्थिति, क्रांतिकारी दलों का संगठन, विभिन्न विध्वंसक घटनाओं का वर्णन, सरकार की दमननीति आदि का विशद चित्रण इस में पाया जाता है।

समाज में निम्न-मध्य वर्ग तथा उच्च वर्ग के लोगों के जीवन का सफलतापूर्वक चित्रण प्रस्तुत करके लेखिका ने सामाजिक वातावरण का तथा आर्थिक असमानताओं का वर्णन प्रस्तुत किया है। एक ओर बसंती के घरेलू जीवन के चित्रण द्वारा निम्न-मध्यवर्ग की आर्थिक विषमताओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी ओर संध्या और योगेश के माध्यम से धनिक वर्ग के विलासपूर्ण जीवन का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

आलोच्य उपन्यास में सरल साहित्यिक तथा पात्रोचित भाषा का प्रयोग हुआ है। अशिक्षित पात्रों के संवादों में[2] बोलचाल के शब्दों का प्रयोग उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में विशेष रूप से वर्णनात्मक, संवादात्मक एवं नाटकीय शैलियों के साथ साथ गौण रूप से मनोविश्लेपणात्मक तथा सूक्ति-शैलियों[3] का भी प्रयोग किया गया है।

'स्वतंत्रता की ओर' में संवाद अत्यंत सुंदर तथा मार्मिक बन पडे हैं।

इस उपन्यास में पात्रों के संवाद कथा-विकास में कम तथा पात्रों की भावनाओं, सामाजिक स्थिति और उद्देश्य की अभिव्यक्ति में ही अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। संवादों के माध्यम से पात्रों की मनोवृत्ति, शिक्षा-रुचि, संस्कार आदि का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ 'ऋचा' के कथन में सर्वत्र भारतीय नारी की आत्मा मुखरित हुई हैं और 'शीला' के

---

१. भटकती आत्मा पृष्ठ : १०३–१११, ११५–११९
२. भटकती आत्मा – पृष्ठ : ४६–४७
३. भटकती आत्मा – पृष्ठ : २, ३, ५७

संवादों में उसका क्रांतिकारी व्यक्तित्व स्पष्ट हुआ है।[1] इसी प्रकार सत्येंद्र के कथन में भारतीय आदर्श प्रतिबिंबित हुए हैं तो रवि के कथनों में क्रांति की छाया झलक उठी है।[2]

यत्र तत्र तर्कपूर्ण संवाद भी दृष्टिगोचर हुए हैं, विमला और शीला के संवाद इस के उदाहरण हैं।[3] इस प्रकार तर्कपूर्ण संवाद दीर्घ भले ही हो परंतु पात्रानुकूल एवं प्रभावात्मक हैं।

लेखिका ने देश काल वातावरण के प्रति यथेष्ठ प्रकाश डाला है। सत्येंद्र के प्रति रवि की यह उक्ति द्रष्टव्य है—"देश विदेश की नारियाँ स्वतंत्र वायु में साँस लेकर अपने अधिकारों का पूर्ण रूप से उपभोग कर रही हैं, जीवन के अर्थ, सच्चे अर्थ समझने का यत्न कर रही हैं। दर्शन, ज्ञान और विज्ञान में पुरुषों से एक पग भी पीछे नहीं हैं, और तुम्हारी नन्हीं गुडिया सी कन्यायें माताएँ बनकर जीवन का ह्रास कर रही हैं।"[4] उक्त कथन में समकालीन नारी जीवन का दयनीय चित्र आँखों के सामने उपस्थित होता है। इसी प्रकार मिस गेरोवाला ने शीला को समझाते हुए प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा संस्थाओं की तुलना की है और वैदिक युग की शिक्षा के महत्व का वर्णन किया हैं।"[5]

सत्येंद्र और रवि के संवादों के माध्यम से कृषकों और श्रमिकों के तथा मध्मवर्ग की सामाजिक परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है।[6] इसके अतिरिक्त सामाजिक रूढिगत विचारों पर भी लेखिका ने प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ गोविंद काका के चित्रण द्वारा गाँव के पाखंडी पडितों का वर्णन किया गया है। ये पंडित जन सब प्रकार के अमानुष कार्य करते हैं लेकिन सत्येंद्र एक रोगी चमारिन की सेवा करने से, प्रायश्चित की समस्याँ खडा कर देते हैं। इस के अतिरिक्त हिंदू-विधवा की दयनीय दशा का वर्णन, ऋचा पात्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

---

१. स्वतंत्रता की ओर – पृष्ठ : ११–१७, ८५–८७
२. स्वतंत्रता की ओर पृष्ठ : ११–१७
३. स्वतंत्रता की ओर – पृष्ठ : १२४–१३८
४. स्वतंत्रता की ओर – पृष्ठ : १३
५. स्वतंत्रता की ओर – पृष्ठ : १७६–१७७
६. स्वतंत्रता की ओर – पृष्ठ : ८६

विवेच्य उपन्यास की भाषा व्यवहारिक है जिस में मुहावरों के साथ साथ सूक्तियों का भी प्रयोग पाया जाता। जैसे – "मायाविनी नारी में एक एसी आकर्षण-शक्ति है और वह है उसकी उपेक्षा। पुरुष नारी के प्रेम को तो सह लेता है, किंतु उसकी उदासीनता को नहीं सह पाता।[1]

इस प्रकार की उक्तियों द्वारा भाषा की सुंदरता के साथ साथ कथा की गति में भी वृद्धि होती है।

इस में वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक तथा सूक्ति शैलियों का सुंदर प्रयोग हुआ है।

'अनचाहा' में संक्षिप्त एवं सारगर्भित संवादों का प्रयोग हुआ है जो कथानक तथा चरित्र–चित्रण के विकास में सहायक है। समकालीन परि-स्थितियों के चित्रण के साथ उद्देश्य को स्पष्ट करने केलिए भी संवाद माध्यम के रूप में सहायक हुए हैं। कुंवर वीरेश्वर और अरुण के संवाद इसी प्रकार के हैं। अरुण के अधिकांश संवादों में पूंजीवादी शोषण के प्रति उसका द्वेष परि-लक्षित होता है और कुंवर अपने तर्कपूर्ण संवादों के द्वारा, अरुण को अपने पक्ष में करने का आग्रह परिलक्षित होता है।[2]

सिफारिश करना, अधिकारी वर्ग के सामने झुकना, अयोग्य छात्र-छात्राओं को उत्तीर्ण कर देना आदि सामाजिक कुरीतियों के प्रति लेखिका ने व्यंग्य किया है। पूँजीवादी शोषण द्वारा उत्पन्न वर्ग की समस्याओं का मार्मिक चित्रण भी लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

विवेच्य उपन्यास में व्यवहारिक एवं पात्रोचित भाषा का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के कारण भाषा सुंदर एवं प्रौढ बन गयी है।

लेखिका ने वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक तथा भावात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। यत्र तत्र प्रत्यक्ष शैली द्वारा पात्रों के चारित्रिक विकास पर प्रकाश डाला है जैसे – "मृदुला स्वभाव से ही मस्त, लापरवाह, हँसोड़ और सदा प्रसन्न प्रकृति की है किंतु मंजुला उतनी ही अधिक गंभीर, सतर्क और सोच–विचार करनेवाली बालिका है। – – मृदुला भावुक, सौंदर्यप्रिय, अत्यंत सरल, शिशु की-सी प्रकृति की हैं। मंजुला कुशाग्र–बुद्धि एवं दार्शनिक प्रकृति

---

१. स्वतंत्रता की ओर – पृष्ठ : ९८
२. अन चाहा – पृष्ठ : ११२ – १२४

की प्रतिभावान बालिका है।"[1] इस शैली के अतिरिक्त स्वगत-कथनों का प्रयोग भी पाया जाता है।

कंचनलता सब्बरवाल के 'पुनरुद्धार' उपन्यास में संवादों का सफल निर्वाह हुआ है। अधिकांश परिच्छेदों की जैसे प्रतिज्ञा, विवशता, स्पन, गढ़पति, अपूर्व मिलन आदि सवादों द्वारा ही प्रारंभ हुए हैं। भारशिवों के अधिकांश संवाद उनके पूर्वजों के गौरव-गान, वर्तमान स्थिति की आलोचना, देश को स्वतंत्रता प्राप्त करवाने की चिंता, आदि से संबंधित रहे हैं। पात्रों के व्यक्तित्व एवं देशकाल, वातावरण के चित्रण में संवादों का सहारा, लेखिका ने लिया है। शुभा और विशालाक्षी और विजया और अनंता के संवाद हास्यपूर्ण संवाद के उदाहरण हैं।[2]

ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण देश काल के प्रति लेखिका अधिक सजग रही हैं। भारशिवों के वंश-गौरव, वीरता, पुनर्प्रतिष्ठा आदि की कल्पना के बल सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

कुशन शासकों की शासन-नीति और भारतीय बौद्धों और विदेशी कुशनों के पारस्परिक संबंधों का वर्णन विस्तृत रूप से पाया गया है।[3] भारशिवों और कुशनों की मुठभेड़ का वर्णन करते समय युद्ध का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[4]

आलोच्य उपन्यास की भाषा कथ्य के अनुरुप गंभीर एवं साहित्यिक है। उपन्यास की शैली प्रसंगानुकूल विवरणात्मक, नाटकीय एवं चित्रात्मक है।

रजनी पनिकर :-

आपका 'मोम के मोती' एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें नारियों का चरित्र चित्रण सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ हैं। शिल्प पक्ष की दृष्टि से भी यह एक सफल उपन्यास माना जा सकता हैं।

कथोपकथन के माध्यम से पात्रों के चारित्रिक विकास पर प्रकाश डालने के साथ साथ, कथानक को गति देने में भी उनकी सहायता लेखिका ने ली।

---

१. अन चाहा – पृष्ठ : ११
२. पुनरुद्धार–पृष्ठ : १४६–१४७ ३. पुनरुद्धार–पृष्ठ : ९–१०, २४–२६
१६०–१६१
४. वही पृष्ठ : १४४–१४९

संवाद संक्षिप्त, रोचक, मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण हैं जिसमें नाटकीयता का पुट भी पाया जाता है, जैसे मधुकर और माया के वार्तालापों से यह स्पष्ट हो जाता है –

"तुम मायाविनी हो।"
"आप उस पर मोहित हैं।"
"बड़ा दंभ है।"
"नहीं अंतर्दृष्टि है।"
"यह भी दंभ है।"
"नहीं विवेक है।"[१]

उक्त संवाद संक्षिप्त एवं नाटकीय हैं। मेजर कबाड़ और माया के बीच के वार्तालापों में उपलब्ध व्यंग्य भी दृष्टव्य है।[2]

लेखिका ने सामाजिक वातावरण की सृष्टि की है। नौकरी करनेवाली स्त्रियों को किस प्रकार सामाजिक लांछनायें सहनी पडती हैं, इसका भी अनेक जगह उल्लेख हुआ है। आलोच्य उपन्यास में वर्तमान नागरिक सभ्यता का व्यंग्यपूर्ण चित्र भी है। माया विवश होकर कृत्रिम नागरिक जीवन व्यतीत करती है। माया पात्र के द्वारा लेखिका ने कृत्रिम नागरिक जीवन का चित्रण किया है – "माया को शहर के जीवन, इस के दाँव पेचों से घृणा हो गयी थी। काश। उस समय उसे सेठ धनपति का ऋण न देना होता तो वह गाँव के उन्मुक्त वातावरण में चली जाती। चाहे उसे गाँव में जाकर केवल लडकियों को पढाना पडता, वहाँ इतने रुपये भी न मिलते। रुपये की अब उसे अधिक चिंता भी न थी। रुपया, कीमती साडियाँ, आभूषण उसे लगता था जैसे जी का जंजाल है।[3]

आलोच्य अन्य उपन्यासों की तरह इसमें भी मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है। उर्दू शब्दों के अतिरिक्त यत्र तत्र अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

लेखिका ने यत्र तत्र पात्रों की विशेषताओं को प्रकट करने के लिए स्वयं पात्रों का गुणगान करने लगी है जैसे मधुकर की चारित्रिक विशेषताओं

१. मोम के मोती – पृष्ठ : ११३
२. मोम के मोती – पृष्ठ : ६६
३. मोम के मोती – पृष्ठ : १६१

को स्वयं प्रकट करती हुई कहती हैं – "मधुकर का मुख चिंतित था। और गौरवर्ण जैसे काला पड गया था। उसके विचार संकीर्ण थे। मर्यादा की भावना साधारण लोगों से बढकर थी। कवि होने से वह संवेदनशील भी था।"[1] आलोच्य उपन्यास में यत्र तत्र मनोविश्लेषणात्मक और व्यंग्यपूर्ण शैली का भी प्रयोग है।

श्रीमती रजनी पनिकर का 'प्यासे बादल' एक अन्य सामाजिक उपन्यास है जिसमें पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

आलोच्य उपन्यास के संवादों में चारित्रिक विकास पाया जाता है। लेखिका ने रोजशीला और जयंत के संवादों में रोजशीला के उदात्त एवं आदर्शमय विचारों का प्रस्तुतीकरण किया है – "आप समझते हैं कि भरपेट रोटी पाकर मेरा दिमाग आसमान पर चढ गया है। ऐसी बात नहीं हैं जयंत बाबू। लोभ का मोह का, कर्तव्य के सामने झुकना आसान नहीं है। मेरे हृदय का ज्वालामुखी हृदय के भीतर भले ही मुझे झुलस दें, परंतु कर्तव्य तो यही था कि आप जैसा अब करने जा रहे हैं वैसा ही करते[2] इसी प्रकार अन्य पात्रों के संवादों में भी उनकी वेदना, अंतर्द्वंद्व आदि विचार मूर्तिमान हुए हैं।

विवेच्य उपन्यास में लेखिका ने अपने चारों तरफ के सामाजिक वातावरण का ही यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत किया है। सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण कर, उनका समाधान अपनी ओर से प्रस्तुत करने में लेखिका सफल रही हैं। जयंत के द्वारा रोजशीला का उदारपूर्वक आश्रय देने के प्रस्ताव से लेखिका ने परोक्ष रुप से वर्ग वैमनस्य अंत करने की सूचना दी हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में व्यवहारिक भाषा-शैली का प्रयोग ही हुआ है। इनकी शैली पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने की क्षमता के साथ साथ उस में एक प्रवाह भी पाया जाता है। जैसे जयंत के इस कथन में उसके मनोभावों का चित्रीकरण हुआ है – "शीला को देखते ही उसके अंतस्तल में एक वेदना-सी क्यों करवट लेती है ? जाने शीला में ऐसा क्या है ? वह जानता है कि उसके लिए ऐसा करना उचित नहीं हैं। एक बार उसके मन में आया भी कि जाने किस किसने शीला के शरीर को छुआ होगा। परंतु उससे क्या ? मूर्ति जब बनती है, तो न जाने कितने हाथों से निकलती है, कोई तराशता

१. मोम के मोती – पृष्ठ : ११३
२. प्यासे बादल – पृष्ठ : १६५

है. कोई गढ़ता है, परंतु जब उसकी प्रतिष्ठा कर दी जाती है, तो पुजारी अपने बच्चों से भी कहता है कि वह स्वच्छ हुए बिना मूर्ति को न छुएँ।"[1] निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि उक्त उपन्यास की शैली सरस और प्रवाहमय है।

'जाड़े की धूप' उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसी कारण इस में संवादों की विशिष्टता नहीं पाई जाती है। कथोपकथन के द्वारा पात्रों के विचारों का आदान - प्रदान बहुत ही कम स्थानों पर हुआ है। लेकिन यत्र तत्र पात्रों के चारित्रिक विकास में ये संवाद सहायक ही सिद्ध हुए हैं।

इस उपन्यास में की आधुनिक नारी की अंतर्व्यथा का एक नये सामाजिक परिपार्श्व में करुण अंकन किया गया है। लेखिका ने भारती के माध्यम से आधुनिक सभ्यता में पली हुई नारी का चित्रण किया है।

पुरुष और नारी की प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करती हुई लेखिका ने कई स्थानों पर देश काल के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया है – "तुम कहोगे कि आजकल तुम, बहुत लडकियों को खासकर विस्थापित लडकियों को, जिन मे विवाहित, अविवाहित दोनों ही शामिल है, दिल्ली की, बंबई की और कलकत्ते की सड़कों पर अपनी अस्मत बेचते हुए देखते हो। लेखक हो न, कभी मौका - मिले तो उन से जाकर उनके दिल का हाल भी पूछना। नारी स्वेच्छा से शरीर तब देती है, जब जीवन की कोई अन्य आवश्यकता उसे वैसा करने पर विवश करती है।"[2]

आलोच्य उपन्यास की भाषा रोचक एवं प्रभावपूर्ण है। सरल, तत्सम शब्द, तथा प्रचलित उर्दू तथा अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र लेखिका ने मौलिक उपमाओं की सृष्टि की है। उदाहरणार्थ – "जो बात प्रकृति में नहीं, उसको करना नाक पर बोतल टिकाकर चलने से कम नहीं होता।"[3]

यह पत्रात्मक शैली में लिया गया सुंदर उपन्यास है। यत्र तत्र भावात्मक शैली भी दृष्टिगत होती है जैसे – "मैं अंधियारे में अपना स्नेहदीप जगाये बैठी

---

१. प्यासे बादल – पृष्ठ : ४९
२. जाडे की धूप – पृष्ठ : ६७
३. जाड़े की धूप – पृष्ठ : ३३

हूँ, प्रतीक्षा करती रहूँ, तुम आओ और मैं तुम्हें पहचान न पाऊँ, जब पहचानूँ तो पा न सकूँ। विडंबना।"[1]

लेखिका की अभिव्यंजना शक्ति भी सहज है। उदाहरणार्थ यह उक्ति द्रष्टव्य है "बाहर की शीतलता भीतर की वेदना को सहलाती नहीं, सुलगा देती है।"[2]

सारांश यह है कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करनेवाला 'जाडे की धूप' उपन्यास का शिल्प—पक्ष भी सफल तथा सुंदर है।

'काली लडकी' उपन्यास में श्रीमती रजनी पनिकर ने संवादों का सुंदर निर्वाह किया है। संवाद संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं। जिन में मनोविश्लेषण केलिए उचित स्थान दिया गया है। कथोपकथन के माध्यम से चारित्रिक विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ कावेरी के चरित्र का चित्रण निम्नांकित संवादों में पाया जाता है — "दीदी ब्याह में दूल्हा की मोटरें ही देखी जाती हैं ?"

"हाँ और क्या ? उसका सोना और रुपया भी देखने में कोई हर्ज नहीं।"[3]

उक्त संवादों के माध्यम से कावेरी की प्रवृत्तियों पर लेखिका ने सफलतापूर्वक प्रकाश डाला है।

रानी के पिता की उक्तियों से रानी के प्रति ममत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है।[4]

रानी के गुणों पर मुग्ध कमल की उक्तियों में रानी के गुणगानों के साथ रानी के प्रति उसका प्रेम तथा स्नेह भी व्यक्त होता है।[5]

यत्र तत्र संवाद दीर्घ हो गये हैं जैसे कमल द्वारा स्वयं अपनी दुष्प्रवृत्तियों का वर्णन करते समय रानी की उक्तियों से उस की माता की

---

१. जाड़े की धूप — पृष्ठ : ११
२. वही पृष्ठ : ४८
३. काली लडकी — पृष्ठ : ९
४. काली लडकी — पृष्ठ : २२
५. काली लडकी — पृष्ठ : १२७, १३६–१३७, १४५

प्रवृत्ति का परिचय मिलता है साथ साथ आधुनिक माताओं की मन : प्रवृत्ति का आभास भी, उदाहरणार्थ – "मुझे माँ के दिल्ली आने से आश्चर्य नहीं हुआ माँ की बड़ी बेटी सुंदर है। विवाह के बाजार में उसकी अच्छी कीमत मिली है। माँ यदि अपना एक मंजिला मकान लखनऊ जैसे छोटे नगर में छोडकर दिल्ली आ गयी है तो उस में किसी के हैरान होने की कोई बात ही नहीं। दिल्ली में मैंने देखा है कि जिन स्त्रियों की सुंदर लडकियाँ है, सुंदर न भी हों, लडकी चुस्त और जवान होनी चाहिए, उतने से भी काम चल जाता है।"[१] उक्त उद्धरण द्वारा आधुनिक सभ्य नारी वर्ग के प्रति करारा व्यंग्य पाया जाता है। लेखिका स्वयं इस प्रकार की माताओं पर आश्चर्य प्रकट करती है कि "बीसवीं सदी में अपनी सगी माँ ऐसी भी हो सकती है, शायद बहुतों को विश्वास नहीं आएगा।"[2] स्वार्थी माताओं के प्रति इस उक्ति के द्वारा व्यंग्य कसा है। व्यंग्यपूर्ण उक्तियाँ इस उपन्यास में अधिक संख्या में पायी जाती हैं उदाहरणार्थ – "घर से बाहर निकलना ही एक ऐसा अंतर है जो दीदी को पुराने जमाने की स्त्रियों से अलग करता है। पहले भी नारी की यही समस्या थी कि वह संतान को जन्म देती थी, पुरुष उसके शरीर से अधिक उसके व्यक्तित्व को महत्व नहीं देता था। नारी की यह समस्या अभी तक ज्यों की त्यों ही बनी है।"[3]

आलोच्य उपन्यास में सभ्य समाज में होनेवाले अत्याचारों का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। लेखिका ने वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों के प्रति अपनी पैनी दृष्टि फैलायी है, उदाहरणार्थ – "१९५४ में दिल्ली में लडकियों को भी नौकरी मिलनी उतनी ही मुश्किल थी जितनी शायद १९३१ में लडकों को। शिक्षित लडकियों की संख्या इतनी हो गयी थी कि मामूली सी नौकरी के लिए बीसियों लडकियों की अर्जियाँ आतीं। दूसरी लडकियों की अर्जियों के साथ मेरी अर्जी भी प्राय: रद्दी की टोकरी में फेंक दी जाती, क्योंकि मेरे पास कोई सिफारिश नहीं थी।"[4]

उक्त उद्धरण से सामाजिक वातावरण का जीता जागता चित्रण मिल जाता है।

---

१. काली लडकी – पृष्ठ : १२०
२. वही पृष्ठ : ११८
३. वही पृष्ठ : ५२
४. काली लडकी – पृष्ठ : ११५

आलोच्य उपन्यास में सरल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। "मेरे मन के अंधेरे में उजाला हो गया।"[1] इन छ: वर्षों में उन्होंने मुझ से सीधे मुँह बात तक न की थी,[2] जैसे सुंदर मुहावरों के प्रयोग से शैली और भी मार्मिक बन पडी है।

व्यंग्यपूर्ण शब्दावली का सब से अधिक प्रयोग हुआ है, जैसे – "आज जब मैं उस जीवन को बहुत पीछे छोड चुकी हूँ तो सोचती हूँ कि मेरी माँ ने कौन-सा अनर्थ कर दिया, यदि वह जमाई के घर आकर रहने लगी थी? ... पच्चीस वर्ष उन्होंने ऐसे पति के साथ निभाये थे। अब उनके नीरस जीवन में जरा-सी सरसता आ गयी थी। दूसरों को बुरा लगने का कारण।[3] इस-प्रकार आलोच्य उपन्यास की शैली सरस, सरल एवं सुंदर है।

श्रीमती रजनी पनिकर का ही 'एक लडकी दो रुप' उपन्यास में मुख्यत: माला के मानसिक चिंतन एवं उसके आंतरिक संघर्ष का चित्रण अधिक पाया जाता है। इसी कारण कथोपकथन के लिए बहुत कम अवसर मिला है। उपन्यास में माला के बाह्य-स्वरुप और आंतरिक व्यक्तित्व 'गुडिया' के संवाद ही पाये जाते हैं जो आत्मचिंतन का ही एक रुप है। यत्र तत्र थोडे बहुत संवादों के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

आलोच्य उपन्यास में मध्यमवर्ग की परिस्थिति का वर्णन और उस वर्ग की नारी की विवशताओं का मार्मिक चित्रण मिलता है। वर्तमान युग 'अर्थ' के प्रति अधिक अग्रसर हो रहा है, लेखिका ने अर्थ की महत्ता पर इस प्रकार व्यंग्य किया है – "आजकल देवता भी पुष्पमाला की बजाय नोटों की माला पसंद करते हैं। पुष्पों की क्या कीमत? फूलों का क्या मोल?"[4]

लेखिका ने व्यंग्यात्मक शैली में आधुनिक धनी परिवार के लोगों के प्रति अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया है – "मातहत भी कलचर्ड हैं जो अपने अफसर की पत्नी के साथ शापिंग करने जा सकता है। अफसर कहीं दौरे पर हों तो पत्नी को घुमाने-फिराने भी ले जाता हैं और सैकेंड शो सिनेमा भी दिखलाता हैं। कल्चर्ड पत्नी भी पति की ही तरह व्यवहार करती है कि पति की अनुपस्थिति में वह कभी भी घर में भोजन करने के लिए तैयार न हो। वह पति के मित्रों के साथ नहीं तो अपने मित्रों के साथ केवल होटल में

---

१. काली लडकी – पृष्ठ : ४४ २. काली लडकी – पृष्ठ : ७८
३. काली लडकी – पृष्ठ : १२१ ४. एक लडकी दो रुप – पृष्ठ : ५

खायें।"[1] इस प्रकार आधुनिक लोगों का चित्रीकरण कर बडे बडे नगरों में वर्तमान समाज का जीता जागता वर्णन लेखिका ने व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। माला के आत्मविश्लेषण के रूप में यह उपन्यास रचा गया है। लेखिका ने इस में नवीनता का प्रयोग किया है जो निस्संदेह ही लेखिका की शैलीगत नूतन प्रयोग है। आत्मकथात्मक शैली के अतिरिक्त लेखिका ने उपन्यास में यत्र तत्र भावात्मक एवं चित्रात्मक शैलियों का प्रयोग भी किया है।

इस कृति की भाषा सरल, एवं संक्षिप्त है। भाषा को सरल तथा सहज प्रदान करने के लिए नाजुक, सलूक, इंतजाम आदि उर्दू शब्दों के प्रयोग के साथ साथ कल्चर्ड, फैशन आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। पलके नहीं पडा, 'हाथी के दाँत' आदि मुहावरों के प्रयोग के साथ साथ भाषा में सुंदरता एवं गत्यात्मकता आ गयी है।

वसंत प्रभा :

'साँझ के साथी' में वसंत प्रभा ने संवादों के माध्यम से पात्रों की आंतरिक प्रवृत्तियों की अधिक अभिव्यक्ति की है। उदाहरणार्थ सुखदेवी की उक्तियों से सदा उसकी वाक्‌चतुरी, कूटनीति, स्वार्थपरता, ईर्ष्या आदि भावों का प्रत्यक्षीकरण हुआ है। लेखिका ने पात्रानुकूल तथा विषयानुकूल संवाद योजना का निर्वाह किया है।

आलोच्य उपन्यास में पारिवारिक जीवन के उतार चढाव, आशा-निराशा, सुख-दुख, स्वार्थ आदि के चित्रण के माध्यम से लेखिका ने घरेलू वातावरण का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी वर्णन मिलता है, उदाहरणार्थ - "पंजाब का बँटवारा हो रहा था। लोग आपस में एक दूसरे के दुश्मन हो रहे थे। चारों ओर जहाँ देखने को मिलता है वहीं धुँआ ही धुआँ दिखाई देने लगा। झूठे कर्तव्य की आड में धर्म और ईमान जल रहा था।"[2]

लेखिका ने चरित्र चित्रण के विकास में प्रत्यक्ष कथन की अपेक्षा परोक्ष शैली को अधिक अपनाया है इस में अधिकतर वर्णनात्मक शैली का

---

१. एक लडकी दो रूप—पृष्ठ : ४३ २. साँझ के साथी—पृष्ठ : १९५, २३

प्रयोग हुआ है। इनकी शैली सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। यत्र तत्र सूक्ति वाक्यों के द्वारा भाषा-शैली में प्रौढ़ता आ गयी है। उदाहरणार्थ – "आदमी जब चलने फिरने योग्य होता है तो उसके भीतर अहम् का भाव बना रहता है। परंतु इसके विपरीत चारपाई पर पडते ही यह अहम् लोप हो जाता है।"[1]

विवेच्य उपन्यास की भाषा व्यावहारिक हिंदी है। तद्भव तथा देशज तथा उर्दू[2] शब्दों के प्रयोग से भाषा में सजीवता एवं रोचकता का समावेश संपन्न हुआ है। यत्र तत्र मुहावरों[3] के प्रयोग से भाषा रोचक बन पडी है। यत्र तत्र अशुद्ध वाक्य भी पाये जाते हैं, जैसे – "वे आप लोगों ने ही तो दूर करनी हैं"[4] वह मैले कपडे उठाकर धोने लग पडी"[5] इस प्रकार अशुद्ध प्रयोगों द्वारा यत्र तत्र भाषा असुंदर बन पडी है। इन वाक्यों को छोड शेष उपन्यास शिल्प पक्ष की दृष्टि से सुंदर कृति मानी जा सकती है।

आपका ही दूसरा उपन्यास 'अधूरी तस्वीर' है जो पत्रात्मक शैली में रचा गया है। पत्रात्मक शैली में रचने के कारण संवादों के लिए विशेष अवसर नहीं मिला है। फातिमा, सत्या, सईदा आदि पात्रों के चरित्र का विकास संवादों के माध्यम से हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में वातावरण की प्रधानता अधिक रही है। रमा पति गृह से निकल कर अनेक गाँव तथा शहरों में रहती है। उन सभी जगहों का वातावरण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। पहले रमा अपनी सखी प्रेमा के साथ एक नगर की गंदी गली में रहती है जहाँ धोबी, चमार, लुहार आदि निम्न वर्ग के लोग रहा करते हैं। उस वर्ग के रीति-रिवाज[6] आदि के प्रति लेखिका ने प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् रमा अध्यापिका के रूप में एक गांव में रहती है। लेखिका ने उस गांव के रीति-रिवाज, रहन-सहन, प्राकृतिक शोभा, धार्मिक प्रवृत्ति आदि विषयों का सजीव चित्रांकन किया है। एक स्थान जाट-परिवारों की विशेषताओं का रोचक उल्लेख हुआ है।[7] इसके पश्चात् और

---

१. साँझ के साथी – पृष्ठ : १९५, २३
२. सांझ के साथी–अ. बेगाना-पृ० १०, लिहाज–पृ० ११, इंतजार-पृ० १२
३. वही अ) भाभी कच्ची गोलियाँ खेलना नहीं सीखीं – पृ० १८
आ) गंगा को काटो तो खून नहीं – पृ० १९
४., ५. सांझ के साथी – पृ० ५५, १७७
६. अधूरी तस्वीर – पृष्ठ : १८-२०
७. अधूरी तस्वीर – पृष्ठ : ७६-७९

एक गांव का वर्णन किया गया है. जिसमें वहाँ के किसानों के अंधविश्वासों. रीति-रिवाजों का चित्रण हुआ है। उदाहरणार्थ किसानों की व्यवहारिक बुद्धि, हीरभाई की कब्र के मेले पर अपनी मुराद पूरी करने जाना, पर्व के दिन नदी-स्नान करना. भूत प्रेतों के प्रति अंध-विश्वास[1] आदि प्रसंग उल्लेखनीय है। लेखिका ने रमा के माध्यम से नारी-जीवन का चित्रांकन करने के अतिरिक्त समकालीन जन-जीवन की अभिव्यक्ति भी की है।

इसमें सरल भावपूर्ण और प्रवाहमयी भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। भावना की आवेगपूर्ण स्थिति के कारण आलोच्य कृति की शैली में लयात्मकता संपन्न हुई है। पत्र शैली द्वारा उपन्यास रचना एक नवीनतम शैली है। यत्र तत्र फुर्सत, मशगूल, हैरान, महसूस आदि उर्दू शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

कृष्णा सोवती :

सुश्री कृष्णा सोवती का 'डार से बिछुडी' एक आंचलिक उपन्यास है। इसमें संवादों का सुंदर निर्वाह हुआ है। इसके संवाद चारित्रिक विकास में सहायक सिद्ध हुए है जैसे पाशो की नानी के शब्दों द्वारा पाशो की मां के चरित्र पर प्रकाश पडता है। जैसे–'उस मुंह उसका नाम न लूँ बिटिया, उसी की करनी तुझे भरनी थी। तेरे दोनों मामू उसे कितना मारते थे, यह लोक-जहान जानता है. पर वह नासहोनी तो घर-भर का मुँह काला कर गई।'[2] भाषा में सजीवता लाने के लिए पात्रानुकूल संवादों की योजना की गई है। पंजाबी मिश्रित हिन्दी का प्रयोग किया गया है। कथोपकथनों में पात्रों के मनोवैज्ञानिक विचारधारा का ध्यान रखा गया है। यहाँ पाशो तथा उसके भाई के संवाद उल्लेखनीय हैं–'बहना, जी न बुरा करो। बडे कोट से लौटती बार तुम्हें मिलने आऊंगा।'

'इतनी दूर काहे जाना है वीरजी ?'

'बहना, बड़ा नगर ठहरा, वहाँ तो आना-जाना लगा ही रहता है।'

'कहीं लड़ाई तो नहीं छिड़ी वीर जी ?'

'बहन हमारी लड़ाई से डरने लगी ?'

'न–न वीर जी उस ओर न मुख करना, वैरियों के बीच न पड़ना।'

'बहना, शेखों का लड़का हूँ तो क्या मां तो खत्राणी हैं।'

---

१. अधूरी तस्वीर – पृष्ठ : ९८, १०१, १२८, १२२

२. डार से बिछुडी – पृष्ठ : ११

'स्वास-स्वास वीर की घोडी की राह तकती रहूँगी, इस बहन को बिसरा न देना।'[1]

मधुर एवं सरस संवादों के अतिरिक्त कटुतापूर्ण संवाद भी हैं जैसे दीवानजी की मौसी तथा बरकत की मां के परस्पर संवाद।[2] संवाद लघु तथा सोद्देश्य हैं। संवादों के सुष्ठु प्रयोगों द्वारा उपन्यास में नाटकीयता लायी गयी है।

प्रस्तुत उपन्यास में पुराने पंजाबी पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है जिससे पंजाबियों के आचार-व्यवहार, रहन-सहन आदि पर प्रकाश डाला गया है।

पहले पाशो के मामा के घर का चित्रण है जहाँ जाति-गर्व इतना अधिक है कि वहाँ सामान्य लोग तुच्छ समझे जाते हैं। दूसरा चित्र दीवान परिवार का हैं जहाँ व्यक्ति को अधिक गौरव प्रदान किया जाता है। इनके अलावा लेखिका ने 'करवा चौथ' व्रत का बड़ा सुंदर वर्णन करके धार्मिक अनुष्ठानों का तथा समाज में व्रतों के प्रति लोगों की मान्यताओं का चित्रण भी प्रस्तुत किया है।

लाला परिवार की रीति विचित्र प्रकार की थी। लाला के तीनों पुत्रों के लिए एक वधु पाशो थी। इसके अतिरिक्त मलिक राजाओं के रीति-रिवाज तथा रहन-सहन का विस्तार पूर्वक वर्णन भी मिलता है।[3]

उपन्यास के अंत में युद्ध का विशद वर्णन है। जैसे वीरों की मृत्यु के उपरांत उनके परिवार की स्त्रियों को अंग्रेज किस प्रकार पकड़कर ले गये, उनके घरों को किस प्रकार निर्दयता पूर्वक आग लगाया गया[4] आदि दृश्यों का वर्णात्मक चित्रण पाया जाता है।

आलोच्य उपन्यास की भाषा पंजाबी-मिश्रित हिंदी है। 'परांद', 'भौंडे' 'सयाले' आदि पंजाबी शब्दों के अतिरिक्त लेखिका ने पंजाबी वाक्यावली का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।[5]

---

१. डार से बिछुडी – पृष्ठ : ५२-५३   २. डार से बिछुडी– पृष्ठ : ६७
३. डार से बिछुडी–पृष्ठ : १०२-१०५ ४. डार से बिछुडी–पृष्ठ : ११२-११६
५. डार से बिछुडी – – 'न – – न – – बीबी रानी, लडकियोंवालों का काम नहीं। गोद में तेरी लाल पड़े, तू क्यों ऐसे काम करे।' पृष्ठ : ४१

पंजाबी तथा हिंदी के प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से भाषा-शैली सजीव एवं प्रभावात्मक बन पड़ी है।[1]

लेखिका की शैली माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है। आंचलिक तत्व की दृष्टि से भी इस उपन्यास का शिल्प-पक्ष सफल एवं सुन्दर माना जा सकता है।

शीला अवस्थी :

'शीला अवस्थी' के ,दो राहें' उपन्यास में दो प्रकार के संवाद पाये जाते हैं। एक प्रकार के संवाद वे हैं जिनके द्वारा चरित्र-चित्रण का विकास हुआ है तो दूसरे वे हैं जो विचार-धारा को प्रतिबिंबित करते हैं। दूसरी कोटि के केप्टन रघुनाथ तथा काका के संवाद हैं जिनमें रघुनाथ नागरिक सभ्यता की प्रशंसा करता है और काका इसके विपरीत ग्राम्य वातावरण को नागरिक वातावरण की अपेक्षा श्रेष्ठ ठहराता है।[2]

इसी प्रकार काका तथा रूबी के तर्कपूर्ण संवाद हैं जिनमें काका उसे पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण छोडने की बात कहता है तो रूबी उसी सभ्यता को सर्वमान्य कह कर उसकी पूर्ति के लिए उदाहरण भी प्रस्तुत करती है।[3]

प्राय: उपन्यास के सभी संवाद पात्रानुकूल हैं जैसे गौरी के संवाद सर्वत्र नम्रपूर्ण हैं तो रूबी के अहंकारपूर्ण। काका के सर्वत्र विवेकशील संवाद रहे तो विनोद के कृत्रिम।

विवेच्य उपन्यास में संवाद रोचक एवं सजीव हैं, इनमें बौद्धिकता के अतिरिक्त भावपूर्ण संवाद भी परिलक्षित होते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने यत्र तत्र देशकाल संबंधी विविध तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत किया है जैसे हिंडन नदी की बाढ़ में चंदोली ग्राम की दुर्दशा का भयानक चित्रण। इस भयानक वर्णन में भी लोगों के अंधविश्वासों का उल्लेख मिलता है – एक घना पीपल का पेड़ था, आसपास के ग्रामवासियों का विश्वास था कि जो उस पेड़ को देखेंगा उसके घर में दो चार रोज में

---

१. डार से बिछुडी – अ) भली कहाँ राबयाँ, इस चलते पानी का ठौर कहाँ' पृष्ठ : १३

आ) भरी-भरी अखियों डोर बांध घड़े गठे कुएँ में सरका दिये–पृष्ठ : १४

२. दो राहें – पृष्ठ : ५८　　　३. दो राहें – पृष्ठ : ६६-६७

कुछ बुरा अवश्य होगा।'[1] इस प्रकार ग्राम्य जनता में प्रचलित अंधविश्वासों की ओर भी लेखिका ने संकेत किया हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। यत्र तत्र देशज शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है जिससे शैली में स्वाभाविकता आ गयी है। इसकी शैली प्रधानतः वर्णनात्मक है और गौणतः तुलनात्मक, व्यंग्यात्मक तथा चित्रात्मक है। अलंकारों के सुंदर प्रयोग के कारण शैली प्रभावात्मक बनी है। 'तारों भरा नभ बिना चंद्रमा के सुनसान लगता है', उसी तरह चंद्रप्रकाश का परिवार, चंद्रप्रकाश के अभाव में सुनसान लग रहा था।'[2] आदि प्रसंगों में अलंकारो का भी सुन्दर प्रयोग समाया हुआ है। अतः आलोच्य उपन्यास का शिल्पपक्ष अत्यंत सुन्दर तथा प्रौढ हैं।

आपके 'बिखरे काँटे' उपन्यास में संवाद संक्षिप्त एवं सारगित हैं। नाटकीयता का समावेश भी उक्त संवादों में किया गया है। पारो एवं कुंती भाभी के संवाद इस कथन की पुष्टि करते हैं।[3]

पात्रोचित भाषा का प्रयोग किया गया है जिससे कथोपकथन में सजीवता आयी है, महाराष्ट्रीय रिक्शावाला द्वारा मराठी मिश्रित हिंदी बोलना।[4] इसी प्रकार कैलाशसिंह अपनी मातृ-भाषा पंजाबी में अपने विचारों को व्यक्त करना।[5]

यत्र तत्र उपन्यास में तर्कपूर्ण विचारों को व्यक्त करने के लिए दीर्घ कथनों का सहारा लिया गया है, जैसे नलिनी के विवाह को लेकर, विक्रम का दीर्घ कथन, जिस में वह कई सामाजिक समस्याओं को भी व्यक्त करता हैं।[6]

प्रसंगानुकूल वातावरण के चित्रीकरण में लेखिका की अधिक सजग रही हैं। जैसे विवाह के घर में होनेवाले आडंबरों का वर्णन,[7] कालेज में उपद्रवी छात्रों का शरारती वर्णन[8] आदि दृश्यों को सहज रूप से लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

---

१. दो राहें – पृष्ठ : ३
२. दो राहे – पृ. ४४
३. बिखरे काँटे – पृ. ३७–३८
४. बिखरे काँटे – पृ. ६४–६५
५. बिखरे काँटे – पृ. ८०
६. बिखरे काँटे – पृ. ४३–५०
७. बिखरे काँटे – पृ. ३४
८. बिखरे काँटे – पृ. ७७

लेखिका ने विवेच्य उपन्यास में व्यवहारिक तथा मुहावरेदार भाषा का ही प्रयोग किया है। जैसे- "सुनते-सुनते कान पकते जा रहे थे", और भाई की इकलौती बेटी को वह जानबूझकर कुएँ में ढकेल रहा है।" आदि

अंत में यही कहना उचित है कि आलोच्य कृति की भाषा-शैली सरल, सरस एव प्रवाहपूर्ण है।

चंद्रकिरण सोनरेक्सा :

'चंदन चाँदनी' उपन्यास में कथोपकथन का सफल प्रयोग हुआ है। इस में संवाद स्वाभाविक प्रतीत होते हैं क्योंकि पात्रों के बीच वार्तालाप का नियोजन करते समय उनकी रुचि, संस्कार-भावना, विचार-धारा, वाह्य परिस्थितियों का उचित ध्यान रखा गया है। संवादों मे वाग्वैदग्ध्य का भी समावेश हुआ है। राज और गरिमा के प्रेम तथा मान से युक्त संवाद उक्त कथन के प्रमाण हैं।[1] यत्र तत्र संवाद इतने व्यंग्यपूर्ण है जिससे भाषा प्रभावात्मक बन पडी है। निम्नलिखित संवादों में यह शैली पायी जाती है। गरिमा की गरीब देवरानी ललिता के पास जब सूती साड़ी नहीं होती तो रेशमी साड़ी पहनकर रसोई में काम करने लगती है। इस से उसकी सास तथा जेठानी ललिता पर व्यंग्यों का बहार छोड़ती है- सास ने बुड़बुडाकर कहा- "जाने देह में काँटे लगे हैं, जो इतनी जल्दी धोतियाँ फाड़ डालती हैं। सब को बराबर कपड़ा आता है, पर छोटी को सदा यही झींकना रहता है।" जिठानी ने कहा-"वही साल में चार धोतियां मुझे मिलती हैं। मैं तो उन में से मोटीवाली धोतियां मरी पहनती ही नहीं हूँ। वह भी तो मैंने अब की राजलल्ला के ब्याह में नायन और कहारिन को दे दी थीं।"

गरिमा ने धीरे से कहा- "भाभी, तुम्हें अपने मायके से भी तो कपडा मिलता है।

"तो उस में किसी को जलन क्यों हो? भाभी का स्वर प्रखर हुआ- "मायके तो सभी के हैं। फिर भी जिस की जितनी बिसात हो, उसे उसी ढंग से पहनाना चाहिए? अब रसोई चौके में रेशम, मखमल पहना जायेगा तो आने जाने, तीज-त्योहार पर आप ही चिथडे लटकेंगे। बदनामी किस की होगी? ससुर जेठ की।" उक्त कथन से संयुक्त परिवार के चित्रण के साथ साथ दंभी तथा अहंकारी नारियों का चित्रण भी मिलता है।

---

१. चंदन चाँदनी – पृष्ठ : १२६–१२७, १३४–१३६
२. चंदन चाँदनी – पृष्ठ : १४१

वातावरण के अंकन तथा पारिवारिक चित्रण में लेखिका को अत्यंत सफलता मिली है। पारिवारिक चित्रण करते समय लेखिका ने कई जगह प्राचीन और अर्वाचीन सामाजिक स्थितियों की तुलना भी प्रस्तुत की– "उसने सोचा–अन्यथा घर में ही बँद रहकर वह कैसे दिन काटेगी? न जाने पहले की लडकियाँ कैसे रह पाती थी। परंतु पहले घरों में काम कितना होता था? गाय, भैंस, गोबर, कण्डे, दही बिलोना, चक्की पीसना, पानी भरना और समय बचने पर व्रत, अनुष्ठानों, मुण्डन-जनेउवों की तैयारी करना तथा एक दूसरे के घर की आलोचना करना–पूजन, कथा-भागवत और मंदिर भी अधिक समय घेर लेते थे–पर अब नलों का पानी है। मशीन का पिसा आटा है। गाय-भैंस पालना हाथी रखने के बराबर महंगा है। महंगाई ने व्रत, अनुष्ठानों और विवाहों के भोज-समारोहों को संक्षिप्त कर दिया और लड-कियाँ पढ पढकर संसार के अन्य विषयों में भी रूचि लेने लगी हैं।"[1]

स्त्री तथा पुरुष के मनः स्तत्वों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किये जानेवाले प्रसंगों में लेखिका ने अधिकतर व्यंग्य शैली का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–"आज वीरपूजा का युग नहीं है। तलवार द्वारा शौर्य दिखाकर पत्नियों को जीतने का युग भी नहीं है। आज तो पति के पौरुष और योग्यता का एकमात्र नाप है, उस के संपत्ति उपार्जन की क्षमता।"[2]

प्रसंगानुकूल वातावरण की सृष्टि करने के लिए पारिवारिक चित्रण के अतिरिक्त स्कूल, कार्यालय आदि का चित्रण भी अंकित किये गये हैं।

लेखिका ने सरस तथा साहित्यिक हिंदी का प्रयोग किया है। भाषा सरल एवं प्रभावपूर्ण है। यत्र तत्र मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से[3] भाषा सुंदर एवं सजीव बन पडी है। कहीं कहीं व्यंग्यपूर्ण शैली के द्वारा भाषा को रोचक एवं सरस बनाया गया है जैसे–"संसार में मनुष्य सब की आलो-चना सुन सकता है पर अपने विरुद्ध पत्नी की आलोचना नहीं। भारतीय पति तो आज भी पत्नी को मात्र अपना ग्रामफोन समझना चाहता है जो केवल उसी के गाये रेकार्ड बजा सकती है।"[4] यत्र तत्र अंग्रेजी तथा देशज शब्दों के

---

१. चंदन चाँदनी – पृ. : १४६ २. चंदन चाँदनी – पृ. ७३–७४

३. चंदन चाँदनी (अ) न नव मन तेल होगा न राधा नाचेगी।
(आ) दाई से पेट क्या छिपाना है।

४. चंदन चाँदनी – पृ, : २०६

प्रयोग से भाषा-शैली सरस एवं प्रभावात्मक बन पड़ी है। लेखिका ने भाषा को अधिक सुंदर बनाने के उद्देश्य से यत्र तत्र सूक्ष्म भावों की तुलना स्थूल दृश्यों से किया है जैसे– "उनका मन साबुन की गोल बट्टी की भांति बार बार गरिमा की गोद में गिरने को फिसलता था।"[1]

निष्कर्षः यह कहा जा सकता है कि 'चंदन चाँदनी' उपन्यास शिल्प की दृष्टि से एक सुंदर कृति है।

अन्नपूर्णा ताँगडी :

अन्नपूर्णा तांगडी द्वारा रचित 'निर्धनता का अभिशाप' उपन्यास के संवाद चरित्र–चित्रण के विकास में सहायक रहे हैं और वे पात्रों के बौद्धिक स्तर के अनुकूल हैं। प्रारंभिक परिच्छेदों में मीरा, नीला, तथा रजनी के संवादों में बाल–मनोविज्ञान का विश्लेषण उक्त कथन का प्रमाण है।[2]

लेखिका ने समकालीन समाज का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। निर्धन कृषकों पर जमींदार और उसके कारिंदे के अत्याचारों तथा कृषक वर्ग का समस्याओं का वर्णन किया गया है। धन के अभाव में किस प्रकार कृषक लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने में असमर्थ रहते हैं और अपनी पुत्रियों केलिए दहेज न दे सकने के कारण अच्छे वरों को ढूँढने में असमर्थ रहते हैं, इन सभी विषयों का मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में पाया जाता है। सामाजिक वातावरण के चित्रण में आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण जैसे दहेज–प्रथा, जाति–भेद आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण भी पाया जाता है।

उपन्यासकर्त्री ने अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है जैसे "उसी पर अवलंबित थीं उनकी सारी आशायें"[3]

पात्रोचित भाषा का प्रयोग भी पाया जाता है। नूरजहां की भाषा में उर्दू शब्दों और जमींदार की दासी सुखिया की भाषा में पूर्वी हिंदी के शब्दों का प्राचुर्य इस का प्रमाण है।[4]

इनकी शैली वर्णनात्मक होने के साथ–साथ भावपूर्ण भी है।

---

१. चंदन चाँदनी – पृ. : १७३

२. निर्धनता का अभिशाप–पृ. १–७ ३. निर्धनता का अभिशाप–पृ. ९

४. वही पृ. १३१–१५५

'चिता की धूल' उपन्यास में सजीवता तथा नाटकीयता लाने केलिए लेखिका ने कथोपकथन का सहारा लिया है। फिर भी विषय की दृष्टि से उनके पात्रों के संवादों में एकरुपता का अभाव है। उनके पात्रों के संवादों के द्वारा किसी अन्य पात्र के चारित्रिक विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे नीलिमा तथा शिव के संवादों में रंभा की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रभाव पडा है "भाभी राजन मुझ से अवस्था में बडा है, तभी आपको बडी मानता हूँ। -- किसी दिन रंभा को लाउँगा आप के पास। सामाजिक सेवा के क्षण में हम दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विद्यालय स्थापित करने में वह मुझे अपना पूर्ण सहयोग दे रही है। उच्च शिक्षा के साथ ही साथ उसका हृदय अत्यंत उदार है भाभी।"[1]

इसके साथ साथ इनके संवाद संक्षिप्त तथा प्रवाहपूर्ण भी हैं।

इसमें समकालीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। जाति-भेद के कारण असफल होनेवाले प्रेम विवाह का चित्रण, दहेज-प्रथा, अविवाहित कन्या की मानसिक स्थिति का वर्णन आदि विषयों का उन्होंने यथातथ्य वर्णन किया है।

इस उपन्यास में भी शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है। इनकी शैली मुख्यत: वर्णनात्मक हैं। साथ साथ शैली में प्रौढता तथा सरसता लाने के लिए लेखिका ने सूक्ति-वाक्यों का भी प्रयोग किया है। जैसे -'ससार की यह विचित्रता है कि समय मनुष्य के बड़े से बड़े घाव भर देता है। जिस तीव्र आघात से पाषाण तक टुकड़े टुकड़े हो जाता हैं, वही आघात मनुष्य का कोमल से कोमल हृदय सहन करने पर भी नहीं टूतता।'[2]

'मिलनाहुति' उपन्यास में चरित्र-चित्रण में सर्वांगीणता लाने के लिए संवादों का नियोजन किया गया है। लेकिन अधिकतर संवाद देशकाल के निरूपण में तथा उद्देश्य को स्पष्ट करने में ही अधिक सहायक रहे हैं। हिंदू-मुस्लिम द्वेष तथा साँप्रदायिक दंगों के निराकरण के उपायों से संबद्ध संवाद इसी प्रकार के हैं। नवें परिच्छेद में महमूद और हेमंत का वार्तालाप[3] तथा बत्तीसवें परिच्छेद में हेमंत और शौकत का संवाद[4], उद्देश्य प्रधान कथोपकथन के अच्छे उदाहरण हैं। प्रथम परिच्छेद के आरंभ में नज़मा, महमूद और हेमंत के बाल-

---

१. चिता की धूल - पृष्ठ : ७५-७६
२. चिता की धूल - पृष्ठ : ४
३. मिलनाहुति - ४९-५१
४. मिलनाहुति - पृष्ठ : २६२-२६३

सुलभ स्नेह, बालोचित व्यवहारों के माध्यम से संवादों में रोचकता आई है।[1] हेमंत और नजमा के बीच संवादों में उनके स्नेह की पवित्रता तथा गंभीरता का परिचय मिलता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में कथोपकथनों का अच्छा स्थान रहा है।

देशकाल के वर्णन में भी लेखिका की प्रतिभा मुखरित हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में शाहजहाँपुर लखनऊ, कानपुर, अलीगढ आदि स्थानों में होनेवाले सांप्रदायिक दंगों का विस्तृत रूप से वर्णन किया है।[2] इस प्रकार के संघर्षों को दूर करने के लिए ही लेखिका ने अंबिकासहाय तथा सुलेमान की पारिवारिक कथा को चुना है। इस प्रकार सांप्रदायिक विष से मुक्त हिंदू-मुसलमानों का एक दूसरे के तीज-त्योहारों में समान रूप से भाग लेना[3] तथा अपने अपने रीति-रिवाजों का पालन करते हुए भी परस्पर स्नेह भाव को अपनाये रखना[4] आदि विषयों का चित्रण अनेक स्थानों पर चित्रित हैं। लेखिका ने गाँववालों की अन्य सामाजिक प्रवृत्तियों की भी कहीं कहीं चर्चा की है। जैसे निम्न पंक्तियाँ उक्त कथन के प्रमाण हैं–'आजकल तो गाँववाले भी इसीलिए अपने पुत्रों को पढाते हैं कि वे शहर में किसी ऊँची पदवी को पा लें। उनकी गुलामी की प्रवृत्ति का अभी ह्रास नहीं हुआ है। शिक्षा का अर्थ नौकरी ही समझते हैं। वह यह कभी सोच ही नहीं सकते कि उच्च शिक्षित जन भी इस कृषि-प्रधान देश में अच्छे कृषक बनकर नवीन वैज्ञानिक प्रणालियों से अपनी कृषि की उन्नति करके देश को अधिकाधिक उत्तम नाज दें।[5]

एक प्रकार से जनता की अज्ञानता को लेखिका ने व्यंग्य रूप में दिखाया है।

इसके अतिरिक्त पुलिस के अत्याचारों तथा घूसखोरी की प्रवृत्ति से निरीह तथा निर्धन ग्रामवासी किस प्रकार पीडित एवं शोषित होते हैं, इसका हेमंत की अपने पिता के प्रति कथित उक्तियों द्वारा ज्ञात होता है। लेखिका ने इस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक तथा पारिवारिक वातावरण का भी उल्लेख किया है।

---

१. मिलनाहुति – पृष्ठ : १-४

२. मिलनाहुति – पृष्ठ : ४७-४८, १९८, २११-२१८, २५९-२६५

३., ४. मिलनाहुति – पृष्ठ १४-१६, ९२

५. मिलनाहुति – पृष्ठ : ८३

लेखिका ने इस उपन्यास में अधिकतर उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है जैसे–मुफलिस, ख्यालात, पाकीजा, मुतास्सिब, सुकून, फिजा, तबीक, मुनहसिर, मुतवातिर आदि। इस से कथानक के प्रवाह तथा उपन्यास की प्रभावात्मकता में कुछ शिथिलता आ गयी है।

विमल वेद :

'ज्योति-किरण' उपन्यास में प्रसंगानुकूल संवादों के अतिरिक्त कई स्थलों पर तर्कपूर्ण संवादों की भी योजना हुई है। जैसे तृतीय अध्याय में आशा और रमानाथ के परस्पर संवाद[1] तथा बारहवें अध्याय में रमानाथ और कांता के संवाद[2] इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार के संवादों द्वारा उक्ति-वैचित्य तथा पात्रों के विचार का पता चलता है।

यत्र तत्र देश काल वातावरण का भी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, निर्धनता, बेकारी की समस्या आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। तिवारी जी द्वारा अपनाये गये निम्न स्तर के अर्थोपार्जन साधनों का लेखिका ने विशेष रूप से उल्लेख किया है।

आधुनिक युग में शिक्षा के महत्व के बारे में लेखिका ने व्यंग्य किया है। जैसे : "आधुनिक युग में शिक्षा अर्थात् डिग्री का महत्व ही सब से बडा है। नाम के आगे लंबी चौडी डिग्री के बिना कहीं आदर नहीं होता।"[3]

सिफारिश के बारे में लेकिका का करारा व्यंग्य द्रष्टव्य है– "बिना सिफारिश और पीछे के जोर के आजकल नौकरी मिलना असंभव, यदि नहीं है तो भी कठिन अवश्य है। देश की आधी से अधिक जनता का नौकरी पेशा है, दिन रात अफसरों के ताने सुनना, अपमान सहते रहना और एक दिन असह्य हो जाने पर त्याग पत्र दे कर वहाँ से हट जाना, लेकिन इस हट जाने की परिणति भी स्वतंत्र अस्तित्व में नहीं होती।"[4]

इस प्रकार लेखिका ने साधारण जन की बेबसी का करुणात्मक चित्र खींचा है।

इनकी भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। जैसे "बहती गंगा में वे भी हाथ धो सकते थे।"[5] आदि उपन्यास में प्रवाहपूर्ण शैली का प्रयोग हुआ है।

---

१. २. ज्योति-किरण– पृ. ३०-३२, १५०-१५२
३. ज्योति-किरण – पृ. ११० ४. ज्योति-किरण – पृ. १२७
५. ज्योति-किरण – पृष्ठ : २०

कहीं कहीं सूक्ति-वाक्यों का प्रयोग करके भाषा में गंभीरता लाने का प्रयत्न किया गया है जैसे "मनुष्य के अपने सपने होते हैं और जब उन पर आघात होता है तो वह व्यथा प्रायः असह्य हो जाती है।"[1]

इस प्रकार उपन्यास की भाषा परिष्कृत तथा प्रभावात्मक है।

'अर्चना' में कथानक को नाटकीय सौंदर्य का समावेश देने के निमित्त संवादों के प्रति भी ध्यान दिया है। इन्होंने प्रायः संक्षिप्त, सारगर्भित तथा पात्रानुरूप संवादों की योजना की है। इस दृष्टि से अर्चना तथा प्रभा के तथा अर्चना और उसकी भाभी के संवाद अनेकः चुटकीले, भावपूर्ण रहे हैं। भावमय संवादों का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है जैसे अर्चना तथा रमा के ये संवाद –

"अच्छा भाभी, मनुष्य ऐसा क्यों चाहता है कि कोई उसके लिए दुखी हो ?"

रमा ने अर्चना के होंठ चूमकर कहा "इसलिए कि दुखानेवाला किसी को प्यार भी करता है। दुख वही दे सकता है जो किसी को चाहता है और दुखी भी वही होगा जो किसी को प्यार करेगा। मुझे दुखी करना तुझे अच्छा लगता है, वह इसलिए कि तू मेरी बेटी है। मां को रुलाकर बेटी हँसती है, क्यों ?"[2]

इनके अतिरिक्त अशोक तथा उसकी मां के संवादों में मां की ममता झलकती है। विनोद तथा अर्चना के संवादों में विनोद, अर्चना के प्रति अपना असीम प्यार व्यक्त करते हुए भी वह उसी की खुशी को ढूंढता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार इस उपन्यास में सारे संवाद पात्रानुकूल हैं।

लेखिका ने इस उपन्यास में उस वर्ग का चित्रण किया है जो पाप-कर्म करते हुए भी समाज में सम्मानित माने जाते हैं क्योंकि उनके पास धन है। इस वर्ग के प्रतीक दीनानाथ तथा उनका पुत्र राजेंद्र है। लेखिका ने सभ्य समाज में चलनेवाले रिश्वत–प्रथा पर व्यंग्य प्रकट किया जैसे मिस्टर चोपड़ा, सरकार द्वारा चलाये गये 'एंटी करप्शन–मूवमेंट' के प्रबल समर्थक थे फिर भी रिश्वत लेने में कभी चूकते नहीं थे। इस मूवमेंट के बारे में लेखिका कहती है कि "वस्तुतः 'एंटी करप्शन मूवमेंट' के चक्कर में चोपड़ा जैसा कोई आफीसर आज तक पकड़ाई में नहीं आया, आ भी नहीं सकता। क्योंकि चोपड़ा जैसों

१. ज्योति–किरण – पृ. २१ २. अर्चना – पृष्ठ : ४०

को रिश्वत देनेवाले भी तो वही है जो देश के नामी और पहुँचे हुए मनुष्य माने जाते हैं।''[1]

लेखिका ने अरुण के अभावग्रस्त जीवन का चित्रण कर मानों लेखकों की दुर्दशा का परिचय दिया है। उपन्यास के प्रारंभ में अर्चना और प्रभा के विद्यार्थी जीवन के प्रसंग में कालेज के वातावरण का चित्रण कर उपन्यास में स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया है।[2]

इस प्रकार के वातावरण के अतिरिक्त लेखिका ने प्रकृति वर्णन भी कहीं कहीं किया है जो बहुत ही कम है जैसे ''सारा आकाश रंगीन चुनरी में लिपटा दुलहन जैसा लाल दिखाई दे रहा था। धीरे धीरे डूबता हुआ सूरज एकदम डूब गया।''[3]

आलोच्य उपन्यास में सरल तथा व्यावहारिक भाषा का प्रयोग लेखिका ने किया है। 'बेचारी प्रभा आँख बिछाये बैठी रह गई।'[4] ''चोर की दाढी में तिनका'[5] आदि मुहावरों का प्रयोग करके भाषा को सजीव बनाया है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं सूक्ति वाक्यों का प्रयोग करके शैली को अधिक व्यंजनात्मक बनाने का प्रयत्न किया हैं, जैसे ''मनुष्य में जब किसी प्रकार दुर्बलता घर कर लेती है तो वह बात बात पर संकुचित होने लगता हैं और यदि दुर्बलता किसी व्यक्ति केलिए मन में बैठने लगे तो उसके सामने सारा व्यक्तित्व ही कुंठित हो जाता है।''[6]

इस प्रकार यह शिल्प–पक्ष की दृष्टि से एक सुंदर तथा प्रौढ कृति मानी जा सकती है।

आपके 'असली हीरा नकली हीरा' उपन्यास के प्रायः सभी संवाद संक्षिप्त एवं गंभीर हैं। कहीं कहीं संवाद इतने स्वाभाविक एवं नाटकीय शैली को लिए हुए हैं कि लगता है, वे पुस्तक के पात्र न होकर स्वयं हमारे समक्ष तर्क वितर्क कर रहे हों। सूरज एवं पन्ना के संवाद उक्त कथन के स्पष्टीकरण केलिए लिये जा सकते हैं।[7]

संवादों को लिखने में लेखिका ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया हैं, जैसे सूरज तथा पन्ना अशिक्षित होने के कारण उनकी भाषा भी अशिक्षित

१. अर्चना – पृ. ८१ २. अर्चना – पृ. १२–२८
३. वही पृ. ४५ ४. वही पृ. १३
५. वही पृ. ४६ ६. अर्चना – पृष्ठ : ७७
७. असली हीरा नकली हीरा, पृ. १९–२२, ४९–५१ ७१–७५

एवं गंवारु है । उनके कथनों में 'सरम', 'सरग', 'पियार' आदि शब्दों की बहुलता भी पायी जाती है ।[1]

संवादों के माध्यम से पात्रों की मानसिक परिस्थितियों का पता चलता है, साथ साथ धनी वर्ग के लोगों में धन के कारण उत्पन्न गर्व का भी पता चलता है जैसे रामनाथ एवं अपर्णा के मध्य वार्तालाप द्वारा उक्त कथन का स्पष्टीकरण होता है – ''मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहती हूँ ।''

''कहिये''

''हमारे रास्ते से हटने की कितनी कीमत आप चाहेंगे ।''

रामनाथ इस बात पर अचानक स्तंभित रह गया ''जी'',

''जी हाँ, मुझे कीमत बता दीजिए और मेरे रास्ते से हट जाइये ।''

''मुझे खरीदने की हिम्मत है आप में ?''

''मुझ में न हो पर रुपये में जरूर है ।''[2]

उक्त संवादों से अपर्णा के अहंभावी स्वभाव का अवगाहन होता है ।

श्रीमती वेद देश काल वातावरण के प्रति भी सजग रही हैं । जैसे मिल का अहाता मजदूरों के आवास-स्थल, मिल के भीतर के विविध दृश्य आदि विषयों के प्रति लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि का पता चलता है । इसके अतिरिक्त उन्होंने समाज के समकालीन स्थिति पर भी प्रकाश डाला है । समाज में फैले अंध विश्वास के कारण किस प्रकार अशिक्षित जनता ठगी जा रही है इसका पता सूरज तथा पन्ना के अंध विश्वास के द्वारा लेखिका ने बताया है ।[3] इसके अतिरिक्त समाज में फैले ऊँच-नीच वर्ग के बीच की तुलना भी की गई है, जैसे–'कौन नहीं जानता कि आजकल के समाज में दो ही वर्ग सुखी हैं । उच्च वर्ग अर्थात् वर्माजी जैसे लोग और मजदूर वर्ग । सबसे अधिक दयनीय अवस्था है मध्यम वर्ग की, जिसकी सुख-सुविधा के लिए किसी ने कहीं भी कोई कानून नहीं बनाया ।'[4] 'एक को छोड़कर दूसरे के घर बैठ जाना निम्न वर्ग में बुरा नहीं समझा जाता । इसे 'नाता' करना कहते हैं । मामूली-सा भोज सारी बिरादरी को देकर कोई भी आदमी किसी भी औरत को घर में बिठा सकता है । उच्च वर्ग जैसी छीछालेदर इनका समाज नहीं करता । स्त्री और पुरुष के संबंध को ये कुछ अलग ही दृष्टि से देखते हैं । झूठा मान, झूठा

---

१. असली हीरा नकली हीरा – पृ. २०, १९,४ २२

२. वही : पृ. ६७

३., ४. असली हीरा नकली हीरा, पृष्ठ : ९१-९४, ३०

प्यार ये दिखाते ही नहीं । बनी तो साथ है । नहीं बनी तो अलग हो गये । न अदालत का झगड़ा न समाज का डर ।'[1] इस प्रकार लेखिका समकालीन समाज के प्रति यथेष्ट सजग रहीं ।

अन्य उपन्यासों की भाँति प्रस्तुत कृति में भी लेखिका ने सरल, मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है । 'इसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती हैं', 'डूब मर चुल्लू भर पानी में', 'उसके सामाजिक ऐश्वर्य का लोहा नहीं मानता ।'[2] आदि मुहावरों का प्रयोग किया हैं । इसके अतिरिक्त सूक्ति-वाक्यों का प्रयोग करके भाषा में सजीवता लाने के साथ साथ जीवन-दर्शन को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है । जैसे 'मनुष्य रो सकें तो उसके दुख आधे रह जाते है, न रो पाये तो वे दुख जानलेवा बन जाते हैं ।[3] तथा अतीत की भुलाई हुई स्मृतियों का नागपाश जितना मधुर होता हैं उतना ही कड़वा भी ।'[4]

इसके साथ अलंकारों का भी सहज रूप से प्रयोग किया गया है, जैसे :

'कमल के पत्ते पर से पानी जैसे फिसल जाये, इसी तरह किसी भी व्यंग्य का उस पर प्रभाव नहीं पडा ।'[5]

निष्कर्ष : यह कहा जा सकता है कि शिल्पपक्ष की दृष्टि से यह एक प्रौढ रचना है ।

कुँवरानी तारादेवी :

कुँवरानी तारादेवी के 'जीवनदान' उपन्यास की सफलता उसके संवाद-योजना में पायी जाती है । इसके संवाद अत्यंत स्वाभाविक तथा सजीव हैं । जो कथानक के, चरित्र-चित्रण के विकास में और अन्य सभी तत्वों को स्पष्ट करने में भी सहायक रहे हैं । उदाहरण के लिए मंदिर के पुजारी के प्रति देवदासी महाश्वेता की यह उक्ति पठनीय है–'और आज जब कि हमारे भाई अन्न-वस्त्र विहीन भूखे प्यासे और नंगे घूम रहे हैं, तब भगवान को कहाँ से चढाये और क्या चढायें ? लुटा दो बाबा ! मंदिर का यह रत्न भंडार, भगवान के यह जेवर-सिंहासन सब लुटा दो !'[6]

१., २. असली हीरा नकली हीरा, पृष्ठ : ५०, १०, ११, ३६
३. असली हीरा नकली हीरा, पृष्ठ : १३९
४., ५. असली हीरा नकली हीरा – पृष्ठ : ११, ५९
६. जीवनदान – पृष्ठ : ९७

उक्त कथन के द्वारा महाश्वेता का तपोनिष्ठ चरित्र का पता भी लगने के साथ साथ समकालीन जनता का दुखद जीवन का पता भी चलता है।

लेखिका ने मनहर, रेवा और महाश्वेता के संवादों में उनकी आंतरिक दृढ़ता और विवेकशीलता का वर्णन किया है। ताराचंद और बिरजी के संवादों में उनकी हास्य व्यंग्य का स्वाभाविक निर्वाह हुआ है।[1]

उक्त बातों से यह स्पष्ट है कि आलोच्य कृति के संवादों में रोचकता, प्रभावात्मकता तथा मार्मिकता प्रचुर मात्रा में संपन्न हुई।

लेखिका ने इस उपन्यास में बृजपुर नामक गाँव को पृष्ठभूमि में रखकर स्वतंत्र भारतीय समाज की राजनीतिक परिस्थिति का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ – "तकलीफ या जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं इसे झल्लाकर कह देते हैं – भाई क्या बतावें, हमारी गवर्नमेंट का इंतजाम ही खराब है। पर इंतजाम कर कौन रहा है, हमारे अपने भाई तो हैं। वही सब जब अपने कर्तव्य को भूलाकर गड़बड़ करने पर तुले हुये हैं तो गवर्नमेंट बेचारी क्या करे।"[2]

इसी प्रकार दूसरी उक्ति द्रष्टव्य है – "जरूरत पड़ने पर हर एक जमींदार अपने खेतों को बंधक रखता है। यह तो जमींदारों में एक रिवाज-सा है।"[3]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनों में देश काल का यथार्थ रूप चित्रित है। इसके अतिरिक्त जमींदारों का चारित्रिक पतन[4] शहरों में मद्यपान का फैशन[5] आदि विषयों को वर्णित कर लेखिका ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर करारा व्यंग्य करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने आंशिक रूप से ही प्रकृति - वर्णन किया है जैसे बृजपुर का प्राकृतिक सौंदर्य मुरला के इन शब्दों में प्रकट होता है – "कैसा सुंदर दृश्य है कुँवर। लगता है चारों ओर की पहाड़ियाँ जैसे सो रही हैं। उनकी नींद कहीं दूर न जाय, इसलिए नदी बिना कुछ शब्द किये धीरे धीरे चली जा रही है।"[6]

---

१. जीवन - दान – पृष्ठ : १०२
२. जीवन - दान – पृष्ठ : ४०
३. वही पृ० २७
४. वही पृ० ५६
५. वही पृ० ६५
६. वही पृ० २०

लेखिका ने व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है जो पात्रानुकूल है उर्दू तथा देशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग भी यथेष्ट रूप से किया गया है। इसलिए भाषा अधिक रोचक बन पडी है।

यह उपन्यास शैली की दृष्टि से भी सुंदर है, क्योंकि इस में वर्णनात्मक शैली के साथ नाटकीयता तथा भावुकता के गुण भी है।

सत्यवतीदेवी भैया 'उषा' :

'मृदुला' उपन्यास में लेखिका ने पात्रों के चारित्रिक विकास के लिए संवादों का ही अत्यधिक सहारा लिया है। इस में दो प्रकार के संवाद हैं। एक वे जिन में हास-परिहास, पारस्परिक स्नेह आदि भावों का सुंदर समावेश हुआ है। मृदुला, विभा और वृजेंद्र के संवादों में उक्त गुण परिलक्षित होते हैं। दूसरे प्रकार के संवाद वे हैं एक वे जिन में भावुकता का समावेश हुआ है। उदाहरण के लिए वृजेंद्र के प्रति अरुण की उक्ति में मृदुला के गुणों का वर्णन परिलक्षित होता है।"[1]

आलोच्य उपन्यास में वर्तमान सामाजिक समस्याओं के साथ साथ पारिवारिक समस्याओं का भी विशद चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस में विमाता का कटु व्यवहार, विजातीय विवाह के मार्ग में आनेवाली समस्यायें, दहेज समस्या का विकट रूप, दहेजप्रथा द्वारा अनमेल विवाह की संभावनायें, स्वतंत्र रूप से आजीविनोपार्जन करनेवाली नारी के सम्मुख उपस्थित होनेवाली वर्तमान सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं का वर्णन है। यत्र तत्र लेखिका ने सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। जैसे "हिंदू सदा ही भाग्यवादी रहे हैं बुआ जी, फिर मैं ही अपवाद कैसे हो सकता हूँ।"[2] और "असहयोग का काम उन दिनों जोरों पर था। नमक कानून तोड़ा जा चुका था। दिन रात पिकेटिंग जुलूस सभाओं का जोर था।"[3]

इस कृति की भाषा सरल तथा व्यावहारिक तथा मुहावरेदार हैं। कहीं कहीं सूक्ति-वाक्यों के प्रयोग से कृति में प्रौढता आ गयी है। जैसे "मरुस्थल में मरते हुए प्यासे को जिस प्रकार जल की एक बूंद भी अमृत के समान है

---

१. मृदुला – पृष्ठ : १६०–१६१
२. मृदुला – पृष्ठ : १२६
३. वही पृ० १७८

उसी प्रकार प्रेमविहीन जीवन में जरा सी सहानुभूति पा लेना जीवन को लहलहा देने के समान है।"[1]

'क्षितिज के पार' उपन्यास में लेखिका ने संवादों के माध्यम से कथानक तथा पात्रों का चारित्रिक विकास कराया है। इस दृष्टि से अनुमति और ध्वजा के संवाद विशेष रोचक एवं मार्मिक है।[2] आलोच्य उपन्यास में विधवा जीवन की दुर्दशा के चित्रण के साथ साथ विधवाश्रम के संचालकों की कामलोलुपता पर भी प्रकाश डाला गया है। इस उपन्यास की भाषा संतुलित एवं सुगठित है। शैली प्रवाहमय है जैसे जीवन में एक ऐसा भी समय आता है जब युवक और युवतियाँ अपनी ही भावनाओं में बहा करते है। जीवन उनके लिये रंगीन स्वप्न बन जाता है।[3]

सारांशत: लेखिका के दोनों उपन्यास शिल्प-पक्ष की दृष्टि से भी संतुलित माने जा सकते हैं।

श्रीमती सुषमा भाटी :

'गेट कीपर' श्रीमती सुषमा भाटी का एक सामाजिक इतिवृत्ति प्रधान उपन्यास है। लेखिका ने कथोपकथन की ओर अधिक ध्यान दिया है। संवाद कहीं कहीं इतने दीर्घ हो गये हैं जिस से कथा प्रवाह में नीरसता का समावेश हुआ है।[4] इस के अतिरिक्त ऐसे भी संवाद हैं जिनके द्वारा पात्रों के वैयक्तिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों पर उचित ध्यान दिया गया है। जिस के कारण संवादों में सजीवता, स्वाभाविकता, मार्मिकता आदि गुण परिलक्षित हुए हैं। उदाहरण के लिए नयना और अमीर बानू का सरसपूर्ण संवाद प्रस्तुत है–"नयना ने मुंह फुलाकर कहा– "मगर यह तुम से किस ने कहा कि वो निहायत खूबसूरत है ?"

"उस्ताद इमाम कह रहे थे। बताऊँ वह कैसा है ? सुना है, शरीर मोटा, कद नाटा, रंग बहुत काला, दाँत बडे-बडे और गंदे, जो तुम्हें बहुत पसंद आयेगे। और मुंह से ऐसी खुशबू चलती है कि बच्चे को भी मात दे दे। उम्र हैं करीब पचपन की, मगर दिल है सोलह वर्ष के पट्ठे की तरह का।"[5]

---

१. मृदुला – पृष्ठ : ७
२. क्षितिज के पार – पृ. ४–६, ७९–८०, ८६–८८
३. [illegible]ही पृ. १
४., ५. [illegible] कीपर – पृष्ठ : ६६–७१, ७६–८५, २८९–२९९

व्यभिचार, वेश्यावृत्ति, हत्या, बलात्कार आदि सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण करने में लेखिका को सफलता मिली है ।

लेखिका ने अधिकांशत: वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया है । उपन्यास में पात्रोचित भाषा का प्रयोग किया है फिर भी उर्दू-शब्दों के प्रति उन्हें इतना मोह रहा है कि अधिकांश उपन्यास उर्दू शब्दों से ही भरे पड़े हैं । अत: आलोच्य कृति की भाषा उतनी सरस तथा सुंदर नहीं बन पड़ी ।

'ममता' उपन्यास में भी शिल्प-पक्ष उतना प्रौढ नहीं प्रतीत होता । इसमें कथोपकथन अनावश्यक ही दीर्घ बन गये हैं जिस से कथा में नीरसता आ गयी । पंकज, शशि, शैलजा, लीला आदि भावुक पात्र एक ही बात को लेकर अनावश्यक चर्चा प्रस्तुत करते हैं जिस से कथा-प्रवाह में शिथिलता आ गयी है ।[1]

देश काल वातावरण के प्रति भी लेखिका ने उपेक्षा ही प्रकट की है । व्यक्तिगत समस्यायें जैसे प्रेम, द्वेष आदि मनोभावों का चित्रण तो यत्र तत्र किया गया है, किंतु किसी सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्या को लेखिका ने नहीं लिया ।

विवेच्य उपन्यास की शैली अधिकतर नाटकीय है । वर्णनात्मक शैली को गौण रूप से प्रयोग किया गया है ।

भाषा में हिंदुस्तानी का प्रयोग हुआ है ।[2] अत: कहा जा सकता है कि शिल्प-पक्ष की दृष्टि से यह प्रौढ नहीं है ।

सुदेश रश्मि :

'एक ही रास्ता' ऐतिहासिक उपन्यास में सुदेश रश्मि ने कथोपकथन के द्वारा कथानक तथा अन्य तत्वों का विकास करवाया है । संवाद लघु एवं सारगर्भित हैं । संवादों में पात्रानुकूल भाव तो पाये जाते हैं । फिर भी भाषा में स्वाभाविकता नहीं आयी, क्योंकि हिंदू तथा मुसलमान दोनों श्रेणी के पात्र एक ही जैसी हिंदी बोलते हैं । देश काल संबंधी विचारों को भी लेखिका ने

---

१. ममता – पृष्ठ : ३४–३५, ८०–८३

२. ममता – पृष्ठ : १२

संवादों में स्थान देकर वातावरण को अधिक प्रभावात्मक बनाया है। इसके लिए राम भरोसे तथा उसकी पत्नी के संवाद सुंदर उदाहरण हैं– "पहले तो तुम नवाबी खानदान की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते थे।"

"वह समय ही ऐसा था। स्वर्गीय बंगेश्वर सिराजुद्दौला ने बंगाल की बहू-बेटियों को कभी भी कुदृष्टि से नहीं देखा था। उनका आचरण विशुद्ध था, लेकिन सरफ़राज अपने पिता के बिलकुल विपरीत गया है।"

"वह तो शासन की बागडोर को चंद चाटूखोर मौलवियों के हाथों में छोडे विलासिता के झूले में झूल रहा है। रात दिन होनेवाला किसी न किसी अबला का करुण क्रंदन मेरे तो कानों के पर्दों को फाड डालेगा।"[1]

लेखिका ने संवादों को उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यम बनाया है। अतः विभिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न पात्रों के संवादों के द्वारा समकालीन देश-काल से संबद्ध तथ्यों का उल्लेख कराकर, बंगाल के इतिहास की पुनरावृत्ति की है। उपन्यास का दूसरा लक्ष्य राजपूत वीरों एवं वीरांगनाओं का चरित्र उपस्थित करना है, जिसके लिए भी संवादो का सहारा लिया गया है।

आलोच्य उपन्यास की शैली मुख्यतः नाटकीय है। वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग गौण रूप से प्रस्तुत किया गया है। भाषा सरल एवं व्यावहारिक हिंदी है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग भी पाया जाता है। यत्र तत्र मुहावरों का प्रयोग होने के कारण शैली सजीव एवं सरल बन पडी है।[2]

शिवरानी विश्नोई :

'भीगी पलकें' उपन्यास में निम्न प्रकार के संवाद दृष्टिगोचर होते हैं—सामान्य वार्तालाप जिससे चरित्र-विकास में उपयोगी सिद्ध होता है, जैसे ऐसे संवाद जिस में सखियों के बीच के, तथा भाई-बहनों के बीच के वार्तालाप कुछ तर्कपूर्ण संवाद भी हैं जिसमें समकालीन परिस्थितियों का प्रतिबिंब पाया जाता है जैसे आधुनिक नारी की उच्छृंखलता, शृंगार-प्रियता, आर्थिक वैषम्य, मध्यमवर्गीय परिवार की समस्यायें आदि इन संवादों के द्वारा प्रतिफलित होती हैं। मध्यवर्गीय परिवार की समस्याओं में राशन एक समस्या

---

१. एक ही रास्ता – पृष्ठ : ८

२. एक ही रास्ता – पृ. ८, २८, ११८

है। विषय में विजय तथा उसके चाचा कुंदन के संवाद[1] और आधुनिक नारी तथा पुरूष के संबंध में दिनेश, विजय, नीरजा तथा सुषमा के संवाद[2] प्रमुख हैं। अन्य प्रकार के संवादों में दार्शनिक विचारधाराओं की झलक मिलती है जैसे द्वितीय परिच्छेद में मुंशी जी तथा दीवानजी के संवाद[3] इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार दार्शनिक विचारधारा के संवाद कुछ दीर्घ हो गये हैं जिस से मुख्य कथा की गति में कुछ क्षति पहुंची है। सारांश यह है कि आलोच्य कृति के संवाद अत्यंत सफल है।

प्रस्तुत उपन्यास में मध्यवर्गीय तथा अभिजात वर्गीय परिवारों के वातावरण का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त क्लब, चाय-पार्टी, दावत, ब्रिज, गायन-वादन, दहेज, जन्म-दिवस की चहल-पहल आदि सामाजिक रीति रिवाजों के चित्रण में लेखिका को अधिक सफलता मिली है।

इसके साथ पश्चिमी सभ्यता का भारतीयों पर प्रभाव[4], विज्ञान के प्रभाव द्वारा भारतीय दार्शनिक चिंतन मे ह्रास[5], आर्थिक विषमता के कारण सामान्य जनता की दयनीय अवस्था[6], आदि तथ्यों का लेखिका ने विस्तृत परिचय दिया।

समकालीन चित्रण के अलावा लेखिका ने यत्र तत्र प्राकृतिक शोभा का भी वर्णन किया हैं। जैसे "पूर्व दिशा में उषा की माँग सिंदूर चमक उठा था।"[7]

लेखिका ने प्रवाहपूर्ण एवं मुहावरेदार भाषा शैली का प्रयोग किया है। जैसे "चढी हाँडी उतारनेवाले बहुत हैं"[8] आदि का प्रयोग इसके प्रमाण हैं।

प्राकृतिक वर्णन, पात्रों के मानसिक भावों का विश्लेषण, तथा तर्कपूर्ण वार्तालापों के प्रसंगों में लेखिका ने भावुकतापूर्ण काव्यमय भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप–"सद्य : स्नाता सी सरिता नीलवर्ण के परिधान से सजकर चम चमाते हीरक खंडों की मेखला कटि में बाँध पग

---

१. भीगी पलकें – पृ. : ८१–८४
२ भीगी पलकें – पृ. : ३६१–३६४
३. भीगी पलकें – पृ. : १३–१८
४., ५., ६. भीगी पलकें – पृ. : ७, १५, ३८८
७., ८. भीगी पल्कें – पृ. ४५, ६४, २९७

नूपुरों की रिनमिन बजाती–शावक के चंचल नयनों से पिया को खोजती फूलों से आँचल भरे हुए तीव्र वेग से भागी जा रही थी अपने प्रियतम रत्नेश की शांतिमयी गोद में चिर विश्राम के लिए ।"[1]

तात्पर्य यह है कि आलोच्य उपन्यास की शैली अत्यंत प्रौढ़ एवं प्रभावात्मक है।

उमादेवी :

श्रीमती उमादेवी के 'आलिंगन' उपन्यास में संवादों में पात्रानुकूल आचार–विचार, संस्कृति तथा भाषा का यथोचित ध्यान रखा गया। जैसे बाबर की उक्तियों के द्वारा उसके दृढ़ व्यक्तित्व तथा उसकी महत्वकांक्षा के स्वरूप का आभास होता है। और मक्का की उक्तियों में उसके व्यक्तित्व की गंभीरता एवं दार्शनिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।[2]

इसी प्रकार मणिमाला की उक्तियों में उसकी वीरता तथा स्वदेश प्रेम का परिचय मिलता है।[3] इस उपन्यास में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना से अनु-प्राणित होने का भी मुख्य उद्देश्य पाया जाता है।

लेखिका ने कथोपकथनों में सजीवता तथा रोचकता लाने केलिए हिंदू पात्रों द्वारा तत्सम् बहुला हिंदी का तथा मुसलमान पात्रों द्वारा उर्दू शब्दों का प्रयोग करवाया है।

ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण लेखिका ने देश काल परिस्थितियों के प्रति अधिक ध्यान दिया है। इसमें त्रिविक्रमपुरी, नर्मदा तट के देवालय, नर्मदा–क्षेत्र के उत्तरी मार्ग के बीहड़ प्रदेश, अजमेर राज्य के शुष्क मरुस्थलीय प्रांगण, चंदेरी राज्य, पानीपत तथा खनवा के मैदान आदि स्थानों की भौगो-लिक, ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक स्थितियों का विवरणात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

लेखिका ने तत्कालीन वातावरण के संबंध के अनुरूप शिक्षा, धर्म, विवाह, राज्या-रोहण, राज–दरबार, युद्ध आदि विषयों का भी विशद उल्लेख किया है। उनकी विशेषता यही रही कि लेखिका ने देश काल के अनुरूप ही

---

१. भीगी पलकें – पृ. ११३
२. आलिंगन – पृष्ठ : ६५, ७९,
३. वही – पृष्ठ : ४

पात्रों की विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया है – "कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण केवल हिंदुओं को ही नहीं वरन शिया मुसलमानों को भी काफिर समझता था। इसलिए भारतीय युद्ध को जिहाद का स्वरूप देकर उसने अपने समस्त सैनिकों के रग रग में विजय और युद्ध का जोश भर दिया।"[1]

प्रस्तुत उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। इस उपन्यास की शैली वर्णन प्रधान है, जिसमें यथाप्रसंग चित्रात्मकता जिनमें युद्ध वर्णन, राज्य–दरबार का वर्णन, तथा भौगोलिक चित्रण प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें चित्रात्मक वर्णन अधिक हैं जैसे – "चारों ओर हृदय–विदारक दृश्य उपस्थित हो गया हैं। तोपें आग बरसने लगीं और अग्नि गोलें सैनिकों को तुरंत यमलोक पहुंचाने लगे।"[2] यत्र तत्र अलंकारों के प्रयोग से भाषा सुंदर एवं सजीव बन पडी है।[3]

शिवानी :

शिवानी का 'मायापुरी' शिल्प-पक्ष की दृष्टि से भी अत्यंत सुंदर कृति मानी जा सकती है। चरित्र-चित्रण के विकास में संवादों का प्रयोग किया गया है। यत्र तत्र पात्रों के चिंतन-प्रवाह में अन्य पात्रों का समावेश हुआ है। जैसे शोभा के संबंध में सतीश की विचार-धारा द्रष्टव्य है – "वह सामान्य लडकी नहीं थी, उसकी आँखों में अगाध गंभीर्य था, उसकी दुर्बल देह-लता में बुद्ध जैसा तेज था।"[4]

आलोच्य उपन्यास में पात्रानुकूल संवाद-योजना हुई है। शिवकली के कथनों से उसकी स्नेहमयता पर प्रकाश डाला गया है। शोभा की मामी की उक्तियों में यह विशेषता है कि "वह जब भी बोलती हैं, ताने से अथवा गाली देकर।"[5]

विवेच्य उपन्यास में पहाडी वातावरण का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इन में पहाड़ के रीति-रिवाजों का विस्तृत उल्लेख किया गया है, जैसे – "पाहडी स्कूलों में बच्चे यदि बिना टोपी के जायें तो उन्हें कठोर दण्ड मिलता था।"[6]

१., २. आलिंगन – पृष्ठ : ६८

३. आलिंगन अ) पुरी को तीन दिशाओं से घेरकर मंथर गति से प्रवाहित नर्मदा ऐसी परिलक्षित होती थी जैसी कोई अतुल सुन्दरी बच्चे को गोद में रखकर क्रीडा कर रही हो।' पृष्ठ – २

४. मायापुरी – पृष्ठ: २०३ ५. मायापुरी – पृष्ठ : १४२

६. वही पृष्ठ : १

'जनेऊ होने तक लड़कों के बाल नहीं काटते और वे लड़कियों की भाँति चोटी बाँधते हैं।'[1] इसके अतिरिक्त पहाड़ी लोगों में भक्ति के प्रति अंध-विश्वास[2] आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। ग्राम्य वातावरण के अत्यंत सहज चित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं छतों पर कपड़े सुखाना, चूड़ीवाले के आने पर सबका इकट्ठा हो जाना और भिन्न-भिन्न प्रकार से जिज्ञासा व्यक्त करना आदि।[3]

पहाड़ी तथा ग्राम्य वातावरण के अतिरिक्त शहरी एवं उच्च वर्गीय जीवन का भी विस्तृत वर्णन इसमें प्रस्तुत है। जैसे – राजदूत तिवारी जी के व्यस्त राजनीतिक एवं पारिवारिक जीवन की झलक, पाश्चात्य सभ्यता में पत्नी सविता का मद्यपान करना, तथा ढोंगे साधुओं का वर्णन। नेपाल की रानी के राजभवन के दृश्य, उनके रीति–रिवाज आदि का विस्तृत वर्णन।

आलोच्य उपन्यास में वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है।

भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। यत्र तत्र आँचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे "नी खानी झन खै ? – नहीं खाती तो मेरी बला से।"[4] यत्र तत्र देशज शब्दों जैसे 'घुटकने लगते', 'भूँजने को डाल दिये',[5] आदि। कहीं कहीं अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। – जैसे : १. "शोभा की बड़ी-बड़ी तश्तरी–सी आँखों में आँसू डबडबा आये।"[6] इस प्रकार शिल्प पक्ष की दृष्टि से यह कृति सफल मानी जा सकती है।

'भैरवी' शिवानी का एक पर्वतीय कन्या से संबंधित विषय–प्रधान उप-न्यास है जो शिल्प–पक्ष की दृष्टि से भी विशेष उल्लेख्य है। इसके पात्र कम होने पर भी विपरीत वातावरणों में विकसित हुए हैं। उपन्यास के संवाद एक ओर सरल और स्वाभाविक होने के साथ साथ दूसरी ओर तर्कयुक्त तथा प्रधान भी बन पड़े हैं।

संवादों के माध्यम से पहाड़ी लोगों की विचार–धारा तथा तत्कालीन सामाजिक वातावरण का आभास होता है।

१, २. मायापुरी – पृष्ठ : ६, २१ ३. मायापुरी – पृष्ठ : १२०–१२१
४. वही – पृष्ठ : ११० ५. वही – पृष्ठ : १, २, ५
६. वही – पृष्ठ : ८३,

संवादों के माध्यम से लेखिका ने चारित्रिक विशेषताओं के साथ पात्रों की सुंदरता एवं मासूमियत जैसी गुणों पर भी प्रकाश डाला है। राजराजेश्वरी और उसकी सहेली शांति के संवादों के माध्यम से चंदन की अलौकिक सुंदरता पर प्रकाश डाला गया हैं।

"सोचने लगी – क्या दिमाग फिर गया है राजी का जो इस कच्ची उम्र में उसकें विवाह की सोच रही है। पर आप तुम्हारी बिटिया को देखा तो तुम्हारी समझदारी की दाद ही देनी पड रही है।"

"क्यों ?" एक बार फिर राजेश्वरी के शंकालू स्वभाव का सजग शत्रु, गर्दन उठाने लगा।

"पगली" वह हँस कर कहने लगी – "दामी हीरे को क्या समझदार संसारी गाँठ में बाँधकर रखते हैं ? जितनी जल्दी अपने इस अनमोल रत्न को किसी सुप्रतिष्ठित बैंक में जमा कर सको, उतना ही अच्छा है।"[1]

आलोच्य उपन्यास में पहाड़ी वातावरण का सुँदर चित्रण है। साथ साथ श्मशान वातावरण जहाँ सन्यासियों की योग साधना का भयंकर चित्रण भी प्रस्तुत है। यत्र तत्र प्रकृति वर्णन भी प्रस्तुत है। – "आकाश की नीलिमा मानो उस अरण्य को चीरती हुई झपाटे से नीचे उतर आयी थी।"[2]

विवेच्य उपन्यास में अधिकांशतः वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र गीतात्मक[3] एवं स्वगत कथनात्मक[4] शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। चित्रात्मक शैली का उदाहरण – "उनका चेहरा एकदम किसी कुशल बहरुपिये के चेहरे सा रंग बदलने लगता।"[5]

शैली में प्रवाहमयता का गुण निम्न कथन में देखा जा सकता हैं – "दयालू न्यायाधीश ने सचमुच ही उसके सातों खून माफ कर दिये थे। किंतु मुक्ति पाकर भी क्या कारागार के कलंक की अमिट स्याही छूट सकती है ? बेडियाँ कटने पर भी तो काल–कोठरी से छुटा कैदी, मृत्युदंड को नहीं भुला पाता, स्वयं उसकी ही अंतरात्मा उसके पैरों में बेडियां डाल देती हैं।"[6]

उपन्यास की भाषा सुंदर एवं व्यवहारिक है। यत्र तत्र अंग्रेजी शब्दों के साथ गँवारु शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र हिंदी के प्रसिद्ध कहावतों

१., २. भैरवी – पृ. ७१–७२, ९ ३. भैरवी – पृ. : ४७, ५६, ५९
४., ५. वही – पृ. ७२–७३, १५९ ६. वही – पृ. : १६३

तथा मुहावरों[1] के प्रयोग से भाषा सरस, रोचक बन पडी है । बँगला भाषा का भी लेखिका ने अधिक प्रयोग किया है ।[2] इस प्रकार संवाद, देशकाल वातावरण तथा भाषा–शैली की दृष्टि से यह उपन्यास रोचक बन पड़ा है ।

शिवानी का 'कृष्णकली' शिल्प-पक्ष की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण कृति मानी जा सकती है ।

उपन्यास के कथोपकथन पात्रोंचित एवं सरस हैं । कहीं तर्कपूर्ण एवं रोचक संवाद भी हैं । लेखिका ने संवादों के माध्यम से घटनाओं का विकास कराया है । जैसे "हाय अम्मा आप यहाँ कैसी आ गयीं ?"

"जैसे तू आगयी ।" अम्मा ने हाथ की गीली धोती तख्त पर रख दी ।

"हम से तो तू कह आयी थी कि लखनऊ जा रही हूँ और यहाँ बैरागन बनी हम से पहले गंगा नहा ली ।" अम्मा ने हँसकर चुटकी ली और कनखियों से कली के साथियों की विचित्र भीड को देखा ।"[3]

कथोपकथन के द्वारा पात्रों के चारित्रिक विकास तथा उनके स्वभावों पर भी प्रकाश डाला गया है ।[4] संवादों के माध्यम से हास - परिहास की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया गया है ।[5] पात्रों का मानसिक विश्लेषण तथा उनके संघर्ष का चित्रण करने में लेखिका ने स्वगत कथनों का प्रयोग किया है ।[6] संवादों के माध्यम से वातावरण की ओर भी संकेत किया गया है ।[7]

जहाँ तक वातावरण का प्रश्न है, घटनाओं के स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक वातावरण का चित्रण करने में लेखिका सफल रही हैं । लेखिका ने कोढियों के जीवन का तथा समाज में उनकी उपेक्षा के वातावरण का बडा ही करुणार्द चित्रण प्रस्तुत किया है । इस के साथ कहीं कहीं द्वितीय

---

१. भैरवी – अ) पांचों अंगुलियां घी में रहतीं, पृ. ३०
       आ) जानबूझकर मक्खी निगलना – पृ. ४९ आदि ।

२. भैरवी – की हे माया दी, आनबी की – पृ. २९

३., ४. कृष्णकली – पृष्ठ : १०८, १२६–१२८

५. कृष्णकली – पृष्ठ : ८३

६. कृष्णकली – पृष्ठ : २२, ५८, ७०, १४९

७. वही पृष्ठ : ९४–९५

महायुद्ध के पश्चात् के वातावरण की कल्पना की है तो कहीं क्रिसमस के दिन की ।[1] गंगाजल में स्नान कर पवित्र होना आदि जैसे हिंदू धर्म के रीति-रिवाजों पर भी लेखिका ने प्रकाश डाला है ।[2]

उपन्यास की कथन-पद्धति बहुत ही आकर्षक बन पडी है । उपन्यास को आद्यंत पढवाने की क्षमता लेखिका की शैली में निहित है । उपन्यास में विशेषत: वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है । लेखिका की वर्णन-शक्ति अनुपम है । आँटी के द्वारा 'सन बाथ' लिये जाने का दृश्य लेखिका ने अत्यंत व्यंग्यपूर्ण एवं चमत्कारिक ढंग से किया है – "एक तो शायद आँटी के धराशयी होने की विचित्र मुद्रा में उनका बेडौल, मुटापा, किसी अँटे-संटे सीमेण्ट के फटे बोरे' से भरे सीमेण्ट की ही भाँति, जमीन पर गिर कर चारों ओर फैल-सा गया था । दोनों मोटी मोटी बाहों और पुराने बरगद के मोटे-तने सी पुष्ट टाँगों को फैलाये, वे किसी मोटर के पहिए के नीचे पिचकी मोटी मेंढक-सी ही अचल पडीं, सनबाथ ले रही थीं ।"[3] लेखिका ने यत्र तत्र काव्यात्मक, पत्रात्मक, व्यंग्यात्मक तथा आत्म विश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग कर अपनी सिद्धहस्तता का परिचय दिया है ।

लेखिका की भाषा विषयानुकूल तथा पात्रोचित बन पडी है । पात्रोचित भाषा का प्रयोग करते समय लेखिका ने अंग्रेजी शब्दों तथा वाक्यों का बहुत ही स्वाभाविक प्रयोग किया है ।

लेखिका ने उपमानों तथा विशेषणों के प्रयोग में भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है । जैसे कली पर मिस्टर शेखरन की दृष्टि का वर्णन करती हुई लेखिका ने उसके साथ कई विशेषणों का प्रयोग किया है । कहीं उसकी दृष्टि को 'क्षुधातुरदृष्टि'[4] कहा है, तो कहीं 'प्रखर दृष्टि'[5] तो और कहीं 'भूखे व्याघ्र की दृष्टि'[6] और अंत में शेखर की दृष्टि के वर्णन की पराकाष्टा का चित्रण करती हुई लेखिका कहती हैं – "बाप रे बाप ! कहेगा कुछ नहीं, पर आँखों ही आँखों में उसके सारे परिधान उतारकर रख देखा ।"[7]

इसी प्रकार भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए लेखिका ने यत्र तत्र मुहावरों तथा कहावतों का भी प्रयोग किया है ।[8]

इस प्रकार यह उपन्यास वस्तु पक्ष की दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत शिल्प की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है ।

१., २. कृष्णकली – पृष्ठ : ४०–४२, १०८ ३. कृष्णकली – पृष्ठ : ९५
४. कृष्णकली – पृष्ठ : १२६ ५. कृष्णकली – पृष्ठ : १२७
६. वही पृ० : १२८ ७. वही पृ० : १२८
८. कृष्णकली – पृष्ठ : ४७ – 'अस्तीन में साँप लाना' आदि ।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में शिल्प-पक्ष : एक मूल्यांकन

स्वातंत्र्यपूर्व आलोच्य उपन्यासों के शिल्प-पक्ष की समीक्षा प्रस्तुत करते समय यह स्पष्ट किया गया है कि वस्तु-पक्ष की तुलना में शिल्प-पक्ष उतना प्रौढ नहीं बन पाया था। परंतु स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों के शिल्प-पक्ष के अध्ययन से यह स्पष्ट हो रहा है कि इस अवधि में आलोच्य उपन्यासों में शिल्प-पक्ष पर्याप्त प्रौढ एवं विकसित हुआ है।

श्रीमती उषादेवी मित्रा के विवेच्य उपन्यासों में शिल्प-पक्ष को सँवारने का विशेष प्रयास स्पष्ट परिलक्षित है। लेकिन उनकी भाषा तत्सम बहुलता होने से कृत्रिम एवं क्लिष्ट बन पडी है। भावावेश एवं शब्दाडंबर के कारण अनेक स्थानों पर भाव-सौंदर्य का ह्रास दिखाई पडता है।

कंचनलता के उपन्यासों में अधिकांशतः तर्कपूर्ण संवादों का प्रयोग हुआ है। इन कथोपकथन के द्वारा ही जीवन-मूल्यों के प्रति लेखिका का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। यत्र तत्र दीर्घ संवादों के प्रयोग के कारण कथानक के सहज प्रवाह में बाधा उत्पन्न हुई है। गाँधीवादी तथा साम्यवादी विचारों से प्रभावित रहने के कारण लेखिका ने समकालीन राजनैतिक वातावरण की ओर भी संवादों के माध्यम से यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला है। इनकी शैली अधिकतः मनोविश्लेषणात्मक बन पडी है। जैसे डा. उर्मिला गुप्ता का कथन है–"कंचनलता के अधिकतर उपन्यासों में तुलनात्मक चरित्रों की सृष्टि कर अंत में हृदय परिवर्तन द्वारा विरोधी पात्रों को आदर्श पात्रों के प्रभाव में लय होकर दिखाया गया है।"[1] इनकी भाषा सरल, एवं व्यवहारिक है।

---

१. हिंदी कथा साहित्य में महिलाओं का योग – पृ. ३६०

श्रीमती रजनी पनिकर ने अपने उपन्यासों में अधिकतः व्यंग्य शैली के द्वारा पात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियों का चित्रण करने के साथ साथ चेतना-प्रवाह पद्धति अथवा मानसिक चिंतन के माध्यम से पात्रों के अंतर्द्वंद्व का चित्रण भी किया है। उनके उपन्यासों में संवाद मनोविश्लेषणात्मक तथा गंभीर बन पडे हैं। भाषा सरल, व्यवहारिक तथा तद्भव शब्दों से युक्त बन पडी है जिस में उर्दू शब्दों का भी समावेश कर भाषा को आकर्षक बनाया है।

श्रीमती बसंत प्रभा ने उपन्यासों की रचना दो भिन्न शैलियों में की है। 'सांझ के साथी' में घटनाओं के आरोह-अवरोह पर विशेष बल दिया है जब कि 'अधूरी तस्वीर' में वातावरण के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है। यह पत्र शैली में लिखा गया है। इस में संवादों के प्रति अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। अभिव्यंजना पक्ष की दृष्टि से दोनों उपन्यासों में एक जैसी व्यावहारिक एवं प्रवाहपूर्ण भाषा शैली के दर्शन होते हैं। लेखिका ने सामाजिक वातावरण के चित्रण के लिए व्यंग्य की अपेक्षा सहज वर्णन शैली को अपनाया है जिस से उपन्यास में स्वाभाविकता आ गयी है।

सुश्री कृष्णा सोब्रती ने आंचलिक उपन्यासों का प्रणयन कर के इस दिशा में भी लेखिकाओं की सिद्धहस्ता का परिचय दिया है। इनकी, शैली में भाषागत सहजता, सरसता, मधुरता एवं प्रभाविष्णुता आदि गुण पाये जाते हैं।

सुश्री लीला अवस्थी ने अपने उपन्यासों में संवाद, तथा वातावरण के चित्रण में यथार्थ परक शैली का चित्रण किया हैं। लेखिका के इस यथार्थवादी दृष्टिकोण के संबंध में टिप्पणी करते हुए डा. त्रिभुवनसिंह का कथन द्रष्टव्य है-"कुमारी लीला अवस्थी के दो सामाजिक उपन्यास 'दो राहें', 'बिखरे काँटे' मुख्यतः नारी वर्ग की यथार्थ जीवन-चर्चा प्रस्तुत करते हैं। लेखिका द्वारा प्रस्तुत किये गये चित्र इसलिए विश्वसनीय हैं कि उस ने निकट से देखा और स्वयं उनका अनुभव किया।"[1]

श्रीमती चंद्रकिरण सौनरेक्सा ने अपने उपन्यास में शिल्प-पक्ष की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया है। लेखिका ने विशेषतः पारिवारिक वातावरण का चित्रण किया है। जैसे डा. उर्मिला गुप्ता ने कहा-"लेखिका की सब से बडी

---

१. डा. त्रिभुवनसिंह – हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद – पृ. ४९६

विशेषता यह है कि वातावरण का सोद्देश्य चित्रण होने पर भी इस में कथा-नक की सरसता और अभिव्यंजना की प्रांजलता का मणि कांचन संयोग है।[1]

सुश्री अन्नपूर्णा ताँगडी ने सामाजिक वातारण के चित्रण में वर्ग-भेद, सांप्रदायिक वैमनस्य, पति के द्वारा पत्नी की उपेक्षा आदि समकालीन समस्याओं का यथार्थ शैली में चित्रण कर सामाजिक वातावरण को विश्वसनीय बनाया है। भाषा सरल, बोधगम्य, भावपूर्ण बन पडी है।

श्रीमती विमल वेद ने इस बात पर ध्यान दिया है कि उपन्यासों में कथोपकथन का संबंध उस के अन्य सभी तत्वों से बना रहे। भाषा के सरस एवं सहज प्रवाह में लेखिका की छोटी मोटी त्रुटियों का पर्याप्त परिमार्जन हुआ है। अपने उपन्यासों का लोकप्रिय बनाने की शक्ति उन की सुबोध शैली में है।

कुँवरानी तारादेवी की लेखन-शैली की सफलता का अधिकांश श्रेय उनकी संवाद-योजना का है। घटना-विधान और चरित्र-चित्रण ही नहीं अपितु उपन्यास के प्रायः सभी तत्व कथोपकथन से जुडे हुए है। लेखिका ने 'जीवन दान' उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया है। लेखिका की भाषा पात्रानुकूल, उर्दू, तथा देशज शब्दों से मिश्रित बन पडी है। बोलचाल की भाषा को स्थान देने के प्रयत्न में लेखिका ने यत्र तत्र व्याकरण विरुद्ध भाषा का भी प्रयोग किया है।

सुश्री सत्यवती देवी भैया 'उषा' का 'मृदुला' उपन्यास के कथोपकथन, हास-परिहास, वाग्वैदग्ध्य, आदि गुणों से युक्त हैं। यत्र तत्र भावपूर्ण संवाद भी है जिस से भाषा में प्रौढ़ता का समावेश हुआ है। इस में विमाता का कटु व्यवहार, विजातीय विवाह, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह आदि समस्याओं पर प्रकाश डालकर तत्कालीन सामाजिक वातावरण का सजीव चित्रण किया गया है। यत्र तत्र राजनीतिक वातावरण के भी संकेत पाये जाते हैं। भाषा सरल, व्यावहारिक और मुहावरेदार बन पडी है। 'क्षितिज के पार' उपन्यास में कथोपकथन लघु तथा सारगर्भित हैं। इस में समकालीन सामाजिक वातावरण की ओर प्रकाश डाला गया है जैसे विधवा जीवन की समस्या, पुरुष की कामलोलुपता आदि। भाषा सरल एव मुहावरेदार है।

सुश्री सुषमा भाटी के 'गेट कीपर' में संवादों को प्राथमिकता दी गई है। फिर भी यत्र तत्र दीर्घ संवादों का प्रयोग होने के कारण अनावश्यक

१. स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकायें – पृ. : २२७

विस्तार की प्रवृत्ति पाई गयी है। इस में व्यभिचार और वेश्यावृत्ति का वर्णन कर समकालीन समाज की कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है इनके चित्रण में लेखिका ने यथार्थपरक शैली को अपनाया है। इस में उर्दू शब्दों का प्रयोग भी अत्याधिक हैं। 'ममता' में असंबद्ध वार्तालाप की अधिकता है। इस में नाटकीय शैली का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल एवं प्रांजल है।

श्रीमती सुदेश 'रश्मि' का 'एक ही रास्ता' उपन्यास में अधिकतर संवाद लघु एवं सारगर्भित हैं। किंतु भाषा की दृष्टि से वे पात्रानुकूल नहीं है। बंगाल से संबंधित इतिहास पर आधारित कथानक होने के कारण उस समय के राजनैतिक एवं सामाजिक वातावरण का ही चित्रण इस में पाया जाता है। इस में प्रमुखतया वर्णनात्मक एवं नाटकीय शैलियों का प्रयोग किया गया है।

श्रीमती शिवरानी विश्नोई के 'भीगी पलकें', उपन्यास में जहां एक ओर कथानक एवं चरित्र चित्रण को सूचित करने वाले सामान्य संवादों का प्रयोग हुआ है वहां दूसरी ओर तर्कपूर्ण संवादों का जिससे समकालीन देशकाल परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। लेखिका ने सामाजिक तथा पारिवारिक वातावरण के अतिरिक्त प्रकृति के मधुर तथा भीषण चित्र को भी प्रस्तुत किया है। भाषा सरल एवं मुहावरेदार है।

सुश्री उमादेवी ने ऐतिहासिक उपन्यास 'आलिंगन में चरित्र चित्रण केलिए रोचक संवादों का आश्रय लिया है। संवादों में पात्रानुकूल आचार–विचार, संस्कृति तथा भाषा के प्रति भी यथोचित ध्यान दिया गया हैं। लेखिका ने देश काल के निर्वाह की ओर अधिक ध्यान दिया हैं, जैसे राजपूत वीरों एवं वीरांगनाओं का गौरव गान, भारत में मुगल–राज्य की स्थापना के कारण, तत्कालीन रीति–रिवाज, भौगोलिक स्थितियों का यथातथ्य चित्रण आदि। भाषा पात्रानुकूल होती हुई भी अधिकतर साहित्यिक है। यत्र तत्र अलंकारों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा सरस एवं सुंदर बन पडी है। शैली अधिकांशत: वर्णनात्मक हैं।

सुश्री शिवानी के 'मायापुरी' उपन्यास में संवादों का सुंदर निर्वाह हुआ है। उपन्यास में निर्धन एवं अभिजात वर्गों की तुलना की गई है जो तत्कालीन समाज के प्रति उचित ध्यान देने का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त पहाडी लोगों के रीति–रिवाजों पर भी सुंदर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रसंगानुकूल देशज

शब्दों और मुहावरों तथा अलंकारों के प्रयोग से भाषा में सजीवता का समावेश हुआ है। इस उपन्यास की शैलिपक उपलब्धि के संबंध में श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार का कथन द्रष्टव्य है – "उपन्यास की शैली पुराने ढंग की है, कुछ कुछ पिछले बंगाली सामाजिक उपन्यासों के ढग की। पर न सिर्फ उपन्यास में खूब अच्छी पकड है, अपितु लेखिका कुछ सजीव पात्रों का निर्माण करने में भी सफल हुई है। चित्रण और कथानक में कुछ अनावश्यक रूप से गहरे रंग देने का प्रयास लेखिका ने अवश्य किया है।"[1]

'भैरवी' उपन्यास में संवादों के माध्यम से कथानक, तथा चरित्र-चित्रण का विकास कराने के साथ साथ देशकाल वातावरण पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। एक ओर पहाड़ी वातावरण का चित्रण किया गया है तो दूसरी ओर अभिजात वर्ग के विलासपूर्ण जीवन का। योग-साधना का वर्णन भी इस में पाया जाता है। भाषा सरल, व्यावहारिक एवं मुहावरेदार है। यत्र तत्र अंग्रेजी शब्दों के साथ देशज शब्दों के प्रयोग से भाषा रोचक एवं प्रभावशाली बन पडी है।

'कृष्णकली' में संवाद तर्कपूर्ण एवं रोचक हैं। संवादों का उपन्यास के सभी तत्वों से सीधा संबंध है। इस में कोढियों के जीवन का विशद वर्णनहै। पहाडी प्रदेशों का वर्णन, तथा हिंदू धर्म के रीति-रिवाजों पर भी प्रकाश डाला गया है। उपन्यास की कथन-पद्धति अत्यंत रोचक है। विशेषत: वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियो का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त काव्यात्मक, पत्रात्मक, व्यंग्यात्मक, शैलियाँ भी पाई जाती हैं। भाषा पात्रानुकूल तथा विषयानुकूल है। यत्र तत्र अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। अलंकारों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा प्रभावात्मक तथा सुंदर बन पडी है।

स्वातंत्र्यपूर्व के विवेच्य उपन्यासों की अपेक्षा स्वातंत्र्योत्तर में कथोपकथन, वातावरण, भाषा-शैली आदि तत्वों में अधिक कलात्मकता एवं प्रौढ़ता परिलक्षित होती है। संवादों में वैविध्यता, वातावरण में सजीवता, शैली में नवीन प्रयोग, भाषा में आंचलिकतत्व आदि इन उपन्यासों की शिल्पगत उपलब्धियाँ हैं। इन्हीं तत्वों की कलात्मकता एवं प्रौढता ने उपन्यास विधा को स्वातंत्र्योत्तर अवधि में अत्यंत सशक्त, लोकरंजक तथा लोकप्रिय बनाया है।

---

१. आजकल, अक्तूबर १९६१ पृ. ४९–५०

इस समय के उपन्यासों में प्राय: सभी लेखिकाओं ने कथोपकथन के माध्यम से जहाँ घटनाओं को गतिशील बनाया वहाँ यत्र तत्र मार्मिकता एवं वास्तविकता का समावेश कर उस में चमत्कार भी उत्पन्न किया है। कथोपकथन में लेखिकाओं के बौद्धिक उत्कर्ष का पता चलता है। पात्रों के संवादों के द्वारा लेखिकाओं ने उनके स्वभाव का चित्रण कर उनके चारित्रिक विकास को सूचित करने के साथ पात्रों की बातचीत की प्रांजलता, शब्द एवं वाक्यों के प्रयोग, भाषा और पदावली के द्वारा व्यक्ति किस कोटि, वर्ग और देश-काल का है, इस ओर भी संकेत किया हैं। कुछ लेखिकाओं ने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी संवादों को माध्यम बनाया है।

स्वातंत्र्यपूर्व की अवधि के उपन्यासों के संवादों में जहाँ पर अनावश्यक शब्द विस्तार तथा वाक्य-प्रयोग हैं वहाँ इस अवधि के उपन्यास के संवादों में इनका सुधार दिखाई देता है। लेखिकाओं ने प्रमुखतया दो प्रकार के संवादों का प्रयोग किया है — सामान्य तथा तर्कयुक्त। जहाँ सामान्य संवाद सहज, पात्रानुकूल, संक्षिप्त तथा रोचक बन पड़े हैं वहाँ तर्कयुक्त संवाद दीर्घ, विचारपूर्ण तथा समकालीन स्थिति से संबद्ध हैं। इनके अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक, व्यंग्यात्मक, नाटकीयात्मक तथा हास्योत्पादक संवादों का प्रयोग भी यत्र तत्र पाया जाता है। संवादों के माध्यम से विगत कथा का कहीं दुहराव हुआ है तो कहीं भविष्य की घटनाओं की ओर संकेत भी मिलता हैं।

सभी लेखिकाओं ने समकालीन सामाजिक वातावरण का चित्रण किया है। कुछ लेखिकाओं ने परोक्ष या प्रत्यक्ष रुप से राजनीतिक वातावरण की ओर भी संकेत किया है। ऐतिहासिक उपन्यासों के वर्णन में लेखिकायें उस समय के ऐतिहासिक वातावरण के प्रति यथेष्ट जागरूक रहीं। ऐतिहासिक उपन्यासों में युग और परिस्थितियों का चित्रण करने में लेखिकाओं ने विशेषत: वर्णनात्मक शैली का आश्रय लिया है।

अधिकतर उपन्यास सामाजिक वातावरण प्रधान ही हैं, किन्तु यह सामाजिक वातावरण स्त्री-पुरुष तथा उनके परिवार तक सीमित रहने के कारण सामाजिकता का व्यापक रूप इन उपन्यासों में दिखाई नही देता। स्त्री-शिक्षा, वेश्या, दहेज, अनमेल-विवाह, विजातीय विवाह, विधवा-विवाह, नौकरी करने वाली स्त्रियां आदि समस्याओं के चित्रण तक ही अधिकतर लेखिकाओं ने अपने को सीमित रखा है। लेकिन कंचनलता, रजनी पनिकर, शिवरानी विश्नोई, लीला अवस्थी आदि कतिपय लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमताओं का चित्रण कर निम्न, मध्य तथा उच्च वर्गों के लोगों के बीच के संघर्ष को चित्रित किया है। मार्क्स का साम्यवाद, गांधीजी का अहिंसावाद

और भावे जी के सिद्धांतों का यत्र तत्र समावेश कर कंचनलता, उषादेवी मित्रा, रजनी पनिकर, जैसी लेखिकाओं ने राजनीतिक वातावरण का भी अपने उपन्यासों में चित्रण किया है। उषादेवी मित्रा ने वैज्ञानिक प्रगति का चित्रण कर सामाजिक वातावरण के अधुनातन रूप को प्रस्तुत किया है।

दांपत्य जीवन, माता-पिता के उत्तरदायित्वों, सौतेली मां के कटु व्यवहारों आदि का विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण करके लेखिकाओं ने पारिवारिक वातावरण का सजीव एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त शिवानी ने पहाड़ी लोगों के सामाजिक जीवन, उनके आचार-विचारों, रीति-रिवाजों तथा पहाडियों के प्राकृतिक वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया हैं। विवेच्य उपन्यासों में यत्र तत्र युद्ध का कोडियों के आश्रम का तथा ग्रामीण वातावरण का चित्रण भी संपन्न हुआ है। कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास में आंचलिक संस्कृति एवं सभ्यता का चित्रण प्रस्तुत करने के साथ साथ देशकाल चित्रण पर भी स्थानीय रंग (लोकल-कलर चढाया है। शिवानी के उपन्यासों में भी यह स्थानीय रंक देखा जा सकता है।

जहाँ तक भाषा का संबंध है शब्द-चुनाव, पद-निर्माण, वाक्यांश प्रयोग वाक्य-गठन पद्धति, सूक्तियों का प्रयोग, कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग आदि में लेखिकाओं की प्रतिभा का तथा भाषा पर उनके असाधारण अधिकार का पता चलता है। लेखिकाओं ने विवेच्य उपन्यासों में शुद्ध एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा की एक अन्य विशेषता यह है कि स्त्री शिक्षा का प्रसार अधिक होने के कारण इन्होंने अंग्रेजी शब्दों तथा वाक्यों का भी गणनीय मात्रा में प्रयोग किया है। इनकी भाषा तद्भव तथा देशज शब्दपूर्ण भी है जिससे भाषा पात्रानुकूल बन पडी है। प्रांतीयता एवं देशकाल का भी विशेष ध्यान रखा गया है। इन सभी गुणों के कारण भाषा अधिक व्यावहारिक तथा स्वाभाविक बनी है। इतना ही नहीं प्रत्येक लेखिका की कृतियों में कथ्य, वातावरण आदि के अनुरूप एक पृथक शैली भी प्रतिष्ठित हुई है। विवेच्य लेखिकाओं की शैली कलात्मकता की दृष्टि से भी अधिक सफल एवं सुंदर है। शैली के क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं ने स्वातंत्र्यपुर्व की लेखिकाओं की भांति केवल वर्णनात्मक शैली को ही प्रधान न मानकर संवादात्मक, नाटकीय, चित्रात्मक, पत्रात्मक, डायरी, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियों का भी सफल प्रयोग किया है।

इस तरह स्वातंत्र्योत्तर अवधि की हिन्दी की लेखिकाओं के उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताओं का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि अपनी पूर्ववर्ती लेखिकाओं का तुलना में इनमें निश्चित विकास तथा प्रौढत्वा आ गया है।-

स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु उपन्यासों में शिल्प-पक्ष

श्रीदेवी :-

श्रीमती श्रीदेवी का 'कालातीत व्यक्तुलु' वस्तुपक्ष की दृष्टि से जितनी श्रेष्ठ रचना हैं उतनी ही शिल्प-पक्ष की दृष्टि से भी ।

इस उपन्यास में संवादों के माध्यम से पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। जैसे इंदिरा के कथनों से उसके चरित्र पर प्रकाश पडता है। इंदिरा कृष्णमूर्ति से कहती हैं –

"हम सब शुद्ध तेल की मिठाई जैसे मनुष्य हैं कृष्णमूर्ति। बहुत कुछ सोचते हैं। पंख हैं सोचकर उडने का प्रयत्न करते हैं। वास्तव में पंख नहीं हैं। अगर हैं भी तो भीगे हुए। मेरे पंखों को निर्धनता ने भिगा दिया और तुम्हारे पंखों को अत्यधिक धन ने। इस कारण हम दोनों का लक्ष्य एक ही है।....... सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना।"[1]

इंदिरा का ही अन्य कथन – "शायद तुम विश्वास नहीं करोगे मैंने इस शरीर से कभी अधिक प्यार नहीं किया है और न ही द्वेष – उसकी आवश्यकताओं पर घृणा भी नहीं किया, और ऐसा भी नहीं सोचा कि इसके बिना अन्य कोई परमार्थ नहीं है। हमारे चारों ओर पायी जाने वाली प्रवृत्तियां स्वार्थ, द्वेष, अन्याय, भय – ये सब हमारे मन में भी मौजूद हैं। इसलिए इनको देखकर मत डरो ....संसार में व्याप्त विकृतियों को देखकर घृणा करो, परवाह नहीं, घृणा करना भी है। आशायें, स्वप्न, अनुराग, अभिमान को जागृत करो। जब उनके लिए शस्त्र चिकित्सा की आवश्यकता होगी तो बिना संकोच के काटकर बाहर डालो। कभी के बिखरे हुए स्वप्न, अधूरा अनुराग सब को

---

१. कालातीत व्यक्तुलु – पृ. २७४, ३२७–३२८

बाहर फेंको, मन हल्का होगा । जब तक जिंदगी है तब तक जियेंगे कृष्णमूर्ति । इसीलिए कल की समस्याओं को सोचकर अधीर मत बनो ।"[1] इस प्रकार इंदिरा के कथनों से जीवन के प्रति निर्लक्ष्य भावना का तथा उसके स्वच्छंद विचारों का पता चलता है ।

इसी प्रकार कल्याणी के कथनों से उसके विनम्र तथा संकोची स्वभाव का[2] तथा चक्रवर्ती के कथनों से उसके विवेकशील व्यक्तित्व का,[3] कृष्णमूर्ति के कथनों से उसके साहसी चरित्र का[4] और प्रकाश के कथनों से परंपरावादी संस्कारों का[5] पता चलता है । संवादों के माध्यम से सभी पात्रों का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने में लेखिका सफल हुई ।

लेखिका ने सामाजिक वातावरण का विशद चित्रण प्रस्तुत किया जहाँ युवक, युवतियाँ स्वच्छंद रूप से अपने अपने भावी जीवन को बनाने में स्वयं तैयार होते हैं । इसके साथ नौकरी समस्या, दहेज-प्रथा, विधुर जीवन की समस्या तथा नौकरी पेशा करनेवाली लड़कियों की मजबूरियों की समस्या में आदि का चित्रण कर लेखिका ने सामाजिक वातावरण यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास की शैली विशेषतः वर्णनात्मक तथा संवादात्मक है । यत्र तत्र स्वप्न शैली,[6] स्वगत कथनात्मक शैली[7] का प्रयोग हुआ है जिससे भाषा में प्रौढता तथा प्रभाविष्णुता आ गयी है । सूक्ति शैली का उदाहरण – "जब हम जानेंगे कि खो जाना तथा खो लेना हमारे हाथ में नहीं है तब जीवन के प्रति आशायें कम हो जायेंगी ।"[8]

भाषा सरल एवं व्यवहारिक है । यत्र तत्र मुहावरों,[9] तथा कहावतों के द्वारा भाषा सजीव एवं सरस बन पड़ी है । सुंदर उपमानों के प्रयोग में लेखिका ने अपनी सिद्धहस्तता का परिचय दिया है ।[10]

---

१. कालातीत व्यक्तुलु – पृ. २७४, ३२७–३२८

२, ३, ४, ५) कालातीत व्यक्तुलु–पृ. २४०, २२२, १२९, २११

६, ७, ८) वही पृ. २९३–२९४, १२९, १७१

९. वही अ) चापकिंदि नीरुला-अर्थात्, चटाई के नीचे पानी की तरह,पृ. १२८

वही अ) निजम् निलकडमीद तेलुस्तुंदि-अर्थात्, सच्चाई कभी न कभी प्रकाश में आयेगी, पृ. ११८

आ) मुंदु ओच्चिन चेवुलकंटे वेनुक वच्चिन कोम्मुलुवाडि, अर्थात्, पहले आये हुए कानों से भी बाद में आये हुए सींग तेज होते हैं, पृ. ६०

१०. वही मध्यवर्गीय परिवार की उपमा अधमरे खटमल से देना, पृ. ७० आदि।

मालती चंदूर :

'रेणुकादेवी आत्मकथा' में श्रीमती मालती चंदूर ने कथोपकथन के माध्यम से कथानक तथा पात्रों के चरित्र का विकास कराया है। रेणुका की माता और उसके भाई के स्वार्थी स्वभावों का परिचय निम्नांकित संवादों के द्वारा मिलता है। रेणुका से भाई कहता है –

"तुम रुपये कमा रही हो, इसका बहुत घमंड है तुम्हें। कल से तुम्हें घर से बाहर नहीं जाना है।"

मां – "तुम चुप रहो – – जल्दबाजी में कैसे काम होंगे ? वह नौकरी नहीं करेगी तो कैसे होगा ? किसी न किसी को पैसे कमाना ही है।"

भाई – "मैं कमाऊँगा, कोई न कोई नौकरी करके – –"

माँ – "तुम्हें नौकरी मिलने तक ?"

भाई – "तुम ने जो रुपये बचाये हैं उन्हें निकालो" रेणुका अवाक् रहती है।"[1]

उपन्यास में स्वगत कथनों के माध्यम से भी पात्रों का चारित्रिक विकास हुआ है जैसे रेणुका के स्वगत कथनों से उसका चारित्रिक विकास संपन्न हुआ है।[2] अनिल के कथन भी इसके सुंदर उदाहरण है।[3]

वकील और रेणुका के वार्तालापों द्वारा समाज में स्त्री की दयनीय दशा का पता चलता है। जब रेणुका कहती है – "मैं पति द्वारा किये गये किसी भी कर्ज को नहीं चुकाऊँगी और अलग से स्वतंत्र जीवन बिताऊँगी।" तो वकील उसे समझाते हैं – "तुम अकेली रहोगी तो दूसरे पुरुष तुम्हारी अवहेलना नहीं करेंगे ? इस प्रकार सोचना अच्छा नहीं है। चार दीवारों के बीच तुम दोनों के मध्य कुछ भी झगडे चलें, परंतु बाहरी दुनियाँ के लिए यह पता नहीं चलता। इसी कारण पर पुरुष को तुम्हारी अवहेलना करने केलिए अवसर नहीं मिल रहा है।"[4]

लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में विशेषतः सामाजिक वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि धन के अभाव में सगे संबंधियों का व्यवहार कितना कुटिल एवं छद्म बन जाता है और आर्थिक रूप से परतंत्र अबला नारी पर कितने अत्याचार किये जाते हैं।

१, २, ३) रेणुकादेवी आत्मकथा, पृ. ३७, ७५–७९–९१, ९०
४. रेणुकादेवी आत्मकथा–पृ. ९४

प्राकृतिक वातावरण के चित्रण के प्रति भी लेखिका ने ध्यान दिया है।[1] इस तरह वातावरण के प्रति भी लेखिका सजग रही हैं।

इसमें अधिकांशतः आत्मकथात्मक और अंशतः वर्णनात्मक संवादात्मक, मनो-विश्लेषणात्मक तथा स्वगत कथनात्मक शैलियों का प्रयोग पाया जाता है।

भाषा सरल एवं व्यवहारिक है। यत्र तत्र लोकोक्तियों अलंकारों तथा मुहावरों[2] के प्रयोग से भाषा सहज एवं प्रवाहमय बन पड़ी है।

श्रीमती मालती चंदूर ने 'मेघाल मेलिमुसुगु' (बादलों का घूँघट) में शिल्प–पक्ष के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया है। उपन्यास में जहाँ एक ओर सरल संवादों का प्रयोग हुआ है वहाँ दूसरी ओर तर्कयुक्त संवादों का भी। इतना ही नहीं, संवादों के माध्यम से कथानक का विकास कराने के साथ साथ पात्रों की वैचारिक एवं वैयक्तिक विचार धाराओं को भी प्रकट किया गया है। विशाला तथा अरुणगिरि के संवाद इसके प्रमाण में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[3] पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करने में लेखिका ने यत्र तत्र दीर्घ संवादों का सृजन किया है जिससे उपन्यास में नीरसता आ गई है।

सामाजिक वातावरण का भी पर्याप्त चित्रण इस उपन्यास में पाया जाता है। मध्यवर्गीय परिवारों, एवं धनी परिवारों की समस्याओं का तुलनात्मक चित्रण भी इस उपन्यास में प्रस्तुत है। आलोच्य उपन्यास में मुख्यतः वर्णनात्मक शैली है। इसके अतिरिक्त संवादात्मक और नीतिपरक शैलियों का प्रयोग हुआ है। मानव के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक शैली में वर्णन करती हुई लेखिका कहती है– "अलभ्य वस्तु को पाने की इच्छा तथा अपने प्रति उपेक्षाभाव रखनेवालों को अपने अस्तित्व का आभास दिलाने का प्रयत्न करना मानव की सहज प्रवृत्तियाँ हैं।"[4]

इसकी भाषा सरल एवं व्यवहारिक है। यत्र तत्र कहावतों तथा मुहावरों[5] का प्रयोग हुआ है।

---

१. रेणुकादेवी आत्मकथा–पृ. १,२०

२. वही आ मल्लेपुव्वुलांटि अंदम् – पृ. ४२
(चमेली पुष्प की तरह की सुंदरता)

३. मेघाल मेलिमुसुगु – पृ. १३१ ४. मेघाल मेलिमुसुगु –पृ. : ६२

५. वही, (अ) मुंदु नुय्यि वेनुक गोय्यि–अर्थात्, आगे कुआँ, पीछे खाई, पृष्ठ : ३३
(आ) रेंटिकि चेडिन रेवड़ि – अर्थात्, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, पृष्ठ : ३३

मुप्पाल रंगनायकम्मा :

श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा के 'कृष्णवेणी' उपन्यास में शैलीगत नवीनता परिलक्षित होती है। उपन्यास में प्रधानतः पत्रात्मक शैली का प्रयोग होनें के कारण कथोपकथन के प्रति लेखिका विशेष ध्यान नहीं दे पायीं। यत्र तत्र संवादों के द्वारा पात्रों के बीच विजातीय विवाह, बहु पत्नी प्रथा, व्यभिचार आदि समस्याओं के प्रति बिचारों का आदान-प्रदान भी हुआ है।[1] इसके साथ लेखिका ने संवादों के माध्यम से देशकाल वातावरण का चित्रण भी इसके साथ प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर शांता अपनी सहेली कृष्णवेणी से कहती है–"तुम्हे भले ही समाज की परवाह न हो लेकिन समाज तुम्हारी परवाह करता है। गलत कार्य को जो कोई भी करे समाज उसे क्षमा नहीं करता। यदि हम किसी की भी परवाह न कर सबसे दूर किसी जंगल में निवास कर पायें तो अपनी इच्छा के अनुसार रह सकेंगे। वहाँ किसी का परवाह करने की जरूरत नहीं हैं। लेकिन दस लोगों के बीच समाज में जब रहते हैं तब कुछ कुछ नीति-नियमों का हमें पालन करना पडता है।"[2]

इस में समकालीन समस्याओं तथा अंधविश्वासों से पूर्ण सामाजिक वातावरण का चित्रीकरण यथार्थपरक दृष्टिकोण से अंकित किया गया है।

लेखिका ने एक स्थान 'नागार्जुन सागर' बाँध तथा उसके चारों ओर के प्राकृतिक दृश्यों का जीता जागता चित्रीकरण प्रस्तुत किया है।[3] पत्रात्मक शैली का प्राधान्य होने पर भी वर्णनात्मक एवं स्वप्न शैलियों[4] का भी प्रयोग हुआ हैं।

आलोच्य उपन्यास की भाषा सरल एवं व्यवहारिक है। यत्र तत्र उपमानों[5] मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोगों द्वारा भाषा में संजीवता एवं सरसता का समावेश हुआ है।

आपका उपन्यास 'पेकमेडल' में कथोपकथन का प्रयोग पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए तथा उद्देश्य के प्रकटीकरण के लिए किया गया है। निम्नलिखित संवादों के द्वारा, केशवराव का स्वाभिमान व्यक्तित्व तथा राजशेखर का संकुचित स्वभाव दृष्टिगोचर होते हैं।

केशव–"आपका उद्देश्य क्या हैं? विवाहित स्त्री क्या अपने व्यक्तित्व को निभा नहीं सकतीं?"

१, २. कृष्णवेणी – ७२–७६, २५५

३, ४. कृष्णवेणी – पृ. : १७२, १७०

५. कृष्णवेणी - पृ. : २१४, २१७, ३३७

राजशेखर– "हुँ ! व्यक्तित्व ! पेट भर रोटी के लिए दूसरों पर आधारित स्त्री के लिए एक व्यक्तित्व ?"[1]

व्यसनी राजशेखर और उसकी पत्नी भानु के संवादों से राजशेखर का निर्लज्ज व्यक्तित्व और भानु का स्वाभिमानी व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होते हैं। "ताश, ताश कहकर रोने लगी तुम, लेकिन उसी खेल के द्वारा मैंने कितना कमाया है? एक सौ तैंतीस रुपये ! चार दिनों में? ----- पचास रुपये लेकर मन पसंद साड़ी खरीद लो।"

भानु ने उत्तर दिया– "मेरे शरीर के लिए कपड़ों की कमी हुई तो स्वयं आग लगाकर शील की रक्षा कर लूंगी। लेकिन इस पापी धन से नहीं।[2]

आलोच्य उपन्यास में एक ओर अहंकारपूर्ण पुरुषों का विशद चित्रण प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी ओर सुँदर एवं विवेकवान् व्यक्तित्ववाले पुरुषों का भी इस में शिक्षित एवं स्वाभिमानिनी नारी के सामने उपस्थित होनेवाली समस्याओं का विशद चित्रण भी है।

विवेच्य उपन्यास में प्रधानतः वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र स्वप्न स्वगत कथनात्मक शैलियों का भी प्रयोग हुआ है।

भाषा, तेलुगु की व्यावहारिक भाषा है। पात्रों की भावना के अनु-कूल भाषा का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र अंग्रेजी शब्द जैसे 'सिल्की', 'प्याकेट' 'इंटर्व्यू' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहावतों[3] तथा मुहावरो के प्रयोग से भाषा सुंदर एवं सजीव बनी है।

'बलिपीठम्' श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा का ही सामाजिक इतिवृत्ति दुखांत प्रधान उपन्यास है। इससे प्रसंगोचित तथा पात्रोचित संवादों का प्रयोग हुआ है। और वे पारिवारिक विषयवस्तु से संबंधित हैं। उपन्यास के प्रारंभ में करुण समाज का अधिकारी महर्षि आंध्र राज्य के जन्मदाता पोट्टी श्रीरामुलु बाबू और भास्कर के संवादों के माध्यम से करुण समाज के आदर्शों का तथा भास्कर की निस्वार्थ सेवापरायणता का परिचय मिलता है।[4]

ब्राह्मण बाल-विधवा और हृद्रोग से पीड़ित अरुणा, सौभाग्यवती होने की बलवती इच्छा से हरिजन युवक भास्कर से विवाह करती है। परंतु

१, २. पेकमेडलु – पृ. : ११४, ४९

३. पेकमेडलु, पृ. कुंडेडु विषम लो एंत अमृतं कलिपिना वृथा, पृ. ८६
(विष में जितना भी अमृत मिलायें बेकार है।)

४. बलिपीठम् – पृ. ११–२०, ३०–३२, ३२–३६

विवाहानंतर अरुणा में अपने उच्च कुल का अभिमान बढ जाता है। भास्कर तथा अरुणा के वार्तालाप के द्वारा अरुणा में मौजूद उच्च कुल के अहंकार भाव का और भास्कर के विनम्र मानवीय तथा प्रगतिशील स्वभाव का पता चलता हैं।

'अरुणा। कोई भिखारी आये हैं। थोडा खाना दो।' – भास्कर

'अभी? नहीं हो सकता।' अरुणा

'क्यों? अभी तक खाना नहीं पका?' भास्कर

'पक चुका है। अभी तक भगवान को नैवेद्य नहीं चढाया।' अरुणा

"अरुणा ? अभी समय ग्यारह बजे हैं। अब तक कई लोगों ने नैवेद्य चढाया होगा। इस भिखारी की तरह भगवान अब तक भूखा नहीं होगा। एक भगवान इतने नैवेद्य क्या करेंगे ? --- एक बार बाहर आकर देखो, भूखे लोग तुम्हारे आँखों के सामने खडे हैं। उनका पेट भरा हुआ होता तो तुम्हारे खीर को भी वे नहीं लेते।' भास्कर

"ये क्या व्यंग्य है ? ये भिखारी लोग मेरे लिये भगवान से बढकर नहीं हैं ? ...... भगवान, नैवेद्य पूजापाठ आदि बातें आप को कैसे पता चलेंगे ?" अरुणा[1]

इस प्रकार कथोपकथनों के द्वारा लेखिका ने पात्रों के चारित्रिक विकास को प्रस्तुत करने के साथ साथ तर्कपूर्ण संवादों के द्वारा विजातीय विवाह, जाति-पाँति के भेद-भाव आदि समस्याओं पर भी यथेष्ट मात्रा में प्रकाश डाला है।[2] विजातीय विवाहों के संबंध में अरुणा तथा अमला के बीच होनेवाले संवाद उपन्यास के उद्देश्य पर भी यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। अमला जब जेम्स से विवाह करने की बात छेडती है तो उसे मना करती हुई अरुणा कहती है, "आदर्श की स्थापना करने तथा प्रगति पथ में अग्रसर होने के उद्देश्य से विजातीय विवाह करना काफी नहीं है। उसका फल, किसी भी प्रकार का हो उसे अजीवन भुगतना पडेगा।"[3]

लेखिका ने उपन्यास में स्वतंत्र-आंध्र-प्रदेश की स्थापना के लिए श्री पोट्टि श्रीरामुलु बाबूजी के नेतृत्व में चलाये गये आंदोलन का चित्रण कर राजनीतिक वातावरण को भी चित्रित किया है।[4]

---

१. बलिपीठम् – पृ० २०२–२०३
२. वही अरुणा तथा भास्कर के संवाद : पृ० ११३–११४, २८५–२८७
३. बलिपीठम् – पृ० २८५–२८६
४. बलिपीठम् – पृ० ५०–५१

उपन्यास में पारिवारिक वातावरण का सुंदर चित्रण पाया जाता है। लेखिका ने अरुणा के द्वारा ब्राह्मण कुल के आचार विचारों का तथा उनके आडंबर पूर्ण रीति-रिवाजों का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इन आचार-विचारों का निम्नकुल के लोगों से किस प्रकार मेल नहीं हो सकता इसका भी वर्णन इस में है। दूसरी ओर अमला तथा जेम्स के सफल विजातीय विवाह के द्वारा ब्राह्मण तथा ईसाई धर्म के आचार-विचारों तथा रीति-रिवाजों में मेल कराकर दोनों में समझौता करवाया है। इस प्रकार के वातावरण के पीछे परिस्थितियों की अपेक्षा मानसिक समझौते की आवश्यकता के प्रति लेखिका ने विशेष ध्यान दिया है। जेम्स के घर में अमला के द्वारा अमल में लाये जाने-वाले हिंदूधर्म संबंधी आचार-विचार इसी का समर्थन करते है।[1] इस उपन्यास में द्वितीय महासंग्राम के समय बर्मा में घटित घटनाओं का, वहाँ से स्वदेश लौटनेवाले भारतीयों का विवरण प्रस्तुतकर लेखिका ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति भी संकेत किया है।[2]

उपन्यास की भाषा बोलचाल की शिष्ट भाषा है जो कथानक तथा पात्रों के अनुकूल बन पड़ी है। लेखिका ने पारिवारिक वातावरण के प्रति विशेष ध्यान देने के कारण उपन्यास की भाषा में घरेलू बातों, कहावतों तथा मुहावरों का प्रयोग हुआ है। लेखिका ने उपन्यास में मुख्यत: वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। लेकिन यत्र तत्र आत्मकथात्मक[3] तथा स्मृति परक शैलियों का भी प्रयोग पाया जाता है।

'स्त्री' उपन्यास में लेखिका ने स्त्री के विभिन्न रूपों का तथा उनकी समस्याओं का चित्रण अत्यंत आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया है। उपन्यास की कथा का विकास घटनाओं की अपेक्षा विशेषत: संवादों के माध्यम से हुआ है। इस में संवादों के माध्यम से पात्रों के विचारों की अभिव्यक्ति तथा वातावरण का पर्याप्त बोध कराने के साथ साथ उपन्यास के उद्देश्य का भी स्पष्टीकरण कराया गया है। वैयक्तिकता एवं वैचारिकता से पूर्ण कई संवाद इस उपन्यास में देखे जा सकते हैं। स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता के संबंध में पद्मजा अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त करती है – "अज्ञान को हटाकर ज्ञान प्रदान करनेवाली है शिक्षा। ऐसा ज्ञान स्त्री के लिए क्यों आवश्यक नहीं? ·· वह नौकरी करे या न करे शिक्षा का उपयोग अवश्य रहता है।"[4]

---

१. बलिपीठम् – पृ० ८१–९७ २. बलिपीठम् – पृ० ३८७–३८८
३. वही पृ० ४०१, २२५ ४. स्त्री पृ. – ६१–६२

मध्यवर्गीय परिवार की पार्वती अपने स्व सुख को त्याग कर भाई-बहनों का उद्धार करती है। परिवार के सदस्यों का उद्धार करने के लिए रघु तथा पार्वती के संवादों के माध्यम से रघु के सकोच एवं डरपोक स्वभाव का, पार्वती के निर्भीक एवं स्वाभिमान का और दहेज प्रथा के विकट रूप का पता चलता है।[1]

संवादों के माध्यम से वातावरण के संबंध में प्रकाश डालते हुए आंध्र के ब्राह्मण परिवारो के आचार-विचारो का वर्णन किया गया है।[2] विजातीय एवं अंतर्जातीय विवाहो का चित्रण, दहेज प्रथा का विकट रूप, स्त्री-शिक्षा समस्या, स्त्री की नौकरी समस्या आदि का चित्रण कर तत्कालीन सामाजिक वातावरण का जीता जगता वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास में लेखिका ने विशेषत: वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियो का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त स्वागत कथनात्मक[3] तथा पत्रात्मक[4] शैलियो का भी प्रयोग हुआ है।

उपन्यास की भाषा तेलुगु की सरल एवं व्यवहारिक भाषा है। कहावतों, मुहावरों तथा उपमानों[5] के सुंदर प्रयोग से भाषा में प्रांजलता एवं प्रवाहमयता आ गई हैं।

'रचयित्री' में रंगनायकम्मा जी ने कथोपकथन तत्व का विशेष प्रयोग किया है। संवादों के माध्यम से लेखिका ने कथानक तथा पात्रों का चारित्रिक विकास भी कराया है। जव सगे भाई के सामने पति द्वारा विजया अवहेलित होती तो वह उत्तर देती है – "मेरे बारे में आप एक बात जान लीजिये। आत्माभिमान ही मेरा प्राण हैं। साँस के बिना मैं जीवित रह सकती हूँ लेकिन आत्माभिमान को छोडकर नहीं।"[6] संवादों में रोचकता के साथ साथ विश्लेषण का भी समावेश हैं, जैसे – मोहन – "शिक्षित लोगों के वार्तालापों द्वारा तर्क उत्पन्न होते हैं।" विजया – "अशिक्षित लोगों के वार्तालापों में भी तर्क दिखाई देता है, लेकिन वह लडाई का रूप धारण करता है।"[7]

---

१. स्त्री पृ० १००–१०४
२. स्त्री – पृ. १५
३. स्त्री – पृ ९, १३, ३४७-३४८
४. स्त्री – पृ. २७४-२७७
५. स्त्री – जैसे अ) पेट तालाब हो जाना–अर्थात् दुख की तीव्रता का प्रदर्शन
६. रचयित्री – पृ. १४६
७. रचयित्री – पृ. १४

यत्र तत्र पतिव्रता नारी के संबंध में तथा विवाह बंधन के प्रति लेखिका के विवाद द्रष्टव्य हैं। इसके अतिरिक्त पुराण आदि ग्रंथों की चर्चा के प्रसंगों में संवाद दीर्घ बन गये हैं।[1]

मोहन तथा विजया के संवादों में मोहन का अहंकार तथा विजया का निर्भीक व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है।[2]

लेखिका ने अधिकतः पारिवारिक वातावरण के साथ अंशतः सामाजिक वातावरण पर भी प्रकाश डाला है। वर्तमान महिला मंडली द्वारा व्यर्थ खर्चों का वर्णन करती हुई लेखिका व्यंग्य करती है।[3] लेखिका ने मैसूर, बैंगलूर, तिरुपति आदि के मंदिरों का वर्णन[4] यत्र तत्र किया है।

उपन्यास की शैली अधिकांशतः संवादात्मक तथा अंशतः वर्णनात्मक, पत्रात्मक[5] तथा व्यंग्यात्मक शैलियों का प्रयोग पाया जाता है। भाषा सरल एवं प्रवाहमय है।

'कळ एंदुकु' उपन्यास में उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखिका ने संवादों को माध्यम बनाया है। संवादों के माध्यम से कथा का विकास, पात्रों के चारित्रिक विकास तथा सामाजिक वातावरण का चित्रण कराया गया है। कलाबाला के पिता बलरामय्या तथा उसकी सास के संवादों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक संकुचित विचारधारा का परिचय मिलता है जैसे–"मैंने ही लडकी को वीणा बजाने के लिए बाध्य किया है" सास–"घरों में गाना बजाना अच्छा लगता है? आप ही कहिये! वह जिन लोगों के लिए अच्छे लगते हैं, उसी घर में शोभा देते हैं।"[6]

उक्त कथन से पता लगता है कि उस समय समाज में गाना बजाना वेश्याओं के घर ही चलता है। व्यंग्यपूर्ण संवाद हैं।

मोहिनी तथा गोपाल के तर्कपूर्ण संवादों द्वारा जहाँ पुरुषों के प्रति मोहिनी का क्रोध व्यक्त होता है वहाँ गोपाल का सौम्य व्यक्तित्व प्रस्फुटित होता है। जैसे : मोहिनी कहती है– 'मेरी माँ वीणा बजाने के लिए तरसती थी। - - - अंत में उन्होंने माँ के प्राणों को भी क्रूरता से तथा अमानुषिकता से हत्या की है आप जानते हैं।" गोपाल कहता है– "आप की माँ के प्रति जो घोर कृत्य हुआ है उसके प्रति आज का कोई भी संस्कारवान् मानव शरम के

१., २. रचयित्री – पृष्ठ ८१–१००, ३०३
३., ४. रचयित्री – पृष्ठ १८८, ३१६-३१९
५. रचयित्री – पृष्ठ ३५६
६. कला एंदुकु – पृ. : ३३

मारे सिर झुकाता है। लेकिन उसके लिए आप के पिता को दोषी नहीं ठहरा सकते। उस समय साधारण मानव समाज के हाथों में खिलौना है।"

मोहिनी – "समाज का अर्थ क्या है ? मेरे पिता जैसे पुरुषों द्वारा ही समाज का निर्माण हुआ है। उसके विचार ही सामाजिक नियम बने हैं।"

गोपाल – "हाँ, उस समय समाज में आप के दादा जैसे लोग भी शामिल हैं।"[1] मोहिनी, गोपाल तथा सुधाकर से अपना तर्क प्रस्तुत करती है कि चित्र कला या साहित्य जो भी हो उसके चित्रीकरण में सामाजिक प्रयोजन का होना आवश्यक है।[2]

गोपाल, मोहिनी तथा सुधाकर को अपने तर्क द्वारा समझाता है साथ साथ कला कला के लिए न होकर जीवन के लिए होना चाहिए।[3] इस उद्देश्य की पूर्ति में संवाद दीर्घ बन गये हैं जिस से कथा-प्रवाह में शिथिलता आ गई है। इस के अतिरिक्त मोहिनी एवं नृत्यकला के, गुरू के संवादों के माध्यम से लेखिका ने मोहिनी के स्वच्छंद एवं उच्च शिक्षा पाने की महत्वकांक्षा का चित्रण तथा गुरू के लालची स्वभाव का चित्रण प्रस्तुत किया है।[4]

इस प्रकार आलोच्य उपन्यास में संवादों का प्रयोग लेखिका ने उद्देश्य की पुष्टि करने के कारण कथा-प्रवाह में शिथिलता आ गयी है।

प्रस्तुत उपन्यास में सामाजिक वातावरण का चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। सामाजिक समस्याओं के साथ साथ लेखिका ने भारतीय कलायें जैसे संगीत, नाट्य, चित्र-लेखन आदि सभी विषयों का सम्यक ज्ञान प्रस्तुत कर उपन्यासों को आकर्षक रूप प्रदान किया है। कलाबाला पात्र के माध्यम से पुरुष के अहं के कारण नारी की दयनीय स्थिति का पता चलता है।[5] अंत में मोहिनी और सुधाकर के वैवाहिक जीवन का समझौता दिखाकर लेखिका ने यही सिद्ध किया कि स्त्री पुरुष के बीच का संबंध उसी समय स्थाई एवं सुख-दायक बन सकता है। मोहिनी के नृत्यकला के गुरू रामशास्त्री का मोहिनी के प्रति संकुचित व्यवहार को दिखा कर, यही संकेत देती कि वर्तमान समाज में अधिकांश गुरू केवल धन लोलुप हैं।

---

१. कल एंदुकु – पृ : १६७–१६८
२. कल एंदुकु – पृ, १६३–१६४, २७३–२७५
३. कल एंदुकु – पृ. : ३२१–३२५, ३३०–३३७
४. कला एंदुकु – पृ. : २१५–२१७
५. कला एंदुकु – पृ. : ३९–४१

इस उपन्यास में वर्णनात्मक, संवादात्मक, हास्य तथा पत्रशैलियों का प्रयोग हुआ है। भाषा सुंदर एवं व्यावहारिक है। अलंकारों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग यत्र तत्र किया गया है जिस से भाषा सुंदर एवं सजीव बनी है।

तेन्नेटि हेमलता.

श्रीमती तेन्नेटि हेमलता ने 'वनकिन्नेरा' उपन्यास में कथोपकथन के द्वारा घटनाओं में नाटकीयता लाने के साथ साथ अपने निजी विचारों को भी व्यक्त किया है। कथोपकथन में यत्र तत्र ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति की प्रणाली अपनायी गयी गयी है। उपन्यास के संवाद पात्रों के चरित्र चित्रण के अनुकूल प्रयुक्त हुए हैं। कथोपकथन से हमें पात्रों के वर्ग, देश काल तथा संस्कारों का पता चलता है। इस का सीधा संबंध कथानक के विकास[1], पात्र चित्रण[2], वातावरण तथा शैली से भी है। लेखिका ने पात्रों के वार्तालाप से समाज के रीति-रिवाजों के प्रति व्यंग्य किया है। विधवा के गर्भवती होने पर समाज जब उसको कुलटा कहता है तो वनकिन्नेरा, विधवा का पक्ष लेकर कहती है— "उसे कैसे गल्ती कहा जा सकता है? सृष्टि में प्रत्येक मादा-जानवर को माँ बनने की योग्यता है।"

"लेकिन पति के मरने के बाद ? .... "

"मरे तो कितने दिनों तक रोती बैठेगी ? जो जिस काम के लिए पैदा किये गये हैं तो उन्हें उस प्रयोजन को पूरा करना चाहिये।"

दीवानजी से अपनी बात का समर्थन कराती हुई वनकिन्नेरा कहती है- "दीवान जी। प्रत्येक प्राणी का सर्वप्रथम अधिकार है सृष्टि करना और अपने वंश का उद्धार करना है न ?"[3]

लेखिका ने सभ्य समाज तथा विवाह व्यवस्था पर भी वनकिन्नेरा तथा दीवानजी के बीच होनेवाले संवादों के माध्यम से व्यंग्य प्रस्तुत किया है।[4]

लेखिका ने साधारण तथा तर्कयुक्त[5] दोनों प्रकार के संवादों का प्रयोग किया है। और संवादों के माध्यम से काशी के ढोंगे साधुओं द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों तथा व्यभिचार आदि का यथार्थ चित्रण भी प्रस्तुत किया है।[6]

लेखिका ने हास्य मिश्रित व्यंग्य संवादों का भी यथेष्ट मात्रा में प्रयोग कर उपन्यास को रोचक बनाया है।

१, २. वनकिन्नेरा – पृ. : ९, ७
३. वनकिन्नेरा – पृष्ठ : ९१
४. वनकिन्नेरा – पृष्ठ : ५७' ५८
५. वही ५४, ५७-५८, ९०-९८
६ वही ७३-७४

लेखिका ने इसमें जंगल तथा नगर जीवन के वातावरणों का जीवंत चित्रण अंकित किया है। आधुनिक सभ्य समाज के रीति-रिवाजों तथा सीमाओं में बँधे हुए जीवन तथा आचरणों की तुलना वन में स्थित जीव–जंतुओं के आचार–व्यवहार तथा रहन–सहन से करा कर दोनों में प्राप्त विषमताओं का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। वातावरण का चित्रण विशेषतः वनकिन्नेरा तथा दीवानजी के सवादों के माध्यम से कराया गया है। आजकल सभ्य समाज के नाम पर होनेवाले अविनीति, अत्याचार तथा स्वार्थपरक बुद्धि का खंडन कर लेखिका ने वनकिन्नेरा के माध्यम से मनुष्य-जीवन के वातावरण की अपेक्षा वन जीवन के वातावरण को श्रेष्ठ सिद्ध किया है। देशकाल वातावरण के साथ साथ लेखिका ने यत्र तत्र प्रकृति वर्णन के सुंदर चित्रण प्रस्तुत किये हैं।[1]

उपन्यास में अधिकांशतः वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। गौण रूप से स्वगत कथनात्मक[2], ध्वन्यात्मक[3] तथा हास्य मिश्रित व्यंग्य[4] तथा पत्रात्मक[5] शैलियों का प्रयोग हुआ हैं।

उपन्यास की भाषा तेलुगु की सरल एवं प्रभावोत्पादक भाषा है। भाषा पात्रोचित बनने के साथ साथ लेखिका के मौलिक उपमानों के प्रयोग से, भाषा और भी सरल एवं स्वाभाविक बन पडी है।

'रक्त पंकम्' में आत्मकथात्मक शैली को अपनाने के कारण संवादों की अधिकता नहीं रही है। फिर भी थोडे बहुत संवादों द्वारा पुरुषों की कामलोलुपता, विधवा एवं अनाथ स्त्रियों की दयनीय एवं जुगुप्सापूर्ण जीवन–गाथा का चित्रण, समाज में व्यभिचार समस्या आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है।[6]

सुगुणा और राजी के संवादों के द्वारा समाज का सडा हुआ पक्ष सामने आता है। जब राजी व्यभिचार करने से ऊब कर सुगुणा से इसके अंत होने की बात सोचती है तब सुगुणा कहती है – "जब तक भूख का दाम, स्त्री के शील के दाम से बढकर रहेगा तब तक हमें इसी अवस्था में रहना पडेगा।"[7]

लेखिका ने इस उपन्यास में व्यभिचार का जुगुप्सा पूर्ण वातावरण दिखाकर उसका खंडन करने का प्रयास किया हैं। इसके साथ उन अनाथ शरणालयों तथा आश्रमों पर भी व्यंग्य कसा है जो अंदर से व्यभिचार गृह हैं।

---

१. वनकिन्नेरा–पृ. ११८–११९, ५३   २, ३) वनकिन्नेरा – पृ. ७१, ५
४, ५) वही पृ. ५७–५९, १४४–१४७
६, ७. रक्तपंकम – पृ. ५८, १४२

इस उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का ही अधिकांशतः प्रयोग किया गया है। यत्र तत्र संवादात्मक एवं स्वप्नात्मक शैलियों[1] का प्रयोग भी हुआ है। वर्णनात्मक शैली द्वारा मेहंदी बाजार का वर्णन किया गया है – "मेहंदी बाजार हैदराबाद के इतिहास में ही नहीं बल्कि आंध्र के इतिहास में भी अद्भुत है, ख्यातिप्राप्त भी है, ऐसा कहा जा सकता है। मानवता की सारी गंदगी को यह ड्राइनेज स्पांज के समान अपने में समा रहा है।[2]

इसकी भाषा तेलुगु की व्यावहारिक एवं बोलचालू भाषा है। मोहनवंशी उपन्यास में पौराणिक कथा की पृष्ठ भूमि में लेखिका ने सामाजिक समस्याओं के साथ नारी के प्रेम एवं भावमय जगत का चित्रण प्रस्तुत किया है। संवाद सरस एवं काव्यात्मक हैं। उदाहरणार्थ – राधा और कृष्ण के संवाद द्रष्टव्य हैं –

"वंशी"
"राधा"
"वंशी तुम्हें यह सौंदर्य किसने दिया ?"
"राधा के अधरों से मैंने चोरी की।"
"उस बाँस की छडी को देखकर मुझे ईर्ष्या हो रही है।"

"यह मोहन वंशी है – तुम्हीं ने तो ऐसा कहा। ऊपर से मुझे भी ऐसा ही पुकारती हो .... फिर ईर्ष्या क्यों ?"

"स्त्री के आंतर्य की सीमा का .... अभी पता नहीं चलेगा। वह मुरली ही मैं होती .... "

"फिर तुम कौन हो ?"
"तुम्हीं मैं हूँ।"
"फिर मैं कौन ?"
"मैं ही तुम"
"राधा"

"वंशी, तुम मेघ हो तो, उस मेघ का पानी मैं हूँ। तुम मुरली हो तो उसका गान हूँ मैं .... तुम शरीर हो तो मैं आत्मा हूँ।"[3]

---

१. रक्तपंकम – पृ. ४०–४१ २. रक्तपंकम् – १२४
३. मोहनवंशी – पृष्ठ : २९

कृष्ण तथा राधा के संवादों के माध्यम से दार्शनिक विचारों की अभि-व्यक्ति हुई है। कृष्ण, राधा से कहता है कि संसार में कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है सभी का विकास होना तथा अंत होना अनिवार्य है। आगे कहता है कि सत्य, सुख तथा सौंदर्य के कारण ही जीवन उन्नति को प्राप्त कर रहा है।[1]

अर्जुन तथा कृष्ण के संवादों के द्वारा कुरुवंश के इतिहास का विशद वर्णन मिलता है।[2]

नंद, कृष्ण तथा बलराम के संवादों के माध्यम से देवभूमि का वर्णन नारी की स्वेच्छा–जीवन और मातृत्व की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है, उसी प्रकार का वातावरण कृष्ण अपने राज्यों में प्रवेश करवाना चाहता है।[3]

अक्रूर तथा कृष्ण के संवादों से कृष्ण की भावना का पता चलत है[4]
'कृष्ण ! कल तुम्हें सभा मंदिर में आना होगा। वहाँ तुम्हारा 'पट्टाभिषेक' करेंगे।' अक्रूर ने कहा।

'भूल रहे हो अक्रूर ! वह प्रजातंत्र भवन है। कल जो मेरे साथ होगा उसे सम्मान कहा जायेगा।'[5] कृष्ण ने कहा !

प्रेम की महत्ता कृष्ण एवं राधा के संवादों से स्पष्ट होता है। राधा कहती है–'प्रेम ही प्रेम का भूल है–मेरे विचारों में संपूर्ण विश्व, प्रेम-बंधन के ही कारण चैतन्यवान बन रहा है। इस जीवन में मुक्ति का हेतु भी प्रेम ही है–इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति को या किसी प्रयत्न को सार्थकता दिलाने का माध्यम भी प्रेम ही है। इससे बढकर और एक है। प्रेम तथा आराधना के द्वारा तुम्हें पाना आसान है।'

'मुझे पाना ही जीवन का लक्ष्य है, इस प्रकार तुम्हारे तो कोई नहीं सोचेगा कृष्ण ने कहा।

''वह दिन जरूर आयेगा। यह चिर अचिर संसार सारा कृष्ण प्रेम में डूब जायेगा। तुम महान व्यक्ति हो वंशी, भगवान हो।'' कहा राधा ने।[6]

कुरुक्षेत्र संग्राम में जब अर्जुन युद्ध करने से अस्वीकार कर देता है तो कृष्ण उसे गीतोपदेश देकर धर्म संस्थापन की ओर प्रेरित करता हैं। इस कथन की पुष्टि में कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद द्रष्टव्य हैं।[7]

---

१. मोहनवंशी – पृष्ठ : ५१-५३ २. मोहनवंशी – पृष्ठ : १३३-१४४
३. वही पृष्ठ : ३३-४२ ४. वही पृष्ठ : ९१,
५., ६. मोहनवंशी – पृ. १७०, १७०
७. मोहनवंशी – पृ. २४९-२५७

श्रीमती लता ने विवेच्य उपन्यास में कृष्ण की जीवन-गाथा तथा तत्संबंधी वातावरण की सृष्टि तो की है। फिर भी उसमें लेखिका ने अपने मौलिक विचारों की पुष्टि की है। स्वच्छंद जीवन, नारी-पुरुष का स्वच्छंद मिलन तथा नारी की स्वतंत्रता, मातृत्व की महत्ता आदि बातों पर विशेष ध्यान दिया है।

आलोच्य उपन्यास की शैली वर्णनात्मक, संवादात्मक, काव्यात्मक एवं चित्रात्मक है। भावात्मक शैली का भी सुन्दर प्रयोग इसमें मिलता है। जब कृष्ण के विरह में गोपियां तडपती हैं तो उनके सभी संवाद भावात्मक बन पडे हैं। यहाँ तपती, चंद्रिका तथा राधा के भावात्मक कथन विशेष पठनीय सिद्ध हुए हैं।[1]

भाषा व्यावहारिक, सुंदर तथा पात्रोचित है। भाषा की प्रवाहमयता का उदाहरण राधा की वेदना में स्पष्ट है – 'मेरे हृदय के साथ मेरी फूलदानी भी शून्य हो गयी है। मुझे ही समझ में न आनेवाली वेदना मुझ में व्याप्त है– कल्पनाओं में तुम्हें समाकर यमुना तट पर विहार करने का प्रयत्न किया। वह सुख की ज्वाला मेरे जीवन को ही दग्ध कर रही है। वंशी तुम कौन हो ?'[2] इस प्रकार काव्यमयी एवं सुष्ठु भाषा के प्रयोग से उपन्यास अत्यन्त रोचक बन पड़ा है।

कोडूरि कौशल्यादेवी :

'चक्रभ्रमणम्' में लेखिका ने संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र, कथानक, एवं उद्देश्य पर प्रकाश डाला है।

निम्नांकित कथोपकथन में माधवी का आदर्शपूर्ण चित्रण के साथ-साथ सभ्य समाज की फैशन-परियों के मनस्तत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

'मुझे रेडियो सुनने के लिए भी समय नहीं मिलता। काम करती हुई ही सुनती हूँ। खाना बनाना, परोसना सब स्वयं न करूँ तो मुझे तृप्ति नहीं मिलती। जब कुछ आराम मिलता है, तब अखबार पढने या कुछ लिखने में ही समय कट जाता है। असल में जो समय है वही काफी नहीं होता तो गप्पे लडाने की समस्या ही कहाँ उठती ?' माधवी ने धीमी स्वर में कहा।

'खाना बनाने तथा परोसने के लिए ही हमने जन्म लिया है ? पैसे फेंके तो बहुत नौकर मिलते हैं।' अतिशयपूर्ण स्वर में एक महिला ने कहा।'

१., २. मोहन वंशी – पृष्ठ : ५६-५८, १०१

'– – जहाँ तक खाना बनाने का सवाल हैं मुझे बहुत ही चिढ हैं। खाने के अलावा मैं रसोई घर की तरफ ही नहीं जाती। हर समय रेडियो के साथ ही मेरा समय कट जाता है। चार बजते ही शाम को क्लब न जाऊँ तो मुझे चैन नहीं मिलता। सिनेमाओं की बात ही मत पूछो। यह सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुम घर में ही कैसे बैठी रहती हो।[1]

संवादों के माध्यम से कथानक का विकास कराया गया है। डा. चक्रवर्ती तथा उसकी पत्नी इसके लिए सुंदर उदाहरण हैं।[2]

श्रीधर के कथन द्वारा आजकल के पाश्चात्य सभ्यता का अंधाधुंध अनु-करण करनेवाले यूवकों की आलोचना की गयी है। जैसे–'इधर हमारे संप्रदाय को छोडने में असमर्थ होकर उधर अंग्रेजी सभ्यता को जानने में असमर्थ होकर, सभ्यता के बुरखों में पिसनेवाले अनाडी है हम।[3]

इस उपन्यास में पारिवारिक वातावरण का चित्रण है जैसे पति-पत्नी के ईर्ष्या-द्वेष एवं अनुरागपूर्ण हृदयों का सुंदर एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

यत्र तत्र प्राकृति-वर्णन का सुंदर चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है–"वसंत समाप्त होकर ग्रीष्म में प्रवेश कर चुका हैं। रम्य प्रकृति धूप में तप कर छल-छला रही हैं। अहर्निश भूदेवी, वरुणदेव के लिए तडप रही है।[4]

इस उपन्यास में अधिकांशत: वर्णनात्मक तथा संवादात्मक, मनो-विश्लेषणात्मक शैलियों का चित्रीकरण हुआ है। यत्र तत्र स्वगत कथनात्मक[5] पत्रात्मक एवं डायरी शैली[6] का भी प्रयोग पाया जाता हैं।

भाषा सरल एवं तेलुगु व्यावहारिक भाषा है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग पाया जाता है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों,[7] का प्रयोग कर लेखिका ने भाषा को सहज एवं हृदयस्पर्शी बनाया है।

१., २. चक्रभ्रमणम् – पृ :१८-१९, ११०-१११

३., ४., ५. चक्रभ्रमणम् – पृ. : १४९, १४७, ७४–७५, १५०

६. चक्रभ्रमणमु – पृ. : ८२–८३, ११०, १३९–१४२

७. वही, अ) तीग कदिपिते डोंकता कदिलिनट्ट – पृ. १६९, अर्थात्–लता को हिलाने से संपूर्ण झाडी का हिलना।

आ) समुद्रम् इंकिपोतुंटे कालवकोसं तापत्रय पड्डटट्टु, पृ. १७० अर्थात जब समुद्र ही सूख रहा है तो नाले को बचाने के लिये आतुर होना।

'धर्मचक्रम' में श्रीमती कौशल्यादेवी के साधारण तथा तर्कयुक्त दोनों प्रकार के संवाद पाये जाते हैं। साधारण संवादों के माध्यम से लेखिका ने घटनाओं के विकास[1] को सूचित करने के साथ साथ वातावरण की भी सृष्टि कर उपन्यास को जीवंत बनाया है। लेखिका ने जेल सुपरिंटेंडेंट धर्माराव तथा कैदियों के बीच के वार्तालाप के द्वारा कैदियों की दयनीय एवं असहाय दशा पर प्रकाश डाला है। कैदियों को संबोधित कर धर्माराव आर्द्र स्वर में कहता है–'तुममें सचमुच कुछ लोग अपराधी होंगे। कुछ लोगों ने किन्हीं मजबूर परिस्थितियों में अपराध किया होगा। कुछ लोगों पर, जो अपराध से किसी भी प्रकार का संबंध न रखते हुए भी, दूसरों के अपराध अपने ऊपर लेने के कारण अपराधी की मुहर लगी होगी। लेकिन, अपराध किया हो या न हो यहाँ जितने भी हैं सभी दंडनीय हैं। – – कष्टों को बर्दाश्त करना सबके लिए अनिवार्य है।' कुछ कैदियों ने हाथ जोडकर प्रणाम करते हुए कहा–'हाँ ! आप सच कह रहे हैं बाबूजी ! युग युग तक जियो बाबू !'[2]

समाज में व्याप्त अधर्म तथा अन्याय आदि पर भी वार्तालापों के द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।[3]

इस उपन्यास का आरंभ युद्ध के वातावरण से हुआ है जिसका चित्रण इसमें प्रस्तुत है। लेखिका ने यत्र तत्र प्राकृतिक वर्णनों को भी समाविष्ट किया है। उदाहरणार्थ–फसलों से भरे खेतों का मनोहर वर्णन यों है–'सुदूर में सुनहरे रंग की फसल से अलंकृत होकर अभिनय करनेवाले हरे भरे खेत। उसके बगल में ही इठलाती बलखाती मंदगति से चलनेवाली झील, धीरे धीरे बहकर बदन बदन को गुदगुदानेवाल मलयपवन। मन को आह्लादित कर तन्मय कर देने वाला मधुर वातावरण।'[4] मूल रूप से कथानक से संबंधित सामाजिक वातावरण का यथार्थपरक चित्रण कर लेखिका ने विभिन्न मनोप्रवृत्तियोंवाले व्यक्तियों का चित्रण किया है। जेल से संबंधित घटनाओं का विकास कराते समय जेल के वातावरण के चित्रण में लेखिका की पैनी दृष्टि ने विशेष योग दिया।

उपन्यास में विशेषत: वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैली और गौण रूप से आत्मकथनात्मक[5] तथा पत्रात्मक[6] शैलियों का भी प्रयोग हुआ है।

उपन्यास की भाषा तद्भव एवं देशज शब्द प्रधान तेलुगु की व्यावहारिक भाषा है।

१., २., ३. धर्मचक्रम् – ११०, २०, ४४

४., ५., ६. धर्मचक्रम् – पृष्ठ : १८, २२३-२२४, १६१-१६२

कौशल्यादेवी का 'कल्याण मंदिर' में सामान्य तथा तर्कयुक्त दोनों प्रकार के संवादों का प्रयोग हुआ है। संवादों के द्वारा लेखिका ने कथानक की घटनाओं का विकास कराया है और पात्रों के चारित्रिक विकास पर भी प्रकाश डाला है। जहाँ जीवन-दर्शन तथा तत्संबंधी समस्याओं का चित्रण किया गया है, वहाँ तर्कयुक्त संवाद पाये जाते हैं। कल्याणी तथा मैत्रेयी क्रमशः गरीबी तथा अमीरी का प्रतिनिधित्व करती हुई उपन्यास में एक स्थान में यों वार्तालाप करती हैं–कल्याणी कहती है। 'तुम तो ऐसे ही मेरे बारे में पूछ लेती हो, लेकिन मेरी दोस्ती तुम्हारी दृष्टि में किसी गिनती में भी आती है मैत्रेयी ? कालेज की पढाई, ऐश्वर्य, नित्य विनोद, दोस्त रिश्तेदार, आखिर तुम कहाँ और मैं कहाँ ?'

मैत्रेयी कहती हैं–अरे यह क्या है कल्याणी। आज कोई विचित्र स्वर में बोल रही हो ? क्या किसी ने कुछ कहा ?'

कल्याणी फीकी हँसी हँसती हुई कहती है–'कोई क्यों मैत्रेयी ? जब घरवाले ही कह रहे हैं, समझ रहे हैं तो। जीवन की भूल आवश्यकताओं के लिए ही जब तडपते रहते हैं, तब ममता, प्रेम धुंधले पड जाते हैं और केवल बातें ही सुनने को मिलती है।

यह सुनते ही मैत्रेयी गंभीर हो, लंबी साँस लेती हुई कहती–'कल्याणी ! क्या सच में आप लोग इतने दुखी हैं ?' मैं समझती थी कि साधारण और गरीब लोग उसी से संतुष्ट हो जाते है। जो उनके पास है।'

कल्याणी ने अभिमान के स्वर में कहा – 'मैंने यह नहीं सोचा था कि तुम्हारी नजर में हम गिरे हुए हैं और तुम हमारी अवहेलना कर सकती हो ?'

अवहेलना नहीं है कल्याणी। तुमने तो अपना दुखडा सुनाकर अपने दिल को हलका कर लिया हैं लेकिन इस गगनचुंबी रम्य-दम्यों में रहनेवाले रईसों के लिए अपना दुखडा प्रकट करना भी संभव नहीं है। क्या तुम इसे जानती हो ? इतने ऊँचे भवन, कृत्रिम अलंकरण, राज-वैभव आदि ही तुम्हें दिखाई देते हैं। लेकिन इनके पीछे लुप्त, मानसिक अशांति के बारे में तुम ने कभी सोचा है।'[1] उक्त संवादों से उच्च तथा मध्य वर्ग की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है ?

लेखिका ने आलोच्य उपन्यास में वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया हैं। यत्र तत्र पत्रात्मक[2] तथा स्वगत कथनात्मक[3] शैलियाँ भी पायी जाती हैं।

१., २. कल्याण मंदिर – पृष्ठ : ९-१०, १४९, १९३-१९६, २७४-२७८

३. कल्याण मंदिर – पृष्ठ : २१, ३८, १३६-१३८

भासा तेलुगु की व्यवहारिक भाषा है। तेलुगु की लोकोक्तियों एवं कहावतों का सुंदर प्रयोग हुआ है।[1] जिससे भाषा सुंदर एवं सजीव बन पडी है।

द्विवेदुला विशालक्षी :

श्रीमती द्वि विशालाक्षी का 'मारिन विलुवलु' उपन्यास शिल्पपक्ष की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रचना है। अप्पना तथा प्रकाशम् के संवादों के माध्यम से लेखिका ने सामाजिक व्यवस्था का तथा लोगों की दृष्टि में बदले हुए मूल्यों का चित्रण प्रस्तुत किया है।[2] जानकी तथा कनकम् के वार्तालाप के माध्यम से लेखिका ने उनके स्वभावों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है।[3] संवादों के माध्यम से ही पुरानी तथा युवा पीढी के बीच के अन्तर को स्पष्ट किया गया है उदाहरणार्थ जानकी ससुराल जाने से इनकार करने पर माँ कहती है। "क्यों ? क्यों नहीं जावोगी ? सदा मायके में ही रहोगी क्या ? विवाह के बाद पति ही स्त्री के लिए सर्वस्व है। वही सब कुछ देता है और डाँटने का अधिकारी भी है। ससुराल में रहना ही न्याय संगत है ?"

"क्यों नहीं जाऊँगी माँ ? किसी से विवाह करने का यह मतलब नहीं कि उनसे मार खाऊँ और अथक परिश्रम करके उनका झूठा खाऊँ। इस प्रकार की सहनशीलता दिखाऊँ या इस प्रकार परिश्रम करूँ तो कहीं भी मेरा पेट भर सकेगा। युवती, विवाह केवल खाने के लिए ही नहीं करती – – –।"[4]

इसी प्रकार जानकी अपने भाई को उपदेश देती है कि वह अपने संकुचित स्वभाव को छोड दें। अपने सगे भाइ-बहनों की सहायता प्रेम से करे न कि उदारता को प्रगट करने के लिए। यहाँ जानकी द्वारा कहे गये कथन कुछ दीर्घ बन गये हैं।[5]

प्रकाशम और जानकी के संवादों से प्रकाशम के स्वतंत्र विचारों पर प्रकाश पडता है। जैसे : "तुम्हारा लक्ष्य क्या है, प्रकाशम् ?"

"इस संसार में जो भी जन्म लेते हैं उनका अलग अलग लक्ष्य नहीं होता है, दीदी। सभीका लक्ष्य एक ही है– सुख पूर्वक जीना। इसी कारण तुम्हें जैसा घर चाहिये उसका निर्णय करके उतनी ही नींव डालोगे। – – –

---

१. कल्याण मंदिर : अ) एंत चेट्टुकु अंत गालि, पृष्ठ : १३ अर्थात् जितना पेड उतनी हवा

२., ३. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : ५३-५४, ६०-६१

४., ५. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : ३०, ५९-६०

– इसी प्रकार सुखजीवन के बारे में भी । किसी पर आधारित न होकर, दूसरों के सामने हाथ न फैलाकर जीवन व्यतीत हो जाये वही मेरे लिए काफी है । हो सके तो मैं दूसरों की सहायता करूँगा । नहीं तो मैं स्वयं अपना जीवन चलाउँगा । जीवनकाल में सदा मेरे कदम आगे ही बढते जायें । वही मेरा आशय तथा लक्ष्य है ।"[1]

लेखिका ने मध्यवर्गीय परिवारों की समस्यायों का जीता-जागता वर्णन प्रस्तुत किया है । जैसे दहेज समस्या, स्त्रियों की नौकरी की समस्या, मध्यवर्गीय परिवारों में प्रचलित झूठे गौरव का मार्मिक चित्रण साथ ही साथ बाल-विवाह का वातावरण तथा वहाँ के अनाथ बच्चों के मनस्तत्व आदि का सुंदर चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है ।[2]

आलोच्य उपन्यास में यत्र तत्र प्रकृति वर्णन है जिससे उपन्यास में रोचकता एवं सजीवता का समावेश हुआ है । लेखिका ने प्रकृति में मानवीय कार्यों को आरोपित कर उसका वर्णन किया है ।

"तब तक तेज धूप रही थी । इतने में मानों सूरज से होड लगाने के लिए पश्चिम से एक छोटी सी घटा दौडती हुई आयी । जिसे देख सूरज परि-हासपूर्वक हँस कर चुप हो गया ।

"तुम कितने हो ? तुम्हारा तेज कितना ? क्या तुम मुझे छिपा सकोगी कहते हुए सूरज आगे बढ चला ।"[3]

लेखिका ने उपन्यास में विशेषतः वर्णनात्मक तथा संवादात्मक तथा गौण रूप से स्वगतकथनात्मक[4] तथा पत्रात्मक[5] शैलियों का प्रयोग किया है।

उपन्यास की भाषा सरल एवं स्वाभाविक है। लेखिका ने यत्र तत्र तेलुगु के सुंदर मुहावरों, कहावतों[6] का प्रयोग किया है। पात्रोचित भाषा[7] के सुंदर प्रयोग द्वारा भाषा सजीव बन पडी है ।

१., २., ३. मारिन विलुवलु – पृष्ठ ८०, ७४-७५, १३४

४., ५. मारिन विलुवलु–पृष्ठ १७६-१७७, २३०-२३१

६. मारिन विलुवलु – गंतकु तगिन बोंता, – पृष्ठ : १७ अर्थात् जहाँ दो निकम्मे आदमियों का मेल हो – अंधा सिपाही, कानी घोडी, विधि ने खूब मिलाई जोडी । आ) पौट्टिवाल्लकु पुट्टेडुबुद्दुलु–पृष्ठ : अर्थात् नाटे के कई चमत्कार

७. मारिन विलुवलु – पृष्ठ : ५१, ५२

श्रीमती द्विवेदुला विशालाक्षी के 'ग्रहणं विडिचिदि' में कथोपकथन का सम्यक् रूप से विकास हुआ है। आत्मकथनात्मक शैली में लिखे जाने के कारण उपन्यास में इच्छित वातावरण को चित्रण करने में, घटनाओं को गतिशीलता तथा रोचकता प्रदान करने में, पात्रों के हृदयगत भावों को व्यंजित करने में, लेखिका ने स्वगत कथनों का अधिक प्रयोग किया है। इस कारण संवादों में नाटकीयता का भी समावेश हुआ है।

संवादों के माध्यम से सामाजिक रूढिगत विचारों पर भी प्रकाश डाला गया है।

जैसे–

'वर ने दहेज नहीं लिया।'
'बारात वाले कह रहे हैं लेन-देन आदि के बारेमें भी कोई शर्त नहीं है।'
'वर अंधा-लूल्ला भी नहीं है, पूनम के चाँद के समान है – – – –'
'अच्छी नोकरी भी है।'
'हाँ दाल में कुछ काला मालूम पडता है'
'वरना बिना दहेज के आज के जमाने में लडकी की शादी – – –'[1]

उक्त कथन से दहेज के बिना विवाह करने को तैयार होनेवाले वर के प्रति उत्पन्न होनेवाली शंकाओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण स्वगत कथनों द्वारा व्यक्त किया गया है।[2] यत्र तत्र चमत्कारपूर्ण संवादों द्वारा उपन्यास में रोचकता का समावेश हुआ है।[3]

जगदीश तथा विधवा भारती के संवादों द्वारा भाषा में भावुकता का समावेश हुआ है। इसके लिए भारती का यह कथन द्रष्टव्य है– 'जगदीश, वह काम मुझसे नहीं हो सकेगा। मेरी उंगलियाँ कांपेंगी। मैं बिंदी नहीं लगा सकती।

'तुम्हारे हाथ में बल आ जावें इसके लिए मेरे हाथ का सहारा ले सकती हो भारती ! किसी बुरी घडी में मिट चुकी तुम्हारे माथे की बिंदी को फिर से सँवारने का अवसर मुझे प्रदान करो।'[4]

उपन्यास में सामाजिक वातावरण का कलात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। समकालीन जीवन का समग्र रूप प्रस्तुत करते हुए समाज में प्रचलित

१., २. ग्रहणं विडिचिदि - पृष्ठ १७, ८२
३., ४. ग्रहणं विडिचिदि – पृष्ठ १२१, १०६

विधवा जीवन तथा धार्मिक जीवन संबंधी विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। धन के पीछे पागल होने वाले आज के सभ्य समाज के लोगों की मनस्थिति का भी वर्णन प्रस्तुत है।

यत्र तत्र प्राकृतिक वर्णन के प्रति भी लेखिका ने अपनी पैनी दृष्टि फैलायी है। जैसे– "वर्षा के दिन समाप्त होने पर तब तक किनारों को काटती हुई पूर्णगर्भिणी के समान धीरे धीरे प्रवाहित होनेवाली गंगा कुछ कुछ चंचल हो गयी हैं।"[1]

उपन्यास की रचना आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत है। यत्र तत्र स्मृति-परक[2] तथा चित्रात्मक एवं मनोविश्लेशणात्मक शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा सरल एवं पात्रानुकूल है।

यद्धनपूडि सुलोचनाराणी :

यद्धनपूडि सुलोचनाराणी के 'सेक्रटरी' उपन्यास में अधिकांश संवाद संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं। जिनके माध्यम से कथानक का विकास कराया गया है।[3] दूसरी ओर संवादों के माध्यम से समाज में धनिकों की स्वार्थ एवं संकुचित बुद्धि पर भी प्रकाश डाला है।[4] वनिता विवाह नाम पर होनेवाले अत्याचारों तथा वहाँ की महिलाओं की संकुचित बुद्धि पर प्रकाश डालने के साथ साथ निम्न वर्ग का स्वच्छ एवं निस्वार्थ व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया है। नौकरी करनेवाली सुंदर नारी के सम्मुख उपस्थित होनेवाली समस्याओं क चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

यत्र तत्र प्रकृति वर्णन का भी सुंदर समावेश इस में हुआ है।[5]

उपन्यास की शैली अधिकांशत: वर्णनात्मक एवं संवादात्मक है। पत्रात्मक[6] स्वप्न, शैलियों का भी प्रयोग आंशिक रूप में हुआ है। यत्र तत्र दार्शनिक विचारों को वर्णनात्मक शैली द्वारा व्यक्त किया है।[7]

उपन्यास की भाषा सरल एवं व्यवहारिक है जो पात्र एवं प्रसंगों के अनुकूल भी है।

१., २. ग्रहणं विडिचिदि – पृ. १४२, ५७
३. सेक्रटरी – पृ. : २७–२८, ४७–४९
४. सेक्रटरी – पृ. : ३५–३७, ४१–४३
५. सेक्रटरी – पृ. : ५४
६. सेक्रटरी – पृ. : ६५–६६, २५२–२५२, ३४०–३५९
७. सेक्रटरी – पृ. : १५८–१५८, २०५–२०७

यद्धनपूडि सुलोचनाराणी के 'आहुति' में वस्तुपक्ष की तरह शिल्प पक्ष का भी अत्यंत सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। संवादों के माध्यम से जहाँ एक ओर पात्रों का चारित्रिक विकास कराया गया है वहाँ दूसरी ओर समाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला गया है।[1]

विवेच्य उपन्यास का वातावरण सामाजिक एवं पारिवारिक है। प्यार ममता, ईर्ष्या-द्वेष, त्याग आदि मानवीयगुणों का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त पूंजीपति लोगों की निरंकुशता तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित घूसखोरी काला-बाजार, आदि का भी सफलतापूर्वक वर्णन किया गया है। इसके साथ वेश्याओं का जुगुप्सापूर्ण वातावरण भी इस में वर्णित है।[2]

यत्र तत्र प्राकृतिक वर्णन द्वारा उपन्यास सरस एवं रोचक बना है। जैसे "दूर में जंगल है। इधर उधर सीधे लेकिन उन्नत रूप से महावृक्ष ऐसे खडे हैं मानो वे आकाश को छूना चाहते हों। उस पर अनियमित रूप से चिपके हुए जंगली लता बूटियाँ है। उन पर तभी छायी हुई चाँदनी की रोशनी आश्चर्यजनक मूक तथा समझ में न आनेवाली काव्य जैसा है।[3]

उपन्यास की शैली वर्णनात्मक एवं मनोविश्लेषणात्मक है। यत्र तत्र पत्रात्मक[4], एवं स्वगत कथनात्मक[5] शैलियों का भी प्रयोग हुआ है।

उपन्यास की भाषा व्यवहारिक है, कहीं-कहीं कहावतों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा सुंदर एवं सजीव बन पडी है।[6] अलंकारों के प्रयोग के द्वारा भाषा की सुंदरता निखर उठी है। जैसे – 'क्षीण चंद्रमा के समान दिन-ब-दिन सूखनेवाली उमा।'[7] आदि।

'आराधना' उपन्यास में लेखिका ने गूंगी अन्नपूर्णा के स्वगत कथनों द्वारा उसके सुख-दुख, प्रेम, त्याग आदि मनोभावों का सुंदर चित्रीकरण किया है।[8]

---

१. आहुति – पृ. : २०
२, ३. आहुति – पृष्ठ : २०२, १७९
४. आहुति – पृष्ठ : ९९, १००-१०१, २३३-२४८
५. आहुति – १३, ३५१-३५२
६. आहुति – पृष्ठ : अ) नक्कनि तोक्कि रावडं, अर्थात्, लोमडी पर से आना, अर्थात् भाग्यवान् बनना, पृष्ठ : ९७
७. आहुति – पृष्ठ : १७७
८. आराधना – पृष्ठ : ८९, १००-१०१, ११९, १४८, १५५

इस उपन्यास में धनी वर्ग के विलासपूर्ण जीवन तथा उनके अहंकार प्रवृत्ति का और निर्धन वर्ग के स्वाभिमान प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है।

आलोच्य उपन्यास में वर्णनात्मक एवं स्वगतकथनात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र पत्रात्मक शैली को भी अपनाया गया है।[1]

उपन्यास की भाषा व्यवहारिक है। कहीं-कहीं कहावतों तथा मुहावरों[2] के प्रयोग से भाषा सुंदर एवं सजीव बनी।

'यद्दनपूडि सुलोचनाराणी का 'जीवन तरंगालु' में लेखिका ने शिल्प-पक्ष के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया है। लेखिका ने कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं का विकास कराने के साथ साथ पात्रों के चारित्रिक विकास को भी सूचित किया है। विजय तथा वकील के बीच अनंत और रोजा के संबंधों पर जो वार्तालाप प्रस्तुत हैं, उससे उनके चरित्र पर प्रकाश पडता है। विजय कहता है–'यह (अनंत) साधारण तौर से किसी से भी इतने दिनों तक अपना परिचय टिकने नहीं देता। वह ऐसे स्वभाव का मनुष्य नहीं है। – – – ऐसे स्वभाववाला इतने दिनों तक इस लडकी से परिचय कैसे टिका सका है, यह आश्चर्य की बात है।'

'वकील ने कहा – इससे स्पष्ट है कि यह उस लडकी की चतुराई और उस लडके की मूर्खता।'[3]

कहीं-कहीं भावुकता में संवाद अति दीर्घ हो गये हैं।[4] यत्र तत्र हास्य-व्यंग्य संवादों का भी प्रयोग हुआ।[5]

इसमें लेखिका ने समाज के विभिन्न प्रवृत्तियोंवाले सदस्यों का चित्रीकरण किया है। एक ओर समाज में धनिक वर्ग का विलासमय जीवन प्रस्तुत है तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय परिवार के आर्थिक विषमताओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

यत्र तत्र प्रकृति वर्णनो का भी वर्णन किया गया है। जैसे–'अस्तमय होनेवाले अरुण बिंब की लालिमा संपूर्ण जगत को व्याप्त करते समय।'[6]

---

१. आराधना, पृष्ठ : ७८-७९, ११२-११३, १८०-१८१

२. कुंड़ेडु पाललो ओक विषमु चुक्क–अर्थात्, घडे भर दूध में एक विष की बूंद, पृष्ठ : ५५

३. जीवन तरंगालु – पृष्ठ : २१४-२१५

४., ५. जीवनतरंगालु – पृष्ठ : ३३८, १४१-१४२

६. जीवन तरंगालु – पृष्ठ : ७४५

शैली अधिकांशत: वर्णनात्मक है। कहीं-कहीं पत्रात्मक[1] स्वगतकथ-नात्मक[2], शैलियों का प्रयोग भी किया गया है।

भाषा व्यावहारिक एवं बोलचाल की है। इनमें कहावतें तथा अलंकारों[3] के प्रयोग के कारण भाषा सरल एवं रोचक बन पड़ी है।

कोमलादेवी :

श्रीमती कोमलादेवी का 'दांपत्यालु' उपन्यास शिल्पगत विशिष्टता से युक्त है। कहीं संवादों के माध्यम से लेखिका ने कथानक का विकास कराया है[4] तो कहीं पात्रों के चरित्र का उद्घाटन।[5] किसी स्थान पर लेखिका ने भावपूर्ण संवादों की रचना[6] की है तो कहीं संवादों के माध्यम से वांछित देश काल का यथोचित मात्रा में बोध भी कराया है।

उपन्यास में घरेलू वातावरण तथा दांपत्य जीवन संबंधी वातावरण[7] कालेज वातावरण[8] का तथा प्राकृतिक वातावरण[9] का भी लेखिका ने सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों के साथ सूक्ति शैली[10] के द्वारा उपन्यास की भाषा सहज एवं स्वभाविक बन पड़ी है।

श्रीमती कोमलादेवी के 'आराधना' उपन्यास में वातावरण की प्रधानता है। इसमें अस्पताल तथा वैद्य संबंधी वातावरण का प्राधान्य है। वैद्य तथा रोगियों के संबंधित लोगों के बीच के वार्तालापों के माध्यम से लेखिका ने समाज की कुरीतियों[11] तथा अंधविश्वासों[12] पर भी प्रकाश डाला है। इसके साथ-साथ कई प्रकार के लोगों तथा चिकित्सा संबंधी[13] विषयों का वर्णन है।

मुसलमानों के विवाह संबंधी आचार-विचारों का संवादों के द्वारा प्रकाश डाला गया है।[14]

---

१. जीवन तरंगालु – पृष्ठ : ७५-७६, ७६-७७

२. जीवन तरंगालु – १७६-१७८, ४४७

३. अ) जीवन तरंगालु वान राकड प्राणं पोकड तेलियदु, अर्थात्, वर्षा का आना प्राणों जाना कोई बता नहीं सकते – पृष्ठ : ४८२ आ) कालकूट विष समान सत्य, पृष्ठ : ४२

४., ५., ६. दांपत्यालु – पृष्ठ : ४८, १४७, १५२

७. दांपत्यालु – पृष्ठ : १०४-१०५ ८. दांपत्यालु – पृष्ठ : १०-११

९., १०. दांपत्यालु – पृष्ठ : १३२, ५५ ११. आराधना–पृष्ठ : ७१

१२., १३. आराधना – पृष्ठ : ९८, ७८, १००, २३४

१४. आराधना – पृष्ठ : ८६,

यत्र तत्र प्राकृतिक वर्णन के चित्रण भी पाये जाते हैं ।[1] कथानक, पात्र तथा उद्देश्य के अनुकूल वातावरण का चित्रण प्रस्तुत करने में लेखिका सफल हुई हैं ।

इसमें प्रधानत: वर्णनात्मक एवं संवादात्मक प्रयोग है, भाषा व्यावहारिक एवं पात्रानुकूल है । सुन्दर उपमानों के प्रयोग से भाषा सजीव बन पडी है ।

मादिरेड्डी सुलोचनारानी :

'तरम् मारिंदि' एक आंचलिक उपन्यास है । इसमें संवादों के माध्यम से चारित्रिक विकास कराया गया है । तथा सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला गया है । जब रामरेड्डी अपनी बारह वर्षीय पुत्री रामुलु का विवाह धनी एवं पचास साल के बूढे से करवाता है तो रामिरेड्डी का पुत्र वेंकटरेड्डी इस विवाह का खंडन करता है । इससे रामरेड्डी के संकुचित विचार का तथा वेंकटरेड्डी के विशाल हृदय का पता चलता है ।

त्योहारों में भगवान के नाम अधिक पूजापाठ के लिए धन खर्च करने से अच्छा गरीबों को पेट भर खाना देना है । इसी तथ्य का समर्थन पार्वती तथा उसके पति वेंकटरेड्डी के वार्तालाप से पता चलता है ।[2]

विवेच्य उपन्यास में ग्रामीण वातावरण का जीता-जागता वातावरण प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह, पुनर्विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला गया है । आंध्र के ग्रामीण त्योहारों का विशद चित्रण इसमें प्रस्तुत किया गया है ।[3]

इसमें मुख्यत: संवादात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । यत्र तत्र गेयात्मक[4] शैली का भी प्रयोग पाया जाता है ।

इसकी भाषा तेलंगाना प्रांत की है जो तेलुगु तथा उर्दू मिश्रित है । अत: इसमें 'ताजुब, ज़रा, जल्दी, इज्जत, गरीब, दवाखाना आदि उर्दू शब्द पाये जाते हैं । यत्र तत्र ग्रामीण कहावतों तथा मुहावरों[5] से भाषा सजीव एवं मार्मिक बन पडी है ।

'अधिकारुलु आश्रित जनुलु' उपन्यास में संवादों के माध्यम से पात्रों के मनोगत भावों का प्रकटीकरण करने के साथ साथ कथानक का भी विकास

---

१. आराधना पृष्ठ – ८८

१., २. तरम् मारिंदि – पृष्ठ : १२, १२९-१३०

३., ४. तरम् मारिंदि – १५८-१५९, १६१-१६३, १५९-१६१

१.तरम् मारिंदि –अ) इल्लु अलकंगाने पंडुग अवुतुंदा, अर्थात् घर की पुताई हो गई तो त्यौहार हो गया है क्या आदि, पृ. २०१

कराया गया है। इतना ही नहीं, संवादों के द्वारा समकालीन समाज में व्याप्त कुरितियों एवं अत्याचारों का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है।[1]

कलेक्टर माधव तथा उसकी पत्नी राधा के संवादों से भारतीय समाज में क्लर्क के दयनीय जीवन पर प्रकाश पडता है।[2]

विवेच्य उपन्यास में व्यंग्यात्मक शैली द्वारा चापलूसी, सिफारिश, घूस-खोरी आदि सामाजिक दोषों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। सभी कार्य धन और चाटुकारिता के कारण सफल हो रहे हैं जिससे समाज में अवनीति, तथा काला बाजार, का बोलाबाला हो गया है। इन्हीं विषयों का चित्रण आलोच्य उपन्यास में संपन्न हुआ है।

विवेच्य उपन्यास की शैली अधिकांशत संवादात्मक है। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक, व्यंगात्मक शैलियों का प्रयोग भी किया गया है।

उपन्यास की भाषा व्यवहारिक है। यत्र तत्र कहावतों तथा अलंकारों का प्रयोग भी किया गया है।[3]

लेखिका का 'देवुडिच्चिन वरालु' शिल्प पक्ष की दृष्टि से भी एक उत्तम कृति मानी जा सकती है। इस में कथोपकथन के माध्यम से पात्रों के मनोगत विचारो तथा सामाजिक वातावरण के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया गया है। वेणु साँवला होनें के कारण उसके माँ-बाप उसके प्रति उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। संवादो के माध्यम से उक्त कथन की पुष्टि हुई है।[4] समाज में गरीब एवं कुरुप विद्यार्थियों के प्रति लोगों की अवहेलना तथा उपेक्षा की भावना संवादों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।[5] स्वगत कथनों के माध्यम से वेणु के मनोगत भावों का व्यक्तिकरण हुआ है।[6] वेणु तथा इथोपिया देश-वासियों के सवादों से परोक्ष रूप से स्वार्थी भारतीयों पर व्यंग्य कसा है।[7]

इस प्रकार संवादों के माध्यम से जहाँ एक ओर पात्रों का चारित्रिक विकास दिखाया गया है, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक कुरितियों के प्रति संकेत भी कराया गया है।

---

१. अधिकारुलु – आश्रितजनुलु – पृ. १८२–१८३
२. वही – पृ. १८८
३. वही, अ) पुताई किये गये दीवार के समान सफेद हो जाना, पृ. ६५
आ) चेतिकि एमुके लेदु, अर्थात्, अत्यंत दानशील होना, पृ. २२
४. देवुडिच्चिन वरालु–पृ. ८-९, ७३-७४ ५. देवुडिच्चिन वरालु–पृ. १०८
६. देविडिच्चिन वरालु–पृ. १३९-१४० १५४ ७. वही पृ. २६५–२६६

विवेच्य उपन्यास में एक ओर ग्राम्य वातावरण तथा दूसरी ओर शहरी वातावरण का चित्रीकरण पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इथोपिया देश का वर्णन भी, जैसे वहाँ के रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि पर भी विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[1]

विवेच्य उपन्यास की भाषा व्यवहारिक है। यत्र तत्र पत्रात्मक[2] एवं स्वगत कथनात्मक शैलियों का प्रयोग भी पाया जाता है। कहावतों के प्रयोग से भाषा सजीव एवं सरस बनी है।[3]

सी. आनंदराममः

सी. आनंदरामम् कृत 'आत्मबलि' उपन्यास में व्यक्ति केंद्रित विषय-वस्तु का प्रतिपादन होने के कारण इसका शिल्पगत वैशिष्ट्य कथोपकथन की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण बन पडा है। इस में अधिकांशतः भावात्मक संवादों का प्रयोग हुआ हैं। शोभा तथा उमा की जीवनियों से उपन्यास की अधिकांश घटनायें आवृत्ति होने के कारण इनके कथनों में स्त्री सुलभ भावुकता के साथ साथ प्रगतिपथ में स्त्री के अग्रसर होनें की ध्वनि भी गूंजती रहती है। उमा के समझौतापूर्ण स्वभाव तथा शोभा के प्रगतिशील स्वभाव का परिचय संवादों के माध्यम से किया गया है।[4]

स्वच्छंद रूप से जीवन बिताने वाली स्त्री के प्रति साधारण जनता के विचारों का विश्लेषण करती हुई उमा पात्र के माध्यम से लेखिका कहती है– "दीदी! साधारण रूप से लोग मन और शरीर में विशेष अंतर नहीं मानते। मन में ममत्व को बढाते हुए संयम पूर्वक व्यवहार करनेवाले व्यक्ति कम ही होते हैं। इस बात को समझनेवाले और भी कम होते हैं। इसीलिए साधारण लोग यौवन में विश्वास नहीं रखते। इस पर तुम कुछ ज्यादा ही स्वच्छंद रूप से घूमती हो। दस लोगों के बीच रहनेवाली गृहिणी के प्रति किसी को शंका नहीं होती। क्योंकि उसके मन में चाहे कुछ भी हो उसे आचरण में रखने का अवसर नहीं मिलता।"[5] उक्त कथन के द्वारा उमा और शोभा के चारित्रिक विकास पर तो प्रकाश डाला गया है साथ साथ देश काल वातावरण तथा मानव की सहज अनुभूतियों के स्पष्टीकरण में भी लेखिका सजग रही हैं। प्रस्तुत उपन्यास में नौकरी पेशा करनेवाली स्त्रियों की समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया है।

---

१. देवुडिच्चिन वरालु पृ. २८१–२८४ २९०   २. वही पृ. ३११–३२९
३. वही, अ) काकिपिल्ल काकिकि मुद्दु अर्थात् कौए का बच्चा कौए को ही प्यारा लगता है। पृ. १०
४, ५. आत्मबलि – पृ. ४६, ४७

आलोच्य उपन्यास में अधिकांशतः संवादात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। भाषा सरल और व्यवहारिक है।

उपन्यास में अधिकतः संवादात्मक शैली को प्रश्रय मिला है। यत्र तत्र मनोविश्लेषणात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा सरल, स्वाभाविक एवं व्यावहारिक है।

श्रीमती सी. आनंदरामम् का 'सागर संगमम्' जाति-पाँति की समस्या को लेकर मार्मिक शैली में लिखा गया है। उपन्यास में सहज एवं स्वाभाविक संवादों का प्रयोग उपलब्ध हुआ है। कथोपकथन के द्वारा पात्रों का चारित्रिक विकास संपन्न हुआ है। उदाहरणार्थ सुधाकर के विशाल एवं संस्कारवान् गुणों का परिचय सुधाकर एवं मानसा के संवादों से पता चलता है।[1]

मानसा के संकुचित एवं जाति-वर्ग का पता निम्न कथन में व्यक्त हो जाता है– 'मैंने अपने अनेक जन्मों के सुकृत कर्मों के फलस्वरूप ब्रह्मण वंश में जन्म लिया है। किसी हरिजन कुल के व्यक्ति से मैं अपना नाता नहीं जोड सकती।[2]'

उपन्यास में जहाँ विजातीय विवाह, प्राचीन आचार-विचारों के संबंध में तर्कपूर्ण वाद-विवाद प्रस्तुत किये गये हैं वहाँ संवाद दीर्घ बन गये है जिस से कथा में नीरसता आ गयी है।

लेखिका ने आंध्र प्रांत के रीति-रिवाजों तथा आचार-विचारों का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रकृति वर्णन करते समय लेखिका ने प्रकृति में मानवीय गुणों को आरोपित किया है। जैसे निरंजनी के मनोभावों को समुद्र की गर्जना में आरोपित करती हुई। लेखिका का वर्णन करती हैं–"उठ उठ कर गिरनेवाली लहरों को अपनी काबू में न कर सकने से, अपने अंदर उत्पन्न बवंडरों को सहन न कर सकने के कारण समुद्र गरज रहा है। समुद्र के तट पर बैठी हुई निरंजनी के हृदय में भी उसी प्रकार की गर्जना है।"[3]

इस में विशेषतः वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। यत्र तत्र पत्रात्मक[4] तथा सूक्ति शैलियों का प्रयोग भी हुआ है। भाषा सरल एवं व्यवहारिक है।

"चीकटी कडुपुन कांति" उपन्यास में लेखिका ने संवादों के माध्यम से, कथानक का विकास कराने के साथ साथ, पात्रों का चरित्रोद्घाटन भी कराया

१, २. सागर संगमम् – पृ. ४७, ९१ ३. सागर संगमम् – पृ. ५२
४. सागर संगमम् – पृ. ४०, ६२, ६४

है । पार्वतम्मा तथा कल्याणी के बीच होने वाले संवादों से कथानक का विकास कराया गया है ।[1]

रामचंद्र तथा वारिजा के संवादों में वारिजा के अभिनेत्री होने पर भी उसके विशाल हृदय पर प्रकाश पडता है । रामचंद्र, वारिजा का पाने की तीव्र इच्छा प्रकट करने पर वारिजा कहती है– "यह कैसा आवेश है ? आपकी विवेचना शक्ति क्या हो गयी है ? मैं एक मिठाई के समान हूँ । लेकिन कई लोगों के द्वारा झूठी कर कूडा कर्कट में फेंकी गयी मिठाई हूँ । सडी हुई धूल, कचडा, मैल आदि से पुती गयी मिठाई हूँ– मिठाई के माधुर्य की आस में क्या इस घृणित विषय को सहन कर सकेंगे ! इतने कूडे कर्कट से युक्त मिठाई की अपेक्षा घर की स्त्री द्वारा परोसे गये आचार के टुकडे क्या रुचिकर नहीं होते ?"[2]

संवादों के माध्यम से लेखिका ने आज के समाज में होनेवाले अनमेल विवाह तथा निर्धन माँ बाप की विवशताओं का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है ।[3]

प्रस्तुत उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार के निम्न स्तर का वातावरण करुण तथा मार्मिक शैली में प्रस्तुत किया गया है । लेखिका ने वारिजा पात्र के माध्यम से वेश्या जीवन तथा समाज में उसकी स्थिति का वर्णन किया है ।

यत्र तत्र प्रकृति वर्णन द्वारा उपन्यास में रोचकता का समावेश किया गया है । जैसे– "सुबह होने वाली है । तालाब में कमल उन्मत्त होकर आलस्य के कारण बंद हो रहे हैं । अति सूक्ष्म अरुण किरणें अंधकार में ही अपनी काँति को विकीर्ण कर रही हैं ।"[4]

उपन्यास की शैली मुख्यतः वर्णनात्मक एवं संवादात्मक है । भाषा सरल एवं व्यावहारिक है ।

डी. कामेश्वरी :

'कोत्तनीरू' में लेखिका ने पारिवारिक जीवन से संबंधित विषयों को ही इस उपन्यास में प्रतिबिंबित किया है । उसी के अनुकूल संवादों का भी प्रयोग किया है ।

शकुंतला और उसकी पुत्री अन्नपूर्णा के संवादों द्वारा, शकुंतला के स्वतंत्र विचारों पर प्रकाश डाला गया है ।[5]

१., २., ३. चीकटि कडुपुन कांति – पृष्ठ ७६, ४६-४७

४. चीकटि कडुपुन कांति – पृष्ठ ५

५. कोत्तनीरू – पृष्ठ ८९-९०,

विजातीय विवाह के कारण बच्चों की समस्याओं का वर्णन उपा जगन्नाथम तथा पार्वतम्मा के संवादों से विदित होता है।[1]

जब जगन्नाथम् तथा पार्वतम्मा की आखिरी पुत्री का पति रावर्ट्स की मृत्यु के पश्चात् एक पंजाबी युवक से विवाह कर लेती है। तब निम्नांकित संवादों से पार्वतम्मा का आक्रोश तथा जगन्नाथम् का समझौतापूर्ण व्यवहार का पता चलता हैं– "बहुत अच्छा है – – – – पंजाबी दामाद है। तमिल बहू, महाराष्ट्र बहू, अमेरिकन दामाद हुए हैं अब पंजाबी दामाद हैं। सभी प्रकार के फैशन हमारे घर में ही आरंभ होते हैं। सभी संस्कार तथा समाज सुधारक अपने ही घर में हुए हैं। हूँ – – – कैसे बच्चे है भगवान्।" पार्वतम्मा सिर पीटती हुई कहती है।

'पगली ! – – – हमारे घर में ही नहीं – – – सभी घरों में ऐसा ही है। समय बदल गया है। मनुष्य बदल रहे हैं। उस बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार हमें भी बदलने के सिवा, दुखित होने से कोई प्रयोजन नहीं हैं। इस काल-प्रवाह में, और इस जीवन-सागर मैं हम तृणतुल्य हैं। नया पानी आकर पुराने पानी को बहा देता है।"[2]

उपन्यास की शैली प्रधानतः वर्णनात्मक एवं संवादात्मक है। भाषा तेलुगु की व्यावहारिक एवं सरल भाषा है। यत्र तत्र लोकोक्तियों[3] के प्रभाव से भाषा सरल एवं सजीव बन पडी है।

डी. कामेश्वरी का 'विधि वंचितुलु' में लेखिका ने संवादों के माध्यम से पुत्रों की तुलना में पुत्रियों के प्रति माँ बाप के उदासीन भावों को व्यक्त किया है। जैसे प्रकाशम् के माँ बाप उसी के सामने उसकी बहिनों की तुलना करते हैं कि "वह लडका है। तुम छोकरियों की उसके साथ क्या तुलना ?"[4]

संवादों के माध्यम से चारित्रिक विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

लेखिका एक स्थान शहरी वातावरण तथा गाँव के निर्मल वातावरण की तुलना करती हुई गाँव के वातावरण को श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं।[5]

लेखिका ने प्रकृति वर्णन के प्रति भी यत्र तत्र प्रकाश डाला है। जैसे– "कम्पौण्ड में कई लाल गुलमोहर के फूल, हवा के झोंकों के कारण मानों अपना

---

१. कोत्तनीरू – पृष्ठ ४९ २. कोत्तनीरू – पृ. १९९-२००

३. वही, नूरू पुव्वुलु आरू कायलु, पृ. २०, तीन फूल और छः फल, अर्थात्, दिन दूनी रात चौगुनी

४., ५. विधि वंचितुलु, – पृ. १२, ८५-८६.

सर हिला रहे हैं। विशाल मैदान के समान आकाश के चारों ओर नीली घटायें छायी हुई हैं।"[1]

लेखिका ने उपन्यास में विशेषरूप से वर्णनात्मक शैली तथा संवादात्मक शैलियों को अपनाया है। गौण रूप से चित्रात्मक, मनोविश्लेषणात्मक शैलियों को भी अपनाया है। पत्रात्मक शैली[2] के द्वारा ही सुजाता एवं शेखर के चारित्रिक विकास को प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास की भाषा सरल एवं व्यवहारिक भाषा है। लेखिका ने कहावतों तथा मुहावरों का[3] भी सुंदर प्रयोग कर भाषा को सहज एवं स्वाभाविक बनाया है।

बासिरेड्डी सीतादेवी :

'समता' उपन्यास में संवादों का प्रयोग अत्यंत कुशलपूर्वक निभाया गया है। इसके माध्यम से कथानक का विकास भी संपन्न हुआ है। सीतापति और अरुंधती के संवादों द्वारा सीतापति के मित्र राजाराव की जीवनी का परिचय मिलता है।[4]

संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। जैसे : निम्नांकित संवादों के द्वारा सास शांतम्मा का विनम्र स्वभाव तथा बहू अरुँधती के घमंडी स्वभाव का पता चलता है।[5]

लेखिका ने वातावरण के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया है। ग्राम तथा नगर दोनों से संबंधित जीवनियों का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है। राजाराव जैसे लोगों के माध्यम से आजकल के ढोंगे नेताओ तथा उनके अनैतिक जीवन की ओर संकेत कर लेखिका ने अपने समय के राजनीतिक वातावरण को यथार्थ रूप से चित्रण करने का प्रयास किया है।

सामाजिक वातावरण में समाज में प्रचलित 'सोशल वर्क' के नाम किये जानेवाले अत्याचारों का वर्णन भी प्रस्तुत है।[6]

मानवीय प्रवृत्तियों को प्रकृति पर आरोपित करती हुई लेखिका उपन्यास के आरंभ में ही वातावरण का चित्रण इस प्रकार करती हैं– "वंचक के हृदय की कलुषता के समान चारों ओर घना अंधकार छाया हुआ है। मेंडकों

---

१. विधि वंचितुलु – पृ. ११७ २. विधि वंचितुलु, पृ. ११०–११९
३. वही, गोंगट्लो तिंटू वेंट्रुकलु, अर्थात् कंबल में खाते हुए बालों को गिनना पृ. २४
४, ५, ६. समता – पृ. ३३, १२३, १५२–१५७

का टर्राना, कीटकों की खिचखिचाहट आदि चित्र-विचित्र ध्वनियाँ, पागलों के खुले बालों के समान लगने वाले बबूल के वृक्ष, राक्षस के फैले हुए हाथों के समान खड़े हुए बरगद के पेड, श्मशान में खडी पिशाच के समान पीपल के वृक्ष, कर्कश करों में जकडी हुई पतिता की जीवनी के समान वातावरण अत्यंत भयंकर लग रहा है।"[1]

लेखिका ने वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का विशेष प्रयोग किया है जि। के माध्यम से कथानक के विकास में ही नहीं बल्कि उपन्यास के अन्य तत्वों के प्रतिपादन में भी सहायता मिली है। वर्णनात्मक शैली में जीवन का विश्लेषण लेखिका ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है – "ज्ञान की उन्नति तो हो रही है किंतु मानव की उन्नति नहीं। बुद्धि की वृद्धि हो रही है लेकिन हृदय की नहीं। सभ्यता का विकास तो हो रहा है लेकिन संस्कारों का नहीं जीवन के प्रति दृष्टिकोण में विशेष रूप से कहलाये जानेवाले परिवर्तन नहीं हुए।[2]"

लेखिका ने उपन्यास में पात्रोचित एवं व्यवहारिक भाषा का प्रयोग किया है। जिस में बहु-प्रचलित कहावतों[3] का समावेश है।

श्रीमती वासिरेड्डी सीतादेवी का 'वैतरिणी' उपन्यास वस्तुपक्ष की दृष्टि से जितनी श्रेष्ठ रचना है उतनी ही शिल्प-पक्ष की दृष्टि से भी। संवादों के माध्यम से कथानक का विकास कराया गया है। नागम्मा और वेंकटराव के बीच होनेवाले वार्तालाप उक्त कथन की पुष्टि करते हैं।[4]

संवादों के माध्यम से लेखिका ने रूढिगत विचारों तथा आचारों की कडी आलोचना भी की हैं। जैसे रामाराव के निम्नांकित कथन से स्पष्ट होता है–"गुस्सा मत होइये दादाजी! समय बदल गया है। जो मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं उनके चिह्न के रूप में जीवित लोगों को नरक में डालना क्या न्याय है? आप सोचिये? इनका विरोध नहीं किया जाय तो इस देश में स्त्रियों के ऊपर किये गये अत्याचारों का कहीं अंत नहीं होगा।"[5]

१, २. समता – पृ. ८, १०–११

३. समता, एकुला वच्चि मेकुला तयारय्यावु, पृ. १०६ अर्थात् सूत के समान आकर कील के समान बनाना, अर्थात् नरम स्वभाव से कटु स्वभाव का होना आदि।

४. वैतरिणी – पृ. ४७

५. वैतरिणी – पृ. ९०–९१, ९, ७

उपर्युक्त जैसे संवादों से भारतीय विधवा की दयनीय दशा तथा अन-मेल विवाह के दुष्परिणाम आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

लेखिका ने आलोच्य उपन्यास में सामाजिक वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया है। गांव का संयुक्त परिवार का चित्रण तथा अशिक्षित विधवा की दयनीय दशा का करुणात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। आंध्र का प्रसिद्ध त्योहार 'नाग चविती' का सुँदर वर्णन भी इसमें प्रस्तुत है।[1]

आलोच्य कृति में प्रकृति-वर्णन भी है, जैसे-"उषा सुँदरी अपनी घूंघट को संवारती हुई गांव के लोगों से बात करने लग गयी है। उसकी मुस्कराहट की कांति धीरे धीरे आकाश भर में छाने लगी। उसके रिक्तम कपोलों की लाली पूरब दिशा में छायी हुई है।'[2]

भाषा सरल एवं मुहावरेदार[3] है। वर्णनात्मक, संवादात्मक तथा पत्रा-त्मक[4] शैलियों का प्रयोग पाया जाता हैं।

पवनि निर्मला प्रभावती :

'शलभालु' उद्देश्य प्रधान उपन्यास है। शिल्प-पक्ष की दृष्टि से यह एक सफल कृति है। इस में सभी संवादों का निर्वाह उद्देश्य की पूर्ति में ही रचे गये हैं। संवादों के माध्यम से कथानक घटनाओं तथा पात्रों के चारित्रिक विकास प्रस्तुत किये गये हैं। श्यामला तथा शिनामी के संवादों के माध्यम से समाज की वेश्यावृत्ति तथा उसके निकृष्ट जीवन पर प्रकाश डाला है।

प्रेम तथा मोह में जो-जो भेद है उसे स्पष्ट करती हुई पार्वती, सरस्वती को इस प्रकार समझाती है– "विश्व भर में समस्त प्राणी जगत में, पारस्परिक रूप से फैला हुआ भाव प्रेम है, लेकिन वही प्रेम गलत राह पकडे, या सीमाओं को पार कर जाय तो उस प्रेम से बढकर शत्रु तथा विनाशकारी मृत्युदेवता और कुछ नहीं हो सकता। उस प्रेमाग्नि में तर्कज्ञान को खोकर कूदनेवाले सभी अग्नि में कूदनेवाले पतंगों के समान जलकर अंत में सर्वनाश हो जाते हैं।"[5]

अधिकांशतः सभी संवाद उद्देश्य की पूर्ति में ही सहायक हुए हैं।

१,२. वैतरिणी – पृ. ९०–९१, ९, ७
३. वही, पृ. ९१, गुड्डोच्चि पिल्लनि वेक्किरिंचिंदट, अर्थात् अंडा सिखवें बच्चे को
४. वही, पृ. १४८–१५७
५. शलभालु – पृ. २११, १७

विवेच्य उपन्यास में सामाजिक वातावरण का चित्रण है। विवेकहीन नारियों का विश्लेषण किया गया है। विवेकहीन नारियों का चित्रण, सिनेमा के प्रभाव में पडकर वेश्यावृत्ति को विवशता अपनानेवाले लडकियों की जीवन-गाथा, विलासपूर्ण नारियों का विश्रंखल जीवन, पुरुषों की कामलोलुपता आदि प्रवृत्तियों का जीता जागता वर्णन इस में प्रस्तुत किया है।

यत्र तत्र प्राकृतिक वर्णनों के द्वारा उपन्यास को सरल एवं रोचक बनाया गया है।[1] प्रकृति वर्णन द्वारा लेखिका ने दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन किया है 'अनंत आसमान का भी एक अंत है। इस समुँदर की एक सीमा है। यह सीमा ही अगर न होता ? समुद्र बढने पर यह विशाल संसार जलमय नहीं हो जायेगा ? इतनी जल राशि को, इस प्रकार रोक कर रखने का सामर्थ्य किसमें हैं ? किस वैज्ञानिक को है ? और किसको है। उस भगवान में है जो सर्व प्राणियों के लिए आधारभूत मानवों की अतीत शक्ति है। इस प्रकार की देवीय शक्ति न हो तो यह समुद्र तथा वह आकाश क्या अपनी सीमाओं में रह सकेंगे ?'[2]

उपन्यास में अधिकतर संवादात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। गौण रूप से पत्रात्मक[3] स्वगत कथनात्मक[4] शैलियों का प्रयोग हुआ है। यत्र तत्र अलंकारों के प्रयोग से जैसे ''नागस्वर सुनते ही विषनाग के समान मंत्र मुग्ध हो जाना''[5] आदि के प्रयोग से भाषा सजीव एवं सुंदर बन पडी है।

व नादेव :

'पुण्यभूमि कल्लु तेरू' उपन्यास वस्तुपक्ष की दृष्टि से जितना उत्कृष्ट बन पडा है उतना ही शिल्पपक्ष की दृष्टि से भी। उपन्यास में कथानक का विकास अधिकतः कथोपकथन के माध्यम से हुआ है। लेखिका ने संवादों के द्वारा घटनाओं में गतिशीलता लाने के साथ साथ पात्रों के हृदयगत भावों की भी अभिव्यक्ति कराई है। वार्तालाप, पात्रों के अनुकूल होने से उसमें लेखिका के बौद्धिक उत्कर्ष तथा कलात्मक परिपक्वता का भी परिचय मिलता है। जहाँ एक ओर संवादों के माध्यम से कथाप्रसार, चरित्रोद्घाटन तथा उद्देश्य की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ दूसरी ओर वातावरण तथा भाषा-शैली का भी।

---

१. शलभालु – पृष्ठ : २११, १७
२., ३. शलभालु, – पृ. १८, २४ ४. शलभालु, – पृ. ३५, ४५, १९
५. शलभालु – पृष्ठ २४

अशिक्षित गाँव के लोगों में अपने वंश की मर्यादा के प्रति गौरव की भावना, सिंहाचलम पात्र के माध्यम से प्रकट कराया गया है। तो संवादों के ज़रिये ही उसकी पत्नी राजम्मा का यथार्थपरक दृष्टिकोण भी दिखाया गया है।

रिचर्ड तथा जे. जे. के संवादों के माध्यम से लेखिका ने हमारे देश का एक भाग जो सड़ा हुआ हैं, लोगों की कुटिल बुद्धि तथा हिपोक्रेसी का चित्र खींचा हैं।

इस उपन्यास में उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गीय परिवारों के वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। राणी के जीवन के माध्यम से उच्च वर्गीय, विजया तथा रंगराजू के जीवन के माध्यम से मध्य वर्गीय और राजम्मा तथा सिंहाचलम के जीवन के माध्यम से निम्न वर्गीय परिवारों के वातावरण का और उनसे संबंधित समस्याओं का चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त गवर्राजु, बनिया सुरेश, वेंकटराव, पुरुषोत्तम आदि पात्रों के द्वारा समाज के हिपोक्रेट्स का चित्रण पाया जाता है। उपन्यास में यत्र तत्र न्यायालयों, आश्रमों[1] तथा जेलों[2] के वातावरण का भी यथार्थपरक चित्रण प्रसंगानुकूल प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास के अधिकतर परिच्छेदों का आरंभ प्रकृति-वर्णन से हुआ है। कहीं लेकिका ने प्रकृति में मानवीय गुणों को आरोपित किया है तो कहीं मानवीय गुणों की तुलना प्रकृति से की है। जैसे डूबते हुए सूर्य की किरणों की काँति समुद्र में पडकर जलते हुए 'पेट्रोल के समान प्रतीत हो रही है। समुद्र की लहरें उसकी लपेटों की जीभ के समान हैं। उन लपेटों यें जलकर कोयला बने हुए शवों के समान प्रतीत हो रहे हैं वहाँ के नावों पर तैरनेवाले काले वर्ण के मछुआरे।'[3]

आश्रम के स्वामी का वर्णन करती हुई लेखिका ने प्राकृतिक गुणों को उनमें आरोपित किया है।[4]

लेखिका ने वर्णनात्मक शैलियो का सफल प्रयोग किया है। कथानक जितना मार्मिक हैं, कथन-शैली उससे भी अधिक प्रभावात्मक बन पडी है। इसके अतिरिक्त लेखिका ने व्यंग्यात्मक[5], स्मृतिपरक शैली[6], मनोविश्लेषणात्मक[7] एवं चमत्कारपूर्ण[8] शैलियों का भी प्रयोग किया है।

१., २., ३. पुण्यभूमि कल्लु तेरू – पृ. १६९-१७८, ३४६-३५०, ३३७

४., ५., ६., ७., ८. पुण्यभूमि कल्लु तेरू – पृ. १७०, १५४-१५५, २२४, ९८, १०

लेखिका ने उपन्यास में पात्रोचित भाषा का प्रयोग कर कथानक को स्वाभाविक बनाया है। अपढ सिंहाचलम तथा राजम्मा उपन्यास में आद्यंत गँवारू भाषा का ही प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी शब्दों का भी लेखिका ने यथेष्ट मात्रा में प्रयोग किया है। उपमानों के प्रयोग में लेखिका ने अपनी मौलिकता एवं प्रतिभा का परिचय दिया है जैसे– किसी स्त्री की मासूमियत की तुलना करती हुई किसी वरदान के प्रभाव से एकदम बडी होनेवाली बच्ची से करना[1] रात की तुलना बिना सूरत वाले भयंकर मनुष्य से करना[2] आदि। इस प्रकार लेखिकाओं द्वारा रचित उपन्यास साहित्य का अत्युत्तम उपन्यास माना जा सकता है।

मल्लादि वसुंधरा :

श्रीमती मल्लादि वसुंधरा के 'तंजाऊरू पतनमु' का शिल्पपक्ष मौलिक एवं प्रौढ है।

उपन्यास में संवादों के माध्यम से कथानक का,[3] तथा पात्रों का चारित्रिक विकास[4] कराया है। उपन्यास के आरंभ में ही पेद्दिदासु तथा काळकवि के बीच होनेवाले संवादों[5] से उस समय के राजाओं द्वारा कवियों को सम्मानित किये जाने कीं बात तथा कवियों के स्वतंत्र विचारों का पता चलता है।

इस उपन्यास में वातावरण के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है। उस समय के राजाओं के विलासमय जीवन का, साहित्य एवं कला संबंधी मान्यताओं का तथा उस समय के वास्तुशास्त्र एवं शिल्प-विज्ञान का तथा सामाजिक आदर्शों का चित्रण कर लेखिका ने उपन्यास के वातावरण में प्राण फूँक दिये हैं।

उस समय समाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का भी चित्रण पाया जाता है। रादनीति में राजाओं के सलाहकार ब्राह्मण रहे थे। साधारण जनता उस समय गृहस्थ-धर्म पर अभिमान करती थी। तब एक पत्नीव्रत का पालन नहीं था। राजा अधिक विलासप्रिय होते थे। अतः वेश्याओं के लिए भी समाज में गौरवस्थान प्राप्त था।

उस समय वैष्णव धर्म का आधिक्य था। राजा विजयराघव वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। राजाओं के द्वारा साहित्य के लिए प्रोत्साहन मिलने के कारण पेद्दिदासु, क्षेत्रय्या जैसे महान कवियों के साथ राजम्मा जैसी कवियित्री भी थी।

१., २. पुण्यभूमि कल्लुतेरू – पृ. १४, २९

३., ४., ५. तंजाऊरू पतनमु – पृ. १५८-१५९, ७५-७६, ८-९

उपन्यास की भाषा साहित्यिक एवं समाज प्रधान है।

विशेषतः उपन्यास में वर्णनात्मक तथा गौण रूप से संवादात्मक, नाटकीय तथा चित्रात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

'रामप्पागुडि' में लेखिका ने शिल्प-वैशिष्टय के माध्यम से उपन्यास को सजीवता प्रदान की हैं। संवादों के माध्यम से कथानक में गति लाने के साथ साथ पात्रों के चारित्रिक विकास को भी सूचित किया गया है। राजा के सेनापति काटया तथा भाण्डया के द्वारा शिवालय के निर्माण के लिए रामप्पा जैसे महान शिल्पी से अनुरोध किया जाना तत्कालीन कलाकारों के प्रति राजाओं के आदरभाव को सूचित करता है।[1] यह स्पष्ट हो जाता है कि शिल्पकारों के लिए उन दिनों कितना आदर एवं सम्मान प्राप्त था। इस उपन्यास में शिल्पियों तथा शिल्प-ज्ञान का अच्छा विवरण मिलता है। रामप्पा के इस कथन से लेखिका के शिल्प-ज्ञान का पता चलता है – 'मंदिर का निर्माण तीन तरह से होगा, शुद्ध, मिश्रित तथा संकीर्ण। उनमें शुद्ध सब से श्रेष्ठतर है। केवल चोळों के शिल्प-संप्रदाय के अनुकूल ही मंदिर का निर्माण न कर काकतीयों की शिल्प-विधि के अनुसार लता, हार, विमान आदि को भी प्रधानता दी जाए तो अच्छा होगा।'[2]

रामप्पा तथा उसके मित्र मृत्युंजय के वार्तालापों से उन दोनों के भावुक-स्वभाव का परिचय मिलता है।[3] लेखिका ने सहज, पात्रानुकूल तथा रोचक संवादों के साथ-साथ तर्कयुक्त संवादों[4] का भी प्रयोग किया है। शैव और विष्णु धर्मावलंबियों में एकता को स्थापित करने की दृष्टि से रामप्पा और अनंतशर्मा के बीच जो वार्तालाप चलते हैं वे बहुत ही दीर्घ एवं विचारपूर्ण बन पडे हैं।[5]

उपन्यास में आद्यंत धार्मिक वातावरण का चित्रण पाया जाता है। उन दिनों शैव तथा वैष्णव धर्मावलंबियों के बीच वैमनस्य अधिक पाया जाता था। रामप्पा के मन में शैवालय तथा विष्णु मंदिर के निर्माण के बीच संघर्ष का चित्रण कर दोनों धर्मों के बीच समन्वय कराकर तत्कालीन राजाओं तथा कलाकारों की धार्मिक दृष्टि कोणों का परिचय कराया है।

१, २. रामप्पगुडि, – पृष्ठ : ३३, ३६

३. रामप्पगुडि – पृष्ठ : ४३-४४

४. रामप्पगुडि, पृ. ३४, ३५, २१२

५. रामप्पगुडि, पृ. १८२, २३८

लेखिका ने वैशाखपूर्णिमा के अवसर[1] पर मनाये जानेवाले उत्सव का वर्णन चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत किया है जैसे – "उस दिन जहाँ भी देखो तरह तरह के रंग-बिरंगे फूल, हल्दी, कुंकुम, गुलाल एक दूसरे पर फेंकते रहते हैं। इसमें स्त्री और पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं। जहाँ देखो वहाँ कामदेव के विग्रहों का, ईख के धनुष हाथ में धरे फूलों को हाथ में लिये मन्मथ वेष धारियों का, जूलुस निकले दिखाई देते हैं।"[2]

उपन्यास में प्रकृति वर्णन के प्रति भी यथेष्ट ध्यान दिया गया है। उदाहरणार्थ रामप्पा के हृदय को भानेवाले प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण अत्यंत मनोरंजक है।[3]

इसमें वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अधिक हुआ है जिसके माध्यम से कथानक का विकास कराने के साथ साथ पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं, शिल्पगत विशिष्टताओं, एवं धार्मिक और सामाजिक वातावरण का भी चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास की भाषा तेलुगु की समास एवं संधियों से युक्त साहित्यिक भाषा है।

श्रीमती मल्लादि वसुंधरा के 'सप्तपर्णि' उपन्यास में शिल्पगत नवीनता की मात्रा अधिक उपलब्ध हुई है। इसमें संवादों का सफल निर्वाह किया गया है। उनके माध्यम से कथानक[4] का तथा पात्रों का चारित्रिक विकास[5] कराया गया है। स्वामी तथा जक्कन्ना के संवादों के माध्यम से उपन्यास में कई स्थानों पर राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण के प्रति संकेत किया गया है। उदाहरणार्थ प्रतापरुद्र के राज्य–काल में शिल्पियों, गायकों तथा कवियों की उपेक्षा किये जाने का चित्रण[6], शासन व्यवस्था कम्मा तथा वेलमा जाति के लोगों में रहना[7] और उनके द्वारा रेड्डी जाति के लोगों की उपेक्षा किया जाना[8] आदि उस समय की सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण की ओर संकेत करते हैं। लेखिका ने अवसर पाकर मांचालदेवी के रंगमंदिर का चित्र खींचती हुई तत्कालीन आंध्र की शिल्प–कला के वैशिष्ट पर प्रकाश डाला है।[9]

लेखिका ने काकतीय राजा प्रतापरुद्र के समय राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।

---

१. रामप्पगुडि पृ. ६२-७१ २. उत्तरभारत में जिसे 'होली' कहा जाता है।

३. वही पृ. १४६–१४७,

४., ५., ६. सप्तपर्णि – पृ. १३१–१३२, ९९, १२७

७., ८., ९. वही, – पृ. १२६, १२८, ५०–५१

विवेच्य उपन्यास में मुख्यतः वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का प्रयोग किया है, किंतु आंशिक रूप से पत्रात्मक[1] तथा काव्यात्मक[2] शैलियों का प्रयोग किया गया है। लेखिका एक स्थान बंदी जक्कन्ना की दशा का वर्णन चित्रात्मक शैली में नागय्या के पात्र के द्वारा प्रस्तुत करती हैं।[3]

इसमें तेलुगु की परिनिष्ठत साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है।

१., २., ३. सप्तपर्णि - पृ. ६७, ४५, १३९

स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु उपन्यासों में शिल्प-पक्ष : एक मूल्यांकन

स्वातंत्र्य-पूर्व की तेलुगु लेखिकाओं के उपन्यासों में उपलब्ध कला-तत्वों की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर अवधि के तेलुगु उपन्यासों में शिल्पगत विकास दृष्टिगोचर होता है।

स्वर्गीय श्रीदेवी ने अपने एकमात्र उपन्यास में सामाजिक विषय-वस्तु को सुंदर शैली में प्रतिपादन कर तेलुगु उपन्यास क्षेत्र में अमर हो गयीं। लेखिका ने इस उपन्यास में मनोविश्लेषणात्मक शैली को अपनाया है। उपन्यास की भाषा अत्यंत सरल एवं व्यवहारिक है। पत्रात्मक, स्वगतकथनात्मक, आदि शैलियों का भी अत्यंत कलात्मक प्रयोग प्रस्तुत करनेवाला यह उपन्यास तेलुगु की लेखिकाओं के ही नहीं बल्कि लेखकों के द्वारा रचित उपन्यासों मे भी एक विशिष्ट स्थान रखता है।

मालती चंदूर ने विवेच्य कालीन उपन्यासों की शैलिपक प्रतिभा का विकास कराने में यथेष्ट योग दिया है। इन्होंने प्रधानतः संवादों के माध्यम से चारित्रिक विकास कराने के साथ साथ कथानक को भी गति प्रदान की है। सामाजिक वातावरण का विस्तृत धरातल पर यथार्थ परक शैली में चित्रण कर लेखिका ने पारिवारिक वातावरण के दायरे से बाहर निकल कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'रेणुकादेवी आत्मकथा' में जहाँ आत्मकथनात्मक–शैली का प्रयोग किया गया है वहाँ अन्य उपन्यासों में वर्णनात्मक, संवादात्मक आदि शैलियों का।

श्रीमती रंगनायकम्मा के उपन्यासों में जितनी वस्तुगत मौलिकता पायी जाती है उतनी ही शिल्पगत विविधता भी। लेखिका ने किसी उपन्यास में

वर्णनात्मक शैली को प्राथमिकता दी है तो किसी में संवादात्मक को और किसी में पत्रात्मक शैली को । सामाजिक वातावरण का तथा तत्संबंधी समस्याओं का यथार्थ परक शैली में चित्रण करने में लेखिका अत्यंत सफल हुई हैं । इनके उपन्यासों में साधारण तथा तर्कयुक्त दोनों प्रकार के संवादों का प्रयोग पाया जाता है ।

तेलुगु की भाषा पर विशेष अधिकार रखनेवाली फ्रायड के सिद्धांत से प्रभावित एक अन्य लेखिका है श्रीमती तेन्नेटी हेमलता । इनके उपन्यासों में अतियथार्थवादी शैली में समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा रीति-रिवाजों पर कुठार-प्रहार करती हुई समाज के कुत्सित वातावरण का चित्रात्मक शैली में वर्णन किया गया । लेखिका ने स्त्री पुरुषों के लैंगिक संबंधों का भी सहज एवं स्वच्छंद चित्रण किया है । प्रकृति में मानवीय गुणों का आरोप करने में लेखिका सिद्धहस्त हुई हैं । मनोविश्लेषण की गंभीरता इनके उपन्यासों में देखी जा सकती है । नयी सभ्यता के मोह में, स्वच्छंदता की आड में पलनेवाले स्त्री-पुरुषों को वासनाओं का, ढोंगें प्रेम-बंधनों का लेखिका ने खुलकर चित्रण किया है । इस प्रकार भाव तथा शैली दोनों की दृष्टि से तेलुगु उपन्यास साहित्य में लता जी का विशिष्ठ स्थान है ।

शैल्पिक प्रतिभा संपन्न एक अन्य उपन्यासकर्त्री श्रीमती कोडूरि कौशल्या देवी हैं । इन्हें संवाद योजना में अत्यधिक सफलता मिली हैं । उपन्यास में न्याय अन्याय, धर्म-अधर्म के बीच के संघर्ष का चित्रण करने में लेखिका ने तर्कयुक्त संवादों का सहारा लिया है । मानसिक संघर्ष, ईर्ष्या-द्वेष आदि का भी सहज चित्रण करने में लेखिका सिद्ध हस्त साबित हुई है । इनकी भाषा सरल एवं व्यवहारिक है ।

नारी जीवन की पृथक समस्याओं को लेकर, परिवार के साथ उसकें संबंधों का सहज चित्रण कर पारिवारिक वातावरण का निर्माण करनेवाली लेखिकाओं में श्रीमती द्विवेदुला विशालाक्षी का नाम उल्लेखनीय है । लेखिका की संवाद योजना की पटुता सहजता वैविध्य तथा नवीन शैली के प्रयोगों में उसकी प्रतिभा दर्शनींय है ।

श्रीमती यद्धनपूडि सूलोचनाराणी की संवाद-योजना में अधिकत: आदर्शपरक शैली दृष्टिगोचर होती है । लेखिका के पात्र अधिकांशत. काल्पनिक तथा आदर्श लोक में विचरण करनेवाले हैं । कथा-विकास तथा वातावरण का चित्रण करने के लिए विशेषत: संवाद-योजना को साधन तुल्य बनाया गया है। संवादों के माध्यम से ही पात्रों के स्वभाव का तथा लेखिका के बौद्धिक उत्कर्ष

का भी पता चलता हैं। लेखिका ने वर्णनात्मक शैली का सुंदर प्रयोग किया है। अधिकांश उपन्यासों में उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग के पात्रों के बीच प्रेम-संबंधों को स्थापित कर, उनके बीच संघर्ष का चित्रण कर आदर्शवादी दृष्टि-कोण से उनका निदान प्रस्तुत करना लेखिका की शैली का मुख्य गुण रहा है। घटनाओं के अनुकूल वातावरण का चित्रण कर आद्यंत पाठकों की रूचि बनाये रखने की शक्ति लेखिका की भाषा में है।

श्रीमती कोमलादेवी ने परिस्थितियों से प्रताडित नारी पात्रों का चित्रण यथार्थ परक शैली में किया है। अपने उपन्यासों में प्रगतिवादी शैली में सामाजिक वातावरण का निर्माण कर घटनाओं को स्वाभाविक ढंग से विक-सित करने में लेखिका ने कलात्मकता का परिचय दिया है। संवाद-योजना प्रौढ एवं प्रभावोत्पादक हैं। इनकी भाषा सरल और मुहावरेदार है।

श्रीमती मादिरेड्डी सुलोचनाराणी ने तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों के वस्तु-क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करते हुए सामाजिक वातावरण के साथ साथ राजनैतिक वातावरण का तथा राजनीतिक नेताओं की चापलूसी आदि का वर्णन भी किया है। इस के लिए लेखिका ने यथार्थवादी शैली का ही सहारा लिया हैं। इनके उपन्यासों में कथानक के विकास के अनुकूल वाता-वरण का चित्रण, अभिव्यंजन की प्रांजलता, संवाद-योजना में पटुता आदि विशेषतायें उपलब्ध हैं।

श्रीमती आनंदारामम ने स्त्री-समस्याओं को यथार्थवादी दृष्टिकोण से परखकर विषम परिस्थितियों में पडी संघर्षमयी नारी का चित्रण प्रस्तुत किया है। लेखिका ने साधारण, चमत्कारपूर्ण तथा तर्कयुक्त संवादों का सफल प्रयोग किया है। इनकी भाषा भी प्रवाहमयी, सरल एवं व्यवहारिक है।

श्रीमती डी. कामेश्वरी के उपन्यासों में कथोपकथनों द्वारा मुख्यतः कथानक का विकास कराया गया है, इस के अतिरिक्त पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन कराना भी लेखिका का लक्ष्य रहा है। वतावरण का जहाँ तक प्रश्न है लेखिका ने समकालीन सामाजिक वातावरण के चित्रण तक ही अपने को सीमित रखा है। पारिवारिक काम-काज तथा तत्संबंधी समस्याओं का चित्रण में लेखिका ने अधिक रूचि ली है।

सुश्री वासिरेड्डी सीतादेवी के उपन्यासों में जितनी वस्तुगत विविधता हैं, उतनी ही शिल्पगत भी। लेखिका ने नारी जीवन के विभिन्न आयामों का समकालीन समाज का तथा तत्कालीन राजनीतिक नेताओं का यथार्थ चित्रण

व्यंग्यपूर्ण शैलियों में प्रस्तुत किया है। संवाद संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं। आपकी भाषा व्यंग्यपूर्ण होने के साथ साथ भावपूर्ण भी है।

श्रीमती पवनि निर्मला प्रभावती के अधिकांश संवाद उद्देश्य की पूर्ति में ही सहायक रहे हैं। फलत: अधिकतर संवाद दीर्घ बन पडे हैं जिस से कथा-प्रवाह में नीरसता आ गयी है। लेखिका ने सामाजिक समस्याओं का तथा पारिवारिक संबंधों का यथार्थपरक शैली में चित्रण किया है। आपकी भाषा सहज एवं स्वाभाविक है।

स्वतंत्र्योत्तर अवधि की लेखिकाओं में भाषा एवं भाव की दृष्टि से बीनादेवी अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। लेखिका ने तीखे तथा चमत्कार-पूर्ण संवादों के प्रयोग में, कथानक के प्रवाह में गति एवं स्वाभाविकता लाने में, अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। लेखिका ने आज के कुत्सित सामाजिक पक्ष का यथार्थ चित्रण कर उस पर कटु व्यंग्य भी किया है। कथानक की घटनायें अत्यंत स्वाभाविक रूप से विकसित हुई हैं। भाषा पर आपका जो विशेष अधिकार है उस से भी आपके उपन्यास विशिष्ट बन पडे हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों की लेखिका श्रीमती मल्लादि वसुँधरा ने आंध्र से सबंधित इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं को कथानक के रूप में स्वीकार कर उस में आंध्रों की समसामयिक सभ्यता एवं संस्कृत का चित्रण प्रस्तुत किया हैं। लेखिका ने कथानक का स्वाभाविक विकास कराने में तत्कालीन वातावरण को अपनी कल्पना-प्रतिभा के बल सुँदर रूप में चित्रित किया है। तत्कालीन शिल्पकला संबंधी विषयों का चित्रण करने में लेखिका को विशेष सफलता मिली है। स्वातंत्र्योत्तर अवधि में तेलुगु की प्राचीन काव्य भाषा (ग्रांथिक भाषा) में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर वसुन्धरा देवी जी ने पूर्व परंपराओं के प्रति अपने आग्रह का परिचय दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि स्वातंत्र्यपूर्व की तुलना में इस अवधि के उपन्यास वस्तु की ही नहीं बल्कि शिल्प की दृष्टि से भी प्रौढ बन पडे हैं। लेखिकाओं ने विभिन्न प्रभावों को उत्पन्न करनेवाले संवादों के प्रयोग में तथा कथानक के सहज विकास कराने में अपेक्षित वातावरण का निर्माण कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है। भाषा की दृष्टि से भी लेखिकाओं ने विशेष प्रगति की है। अधिकांश लेखिकाओं ने अपनी पूर्ववर्ती काव्य भाषा को छोड कर आधुनिक व्यवहारिक रूप का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में सहजता, प्रवाहमयता, ओजपूर्णता, चित्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता आदि गुण पायें जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि शैल्पिक सौष्ठव की दृष्टि से भी आलोच्य उप-न्यास, स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यासों से श्रेष्ठ हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों में शिल्प-पक्ष : तुलनात्मक निष्कर्ष

विगत पृष्ठों में महिलाओं द्वारा विरचित हिंदी तथा तेलुगु उपन्यासों का जो शिल्पगत मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर यहाँ तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं।

स्वातंत्र्य-पूर्व अवधि की तुलना में इस अवधि के उपन्यासों में लेखिकाओं की शैल्पिक-प्रतिभा अधिक मुखर हो उठी है। इस अवधि में अधिकांश लेखिकायें पाश्चात्य साहित्यों के संपर्क में आने के कारण वे अपनी प्रतिभा को विकसित कर पाई। उपन्यासों के शिल्पगत सौष्ठव को प्रकट करनेवाले तत्वों— कथोपकथन, वातावरण तथा भाषा-शैली पर सम्यक रूप से प्रकाश डालने से विदित होता है कि इनके निर्वाह में हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने समान प्रतिभा का परिचय दिया है। दोनों लेखिकाओं ने कथोपकथन को साधन तुल्य मानकर तद्वारा कथानक का विकास कराने में, पात्रों के चारित्रिक विकास को प्रस्तुत करने में, वातावरण के निर्माण में, अपने विचारों तथा उद्देश्य को अभिव्यक्ति आदि में लगभग समान रूप से अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

दोनों लेखिकाओं के उपन्यासों के कथोपकथनों की शैली तथा भाषा के आधार पर पात्र किस वर्ग के हैं, भाषा पर लेखिका का कितना अधिकार है आदि तथ्यों की ओर भी संकेत मिलता है। हिंदी तथा तेलुगु की अधिकतर लेखिकाओं ने पात्रों का प्रवेश कराते समय वर्णनात्मक शैली के द्वारा पात्रों के मनस्तत्वों तथा उनके परिवेश का भी परिचय दिया है। इनके उपन्यासों में

सहज साधारण संवादों के अतिरिक्त तर्कयुक्त, चमत्कारपूर्ण आदि संवादों को अधिक प्रश्रय मिला है। हिंदी की लेखिकाओं की संवाद योजना में मनोविश्लेषणात्मक का पुट अधिक पाया जाता है जबकि तेलुगु की लेखिकाओं के संवादों में भावात्मक का। दोनो साहित्यों की लेखिकाओ ने हास्योत्पादक संवादो के प्रयोग के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया है। इस दृष्टि से तेलुगु की श्रीमती भानुमति रामकृष्णा हिन्दी की लेखिकाओ से आगे निकल गयीं हैं।

विवेच्य उपन्यासों में चित्रित वातावरण का अध्ययन किये जाने पर स्पष्ट होता है कि दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने ऐतिहासिक तथा राजनीतिक वातावरण की अपेक्षा सामाजिक वातावरण के प्रति विशेष रूप से स्त्री-समाज से संबंधित वातावरण का चित्रण किया है। लेखिकायें, लेखकों की अपेक्षा स्त्री-सुलभ ईर्ष्या-द्वेष, मान-अभिमान सौतेली डाह आदि के चित्रण में अधिक सफल सिद्ध हुई हैं।

हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों के जीवन का उनकी समस्याओं का तथा उनके बीच होनेवाले पारस्परिक संघर्ष का, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज-प्रथा, वेश्यागमन, घूसखोरो, सिफारिशदारी, तथा नैतिक आदर्श आदि विषयों का यथार्थपरक चित्रण कर सामाजिक वातावरण का यथार्थपरक एवं सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

तेलुगु की अधिकांश लेखिकाओं ने पारिवारिक वातावरण का चित्रण करने में ही अधिक रुचि ली हैं तो हिंदी की लेखिकाओं ने समाज के वैविध्यपूर्ण एवं व्यापक वातावरण के चित्रण में। तेलुगु में भी, श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा, श्रीमती तेन्नेटि हेमलता तथा श्रीमती वीनादेवी के उपन्यासों में ही इस प्रकार के व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण समाज का चित्रण पाया जाता है। दोनों ही लेखिकाओं ने समाज में प्रचलित कुरीतियों तथा अंधविश्वासों का यथार्थपरक अंकन प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं को समान रूप से सफलता प्राप्त हुई है। तेलुगु की लेखिका श्रीमती मल्लादि वसुंधरा ने ऐतिहासिकता के साथ-साथ कल्पना का भी सुंदर समावेश किया है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों की कल्पना की मात्रा की अधिकता पर आक्षेप लगाते हुए श्री मोदलि नागभूषण शर्मा जी कहते हैं—'इनके उपन्यासों की भाषा

अत्यंत कठिन है। इतिहास की अपेक्षा कल्पना की मात्रा अधिक होने के कारण ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा कल्पना प्रधान उपन्यासों की कोटि में इनकी गणना होने लगी है।'[1] जो कि अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार हिंदी में उमादेवी के 'आलिंगन' ऐतिहासिक उपन्यास में भी प्रेम तत्व को अधिक प्रधानता देने के कारण इसे ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर ऐतिहासिक प्रेमाख्यान की संज्ञा दी गयी है।

हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने ग्रामीण तथा शहरी जीवन से संबंधित कथानकों को ग्रहण कर तदनुकूल वातावरण का चित्रण किया है। हिंदी की अधिकांश लेखिकाओं ने जहाँ शहरी वातावरण के चित्रण में अधिक सफलता पायी है वहाँ तेलुगु की अधिकांश लेखिकाओं ने ग्रामीण वातावरण के चित्रण में प्राकृतिक वातावरण के प्रति भी दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने यथेष्ट ध्यान दिया है।

पूर्व स्वतंत्र्यकालीन उपन्यासों की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में नवीन शैलियों के प्रयोग पाये जाते हैं। स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उपन्यासों में कथानक-प्रवाह के बीच बीच में अवरोध उत्पन्न करते हुए पाठकों को संबोधित करने की प्रवृत्ति हिंदी तथा तेलुगु दोनों साहित्यों के उपन्यासों में पायी जाती थीं वह स्वातंत्र्योत्तरी अवधि में दिखाई नहीं देती। वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त लेखिकाओं ने संवादात्मक नाटकीय एवं चित्रात्मक शैलियों का सफल प्रयोग किया है। कुछ लेखिकाओं ने पत्रात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। जैसे हिंदी में श्रीमती रजनी पनिकर ने 'जाडे की धूप' और श्रीमती बसंत प्रभा ने 'अधूरी तस्वीर' में और तेलुगु में श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्मा ने 'कृष्णवेणी' में आद्यंत पत्रात्मक शैली का प्रयोग कर अपनी शैल्पिक प्रतिभा का परिचय दिया है। आत्मकथात्मक शैली में भी हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने उपन्यास-रचना की हैं। हिंदी में श्रीमती रजनी पनिकर का 'एक लडकी दो रूप' तथा तेलुगु में श्रीमती मालती चंदूर का 'रेणुकादेवी आत्मकथा' और श्रीमती द्विवेदुला विशालाक्षी का 'ग्रहण विडिचिंदि' इस शैली प्रयोग के सफल उपन्यास हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है स्वातंत्र्यपूर्व भाषा की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर अवधि की लेखिकाओं की भाषा अधिक प्रौढ एवं प्रांजल बन पडी है। जिसमें सरलता, स्वाभाविकता आदि गुण पाये जाते हैं। हिंदी की तुलना में

१. तेलुगु नवला विकासमु – तेलुगु नवल संक्षिप्त चरित्र – पृष्ठ : १११

स्वातंत्र्योत्तर अवधि की तेलुगु की लेखिकाओ की भाषा पूर्ण भिन्न है। स्वातंत्र्य-पूर्व अवधि के तेलुगु उपन्यासों की भाषा जहाँ संस्कृत शब्द एवं समास निष्ठ अथवा क्लिष्ठ साहित्यिक शिष्ठ तेलुगु रही तेलुगु की स्वातंत्र्योत्तर अवधि की ऐतिहासिक उपन्यासकर्त्री मल्लादि वसुंधरा जैसी लेखिका को छोडकर अधि-कांशत: लेखिकाओं ने तेलुगु के व्यवहारिक और आधुनिक रूप को अपनाया है। यहाँ तक कि कुछ आंचलिक प्रयोगों के साथ-साथ पात्रों की स्थिति गतियों के अनुरूप भाषा का प्रयोग कर उसमें सजीवता का संचार कराया है। भाषा में आँचलिक तत्वों का समावेश दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने किया हैं। इस से भाषा में सहजता एवं प्रवाहमयता आ गयी है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग इस अवधि के उपन्यासों की विशेष उपलब्धि है। हिंदी की लेखिकाओं ने जहाँ दैनिक जीवन में प्रचलित अंग्रेजी तथा अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं ने अंग्रेजी तथा उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है। हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने उपमाओं, कहावतों एवं मुहावरों के प्रयोग में अपनी मौलिकता का परिचय दिया हैं।

इस प्रकार हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं की शैल्पिक-प्रतिभा का तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता हैं कि दोनों ने स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की लेखिकाओं की तुलना में प्रौढता प्राप्त की है। सहज एवं वैविद्यपूर्ण संवादों के प्रयोग में दोनों ही ने समान प्रतिभा को दर्शाया है। अंतर केवल इतना ही है कि जहाँ हिंदी की लेखिकाओं ने मनो-विश्लेषणात्मकता के पुट को संवाद योजना तथा शैली-प्रयोग में अधिक दर्शाया है तो तेलुगु की लेखिकाओं ने भावात्मकता को। कथानक के अनुकूल, घटना-विकास के अनुकूल वातावरण के सृजन में जहाँ हिंदी की लेखिकाये विविधता प्रदर्शित कर चुकी हैं वहाँ तेलुगु की अधिकांश लेखिकाओं ने सामाजिक वाता-वरण के चित्रण में अधिक सफल हुयी हैं। दोनों ही लेखिकाओं ने भाषा के आधुनिक एवं व्यवहारिक रूप का प्रयोग कर उसमें सरलता तथा सजीवता लाने का भरसक प्रयत्न किया है।

— 0 —

सप्तम अध्याय

उपसंहार

लेखिकाओं के हिन्दी तथा तेलुगु उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन से कुछ ऐसे तथ्य प्रकाश में आये हैं जो साहित्य की दृष्टि से ही नहीं प्रत्युत् दोनों प्रांतों के बीच की सांस्कृतिक एवं वैचारिक समानताओं तथा विषमताओं पर भी प्रकाश पडता है। समाज-सुधार की भावना की दृष्टि से भी ये तथ्य महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं। यहाँ पर तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर हिंदी तेलुगु के उपन्यास साहित्यों के विकास में महिलाओं के योगदान का समग्र रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर हिंदी तथा तेलुगु की उपन्यासकर्त्रियों की रचनाओं के वस्तुपक्ष पर दृष्टिपात करने से हमें पता चलता है कि दोनों साहित्यों की लेखिकायें अपने समय एवं परिवेश के प्रति जागरूक रही हैं। इसी कारण इन लेखिकाओं ने साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत की राजनीतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक साहित्यिक आदि परिस्थितियों से लेखिकायें प्रेरित ही नहीं प्रत्युत साहित्य-सर्जना के लिए बाध्य भी हुई। नारी-समाज पर, पुरुष समाज का जो आंतक एवं विशेष अधिकार प्रतिष्ठित हुआ था उसी की प्रतिक्रिया उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं, आरंभ काल में प्रतिकूल परिस्थियों के कारण लेखिकाओं की रचनात्मक प्रतिभा को आवश्यक प्रोत्साहन नहीं मिला। तदुपरांत जैसे-जैसे परिस्थितियाँ उनके अनुकूल होने लगी वैसे-वैसे लेखिकाओं ने नारी-

जगत से संबंधित समस्याओं की ओर समाज को आकृष्ट करने के लिए कथा-साहित्य को एक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया हैं। इसीलिए लेखिकाओं का योगदान कथा-साहित्य के क्षेत्र में विशेषकर उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में जितनी मात्रा में हुआ है उतना साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं।

लेखकों की भांति लेखिकाओं ने भी उपन्यास साहित्य के आरंभिक ाकल में अनुवादों के माध्यम से पदार्पण किया। इस दृष्टि से हिन्दी में श्रीमती बंग-महिला, श्रीमती गोपालदेवी तथा तेलुगु में श्रीमती वीरमु सुभद्रांबा, पुलगुर्तु लक्ष्मीनरसमाँबा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आरंभिक काल में अधिकतर उपन्यास बंगला से ही अनूदित किये गये हैं। हिंदी तथा तेलुगु में महिलाओं द्वारा विरचित सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास के रचनाकाल में सोलह वर्षो का अंतर पाया जाता है। हिंदी का सर्व प्रथम उपन्यास सन् १८९७ में रचा गया है तो तेलुगु का सन् १९०६ में। हिंदी में महिलाओं द्वारा विरचित सर्वप्रथम उपन्यास जहाँ सामाजिक परिवेश तथा, स्त्री की आर्थिक परतंत्रता एवं उपेक्षिता नारी की समस्याओं को लेकर विकसित हुआ वहाँ लेखिकाओं द्वारा विरचित तेलुगु का सर्वप्रथम उपन्यास धार्मिक विश्वासों से लिप्त नारी के नैतिक आदर्शों को लेकर पौराणिक मान्यताओं में पनपा है। स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के हिंदी तथा तेलुगु उपन्यास साहित्य में प्रमुखतथा दो प्रवृतियाँ देखी जाती है। प्रथम है आकस्मिकता एवं पारलौकिकता के अंश का समावेश कर आश्चर्य एवं कौतूहल की दृष्टि, तथा दूसरी है नैतिकता एवं सदाचार संबंधी मूल्यों को मान्यता देकर आदर्शवादी दृष्टिकोण की स्थापना चाहे ऐतिहासिक विषय हो या सामाजिक, दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने नारी के प्रति अत्यंत सहानुभूति रखती हुई सभी प्रकार की परिस्थितियों में नारी को प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अनुरूप ही चित्रित करने में यत्नशील रहीं। यही कारण है कि दोनों साहित्यों के स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उपन्यास का नामकरण भी अधिकतः नायिकाओं के आधार पर किया गया हैं जैसे हिंदी में 'सुहासिनी', 'सौंदर्यकुमारी', तथा तेलुगु में 'वसुमती', 'कुमुद्वती', आदि स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की उपन्यासकर्त्रियों ने नारी को समाज के प्रति तथा अपने परिवार के प्रति धर्मपरायण बनने का संदेश दिया है। इस प्रकार स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की लेखिकाओं ने जहाँ सामाजिक इतिवृत्ति को अपनाया है वहाँ समकालीन सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं का ही चित्रण न कर, बाल-विवाह, विधवा विवाह, पर्दा-प्रथा, निरक्षरता आदि सामाजिक रूढियों का वर्णन तो किया है, लेकिन उनका खंडन

उन्होंने नहीं किया। दोनों लेखिकाओं ने संयम तथा सद्व्यवहार के द्वारा पुरुष के अत्याचारों को सहन करने वाली नारी के आदर्श रूपों का चित्रण किया हैं। इन्होने ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यासों में इतिहास और पुराण के गौरव पृष्ठों से स्त्री चरित्रों को लेकर उपन्यासों की रचना की है। लेकिन उच्च कोटि की विभाविनी प्रतिभा तथा मौलिक चिंतन के अभाव में ये उपन्यास इतिहास एवं पुराणों के आंशिक-प्रतिरूप ही बन सके हैं। इन सभी रचनाओं में प्राय: धर्म तथा सत्य की जय एवं पाप तथा असत्य की पराजय दिखाई गई है। प्राय: सभी रचनायें आदर्शात्मक एवं सुखांत बन पडी हैं। इस के लिए लेखिकाओं ने यत्र तत्र कृत्रिम विकास एवं आकस्मिक संयोग-वियोगों का आश्रय लिया है। जिस से उपन्यासों में अस्वाभाविकता का समावेश भी हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासों के इतिवृत्ति के रूप में हिंदी की उपन्यास कर्त्रियों ने जहाँ अपने ही प्रांत के इतिहास को स्वीकार किया है, वहाँ तेलुगु की उपन्यासकर्त्रियों ने आंध्रेत्तर प्रांत के इतिहास को ही।

स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की हिंदी तथा तेलुगु उपन्यासों में लेखिकाओं ने पात्रों का चित्रण आदर्शवादी दृष्टिकोण से किया है। सामाजिक उपन्यासों में अशिक्षा, आर्थिक रूप से परतंत्रता, पुरुष की कामलोलुपता, दहेज-प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरितियों से आवृत्त नारी को संघर्षशील परिस्थियों में चित्रित कर अंत में उसकी आदर्शमयता का ही समर्थन किया है। दोनों सहित्यों के ऐतिहासिक इतिवृत्त प्रधान उपन्यासों में नारी के साहसी रूप को अंकित किया गया है। हिंदी के 'वीरपत्नी' उपन्यास में संयोगिता तथा तेलुगु के 'कुमुद्वती' उपन्यास में कुमुद्वती पात्र उक्त कथन के उदाहरण हैं।

इस अवधि के उपन्यासों के उद्देश्य तत्व का जहाँ तक प्रश्न है समकालीन नारी वर्ग को शिक्षा एवं उपदेश देना ही लेखिकाओं ने अपना लक्ष्य माना है। उद्देश्य की दृष्टि से दोनों साहित्यों के उपन्यासों में सामाजिक बोध की अपेक्षा सम्मिलित-परिवार का समर्थन अधिक पाया जाता है। पुरुषों की तुलना में नारियों में त्याग, धर्मावलंबन, कष्ट-साहिष्णुता आदि गुण प्रस्तुत किये गये हैं। हिन्दी के 'सुहासिनी', 'आदर्शमाता', 'सौंदर्यकुमारी' तथा तेलुगु के 'वसुमती', 'राधामाधवम्', 'लंका-पति' उपन्यासों में नारी का उक्त रूप द्रष्टव्य है। अधिकांश उपन्यासों में उद्देश्य की प्रधानता रही है। लेखिकाओं ने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पात्रों को आदर्श की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। नायिकायें प्राय: सुंदरी, गुणवती, पति परायणा एवं धर्म भीरु दृष्टिगोचर होती हैं। कर्म की अपेक्षा भाग्य को अधिक महत्व देने के कारण उनके उपन्यासों के पात्रों

के चरित्र स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं हो पाई । केवल पात्रों के बहिरंग गुणों का ही चित्रण प्रत्यक्ष कथनों के माध्यम से किया गया है । तेलुगु की अपेक्षा स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की हिन्दी की लेखिकाओं पर गांधीवाद, साम्यवाद आदि का प्रभाव अधिक पडा है । उषादेवी मित्रा तथा कंचनलता सब्बरवाल के पूर्व स्वातंत्र्यकालीन उपन्यास इसके अच्छे उदाहरण हैं । तेलुगु के भी चिल्लेरिगे रमणम्मा कृत 'रामाक्षममु' में भी गांधीवादी तथा साम्यवादी विचार धारायें स्पष्ट परिलक्षित हैं ।

जहां तक स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उपन्यासों का शिल्पपक्ष है उसमें कलात्मक अनगढता एवं अपरिपक्वता द्रष्टव्य है । इसके लिए लेखिकाओं की अपेक्षा उनकी समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ अधिक उत्तरदायी मानी जा सकती हैं । युग के कारण इस युग के उपन्यास साहित्य में शिल्प-संबंधी के कलात्मकता का अभाव दृष्टिगोचर होता हैं । वास्तव में उस समय की लेखिकाओं का लक्ष्य उपन्यासों की रचना करना मात्र ही था अपितु अपने समकालीन नारी वर्ग को उपदेश देकर जागृत करना भी प्रमुख उद्देश्य रहा । अतः उन्होंने अभिव्यंजना पद्धति पर विशेष ध्यान नहीं दिया ।

इस अवधि के उपन्यासों में संवाद-योजना बहुत ही कम मात्रा में हुई है संवादों का प्रयोग प्रायः वर्णनात्मक प्रसंगों के विकल्प में हुआ है ।

दोनों साहित्यों के उपन्यासों में आदर्शवादी शैली का समान रूप से प्रयोग हुआ है । तेलुगु में चिल्लरिगे रमणम्मा के 'रामाश्रममु' उपन्यास में वैविद्यपूर्ण इतिवृत्त को यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत किया गया है । अतः कहा जा सकता है कि इसके टक्कर का उपन्यास स्वातंत्र्यपूर्व हिन्दी उपन्यासों में उपलब्ध नहीं है । इस उपन्यास में प्रगतिवादी विचारधारा का समावेश हुआ है । इसमें जमींदारी प्रथा का खंडन, साम्यवाद का समर्थन तथा शोषक एवं शोषित वर्गों के बीच के संघर्ष का मार्मिक चित्रण ही नहीं प्रत्युत रिश्वतखोरी, हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन तर्कपूर्ण संवादों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

लेखिकाओं ने पात्रों के संवादों के माध्यम से जहाँ उपदेश देना या किसी राजनीतिक अथवा दार्शनिक विचारधारा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है वहाँ संवाद दीर्घ या भाषणतुल्य बन पडे हैं । फलतः कथानक-प्रवाह में शिथिलता आ गयी है । दोनों साहित्यों में पात्रों के स्वगत कथनों का समा

वेश पाया जाता है। इस अवधि में हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकायें अपने उपन्यासों में प्रत्यक्ष कथनों द्वारा पाठकों को संबोधित करती हुई दिखाई देती है।

वातावरण के प्रति भी आलोच्य उपन्यासकर्त्रियों ने यथेष्ट ध्यान दिया है। सामाजिक वातावरण का चित्रण करने में लेखिकाओं ने यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। प्रकृति वर्णन का समावेश भी यत्र तत्र पाया जाता है। दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने कथानक को रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कल्पनातत्व के साथ-साथ आकस्मिक घटनाओं का भी सहारा लिया है।

इस अवधि की हिंदी लेखिकाओं की भाषा में वर्तनी तथा लिंग वचन संबंधी अनेक त्रुटियाँ हैं। लेकिन तेलुगु की लेखिकाओं की भाषा तत्सम शब्द-पूर्ण, समासयुक्त एवं शिष्ट साहित्यिक बन पडी है। वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग अधिकतर उपन्यासों में पाया जाता है। अन्य प्रकार की शैलियों का प्रयोग कम मात्रा में मिलता है।

विवेच्य उपन्यास, आरंभिक चरण के होने के कारण उनमें अभिव्यंजनापद्धति संबंधी त्रुटियां है। फिर भी उपन्यास-साहित्य के विकास में उनका जो योगदान रहा उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनका अपना ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर अवधि की लेखिकाओं को इन्हीं कृतियों से प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ था और ये ही कृतियाँ स्त्री-साहित्य के नवोत्थान की भूमिका बनी।

पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति, रहन-सहन, आचार-विचार आदि के संपर्क में आने के कारण भारतीय जन-जीवन में गणनीय परिवर्तन हुए इन परिवर्तनों का बाह्य रूप दैनंदिक जीवन की गतिविधियों में स्पष्ट परिलक्षित होने लगा और आंतरिक परिवर्तनों का प्रभाव भारतीय जीवन की परिवारिक और सामाजिक व्यवस्था में अभिव्यक्त होने लगा। नारी-जागरण के स्वर संपूर्ण भारत में प्रतिध्वनित होने लगी। नारी द्वारा रचित इस युग का साहित्य ही इसका ज्वलंत-प्रमाण है।

नारी-समाज के उत्थान के लिए ई. कजिन्स, मार्गरेट नोबुल के सतत प्रयत्नों मे जो भारतीय नारी-आंदोलन आरंभ हुए, उससे नारी-जागृति में तेजी आयी। इस नारी-जागृति के मूल में तत्कालीन रचनाओं का प्रभाव भी न्यून नहीं था।

विवेच्य युग की नारी में विद्रोह की भावना प्रबल होने लगी । प्राचीन रूढियों से वह अपने को मुक्त करने के लिए सतत् प्रयत्न करने लगी । केवल सामाजिक-जीवन तक ही उसने अपनी इस विद्रोही भावना को सीमित नहीं रखा प्रत्युत राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक क्षेत्रों में भी वह विद्रोह करने लगी । स्त्रियों द्वारा विरचित साहित्य ही इसका प्रमाण है । इस विद्रोही विचार-धारा को लेखिकाओं ने अपने भावात्मक तथा तर्कयुक्त दोनों शैलियों में प्रस्तुत तर्क युक्त दोनों शैलियों में प्रस्तुत की । कंचनलता सब्बरवाला तथा उषादेवी मित्रा आदि लेखिकाओं पर गांधीवाद का यथेष्ट मात्रा में प्रभाव परिलक्षित होता है । स्वातंत्र्योत्तर युग तक पहुँचते पहुँचते नारी का बौद्धिक विकास भी पर्याप्त मात्रा में होने लगा । काव्य की अपेक्षा कथा-क्षेत्र में लेखिकाओं का ध्यान वैविध्यपूर्ण जीवन के अंकन की ओर आकृष्ट हुआ । फलतः उन्होंने सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, व्यंग्य प्रधान तथा पारिवारिक समस्याओं से पूर्ण कथा रचनाओं की सृष्टि की ।

स्वातंत्र्यपूर्व की अवधि के उपन्यासों की तुलना में स्वतंत्र्योत्तर अवधि के उपन्यास राशि की दृष्टि से ही नहीं अपितु गुण की दृष्टि से भी श्रेष्ठ हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् द्रुतगति से देश के सभी क्षेत्रों सें कई परिवर्तन हुए । प्रमुखतः राजनीतिक एवं सामाजिक नवोत्थान के परिणामस्वरूप साहित्यिक-क्षेत्र पर जो प्रभाव पडा उसे उपन्यास के केन्वास पर स्पष्ट अंकित देखा जा सकता है । ज्यों-ज्यों स्त्रियाँ शिक्षित होने लगीं और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव बढने लगा, त्यों त्यों नैतिक पूर्वाग्रह में उदारता आने लगी है । इन कारणों से इस अवधि की हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों में वस्तुगत वैविध्य पाया जाता है । उपन्यासों में वर्णित पारिवारिक जीवन की झाकियां, दांपत्य-जीवन के कटु एवं मधुर अनुभव, पीडित मानवता के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना, उच्च मध्य तथा निम्न-वर्गो के बीच का संघर्ष समाज के कुछ विशिष्ट वर्गो के प्रति व्यंग्य, समस्याओ से घिरी हुई नारी के विवश एवं विद्रोही व्यक्तित्व, पात्रों का बाह्य एवं आंतरिक संघर्ष, प्रेम-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, विधुर-विवाह, बाल-विवाह, अंतर्जातीय-विवाह वैश्या-विवाह, अविवाहित स्त्री समस्या, विवाह विच्छेद की समस्या, स्त्री की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्वतंत्रता के प्रश्न, स्त्री के पारिवारिक उत्तरदायित्व, दहेज-समस्या, शिक्षा समस्या, वैश्यागमन, स्त्री की नौकरी संबंधी समस्या, पुरुष की अहंकार लिप्सा तथा कामलोलुपता, नेताओं की चापलूसी तथा राजनीतिक मतवादों का चित्रण, घूसखोरी, बेकारी तथा

महंगाई आदि समस्याएँ, पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण का खंडन, भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता में आस्था, वैज्ञानिक अनुसंधान की उपलब्धि का चित्रण लेखिकाओं के वैविध्यपूर्ण कथ्य को प्रमाणित करता है। इन विषयों के प्रतिपादन एवं विश्लेषण में लेखिकाओं ने अपनी तर्कबुद्धि एवं मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। नारी ही इनके उपन्यासों में चर्चित अधिकांश समस्याओं का केंद्र बिंदु बनी है।

हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने समाज को व्यापक रूप में प्रस्तुत करने तथा स्त्री के प्रति होनेवाले अत्याचारों का विरोध करने के साथ साथ उसके संघर्षपूर्ण जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए सामाजिक उपन्यासों को सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकारा है। अत: स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यास साहित्य नारी जागरण की चेतना से स्पन्दित है। दोनों साहित्यों की लेखिकायें भौगोलिक रूप से भिन्न प्रांतों में निवास करने पर भी उनकी रचनाओं में वर्णित समाज के चित्रों में तथा समस्याओं में समानता पायी जाती है। स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की लेखिकाओं की भांति स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं ने भी स्त्री के अशिक्षित होने के दुष्परिणामों का चित्रण किया है और नारी को शिक्षित होने के लिए बाध्य करनेवाली परिस्थितियों के साथ साथ शिक्षित होने के पश्चात् आर्थिक स्वतंत्रता के लिए नौकरी करनेवाली स्त्री के समक्ष उत्पन्न समस्याओं का चित्रण भी प्रस्तुत किया है। हिंदी में रजनी पनिकर के 'मोम के मोती', 'एक लडकी दो रूप', में तथा सत्यवती देवी भैया 'उषा' ने 'मृदुला' में तथा शिवानी ने 'कृष्णकली' में इन समस्याओं पर प्रकाश डाला है तो तेलुगु में रंगनायकम्मा ने 'रचयित्री', यद्यनपूडि सुलोचनाराणी ने 'सेक्रटरी' में, श्रीदेवी ने 'कालातीत व्यक्तुलु' में बीनादेवी ने 'पुण्यभूमि कळ्लुतेरु' में इन्हीं समस्याओं पर प्रकाश डाला है। महिलाओं के उपन्यासों में प्राप्त अन्य ज्वलंत समस्या है, दहेज-समस्या इस समस्या का विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन करनेवालों में रजनी पनिकर, लीला अवस्थी चंद्रकिरण सौनरेक्सा, अन्नपूर्णा तांगडी, शिवानी. आदि हिन्दी की लेखिकाओं तथा श्रीदेवी, मालती चंदूर, यद्यनपूडि सुलोचनाराणी, द्विवेदुला विशालाक्षी: रंगनायकम्मा तथा सी. आनंदारामम् आदि तेलुगु की लेखिकाओं के नाम विशेष उल्लेख्य हैं।

विवेच्य कालीन में विवाह की समस्या को भी हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने अधिक प्रश्रय दिया है। हिंदी की लेखिकाओं की अपेक्षा तेलुगु की लेखिकाओं ने इस समस्या पर कई दृष्टिकोणों से विचार किया है। दोनों

ही साहित्यों की लेखिकाओं ने प्रेम-विवाहों से उत्पन्न सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। कहीं सफल प्रेम-विवाहों का चित्रण कर लेखिकाओं ने अपना समर्थन प्रस्तुत किया है तो कहीं विफल प्रेम का सांप्रदायिक विवाहों को श्रेष्ठ ठहराया है। इस समस्या पर विचार करनेवालों में हिंदी में विमलवेद, सुषमा, अन्नपुर्णा तांगडी के नाम लिए जा सकते हैं तो तेलुगु में कोमलादेवी, यद्यनपूडि सुलोचनाराणी, रंगनायकम्मा, द्विवेदुला विशालाक्षी, मालती चंदूर आदि के जहां हिंदी में बसंत प्रभा ने 'अधूरी तस्वीर' में सत्यवतीदेवी भैया 'उषा' ने 'मुदुला' में तथा शिवानी ने 'भैरवी' में आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के चपेट में आने से होनेवाले अनमेल विवाहों का चित्रण किया है वहां तेलुगु में मालती-चंदूर ने 'मेघाल मैलि मुसुगु' में, पवनि निर्मला प्रभावती ने 'शलभालु' में इसका मार्मिक चित्रण किया की तेलुगु की लेखिकाओं ने अनमेल विवाह के दुष्परिणामों के प्रति विशेष ध्यान दिया है। बाल-विवाह का चित्रण कर बाल-विधवाओं के सामने उपस्थित होनेवाली समस्याओं का चित्रण केवल तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों में ही परिलक्षित होता है।

विजातीय विवाहों का समर्थन दोनों लेखिकाओं ने किया है। ऐसे विवाहों से उत्पन्न समस्याओं पर भी लेखिकाओं ने प्रकाश डाला है, और उन्होंने सफल विजातीय विवाह के लिए स्त्री-पुरुष के बीच के संकुचित दृष्टिकोण को त्यागने तथा समझौतापूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता पर बल दिया है। तेलुगु की लेखिकाओं में रंगनायकम्मा जी ने 'स्त्री' उपन्यास में एक पग आगे बढकर अंतर्राष्ट्रीय विवाहों का भी समर्थन किया है। इसी प्रकार तेलुगु की लेखिकाओं ने विधुर-विवाह, बहु-विवाह, बहु-पत्नी-प्रथा आदि का भी अपने उपन्यासों में चित्रण किया है। इस ओर हिंदी की लेखिकाओं का ध्यान नहीं गया। वेश्या.विवाह का समर्थन कर तेलुगु में आनंदरामम् ने 'सागर-संगमम' में वेश्या की पुत्री से विवाह करना असंगत नहीं माना है। इसी प्रकार हिंदी में लीसा अवस्थी ने 'बदरवा बरसन आये' में वेश्या की पुत्री का विवाह करवाकर क्रांतिकारी आदर्श की स्थापना की है। दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने पति-पत्नी में समझौता न होने पर, या पति के अत्याचार बढ जाने पर, या पति के पागल होने पर विवाह-विच्छेद का समर्थन किया है।

स्त्री के लिए आवश्यक सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता की चर्चा हिंदी में जहाँ 'शिवानी', 'वसंत प्रभा' आदि के उपन्यास में हुई है, वहाँ तेलुगु में रंगनायकम्मा, कोडूरि कौशल्यादेवी, हेमलता, सी. आनंदरामम्, वासीरेड्डी सीतादेवी तथा यद्धनपूडि सुलोचनाराणी के उपन्यासों में भी इसका तर्कपूर्ण

समर्थन देखा जा सकता है। श्रीमती लता ने 'रक्त 'पंकम', उपन्यास में स्त्री की सेक्स संबंधी तथा उसके स्वच्छंद प्रेम की समस्याओं का चित्रण किया है। स्त्री-पुरुषों के लिए सेक्स संबंधी ज्ञान की आवश्यकता का भी इन्होने समर्थन किया है।

स्त्री के पारिवारिक उत्तरदायित्वों से संबंधित विषयों का वर्णन हिंदी की अपेक्षा तेलुगु की लेखिकाओं में अधिक पाया जाता है। दोनों के उपन्यासों में स्त्री के प्रेम तथा उसकी त्यागमयी प्रवृत्ति को आदर्श रूप में चित्रित किया गया है।

सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों तथा रूढियों का दोनों साहित्य की लेखिकाओं के समान रूप से निस्संकोच खंडन किया है। जाति-पाँति का खंडन दोनों ही लेखिकाओं ने किया है। 'पर्दा-प्रथा', 'छुआ-छूत', 'धर्म के ढोंगे आचार्यों' आदि का खंडन भी हम इनके उपन्यासों में देख सकते हैं।

हिंदू-मुस्लिम एकता तथा देश-भक्ति का प्रतिपादन जहां हिंदी की लेखिकाओं में विशेष रूप में पाया जाता है वहाँ तेलुगु की लेखिकाओं का ध्यान तेलुगु के उपन्यासों में ये भावनायें उतनी इन बातों के प्रति कम ही रही है।

हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यासों में राजनीतिक जागरण भी देखने को मिलता है। उपन्यासों में नेताओं की झूठी प्रशंसा आदि का वर्णन हुआ है। कंचनलता का 'भटकती-आत्मा' कुँवरानी तारादेवी का 'जीवन-दान' तथा तेलुगु में मुप्पाल रंगनायकम्मा के 'बलि पीठम्' मादिरेड्डी सुलोचना के 'अधिकारूलु–आश्रित जनुलु', वासिरेड्डी सीतादेवी के 'समता' आदि उपन्यासों में गांधीवादी तथा मार्क्सवादी विचारधाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

विवेच्य कालीन हिंदी तथा तेलुगु के उपन्यासों में उपलब्ध एक अन्य समानता है पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण का खंडन। प्रायः सभी लेखिकाओं ने भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की गरिमा में अपनी आस्था प्रकट की है। समस्याओं के निदान में भी भारतीय आदर्शों का यथासंभव पालन किया है।

हिंदी के 'नष्ट नीड', 'अनचाहा', 'काली लडकी', 'अर्चना', तथा तेलुगु के 'पुण्यभूमि', 'सेक्रटरी', 'अधिकारुलु-आश्रितजनुलु' उपन्यासों में लेखिकाओं ने शोषक तथा शोषित के संघर्षों का चित्रण कर पूंजीवादी विचारधारा का खंडन तथा पीडित वर्गों के प्रति अपनी सहानुभूति को व्यक्त किया है।

इनके अतिरिक्त हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने विज्ञान, कला, चिकित्सा-शास्त्र दर्शन आदि कई विषयों को कथ्य के रूप में स्वीकार करके उपन्यासों की रचना अत्यंत सफलतापूर्वक की है ।

जहाँ तक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रश्न है विवेच्य काल की हिंदी की लेखिकाओं में कंचनलता सब्बरवाल, सुदेश रश्मी, और उमादेवी ने तीन ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना की है । लेकिन तेलुगु में मल्लादि वसुंधरा ने तीन ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर आंध्र के इतिहास से संबंधित ज्वलंत घटनाओं और पात्रों को साहित्य में अमर कर दिया । यद्यपि हिंदी साहित्य का क्षेत्र आंध्र साहित्य के क्षेत्र से अधिक व्यापक है, फिर भी मल्लादि वसुंदर ने उसी सीमित क्षेत्र से कथावस्तु को ग्रहण कर तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य को संपन्न बनाया है । ऐतिहासिक विषय चयन के संबंध में दोनों प्रांतों को लेखिकाओं के दृष्टिकोण में पर्याप्त वैषम्य पाया जाता है । हिंदी की लेखिकाओं ने जहाँ अपने प्रांत तथा प्रांतेतर घटनाओं को कथानक के रूप में ग्रहण किया है, वहाँ तेलुगु में केवल आंध्र प्रांत से संबंधित इतिहास को ही । लेकिन तेलुगु की लेखिकाओं ने स्वातंत्र्यपूर्व की अवधि में इसके विपरीत आंध्रेतर इतिहास को इतिवृत्ति के रूप में स्वीकारा है । अतः यह कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु की लेखिकाओं में प्रांतीय इतिहास के प्रति विशेष रूचि के पनपने के कारण आंध्र के इतिहास के गौरव पृष्ठों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास इनके उपन्यासों में देखने को मिलता है ।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन लेखिकाओं को चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में भी आशातीत सफलता उपलब्ध हुई है । इस अवधी में अधिकांश लेखिकाओं ने आदर्शवादी शैली की अपेक्षा यथार्थवादी शैली को अधिक प्रश्रय दिया है । दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने एक ओर शहरी जीवन तथा उससे संबंधित लोगों की मनोप्रवृत्तियों का विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रण किया है तो दूसरी ओर ग्रमीण जीवन से संबंधित पात्रों से तथा उनसे संबंधित समस्याओं का चित्रण । इसके अतिरिक्त हिंदी के उपन्यासों में लेखिकाओं ने ग्रामीण वातावरण के चित्रण में जहाँ प्रत्यक्ष रूप से सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाया है, वहां तेलुगु की लेखिकाओं ने ग्रामीण-जीवन का यथार्थ चित्रण करने तक सीमित रहकर परोक्ष रूप से सुधारों की ओर संकेत किया हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं का उपन्यास-साहित्य उत्तरोत्तर व्यक्त आस्था से अनास्था, समिष्टि से व्यष्टि, आदर्श से यथार्थ, स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रवृत्त हुआ है । फलस्वरूप उपन्यास के शिल्प-पक्ष में भी नवीन प्रयोगों का

समावेश होने लगा है । हिंदी में रजनी पनिकर, शिवानी, कृष्णा सोबती आदि तथा तेलुगु में रंगनायकम्मा, लता, वासिरेड्डी सीतादेवी आदि ने अपने उपन्यासों में नूतन शैलियों का प्रयोग किया है । पात्रों के विश्लेषण में उपन्यास के सभी तत्वों को एकोन्मुख होते चित्रित किया गया है । वस्तुत: लेखिकाओं ने उपन्यास-साहित्य को अपनी संवेदनशील भावनाओं से ही नहीं बल्कि अपनी कलात्मक प्रतिभा से भी संस्पर्श कराया है। नारी-हृदय का जितना सूक्ष्म एवं सफल चित्रण लेखिकायें कर सकीं, वैसे लेखकों ने नहीं किया है । इसके अतिरिक्त गार्हस्थ्य जीवन, बाल-मनोविज्ञान, सौतिया-डाह आदि विषय ऐसे हैं जिनके चित्रण में लेखकों की अपेक्षा लेखिकाओं को अधिक सफलता मिली है ।

विवेच्य हिंदी तथा तेलुगु उपन्यासों के आधार पर महिलाओं की शिल्पगत उपलब्धियों का मूल्यांकन प्रस्तुत करने पर यह विदित होता है कि स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के उपन्यासों की तुलना में स्वतंत्र्योत्तर अवधि के उपन्यासों में शैल्पिक-प्रतिभा अधिक मुखर हो उठी है ।

दोनों साहित्यों की लेखिकाओं ने कथोपकथन को साधन तुल्य मानकर तद्वारा उपन्यास के अन्याय तत्वों का विकास कराया है । संवादों के द्वारा वातावरण के निर्माण में, तथा उद्देश्य मी अभिव्यक्ति आदि में अपनी कुशलता का परिचय दिया है । उपन्यास के कथोपकथनों की भाषा के आधार पर पात्र किस वर्ग के हैं, भाषा पर लेखिका का कितना अधिकार है आदि तथ्यों का पता चलता है। हिंदी तथा तेलुगु की कुछ लेखिकाओं ने पात्रों को प्रवेश कराते समय वर्णनात्मक शैली के द्वारा पात्रों के स्वभाव आदि का भी परिचय दिया है। इनके उपन्यासों में सहज, साधारण संवादों के अतिरिक्त तर्कयुक्त, चमत्कारपूर्ण, मनोविश्लेषणात्मक, भावात्मक आदि संवादों का भी प्रयोग हुआ है। हिंदी के उपन्यासों की तुलना में तेलुगु के उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक संवादों का कम एवं भावात्मक संवादों का अधिक प्रयोग पाया जाता है। व्यंग्यात्मकता दोनों ही लेखिकाओं के उपन्यासों के संवादों में न्यून मात्रा में परिलक्षित होती है ।

दोनों साहित्यों की लेखिकाओं को सामाजिक वातावरण के चित्रण में जितनी सफलता मिली है उतनी ऐतिहासिक तथा राजनीतिक वातावरण के चित्रण में नहीं । हिंदी तथा तेलुगु की लेखिकाओं ने ग्रामीण तथा शहरी जीवन से संबंधित कथानक को ग्रहण कर तदनुकूल वातावरण का चित्रण किया है । आनुपातिक दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी की अधिकांश लेखिकाओं

ने जहाँ शहरी वातावरण के चित्रण में अधिक रुचि ली है वहाँ तेलुगु की अधिकांश लेखिकाओं ने ग्रामीण वातावरण के चित्रण में। प्राकृतिक वातावरण के प्रति भी दोनों ही लेखिकाओं ने यथेष्ट ध्यान दिया है।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास-साहित्य की विशेष उपलब्धि मानी जानेवाली आंचलिक उपन्यास-विधा के क्षेत्र को भी लेखिकाओं ने अछूता नहीं छोडा। हिन्दी में कृष्णा सोबती और शिवानी ने तथा तेलुगु में मादिरेड्डी सुलोचना ने आँचलिक उपन्यासों की रचना की है। इन्होंने आँचलिक तत्त्वों का समावेश कथानक तक सीमित न रखकर कथोपकथन, वातावरण तथा भाषा-शैली में भी व्याप्त कराया है।

स्वातंत्र्योत्तर अवधि की भाषा स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की तुलना में अधिक प्रौढ एवं प्रांजल बन पडी है। स्वातंत्र्यपूर्व अवधि के हिन्दी उपन्यासों में जहाँ भाषा संबंधी अशुद्धियाँ पायी जाती हैं, वहाँ इस अवधि के तेलुगु उपन्यासों में जिस तत्सम शब्द पूर्ण एवं समास निष्ठ-शिष्ठ साहित्यिक काव्य भाषा का प्रयोग हुआ है, उसमें भी यत्रतत्र कुछ तृटियाँ पायी जती हैं। तेलुगु के स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक उपन्यासों में श्रीमती मल्लादि वसुंधरा ने भी तेलुगु की काव्य भाषा का ही प्रयोग किया है। विवेच्यकाल को अन्य लेखिकाओं ने तेलुगु के व्यावहारिक भाषा रूप का प्रयोग किया है जिससे उनके उपन्यास अधिक लोकप्रिय बन पडे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर अवधि में नवीन शैलियों का प्रयोग पाया जाता हैं। इनके उपन्यासों में वर्णनात्मक तथा संवादात्मक शैलियों का अधिक प्रयोग पाया जाता है। गण रूप में पत्रात्मक, आत्मकथनात्मक आदि शक्तियों का प्रयोग इनके उपन्यासों में देखा जा सकता है। हिन्दी में श्रीमती रजनी पनिकर ने 'जाडे की धूप', श्रीमती वसंत प्रभा ने 'अधूरी तस्वीर' में तथा तेलुगु में रंगनायकम्मा ने 'कृष्णवेणी' में आद्यंत पत्रात्मक शैली का प्रयोग कर अपनी शैल्पिक-प्रतिभा का परिचय दिया है। दोनों ही साहित्यों की लेखिकाओं ने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। हिन्दी में रजनी पनिकर कृत 'एक लडकी दो रूप' तथा तेलुगु में मालती चंदूर कृत 'रेणुकादेवी आत्मकथा', द्विवेदुला विशालाक्षी कृत 'हरिकिल्लु' तथा 'ग्रहणं विडिचिंदि' उपन्यास इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

इस प्रकार हिन्दी तथा तेलुगु की लेखिकाओं के उपन्यास-साहित्यों का वस्तुगत एवं शिल्पगत अध्ययन एवं विश्लेषण करने पर यह विदित होता

है कि जहाँ स्वातंत्र्यपूर्व अवधि की लेखिकायें तत्तकालीन लेखकों की तुलना में जहाँ पिछडी रह गयी थीं वहाँ स्वातंत्र्योत्तर अवधि की लेखिकायें मंझी हुयी कलात्मकता के लिए लेखकों के समकक्ष अपना स्थान बना सकी हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी में अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी आदि तथा तेलुगु में बुच्चिबाबु, गोपीनंद, राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री आदि की कला को लेखिकायें उसी रूप में अपना नहीं पाईं। किन्तु नारी-मनोविज्ञान संबंधी विषयों के चित्रण में अनेक लेखिकायें पुरुषों से आगे रही हैं। इसका कारण यह है कि पुरुषों पर सामाजिक बंधन उस रूप में हावी नहीं रहे, जिस रूप में महिलाओं को बाधित किया है। इस तथ्य के समर्थन में श्री रघुवंशलाल के 'हिन्दी साहित्य और स्त्रियाँ' शीर्षक लेख के उस उद्धृत अधोलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं– 'स्त्री कवियों की तुलना पुरुषों से करना अनुचित ही नहीं, अविवेकपूर्ण भी है। कारण स्पष्ट है। पुरुषों का सदा से अपनी मानसिक शक्तियों के विकास का अवसर मिलता आया है, कम-से कम स्त्रियों से अधिक। वे परदे के शिकार नहीं रहे। उन्हें पुस्तकें पढने का और लिखने का अच्छा सुयोग मिल रहा है।[1]

यह सत्य है कि नारी ममता की प्रतिमूर्ति है फिर भी भारतीय नारी के नव-जागरण-काल में उसने जिस स्तर पर जिस चेतना का परिचय दिया है उससे उसकी कार्यदक्षता तथा विवेकशीलता का सहज ही परिचय मिल जाता है। दोनों साहित्यों की आलोच्य लेखिकाओं ने उपन्यास क्षेत्र में अपने सूक्ष्म निरीक्षण एवं तर्क की अपार क्षमता का जो परिचय दिया है उससे यह विदित होता है कि उपन्यास-साहित्य के लिए लेखिकाओं का योगदान स्मरणीय एवं महत्वपूर्ण है। दिन-ब-दिन होनेवाली वैज्ञानिक प्रगति के साथ साथ प्रगति-पथ में अग्रसर होनेवाली नारी के वैविध्यपूर्ण अनुभवों एवं कलात्मक-प्रतिभा की परिपक्वता को दृष्टि में रखते हुए उनकी लेखनी से निःसृज होनेवाले उज्ज्वल उपन्यास-साहित्य की कामना की जा सकती है।

अंततः यह निश्चित रूप से कहना होगा कि कला की श्रेष्ठता लिंग-भेद के आधार पर करना अनुचित होने पर भी, लेखिकाओं की साहित्य-सर्जना को उसके अपने दायरे तथा प्रतिबंधनों को दृष्टि में रखकर उसमें स्पन्दित नारी-हृदय को अलग से परखा जा सकता है। उनके उचित मूल्यांकन के लिए ऐसा करना आवश्यक भी है। आज यदि हिन्दी अथवा तेलुगु साहित्य का

---

१. कमला (बनारस) : मई १९३९, पृ. १५६

इतिहास महिलाओं के योगदान की उपेक्षा करे तो वह इतिहास अपने आपमें अधूरा सिद्ध होगा। सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश से स्पन्दित, सचेत लेखिकाओं की लेखनी दिन-ब-दिन सशक्त बन गुण एवं राशि दोनों दृष्टियों से उपन्यास साहित्य को समृद्ध करती जा रही है।

सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रंथ-सूची

(क) विवेच्य हिन्दी तथा तेलुगु के आलोच्य उपन्यास

विवेच्य हिन्दी के उपन्यास :

लेखिका		उपन्यासों के नाम
१. अन्नपूर्णा ताँगडी	....	निर्धनता का अभिशाप, चिता की धूल मिलनाहुति, विजयिनी
२. उमा देवी	....	आलिंगन
३. उषादेवी मित्रा	....	सोहिनी, पिया, नष्टनीड, पथचारी
४. कंचनलता सब्बारवाल	....	मूक तपस्वी, भटकती आत्मा, स्वतंत्रता की ओर, अनचाहा, पुनरुद्धार, मूक-प्रश्न, संकल्प
५. कुँवरानी तारा देवी	....	जीवन दान
६. कृष्णा सोबती	....	डार से बिछुडी
७. चंद्रकिरण सौनरेक्सा	....	चंदन चांदनी
८. प्रियंवदा देवी	....	लक्ष्मी, कलियुगी परिवार का एक दृश्य
९. वसंत प्रभा	....	अधूरी तस्वीर, सांझ के साथी
१०. ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे	...	सौंदर्य कुमारी
११. यशोदा देवी	....	वीर पत्नी
१२. रजनी पनिकर	....	मोम के मोती, प्यासे बादल, जाडे धूप काली लडकी, एक लडकी दो रूप
१३. रूक्मिणी देवी	....	मेम और साहब
१४. लीला अवस्थी	....	दो राहें, बिखरे काँटे, बदरवा बरसन आये
१५. लीलावती देवी	....	सती दमयंती, सती सावित्री
१६. विमल वेद	....	ज्योति किरण, अर्चना, असली हीरा नकली हीरा

१७. शिवरानी विश्नोई .... भीगी पलकें,

१८. शिवानी .... मायापुरी, कृष्ण कली, भैरवी,

१९. सरस्वती गुप्ता .... राजकुमार

२०. सत्यवती देवी भैया 'उषा' .... मृदुला, क्षितिज के पार

२१. साध्वी सती पति प्राणा अबला .... सुहासिनी

२२. सुदेश रश्मि .... एक ही रास्ता

२३. सुषमा भाटी .... गेट कीपर, ममता

२४. हुक्मदेवी गुप्ता .... गूढ़ भाव प्रकाश

२५. हेमंत कुमारी चौधरी .... आदर्श माता

(ख) विवेच्य उपन्यासों के नाम

लेखिका		उपन्यासों के नाम
२६. अट्लूरि वेंकट सीतम्मा	....	रूपवती, राधा माधवमु, ढ़िल्ली साम्राज्यमु)
२७. आचंट सत्यवती देवी	....	भयंकर धनाशा पिशाचमु)
२८. कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा	....	वसुमती
२९. कोडूरि कौशल्या देवी	....	चक्रभ्रमणमु, धर्म चक्रमू), कल्याण मंदिर
३०. कोमला देवी	....	दाम्पत्यालु, आराधना,
३१. चिल्लरिगे रमणम्मा	....	रामाश्रममु,
३२. तेन्नेटि हेमलता	....	वन किन्नेरा, रक्त पंकम्, मोहनवंशी
३३. द्विवेदुल विशालाक्षी	....	मारिन विलुवलु. (बदलते मूल्य) ग्रहणम् विडचिंदि, (ग्रहण छूट गया)
३४. डी. कामेश्वरी	....	विधि वंचितलु (भाग्य के मारे), कोत्त, नीरु (नया पानी)
३५. पवनि निर्मल प्रभावती	....	शलभालु (पतंगे)
३६. पुलगुर्तु लक्ष्मी नरसमांबा	....	सुभद्रा
३७. पुलवर्ति कमलावती	....	कुमुद्वती

३८. बीनादेवी .... पुण्य भूमि कळ्ळु तेरु (हे पुण्य भूमि : आँखें खोलो)

३९. मल्लादि वसुँधरा .... तंजाऊरु पतनमु, रामप्प गुडि, सप्तपूर्णि

४०. मल्लादि बुचम्मा .... लंकापति

४१. मालती चंदूर .... रेणुकादेवी आत्मकथा, मेघाले मेलिमुसुगु (बादलों का घुंघट)

४२. मुप्पाल रंगनायकम्मा .... कृष्णवेणी, पेंकमेडलु, (ताश के महल) (बलिपीठम्), स्त्री, रचयित्री, कला एंदुकु (कला किस लिये)

४३. मादिरेड्डि सुलोचना राणी .... तरम् मारिंदि (पीढ़ी बदल चुकी) अधिकारुलु आश्रित जनुलु (अधिकारी और आश्रित जन देवुडिच्चिन वरालु (भगवान के लिये वर)

४४. यद्दनपूडि सुलोचनाराणी .... सेक्रेटरी, जीवन तरगालु (जीवन की तरंगे), आराधना, आहुति

४५. रावूरि वेंकट सुब्बय्या .... उदार पांडवमु

४६. वासिरेड्डि सीता देवी .... समता, वैतरणी

४७. श्री देवी .... कालातीत व्यक्तुलु (काल से अतीत व्यक्ति

४८. सी. णानंद रामम् .... आत्म बलि, सागर संगमम् चीकटि, कडु पुन (अंधेरे के प्रकाश में प्रकाश-पूंज

(ख) हिन्दी तथा तेलुगु के अन्य लेखकों की कृतियाँ :

१. डा, गुलाबराय .... काव्य के रूप

२. प्रो. जगदीश पाण्डे .... शील निरूपण : सिद्धांत और विवेचन

३. डा. प्रताप नारायण टंडन .... हिन्दी कहानी कला

४. ,, हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास

५. डा. गोविंद त्रिगुणायत .... शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत-भाग १, २

६. मुंशी प्रेमचंद .... साहित्य का उद्देश्य, कुछ विचार

७. डा. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा .... कहानी का रचना विधान

८. श्री उमेश माथुर .... आधुनिक युग की हिंदी लेखिकाएँ

९. डा. श्याम सुंदर दास .... साहित्यालोचन

१०. डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी .... साहित्य का साथी
११. आचार्य नंददुलारे बाजपेयी.... आधुनिक साहित्य
१२. डा. सत्येंद्र जी .... समीक्षा के सिद्धांत
१३. डा. क्षेमेन्द्र सुमन .... साहित्य विवेचन
१४. डा. दशरथ ओझा .... समीक्षा सिद्धांत (भारतीय और पाश्चात्य)
१५. श्री शिव नारायण .... हिन्दी उपन्यास
१६. किशोरीलाल गोस्वामी .... हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास
१७. श्री श्याम जोशी .... उपन्यास सिद्धांत
१८. श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी साहित्य परिचय
१९. डा. भगीरथ मिश्र .... काव्य शास्त्र
२०. श्री गंगाप्रसाद पांडेय .... हिन्दी कथा साहित्य
२१. कैलाश कलिपत .... साहित्य साधिकाएँ
२२. डा. उर्मिला गुप्ता .... हिन्दी कथा साहित्य के विकास में–
महिलाओं का योग,
स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ
२३. श्री विष्णुकांत शास्त्री .... कुछ चंदन की कुछ कपूर की
२४. श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार .... हिंदी कथा साहित्य के विकास में
पंजाब का योगदान
२५. डा. त्रिभुवनसिंह .... हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
२६. श्री शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास साहित्य
२७. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल .... हिन्दी साहित्य का इतिहास
२८. श्री. प्रकाशचंद्र गुप्त .... आज का हिन्दी साहित्य
२९. श्रीं. रामेश्वरनाथ भार्गव साहित्य परिशीलन
देवी कृष्ण गोयल
३०. प्रो. जी. सुंदररेड्डी .... शोध और बोध
३१. श्री ब्रह्मनारायण शर्मा विकल हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक
मूल्यांकन
३२. श्रीमती ओम शुक्ला .... हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि
का विकास
३३. श्रीमती शचीरानी गुर्टू .... महान् महिला
३४. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय .... आधुनिक हिन्दी साहित्य
३५. श्री रामधारी सिंह दिनकर .... संस्कृति के चार अध्याय

३६. डा. चंडी प्रसाद जोशी .... हिन्दी उपन्यास : समाज शस्त्रीय अध्ययन

३७. श्री सुमित्रानंदन पंत .... युगवाणी

३८. पं. जवाहरलाल नेहरू .... हिन्दुस्तान की समस्याएँ

३९. बलभद्र प्रसाद गुप्त 'रसिक'.... गल्प गगन की तारिकाएँ, काव्य कुंज की कोकिलाएँ

४०. डा. सावित्री सिन्हा .... मध्यकालीन हिन्दी कविचित्रियाँ

४१. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' स्त्री कवि कौमुदी

४२. पं. राम दहिन मिश्र .... हिन्दी की श्रेष्ठ लेखिकाएँ

४३. श्री मोदलिनागभूषण शर्मा .... तेलुगु नवला विकासम्

४४. श्री बी. कुटुंब राव .... आंध्र नवला परिणामम्

४५. डा. जी.बी. सुब्रह्मण्यम आदि द्वारा सम्पादित महति

४६. आंध्र प्रदेश साहित्य एकदमी द्वारा संपादित : .... तेलुगु नवला नूरु संवत्सरालु

४७. गोर्रेपाटि वेंकट सुब्बा राव .... तेलुगु साहित्यम् लो तीरू तेन्नुलु

४८. श्री बालशौरि रेड्डी .... आंध्र भारती

४९. श्री चलम् .... जीवितः दर्शम्

५०. डा. पी. अप्पल राजु .... सुमित्रानंदन पंत तथा कृष्ण शास्त्री की स्वच्छन्दवादी काव्य-कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन – शोध – प्रबंध –

५१. धट्टि आंजनेय शर्मा .... साहिती लता

(ग) पत्र–पत्रिकाएँ :–

हिन्दी :–

१. कमला – अंक अक्तूबर १९३९

२. कमला – अंक मई १९३९

३. साप्ताहिक हिन्दुस्तान – अंक २९ १९६०

४. साहित्य संदेश – अक्तूबर – नवंबर १९४०

५. प्रतीक – अंक जनवरी १९६१

६. आजकल – अक्तूबर १९५८ और अंक मई १९६०
७. वाणी – जुलाई – अक्तूबर १९६३
८. हितैषी – फरवरी – १९५४
९. धर्म युग – अंक २४ मार्च १९७४
१०. महिला मृदुवाणी – सन् १९०५

तेलुगु :–

१. भारती – अप्रैल १९७१
२. श्रवंती – फरवरी १९७२
३. तेलुगु विद्यार्थि – अक्तूबर १९७३, नवंबर १९७३, दिसंबर १९७३
४. प्रगति सचित्रवार पत्रिका – २३–६–१९७१
५. आंध्र प्रभा – १८८५
६. विप्लव रचयितल संघम् – प्रत्येक संचिका –
७. तरुणा – अगस्त १९७१

अंग्रेजी :

1. The Indian Express ... 14th April 1963.
2. The Indian Express ... 17th April 1972.
3. The Hindu ... 1878.
4. Report of the University Education Commission 1948-'49.

ENGLISH BOOKS REFFERED :

1. A treatise on the Novel ... Robert Lidel
2. An Introduction to the study of Literature ... Hudson
3. Aspect of Novel ... Forester
4. Discovery of India ... Jawaharlal Nehru
5. Individual Vs Tradition ... Andrce F.
6. Lectures on the Science of Religion ... Maxmuller
7. Permanent Values of fiction ... Edith
8. Renacent India ... Lachania
9. Modern religious Movemement in India ... Forquhar
10. Talks on writing English Series-2 ... Bates
11. The art and business of story writtings ... W.B. Petkin

12. The Cultural Heritage of India ... Ed. by Srirama-krishna centenary committee, Bolourmath, Calcutta.

13. The History of the English Novel Vol. I.P. II ... Bacott

14. The Epic Strain in the English Novel .. I.M.W. Teelmard

15. The Growth of the English Novel ... Richard Church

16. The English Novel ... A short Critical history ... Valter Allen

17. The Indian Literature ... V.R. Narla

18. The problem of style ... Middleton Murray

18. The Technique of Novel writting ... Arnold Beneth

20. The Theory of Novel in England ... 1850-1870 ... Routledge and Kegan Paul,

21. Writting for young people ... M.L. Robinson

शुद्धि–पत्र

(ऊ – ऊपर से; नी – नीचे से)

पंक्ति संख्या	पृष्ठ संख्या	मुद्रित रूप	शुद्ध रूप
५ (नी)	१	व्यवस्था से	व्यवस्था
५ (नी)	२	२०० ई. शती	२०० ई.
५ (ऊ)	३	सति-प्रथा	सती-प्रथा
८ (ऊ)	४	प्रथा	रक्षा
१५ (नी)	५	म	में
५ (ऊ)	१०	शताब्दी	शताब्दी में
४ (ऊ)	१३	अंग्रेजियों के	अंग्रेजों के
४ (ऊ)	१५	इस	इन
५ (ऊ)	१६	थोइस्टिक	थीइस्टिक
५ (नी)	१६	भो	भी
५ (ऊ)	१८	हैं	है।
८ (ऊ)	१८	चेश्टा	चेष्टा
१० (नी)	२२	साहित्य	वही साहित्य
७ (ऊ)	२३	न री	नारी
१३ (नी)	२३	थ	थी
८ (नी)	२३	भौतीकवाद	भौतिक वाद
७ (नी)	२३	समिमोष्टो	समिष्टि
६ नीं)	२४	करने	व्यक्त करने
४ (ऊ)	२८	वतुगत	वस्तुगत
३ (ऊ)	३०	नींव	नींद
८ (नी)	३२	लिखे	लेख लिखे
११ (ऊ)	३६	नवन	नवीन
१३ (ऊ)	३८	स्त्रियों को	स्त्रियों में
११ (ऊ)	३८	होनी	होना
५ (नी)	३८	युग	इस युग
१६ (ऊ)	३९	लेखिका से	लेखिका ने
८ (ऊ)	४०	श्रष्ठता	श्रेष्ठता
१० (ऊ)	४१	के	को
१५ (ऊ)	४१	वुग	युग
११ (नी)	४१	विवक्षता	विवशता
१ (नी)	४१	तीन	तिन
१४ (नी)	४२	सार	सरिता रानी
१६ (ऊ)	४३	मोहल्ला	मोहल्ले
१० (ऊ)	४६	एम	एन्०
१६ (ऊ	४६	विद्युत प्रथा	विद्युत प्रभा
१० (नी)	४७	अंग्रेजियों	अंग्रेजों
११ (ऊ)	४८	चंपकवु	चंपकमु
५ (ऊ)	४९	पाया जाता	पायी जाती
११ (नी)	४९	मुख्यल	मुप्पाल
७ (नी)	४९	डायरी में	डायरी का
४ (नी)	४९	जीवन का	जीवन के
१० (ऊ)	५०	इंदिरा मेग	इंदिरा में
९ (नी)	५०	को प्रसिद्ध लेखिकाओं ने	की प्रसिद्ध लेखिकाओं में
८ (नी)	५०	वैकुंठ पति	वैकुंठपालि
३ नी)	५०	संपेक	संपेंग
१५ (ऊ)	५१	जोत्त	कोत्त
३ (नी)	५१	हेंग भी किवलक	हैंग मी क्विक

पंक्ति	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
७ (ऊ)	५२	चेतु निजालु	चेदु निजालु
१५ (नी)	५२	पोत्यपल्लि	पोल्कंपल्लि
११ (नी)	५२	तीडलु	नीडलु
३ (नी)	५२	गत्टु	गट्टु
१ (नी)	५२	चिगिचिदि	चिगिंचिदि
४ (ऊ)	५३	श्री यिलयं	श्री निलयं
११ (नी)	५३	दमयंति जी के	दमयंति जी का
१ (ऊ)	५३	स्वातन्त्र्यो काल	स्वातंत्र्योत्तर काल
८ (ऊ)	५६	प्राय	प्राय:
१० (नी)	५६	गय	गये
१० (ऊ)	५८	उदरपुर्ति	उदरपूर्ति है
४ (ऊ)	५८	भ	भी
१२ (ऊ)	५९	सुहासिनो	सुहासिनी
११ (नी)	६०	उतना	उतनी
३ (नी)	६२	मख्य	मुख्य
३ (नी)	६५	मिलते	मिले
२ (नी)	६२	की	को
१० (नी)	६८	पतिव्रत्य	पातिव्रत्य
पाद टिप्पणी	७०	१)५६, ५७, ५८	२)५७-५८
१० (नी)	७६	सगोज	सरोज
४ (नी)	७६	मानते हैं	मानती हैं
पाद टिप्पणी	७७	—	१–पृ. १६०
८ (नी)	७८	आदि आदि	आदि
४ (ऊ)	७९	यह	वह
४ (नी)	७९	मनभावों	मनोभावों
९ (नी)	८२	श्रीनती उमादेवी	श्रीमती उमादेवी
३ (नी)	८२	गृणा	घृणा
१० (नी)	८४	पूर	दूर
१ (ऊ)	८८	जादर्शवादी	आदर्शवादी
५ (ऊ)	१६	दो-बार	दो-चार

पंक्ति	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
९ (ऊ)	९६	अलिकंतला तथा संभाजी	अलिकुंतला
१२ (नी)	९९	त्रिपुसुंदरी	त्रिपुरसुंदरी
३ (नी)	९९	रखती	रहती
५ (नी)	१००	नारी की	नारी को
१५ (नी)	१०१	सहायता	सहायता से
१४ (ऊ)	१०६	ने आंध्र	आंध्र
पाद टिप्पणी	१११	१) रुपवती	२) रूपवती
३ (ऊ)	११२	उदाहरण होता है	उदाहरण है
१ (नी)	११७	गूंगे फिल्म	मूक फिल्म
३ (ऊ)	११८	श्रीष्ण	श्रीकृष्ण
५ (ऊ)	१२३	समाज की	समाज के
५ (नी)	१२४	चिलकमति	चिलकर्मति
१ (ऊ)	१२७	स्वातंत्र्यपूर्ण	स्वातंत्र्यपूर्व
२ (ऊ)	१२८	गाथाओं की	गाथाओं को
६ (ऊ)	१२८	दोनों ने	दोनों
१ (नी)	१३०	आ जाती है	आ गयी है
११ (नी)	१३४	भुमिका	भूमिका
६ (ऊ)	१४६	नीतान	नितीन
१ (ऊ)	१५०	शैली	शैली का
पाद टिप्पणी	१५१	ओम-शुक्ला	ओम-शुक्ला ने
१ (ऊ)	१७३	क पुट	का पुट
शीर्षक	१७४	विरचित	विरचित स्वातंत्र्योत्तर कालीन
२ (नी)	१७४	तूलना	तुलना
१० (ऊ)	१७५	सत्यवरी देवी भैया 'डेवा'	सत्यवती देवी भैया 'उषा'
१ (नी)	१७७	दोरों	दोनों
१ (ऊ)	१७८	अभिनेता	आये हुए अभिनेता
१३ (नी)	१९६	होती हो	होती है
८ (ऊ)	१९८	प्रश्ग	प्रश्न
४ (ऊ)	१९८	वैश्या	वेश्या

१ (नी)	१९९	लग	लगा
१० (ऊ)	२०२	वैषभ्यों	वैषम्यों
२ (ऊ)	२०४	ऊपर स	ऊपर से
३ (नी)	२०५	वा ना पूर्ति	वासना पूर्ति
८ (नी)	२०८	वह जाती	बह जाती
२ (नी)	२२५	बंगडा	लंगडा
१ (ऊ)	२२७	कर्तव्य की	कर्तव्य को
१४ (ऊ)	२४४	प्रसग	प्रसंग
" "	"	कोढ़िया का	कोढ़ियों की
१२ (नी)	२४४	पार्वती कन्या	पर्वतीय कन्या
५ (ऊ)	२४५	जिंद्रिय	जितेंद्रिय
८ (नी)	२४७	दुर्लभ	दुर्बल
१ (ऊ)	२४८	विक्रय .	विक्रम
८ (नी)	२६२	लेखिका हो	लेखिका का हो
१२ (ऊ)	२६६	उपन्यास के	उपन्यास की
पाद टिप्पणी	२६८	संक्षेप	संघर्ष
८ (नी)	२६९	तुखभरी	दुखभरी
३ (नी)	२६९	किर भी	और फिर
६ (ऊ)	२७०	पुरष्कृत	पुरस्कृत
९ (ऊ)	२७०	भी	थी
१० (नी)	२७०	उत्कंठ	उत्कट
१० (नी)	२७०	पश्चात	पश्चात भास्कर
१३ (ऊ)	२७२	दात्र	पात्र
९ (नी)	२७२	बंगई	बंबई
७ (नी)	२७२	लेष्टा	चेष्टा
१३ (ऊ)	२७५	भुआ	बुआ
१ (नी)	२८०	के	में
१० (ऊ)	२८२	लेखिका	लेखक
१३ (ऊ)	२८२	कालएंदुकु	कला एंदुकु
३ (ऊ)	२८४	जेखिका	लेखिका ने
४ (ऊ)	२८४	के लिये	के लिये है या कला जीवन के लिए
१५ (ऊ)	२८५	को	की
३ (ऊ)	२८६	का	की
१० (ऊ)	२८८	से	में
१० (नी)	२८८	की	को
१३ (ऊ)	२९५	स्त्रि	स्त्री
५ (नी)	२९९	बदकर	बदल कर
४ (ऊ)	३०८	पति	पति ने
११ (नी)	३०८	के	की
१० (नी)	३०८	इस की कथा इनका	लेखिका का
१० (नी)	३०८	जयंती	इस की कथा जयंती
२ (नी)	३१०	देती है	देती है।[2]
९ (नी)	३२१	(पाद टिप्पणी संकेत)	३
१ (ऊ)	३२२	रुप से	रूप में
७ (ऊ)	३२२	मला को देवी	कोमलादेवी
३ (ऊ)	३२३	स थ	साथ
१ (नी)	३२३	पहीं	यही
२ (नी)	३२४	प्रकारों	प्रकार
१ (ऊ)	३२५	सहपाटी	सहपाठी
१३ (ऊ)	३३७	मधु-सूदनराव	मधुसूदनराव
१ (ऊ)	३५८	इमकी	इस की
११ (ऊ)	३६३	का	की
१ (ऊ)	३६३	दबाई	दवाई
५ (नी)	३६३	जिसका	जिसका लड़का
१८ (ऊ)	३६८	दुर्बलता	दुर्बलता के
पाद टिप्पणी –२	३७५	अपनी	अपने
पाद टिप्पणी –४	३७५	रूपक	रूप
वही	३७५	आंध्रों की विशिष्ट्य व्यक्तित्व	आंध्रों के विशिष्ट व्यक्तित्व को
१ (नी)	३७६	जाति-पाती	जाति-पाति के
शीर्षक	३८५	नें	में

१६ (नी)	३८६	तया	तथा
१८ (नी)	३८६	लिखी	लिखे
१ (नी)	३९०	आपर्श	आदर्श
३ (ऊ)	४०५	एसी	ऐसी
१२ (नी)	४१३	वाक्चतुरी	वाक्चातुरी
२ (नी)	४१९	ससुर जेठ की ।"	जेठ की ।[2]
११ (नी)	४२२	ससार	संसार
३ (नी)	४२२	ये	में
३ (ऊ)	४३१	के पाट	के पार
१ (नी)	४३१	(पाद टिप्पणी) २८९–२९९	१८९–२९०
११ (ऊ)	४४१	इन	इन में
१० (ऊ)	४४३	का	को
६ (ऊ)	४४५	कथनक	कथानक
८ (ऊ)	४४५	भेरवी	भैरवी
७ (ऊ)	४४६	वर्	वर्ग
१७ ऊ)	४४६	जाता	गया
१० (नी)	४४६	निशेषत:	विशेषत:
११ (ऊ)	४४७	सोवता	सोबती
१३ (ऊ)	४४७	रंक	रंग
१३ (नी)	४४७	किय	किया
६ (नी)	४४७	का	की
१ (नी)	४४७	का	की
पाद टिप्पणी	४४८	२७४, ३२७	२७४ –३२८
पाद टिप्पणी	४४८	२७४, ३२७ –३२८	३२७–३२८
११ (नी)	४४९	समस्या में	समस्या
१० (नी)	४४९	वातावरण	वातावरण का
६ (ऊ)	४५२	वातवरण	वातावरण
११ (ऊ)	४५२	का	की
६ (नी)	४५२	पेकमेडल	पेकमेडलु
७ (ऊ)	४५९	गमी गयी	गयी
१२ (नी)	४६२	भूल	मूल
७ (नी)	४६२	तो	जैसे तो
१४ (ऊ)	४६३	कल्पमाओं	कल्पनाओं
१० (नी)	४६५	गुदगुदाने वाल	गुदगुदाने वाला
१४ (ऊ)	४६६	भूल	मूल
९ (नी)	४६६	दम्यो	महलों
१ (ऊ)	४६७	भासा	भाषा
३ (ऊ)	४६७	द्वि	द्विवेदुला
११ (नी)	४७०	विवाह	विहार
७ (नी)	४७०	क	का
१० (नी)	४७१	आनेवाली	आनेवाला
५ (नी)	४७२	और	ओर
५ (नी)	४७३	के	से
४ (ऊ)	४७५	हें	हैं
पाद टिप्पणी	४७८	४६–४७	४६, ४७
१४ (नी)	४७९	मैं	में
१३ (नी)	४७९	वहा	बहा
१३ (ऊ)	४८१	राज्ञस	राक्षस
पाद टिप्पणी	४८१	५. वैतरिणी पृ. ९०-९१, ९, ७	५. वैतरिणी पृ. ९०-९१
४ (ऊ)	४८२	गांव का	गांव के
पाद टिप्पणी	४८२	५. शलभालु पृ. २११, १७	५. शलभालु पृ. २११
पाद टिप्पणी	४८३	१. शलभालु पृ. २११,१७	१. शलभालु पृ. १७
८ (ऊ)	४८५	उपन्यास	तेलुगु उपन्यास
पाद टिप्पणी	४९२	१,२ वैतरिणी पृ. ९०-९१, ९, ७	१,२ वैतरिणी पृ. ९, ७
३ (ऊ)	४९४	मनोविश्लेषणात	मनोविश्लेषणात्मकता
५ (ऊ)	४९४	की	की कहानी लेखिका
११ (ऊ)	४९५	मे	में ।
१० (नी)	४९६	अबधि	अवधि
१४ (नी)	४९६	लेखिकाओं ने	लेखिकायें